

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

# काव्य-बिंब

# और

# कामायनी की बिंब योजना

डॉ० (श्रीमती) धर्मशीला भुवालका

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक एंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
शाखा चौड़ा रास्ता, जयपुर

मूल्य — 60/-

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित/प्रथम संस्करण १९७७/
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली में मुद्रित।

---

KAVYA BIMB AUR KAMAYANI KI BIMB YOJANA
*by* Dharmsheela Bhuwalka

# भूमिका

डा० (श्रीमती) धर्मशीला भुवालकाजी ने काव्य-बिंबो के अध्ययन का बहुत उत्तम प्रयास किया है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र मे काव्य-बिंब का विशद विवेचन हुआ है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे बिंब विषयक चर्चा पश्चिमी समीक्षा-शास्त्र से प्रेरणा पाकर ही होने लगी है। इस विषय का बहुत ही अच्छा विवेचन डा० नगेन्द्र ने किया है। डा० नगेन्द्र जैसे निपुण विवेचक ने यह भी बताया है कि पश्चिमी आलोचना-शास्त्र मे बिंब के स्वरूप-विश्लेषण मे इतने अधिक आधुनिक अनुशासनो ने एकसाथ ही ऐसा आक्रमण किया है कि "बिंब का स्पष्ट बिंब, इमेज की सही इमेज—जिज्ञासु के मन मे स्पष्ट नही हो पाता।" डा० (श्रीमती) धर्मशीला ने अपनी इस पुस्तक मे समीक्षा-शास्त्र के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे 'बिंब' के सभी उलझे हुए और अस्पष्ट और नित्य परिवर्तमान प्रत्यय को यथासभव स्पष्ट और अनुभव योग्य बनाने का बहुत ही उत्तम प्रयास किया है।

ऐसा लगता है कि आरभ मे इमेज या इमेजरी शब्द का प्रयोग स्थूल आलकारिक अर्थ मे किया गया था। वह भारतीय अलकार-शास्त्र के रूपक विधान की तरह था। पर बाद मे उसमे आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रत्ययो का मिश्रण होता गया। इमेज मूलत मूर्ति या रूप के अर्थ मे प्रयुक्त होता था और इस प्रकार की मानस मूर्ति निर्माण करने वाले मानसिक व्यापार को 'इमेजिनेशन' (समूर्तन) कहा गया। हिंदी मे इसका समशील शब्द कल्पना मान लिया गया है। रहस्यवादी पश्चिमी मनीषियो ने पुराने भारतीय मनीषियो की भाति ही यह अनुभव किया कि यह समूर्तन व्यापार अन्य जीवो मे नही पाया जाता, केवल मनुष्य मे ही पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्य दृष्ट और अनुभूत बाह्य और आतर सत्ता का कुछ न कुछ समूर्तन करता ही है—कई कारणो से सब समय समूर्तन ठीक नही हो पाता। कभी-कभी यह हो गया तो उसका सही ढग से सप्रेषण नही हो पाता। इस प्रसग मे कालिदास की बात याद हो आती है। अभिज्ञानशाकुन्तल मे उन्होंने अपने मत मे थोडा-सा सशोधन किया है। प्रसग है शकुन्तला की रचना का। यहा राजा दुष्यत ने कहा था—

"ब्रह्मा ने सब से पहले शकुन्तला के रूप की मानस कल्पना की होगी। उस समय उसके चित्त मे सौन्दर्य का उफान रहा होगा। उसने चित्त को उनमे समाहित किया होगा। फिर उसने पुराने चौदह रत्नो से भिन्न इस नये स्त्री-रत्न की सृष्टि की होगी, ऐसा मुझ प्रतिभात हो रहा है। यह बात मेरे मन मे इसलिए आती है कि एक ओर उसके (शकुन्तला के) मनोहर रूप को देखता हू और दूसरी ओर विधाता के अपार सामर्थ्य (उसकी विभुता) की ओर।"

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद्
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।
स्त्रीरत्न सृष्टिरपरा प्रतिमाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिंत्य वपुश्च तस्या ॥

यही कालिदास का कलाकृति के विषय मे निश्चित मत है। वे विधाता को भी मनुष्य की तरह एक कलाकार मनाते हैं। मनुष्य जिस प्रकार मानस परिकल्पना करता है उसी प्रकार विधाता भी करता है। वस्तुत कल्प पहले होता है सृष्टि बाद मे। पर सब सृष्टि समान सुंदर नही होती, न विधाता सब समय परिकल्पित सत्त्वयोगी होता है। न तो उसके मन मे सब समय रूप का उफान उठा करता है और न सब समय उसकी विभुता के करिश्मे देखने को मिलते हैं। वस्तुत विधाता मनुष्य की भाति 'सिथिल-समाधि' भी हो जाता है। सब समय उसकी विभूता उसी प्रकार काम नही करती, जिस प्रकार मनुष्य सपूर्ण अभ्यास औ' नैपुण्य रहते हुए भी कभी-कभी काम नही कर पाते। ऐसा क्यो होता है? विधाता को कहा से बाधा मिलती है। कालिदास ने यहा मानव कलाकार की रचना-प्रक्रिया की ओर इगित किया है। विधाता क्या है और कैसे सृष्टि की रचना करता है, यह जानने का कोई उपाय नही है। मनुष्य अपने रूप मे ही विधाता को देखता है। कालिदास ने स्वय रचयिता का जो रूप सोचा होगा या स्वय रचना-प्रक्रिया का जैसा अनुभव किया होगा उसी को विधाता मे घटित कराया होगा, यह अनुमान असगत नही है। कालिदास उत्तम रचना के लिए समाधिस्थ चित्त को बहुमान देते हैं, इस विषय मे कोई सदेह नही है। मेघदूत के प्रसग मे चित्रकला के सात्त्विक और राजसिक भाव का बडा ही कमनीय चित्र प्रस्तुत किया है। यक्ष विरहावस्था मे अपनी प्रणय-कुपिता प्रिया का चित्र बनाता है। चित्र बनाने की स्थिति मे उसका चित्त पूर्ण सत्त्वस्थ रहता है परतु चित्र देखकर वह राजस भाव का शिकार हो जाता है। उसकी आखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है।

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैं शिलायाम्
आत्यान ते चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नौ विधाता ॥

(प्रिये, कभी-कभी मैं धातुराग (गुरु) से तुम्हारे उस रूप का चित्र इस शिला पर बनाता हू, जब तुम प्रेम-कलह मे मान किया करती थी और प्रयत्न करता हू कि तुम्हारे चरणो पर मनाने के लिए गिरा हुआ अपना चित्र भी बना दू, लेकिन ऐसा हो नही पाता। आसू बार-बार उमडकर आखो की दृष्टि-शक्ति ही लोप कर देते हैं। हाय, क्रूर विधाता इस प्रकार चित्र मे भी हमारा मिलन नही बर्दाश्त कर पाता!)

कलाकार के रूप मे यक्ष सत्त्वस्थ रहता है। द्रष्टा के रूप मे राजस भाव मे। अस्तु रजोगुण और तमोगुण से अभिभूत चित्त से प्राणवत सुकुमार सौंदर्य नही निकल सकता, यह कालिदास का निश्चित मत है—'न प्रभातरल ज्योतिरुदेति वसुधातलात'—धरती से प्रभा-चचल ज्योति का उदय नही हो सकता।

'कल्पना शक्ति' समूर्तन व्यापार की तुलना मे कुछ अच्छा शब्द है। मुझे प्रसन्नता है कि धर्मशीला जी ने इस बारीकी को समझाने का प्रयास किया है। कई जगह उन्होने समूर्तन व्यापार के बदले 'रूप विधान' शब्द का प्रयोग किया है जो उचित जान पडता है। पश्चिम मे मध्यकालीन कई मनीषियो ने इसे मनुष्य के भीतर परमात्मा की सर्जना शक्ति का ही रूप

माना है। भारतीय मनीषियो के इस विश्वास को कि जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है वही थोडे मे पिंड मे भी है—ब्रह्माण्डेऽव्यस्ति यत्किञ्चित् तत् पिंडेऽव्यस्ति सर्वथा। यह और बात है कि कही वह सुप्त अवस्था मे है और कही जाग्रत अवस्था मे। मनुष्य मे वह पूर्ण जाग्रत अवस्था मे है। यही बिंब विधान मे आध्यात्मिकता का प्रवेश होता है। विधाता भी सृष्टि-रचना के पूर्व कल्प बनाता है। मनुष्य भी मानस बिंब का निर्माण पहले करता है फिर उसे काव्य मे, चित्र मे, मूर्ति मे ढालकर सप्रेषण योग्य बनाता है। कवि के हृदय मे जो बिंब है उसी प्रकार का बिंब श्रोता या पाठक के हृदय मे उतर आता है। वैसी स्थिति मे श्रोता या पाठक का हृदय कविहृदय के समान हो जाता है। समान हृदय हो जाने के कारण ही वह सहृदय (समान हृदय वाला) कहा जाता है। कालिदास इसे 'सचेता' कहते हैं।

बिंबो के विवेचन के प्रसग मे धर्मशीलाजी ने सहृदयता का बहुत अच्छा परिचय दिया है। उन्होने काव्य-बिंबो को कविमानस मे प्रवेश करके पकडने का प्रयास किया है।

मुझे इस पुस्तक को पढकर प्रसन्नता हुई है। ऐसा विश्वास है कि इस विषय के प्रेमी भी पुस्तक को उपयोगी और आदर योग्य समझेंगे। आयुष्मती धर्मशीला से मुझे और भी अधिक की आशा है। परमात्मा उन्हे निरतर उत्तम स्वास्थ्य और कार्यशक्ति दें।

वाराणसी
२१-६-१९७७

हजारीप्रसाद द्विवेदी

# निवेदन

शत सहस्र प्रणाम—

उस आदिशक्ति महामाया जगदम्बा को, जिसने हृदय के उल्लास की अभिव्यक्ति के रूप मे लीला के लिए जगत को प्रतिबिंबित किया, जिसके वात्सल्य से मानव को सवेदनशील हृदय और चेतना के विकास की अनत सभावनाओ का वरदान मिला।

प्रणाम—

कामायनीकार तथा विश्व के सभी सर्जको को जिन्होंने जगत जननी के इस वरदान को सजाया-सवारा।

प्रणाम—

श्रद्धेय डाक्टर भागीरथजी मिश्र को जिन्होंने अपनत्व और उदारता से इस ग्रंथ का निर्देशन किया।

प्रणाम—

परम पूज्य आचार्य हजारीप्रसादजी को जिन्होने स्वास्थ्य की प्रतिकूलता मे भी इस लघु प्रयास को अपने आशीर्वचन से पवित्र किया।

प्रणाम—

मेरे गुरु आदरणीय श्री अक्षयचन्दजी शर्मा को जिनके सहयोग के बिना यह कार्य सभव ही न था।

प्रणाम—

उन सभी साहित्यकारो और समीक्षको को जिनके ग्रथो ने विषय को समझने की दृष्टि दी।

प्रणाम—

मेरे सभी परिवार वालो को जिन्होंने मुझ विवाह के पश्चात भी अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण दिया।

सपूर्ण सृष्टि मे व्याप्त उस जगत जननी को पुन प्रणाम।

निवेदिका

धर्मशीला

# विषयानुक्रमणिका

## प्रथम खंड



## द्वितीय खंड

# प्रथम खंड

# उपक्रम

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्त च
मर्त्यं चामृत च स्थिता च यच्च सच्च त्यच्च ।
—वृहदारण्यकोपनिपद् (२-३-१)

जगत नाम रूपात्मक है।[1] जड-चेतन, गुण-दोप[2] विप-अमृत, चर-अचर, स्थावर-जगम, स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त अमूर्त, विव-प्रतिविंव, आतप-छाया, अह-इदम्—सभी का विराट् क्रीडागार। अनत ऊर्मियो, तरग-भगिमाओ एव उद्वेलनो से रूपायित यह जीवन सागर विविध वर्णो, गधो, ध्वनियो एव क्रिया-व्यापारो से सवलित है।

दार्शनिक स्तर पर भी जगत् अनेक रूपो मे व्याख्यायित होता आया है। यह शाश्वत प्रत्ययो की अनुकृति या प्रतिकृति है।[3] माया-दर्पण[4] बीच वह अरूप ही इसमे प्रतिविंवित है। इसी प्रतिविंव के इद्रिय सन्निकर्ष से हमारा मानस अनत छवियो को अकित करता है। यही जगत कवि के स्रष्टा मानस मे पतिभोत्थित हो नित्य नूतन छवियो, आकारो एव सुपमाओ से मडित चित्रो, मूर्तियो और विवो मे उभरता है। यही कला सृष्टि है—आह्लादैकमयी तथा नवरसरुचिरा।[5] यही कविर्मनीपी[6] का अपना ससार है। कला महामाया का चिन्मय विलास है—उसकी समूर्तन शक्ति है।[7] काव्य भी समूर्तन है, रचना है।

मूर्त और अमूर्त का पृथक्करण व्यवहारगत है, परमार्थत नहीं। काव्य कला जिस आधार पर अमूर्त कही जा सकती है, उसी आधार पर इसे मूर्त भी कहा जा सकता है। हेगेल ने कलाओ के श्रेष्ठत्व का आधार अमूर्तता को बताया था, जिसका प्रत्याख्यान कवि मनीपी प्रसाद ने किया। उनके ही शब्दो मे—

" वर्तमान विचारधारा मूर्त और अमूर्त कलाओ का भेद करते हुए भी कविता को अमूर्त सगीत कला से ऊचा स्थान देती है। कला के इस तरह विभाग करने वालो का कहना है कि मानव सौंदर्य-बोध की सत्ता का निदर्शन तारतम्य के द्वारा दो भागो मे किया जा सकता है। एक स्थूल और वाह्य तथा भौतिक पदार्थों के आधार पर ग्रथित होने के कारण निम्न कोटि की मूर्त होती है। जिसका चाक्षुप प्रत्यक्ष हो वह मूर्त है। गृह-निर्माण विद्या, मूर्तिकला और चित्रकारी—ये कला के मूर्त विभाग हैं और क्रमश अपनी कोटि मे ही सूक्ष्म होते-होते अपना श्रेणी विभाग करती हैं।

" सगीत कला और कविता अमूर्त कलाए हैं। संगीत कला नादात्मक है और कविता उससे उच्च कोटि की अमूर्त कला है।" यो तो साहित्य कला उन्ही तर्कों के आधार पर मूर्त

भी मानी जा सकती है, क्योकि साहित्य कला अपनी वर्णमालाओ के द्वारा प्रत्यक्ष मूर्तिमती है। वर्णमातृका की विशद कल्पना तत्र-शास्त्रो मे बहुत विस्तृत रूप से की गयी है। 'अ' से आरभ होकर 'ह' तक के ज्ञान का ही प्रतीक अह है। तब तो यह कहना भ्रम होगा कि चित्रकला और वाङ्मय भिन्न-भिन्न वर्ग की वस्तुए हैं।...मूर्त और अमूर्त का भौतिक भेद मानते हुए भी रूप दोनो मे माना गया है।.. सीधी बात है कि सौदर्य-बोध बिना रूप के हो ही नही सकता। सौंदर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने सवेदन को आकार देने के लिए, उनका प्रतीक बनाने के लिए बाध्य हैं। इसलिए अमूर्त सौदर्य-बोध का कोई अर्थ नही।"[८]

प्रसाद ने काव्य कला के 'प्रत्यक्ष मूर्तिमती' होने पर एव उसके रूप पक्ष पर बल देकर उसकी बिंबधर्मिता को मान्यता दी है। पर, यह प्रत्यक्ष बोध चाक्षुप मात्र नही—यह रूपायन प्रक्रिया हृदय मे होती है।[९] हृदय मे कविता का जन्म होता है।[१०]

काव्य का स्वरूप वैयक्तिक रुचि भेदो, युग स्थापित मान्यताओ, बदलते परिप्रेक्ष्यो से आक्रात एव आवृत है। काव्य का स्वरूप-निर्धारण स्रष्टा कवियो, भावुको तथा सुधी समीक्षको के द्वारा ही निर्णीत नही, वह काव्येतर दृष्टिभगी से भी चर्चित है। दर्शन, धर्म, आचार, राजनीति, विज्ञान, मनोविज्ञान के बदलते दृष्टिकोणो, अभिनव आयामो की अग्नि-परीक्षा से उसे गुजरना पडता है। परिणामस्वरूप वादो, जल्पनाओ, वितडावादो के खडित सत्या-भासो के कुहरे से वह स्पष्ट एव धूमिल हो जाता है। सर्वथा निराविल एव साहित्य सापेक्ष दृष्टि से काव्य को जाचना-परखना या समझना दु साध्य है। काव्य जीवन से प्रतिबिंबित होने के कारण जीवन की विविधता, जटिलता और विराटता भी काव्य मे रूपायित होती है।

काव्य की आत्मा क्या है—रस, अलकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि या औचित्य? काव्य का निकष या मानदड क्या है—रजन, प्रेपण या हित? काव्य व्यक्तिनिष्ठ है या समष्टिनिष्ठ? कला कला के लिए या कला जीवन के लिए—आदि अनेक प्रश्न काव्य के सबध मे उठते रहे हैं और उनके समाधान का प्रयत्न भी निरतर होता रहा है।

जो हो, एक बात स्पष्ट एव निर्भ्रान्त है कि काव्य बिंबधर्मा है। वाक्य रसात्मकं काव्यम् से लेकर आज की बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक कविता तक—सभी मे अतस के अनत भाव व्यापारो को गोचरता, दृश्यता और बिंबात्मकता प्रदान करने का ही प्रयत्न है। यीट्स के शब्दो मे—"किसी व्यक्ति के लिए यह अस्वीकार करना अब सभव नही कि मूर्तता अपने सभी स्वरूपो मे महत् है। यद्यपि शब्दो के सुष्ठु चयन के अभाव मे भी मत प्रतिपादन या वस्तु वर्णन सभव हो सकता है, पर किसी इद्रियातीत वर्ण्य को ध्वनिगर्भ, अर्थ और भगिमा-पूर्ण शब्दावली के बिना साकारता प्रदान करना सभव नही।"[११]

## पाद-टिप्पणियां

१ अस्ति भाति प्रिय रूप नाम चेत्यशपचकम्।
आद्यत्रय ब्रह्मरूप जगद्रूप ततो द्वयम्।—दृग्दृश्य विवेक, श्लोक २०

२ जड चेतन गुणदोपमय विश्व कीन्ह करतार।—मानस, बालकाण्ड-७ (ग)

३ वा गुन की परछांह री माया दरपन बीच।
गुन ते गुन न्यारे नही अमल वारि मिलि कीच॥

—सपा० व्रजरत्नदास नददास ग्रथावली, पृ० १७७
(काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

४ मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काचो काँच सो ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥
सपादक—'रत्नाकर' विहारी-रत्नाकर, दोहा १८१, पृ० ७८

५ नियतिकृत नियम रहिता
ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्
नवरस रुचिरा निर्मिति मादधीत
कविर्भारती जयति ।—काव्य प्रकाश १-१

६ कविर्मनीषी परिभू स्वयभू —ईशावास्योपनिषद्, मत्र ८

७ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ०-८-९

८ प्रसाद काव्य कला और अन्य निवध, पृष्ठ १२-१३

९ स आदित्य कस्मिन् प्रतिष्ठित इति
चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षु प्रतिष्ठितमित
रूपेष्विति चक्षुषाहि रूपाणि पश्यति कस्मिन्तु
रूपाणि प्रतिष्ठता नीति हृदय इति हो वाच ॥
हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि ।—बृहदारण्यकोपनिषद् ।

१० हृदय सिन्धु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहैं सुजाना ॥
जौ बरसै बर वारि विचारू । होंहि कवित मुक्तामनि चारू ॥—मानस, बालकाण्ड-११ (दो)

11 Yeats—"It would not be any longer possible for anybody to deny the importance of form in its kind, for although you can expound an opinion or describe a thing when your words are not quite well-chosen, you cannot give body to something that moves beyond senses unless your words are subtle, complex and mysterious

—'Modern Poetry and the Tradition'
by Cleanth Brooks, p 67

# १

# काव्य-बिंब विषयक पाश्चात्य चिंतन

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र एव सौंदर्यशास्त्र मे बिंब के माध्यम से सिद्धात और प्रयोग के स्तर पर मनोवैज्ञानिक, रचना-प्रक्रिया, प्रभाव एव सप्रेषण के द्वारा, स्रष्टा युग और परिवेश को समग्रता से व्याख्यायित करने का स्तुत्य प्रयास हुआ है। डाक्टर नगेन्द्र के शब्दो मे—

"पश्चिम की भाषाओ के आलोचनाशास्त्र मे काव्य-बिंब का अत्यत सूक्ष्म, विस्तृत एव वैविध्यपूर्ण विवेचन हुआ है। केवल अग्रेजी मे ही अनेक ग्रथ उपलब्ध हैं, जिनमे काव्य-बिंब के अतरग और बहिरग रूपो के सूक्ष्म और सर्वांग विवेचन का प्रयत्न किया गया है। परतु दुर्भाग्य से बिंब के स्वरूप-विश्लेषण मे इतने विविध दृष्टिकोण और प्रविधि-भेद उलझ गये हैं, उस पर अलकारशास्त्र के अतिरिक्त मनोविज्ञान, नृतत्वशास्त्र, पुराण विद्या, समाजविज्ञान आदि इतने अधिक 'अनुशासनो' का आक्रमण हुआ है और उसका स्वरूप इतना अस्थिर, जटिल, व्यापक एव अमूर्त बन गया है कि बिंब का स्पष्ट बिंब—इमेज की सही इमेज—जिज्ञासु के मन मे स्पष्ट नही हो पाता।"[1] साथ ही डा० नगेन्द्र को ऐसा भी लगा है कि पश्चिम का आलोचक बिंब के महत्त्व से इतना आक्रात है कि उसकी सपूर्ण काव्य-चेतना ही बिंब से परिव्याप्त हो गयी है और वह व्यावर्तक तत्त्वो को पृथक् कर ऐसी रूपरेखा निर्धारित करने मे अपने-आपको असमर्थ पाती है, जो बिंब को अन्य समानातर धारणाओ से पृथक् कर सके।

## बिंब-संबंधी अर्थवाद

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र मे काव्य-बिंब का विशद विवेचन हुआ है। अनेक बार बिंब के सबध मे ऐसे उद्गार प्रकट हुए हैं जिनसे बिंब का लक्षण या स्वरूप-निर्धारण तो नही होता, किंतु बिंब विषयक अर्थवाद अवश्य प्रकट होता है।

ब्लेक ने इसे ही विश्वास योग्य मानते हुए लिखा है—"प्रत्येक वस्तु जिस पर विश्वास करना सभव हो—सत्य का बिंब है।"[2]

ड्राइडन ने बिंब को कविता का प्राणतत्त्व माना है—"बिंब विधान कविता की उत्कृष्टता ही नही, उसका प्राणतत्त्व है।"[3]

सुविख्यात कवि एव समीक्षक एज़रा पाउण्ड ने वैदग्ध्यपूर्ण ढंग से बिंब की गरिमा-

महिमा को उच्छ्वसित वेग प्रदान कर एक ही बिंब-सर्जना को कवि की जीवनव्यापी साधना का निकष स्वीकार कर अपनी बिंब विषयक एकात निष्ठा का परिचय दिया है—"बडे-बडे पोथे लिखने की अपेक्षा जीवन-भर मे केवल एक बिंब की रचना करना कही बेहतर है।"[४]

काडवेल ने कल्पना का सर्वोपरि कार्य ही बिंब-सर्जना माना है—"कल्पना की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—चित्र विधायिनी शक्ति, बिंब निर्माण की क्षमता।"[५]

यीट्स ने तो बिंबो मे ही विवेक का प्रकाशन माना है—"विवेक प्रथमत बिंबो मे ही मुखरित होता है।"[६] एक अन्य स्थान पर यीट्स ने लिखा है—"उस परम सर्जक ने नाम-रूपात्मक जगत के रूप मे मानो अपने ढग से केवल बिंबो का ही निर्माण किया है।"[७]

ब्लास्ट ने बिंब को 'काव्य की आद्य सहजवर्णता'[८] कहकर गौरवान्वित किया है। मर्मी कवि ब्लेक ने बिंब के महत्त्व को रहस्यात्मक स्पर्श देकर उसके ऐकातिक महत्त्व को स्वीकारा है—"अपनी चिंतनशील विचारशृखला के ज्योतिर्मय पथ पर आरूढ सामाजिक यदि अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा से इनके अतस् मे प्रवेश कर सके, या इन आश्चर्या-भिभूत करने वाले बिंबो से साहचर्य स्थापित कर सके, तो वह मर्त्यलोक से अतीत एक उच्च भूमिका मे दिव्यता का साक्षात्कार कर सकेगा और परम आह्लाद का अनुभव कर सकेगा।"[९]

विश्व विख्यात साहित्यकार शेक्सपियर ने भी बिंब के इस महत्त्व को अत्यत सशक्त शब्दो मे प्रतिपादित किया है—

'The poet's eyes, in a fine frenzy rolling
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven
And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turn them to shapes, and gives to airy nothing
A local habitation and a name.

('A midsummer Night's Dream', Act-V, Scene-1)

शेक्सपियर की बिंब योजना के सदर्भ मे कैरेलीन स्पर्जन ने बिंब को व्यापक परिवेश मे प्रतिष्ठित कर उसे ही स्रष्टा का सपूर्ण व्यक्तित्व मान लिया है—

"कवि के विषय मे यह बात सही है कि प्रधानत. बिंब ही वह माध्यम है जिसके द्वारा वह अनजाने ही अपने को अभिव्यक्त करता है। प्रधानत बिंब के माध्यम से ही वह अचेतन भाव से आत्मविवृति करता है। बिंब वह शब्दचित्र है जिसमे कवि अपने गद्यात्मक वाचन और चरित्रनिष्ठ विचारो से भिन्न उन भावाविष्ट क्षणो को प्रोद्भासित करता है जिनमे असकल्पित रूप से उसकी अतर्तम रति-विरति, जीवनानुभव, रुचिया, रजन के क्षेत्र, विचारो के आसग, मानसिक रुझान, विश्वास, निष्ठाए—सभी व्यक्त होती हैं।"[१०] काव्य-बिंब के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता लेविस ने स्पष्ट लिखा है कि काव्य के अनतप्रवाही शिल्प व विधा के मध्य यदि कुछ स्थिर, अटल व ध्रुव है तो यही बिंब। लेविस के शब्दो मे—

"काव्य के क्षेत्र मे युगधाराए आती हैं और चली जाती हैं, काव्य की पदावली बदल जाती है, छद के फैशन पुराने पड जाते हैं, यहा तक कि काव्य का कथ्य बदल सकता है—इस सीमा तक कि मूल्य मे पहचाना भी न जा सके, पर रूपक (बिंब) अडिग रहता है—यही कविता का प्राणतत्त्व है, इसी के निकष पर कवि की परख होती है और यही उसकी गरिमा का निर्णायक है।"[११]

हरबर्ट रीड ने सभी प्रकार की सर्जना को बिंबात्मक ही माना है—"सृजनात्मक क्रिया-व्यापार का अर्थ है—नये बिंब।"[१२]

वर्ड्सवर्थ ने एक स्थान पर कविता को मनुष्य और प्रकृति का बिंब कहकर विराट व्यापकता को व्यक्त किया है—"कविता—मतलब बिंब, प्रकृति व मनुष्य का बिंब, सचराचर विश्व का चित्र।"[१३]

सिडनी के अनुसार कवि को कवि बनानेवाला एकमात्र निकष बिंब ही है—"ये न तुक हैं और न छंद, जो कवि को कवि बनाते हैं। कवि को कवि बनानेवाला है—कल्पना निर्मित महनीय बिंब जो सत् से, असत् से या किसी और से रचित है।"[१४]

लारेंस जान जिलमैन के अनुसार—"बिंब और अनुबिंब—बस यही कविता है, कविता का सार एवं सर्वस्व है।"[१५]

बिंब की उद्गारात्मक श्लाघा को हम अर्थवाद भले ही कह लें पर इससे काव्य मे बिंब की अपरिहार्य गरिमा स्वत प्रतिष्ठित हो जाती है। और स्टीफन डेडलस के शब्दो मे हम कह सकते हैं—"सौंदर्यात्मक बिंब समस्तता, समस्वरता व प्रासादिकता के वैशिष्ट्य से संपन्न एक ऐसा चारुत्व है जिसकी परिकल्पना अनंत दिक्काल की पृष्ठभूमि मे, किंतु उससे सर्वथा भिन्न एक स्वत.पूर्ण एवं स्वनियंत्रित संपूर्ण इकाई के रूप मे एक ऐसे कलाकार के द्वारा की जाती है जिसका मानस सौंदर्यात्मक आह्लाद की ज्योतित भूमिका मे स्थित होता है।"[१६]

## स्वरूप और लक्षण

काव्य-बिंब को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से परिभाषित किया गया है। इससे काव्य-बिंब के जहा अनेक सौंदर्य-शिखर उभरते गये हैं वहा उसका अनर्गल विस्तार भी हो गया है। सत्य तो यह है कि अनेक परिभाषाए तथाकथित परिभाषाए ही हैं जिनमे कही वर्णना मात्र है, कही उसके बाह्य स्वरूप का आख्यान है, कही उसके अंतर्धर्म की ओर इंगित है, कही सृजन प्रक्रिया का एक अंश है, कही बिंब-प्रेरित आनंदानुभूति की व्यंजना है। उचित होगा कि इन लक्षणो के भीतर से काव्य-बिंब के प्रकृत स्वरूप का हम संधान करें।

आंग्ल भाषा के कोशकारो ने बिंब को संक्षेप मे परिभाषित करने का प्रयास किया है, जो इस प्रकार है—

(१) किसी पदार्थ का मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति।[१७]

(२) कल्पना अथवा स्मृति मे उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुष होना अनिवार्य नही।[१८]

(३) किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति, मूर्त या दृष्ट प्रत्यंकन, एक पदार्थ के लिए किसी ऐसे मूर्त अथवा अमूर्त पदार्थ का प्रयोग जो उसके अत्यधिक समान हो अथवा उसे व्यंजित करता हो—जैसे मृत के लिए निद्रा का प्रयोग।[१९]

(४) मनोविज्ञान मे इमेज से अभिप्राय किसी ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव की स्मृति से है जिसका परवर्ती अनुभव के द्वारा रूपांतर हो जाता है और जिसमे अंतर्मनोवैज्ञानिक उद्दीपन के द्वारा उद्बुद्ध बौद्धिक एवं रागात्मक तत्त्व अंतर्भुक्त रहते है। यह संग्राहक यंत्र पर अंकित उद्दीपक पदार्थ की प्रतिच्छवि का पर्याय है।[२०]

(५) इमेज से अभिप्राय है ऐसी सचेत स्मृति जो मूल उद्दीपन की अनुपस्थिति मे किसी अतीत अनुभव का समग्र अथवा अंश रूप मे पुनरुत्पादन करती है।[२१]

उक्त कोशो मे बिंब विषयक कथन मनोविज्ञान द्वारा स्वीकृत लक्षणो की ध्वनिमात्र है, जहा कही 'कल्पना' या 'पुनरुत्पादन' शब्द आया है, वहा मानो काव्यात्मक बिंब के लक्षण-वैशिष्ट्य को तुष्ट करने का प्रयास मात्र है।

मनोविज्ञान मे बिंब चाक्षुप दर्शन नही, स्मृति मे पूर्वानुभवो का आना है। पर जहा बिंब 'कल्पना' या 'स्मृति' के विकल्प मे आता है वहा बिंब का अप्रस्तुत विधान वाला स्वरूप है। बौद्धिक या रागात्मक तत्त्व की अतर्भुक्ति अधुनातन काव्य-आदोलन की बौद्धिकता की स्वीकृति है।

## समीक्षको द्वारा दिये गये लक्षण

(१) एक समय के इद्रिय ज्ञान के लेखे-जोखे को कविता मे प्रस्तुत कर देना ही रूप-विधान है।[२२]

(२) कविता मे सबसे सुदर और सजीव कल्पना-चित्र या रूप-विधान वही है; जिसका अनुभव हमे इद्रियो द्वारा हो सके, जिसे हम स्पर्श कर सकें, देख सकें और सुन सकें।[२३]

(३) कविता का दूसरा नाम रूप-विधान है और रूप-विधान का इद्रिय राग से घनिष्ठ सबध है।[२४]

(४) रूप-विधान मानसिक चित्रो के रूप मे अनुभवो की अभिव्यक्ति का नाम है।[२५]

(५) कविता के लिए सवेग, सगीत तथा चाक्षुप रूप-विधान की अत्यत आवश्यकता है।[२६]

(६) जिस कविता मे रूप-विधान की मात्रा जितनी ही अधिक होती है वह कविता उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है।[२७]

(७) कविता की सच्ची कसौटी कल्पना और रूप-विधान है।[२८]

(८) अनुभूतिया जितनी ही तीव्र, रूप-विधान उतना ही सशक्त और भाव-प्रवण।[२९]

(९) कविता मे रूप-विधान या चित्रात्मकता का उपयोग केवल शृगार के लिए ही नही होता, यह प्रातिभ ज्ञान की भापा का एक तत्त्व है।[३०]

(१०) कविता की अभिव्यक्ति सीधी-सादी होने से वह प्रभावशून्य हो जाती है, उसमे तुलनात्मक भावनाओ का समावेश अनिवार्य है—अन्यथा न उसमे रस होगा, न प्रभाव, एक सीमा तक मौलिकता का भी अभाव होगा।[३१]

(११) साधारण बात हम पहले ही जानते हैं किंतु वही साधारण बात यदि रूप-विधान के घूघट से झाकती है तो वह असाधारण और सुदर प्रतीत होती है।[३२]

(१२) कल्पना-चित्र या रूप-विधान एक नन्हा-सा शब्दचित्र है, जिसका उपयोग कवि अथवा लेखक अपने भावो एव विचारो की व्याख्या करने तथा उसे बोधगम्य और स्पष्ट करने के लिए करता है।[३३]

(१३) योजनानुसार खडो का सयोजन 'रूप' का उत्पादक होता है—वहा प्रत्येक खंड दूसरे की अपेक्षा रखकर ही समग्र भाव के निर्माण मे भाग लेता है।[३४]

(१४) चित्रकार की कल्पना जहा चाक्षुप मूर्त-विधान करती है, वहा कवि-कल्पना चाक्षुप एव श्रव्य दोनो प्रकार के सतुलित मूर्त-विधान गढती है।[३५]

(१५) काव्य-बिंब एक प्रकार का भावगर्भित शब्दचित्र है।[३६]

(१६) बिंब ऐंद्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक या बौद्धिक सत्यो तक पहुचने का

मार्ग है ।[३७]

(१७) स्मृतियो के संदर्भ मे अनुभूतियो की व्याख्या ही बिंब है ।[३८]

(१८) कविता रोजमर्रा की भाषा नही है बल्कि दृश्य अथवा मूर्त भाषा है—काव्य मे बिंब-विधान मात्र अलंकरण के लिए नही होता वरन् वह कविता का प्राण है ।[३९]

(१९) बिंब एक चित्रात्मक प्रतिनिधि नही अपितु वह बौद्धिक एवं भावात्मक जटिलताओ का सद्य प्रकटीकरण है—बिखरे हुए विचारो मे एकत्व की स्थापना है ।[४०]

डा० नगेन्द्र ने इन व्याख्याओ का विश्लेषण कर बिंब के विषय मे अनेक मूलवर्ती धारणाए स्पष्ट करते हुए लिखा है—

(क) बिंब पदार्थ नही है वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिच्छवि है । मूल सृष्टि नही पुन सृष्टि है ।

(ख) बिंब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इंद्रियो के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त मे उद्बुद्ध होता है ।

(ग) अमूर्त बिंब नही होता: जिन बिंबो को अमूर्त माना जाता है वे अचाक्षुष होते हैं, अगोचर नही ।

(घ) सामान्य बिंब से काव्य-बिंब मे यह भेद है कि (१) इसका निर्माण सक्रिय या सर्जनात्मक कल्पना से होता है, और (२) इसके मूल मे राग की प्रेरणा अनिवार्यत रहती है ।

इस प्रकार काव्य-बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल मे भाव की प्रेरणा रहती है ।[४१]

काव्य-बिंब के विख्यात मर्मी लेविस व डा० नगेन्द्र के लक्षण मे रोचक पार्थक्य है । लेविस कहता है—"काव्य-बिंब शब्दचित्र है ।" शब्दचित्र कहकर समीक्षक ने काव्य की शब्दात्मकता एवं 'चित्र' कहकर अन्य शब्दधर्मा वाङ्मय से उसका व्यावर्तन कर दिया है । इसे ही डा० नगेन्द्र ने 'शब्दार्थ' कहा है—पर, बिंब को मूर्तित करने के लिए 'चित्र' शब्द अधिक सुष्ठु है । डा० नगेन्द्र ने 'मूल मे राग की प्रेरणा' कहकर काव्य-बिंब को राग से संपर्कित तो अवश्य किया, पर लेविस के 'Charged with Emotion' मे जो संवेग है वह उसमे पूर्ण-रूपेण नही आ सका ।

इन अनेकानेक परिभाषाओ के बीच लेविस का लक्षण ही सर्वोपरि है । लक्षण सूक्ति-प्रधान व संक्षिप्त होने के साथ ही बिंब के मूल धर्म का संवाहक भी है । पर, यद्यपि लेविस ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पोयटिक इमेज' मे औचित्य पर बल दिया है—इस लक्षण मे 'औचित्य' शब्द का न होना उसे कम सशक्त तो अवश्य करता है, अधिक उचित होगा यदि हम कहे कि "काव्य-बिंब औचित्य शासित भाव-गर्भित शब्दचित्र है ।" इसे ही लोंजाइनस ने व्याख्यायित करते हुए कहा है—"यो तो प्रत्येक आशय जो अपनी अभिव्यक्ति मे भाषिक उत्पत्ति का कारण बनता है—उसे फैंटेसिया या बिंब का सामान्य अभिधान दिया जाता है, पर अब विशिष्ट अर्थ मे बिंब का प्रयोग उस स्थिति मे होता है जब स्फूर्ति एवं संवेग के उन्मेष मे हम कथ्य को प्रत्यक्ष देखते से हैं और श्रोता को भी उसका साक्षात्कार कराते हैं ।"[४२]

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि काव्य-बिंब चेतन-अचेतन मानस से उद्भूत, भावोद्रिक्त कल्पना-सर्जित शब्दार्थ स्पर्धी वह ध्वनिचित्र है जिसमे औचित्य के शासन मे व्यक्ति एवं युग समीकृत होते हैं । अस्तु, काव्य-बिंब के स्वरूप की जब हम चर्चा करते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमे जब तक निम्न तीन गुणो का समावेश नही होता वह अपूर्ण

रहता है—

(१) काव्य-बिंब काव्य है, अत काव्य का अनन्य व्यावर्तक धर्म-भाव, भावना, रस, राग, सवेग आदि किसी न किसी रूप मे उसमे अतर्भुक्त रहेगे।

(२) कल्पना-अर्थात् रूप-सृजन, सौंदर्य-बोध, लालित्य, अप्रस्तुत विधान—यही काव्य का व्यक्त स्वरूप है।

(३) उत्तरवर्ती धर्म के रूप मे—आनदित करना, रसमग्न करना, सद्य परनिर्वृत्ति, कातासम्मित उपदेश, इद्रियो का समजन, हृदय की मुक्तावस्था या शेप सृष्टि से रागात्मक सबध।

इस प्रकार काव्य-बिंब का स्वरूप अपनी समग्रता मे रागात्मकता, चितना, कल्पना, अप्रस्तुत विधान को इस प्रकार समेटता है कि भाव पक्ष-कला पक्ष, व्यष्टि-समष्टि, रजन-मगल आदि सभी द्वैतो का सहज अतर्भाव हो जाता है। इसी तादात्म्य को स्पष्ट करते हुए ब्रैडले ने लिखा है—"काव्य का अनुशीलन जब हम आलोचनात्मक व विश्लेपणात्मक पूर्वाग्रहो से मुक्त विशुद्ध काव्य-स्तर पर करते हैं और इस प्रकार जब हम काव्य को हमारी पुन सृजनात्मक कल्पना के उद्दीपन द्वारा हमे पूर्णरूपेण प्रभावित करने का सुअवसर देते हैं, तब क्या हम एक विशेप अर्थ या काव्य का रसास्वादन अभिव्यक्त ध्वनियो से पृथक् एक अन्य तत्त्व के रूप मे करते हैं ? या फिर क्या हम इन दोनो तत्त्वो का सश्लेषण करते हैं ?·· 'सूर्य तेजोमय है, आकाश निर्मल है'—इस पक्ति मे हम सूर्य की उष्णता व आकाश की निर्मलता का बिंबग्रहण काव्य की किन्ही अस्पष्ट लयात्मक ध्वनियो से पृथक्रूपेण नही करते और न ही हम इन दोनो की पार्श्व स्थिति का अनुभव करते हैं—प्रत्युत हम दोनो की अन्योन्याश्रित अनुभूति करते हैं।·· यह सत्य है कि काव्यानुभूति की भूमिका से अलग हट, हम स्मृति रूप मे सुरक्षित काव्य-स्वरूप के विश्लेपण से इस अन्विति को विबधित कर, कथ्य एव आकार को पृथक्-पृथक् तत्त्व के रूप में ग्रहण कर सकते हैं, पर यह हमारे तार्किक मस्तिष्क की ही प्रक्रिया होगी काव्य की नही जो एक विशुद्ध रसात्मक अनुभूति से पृथक् और कुछ नही।·· यह एक ऐसा सश्लेपण है जिसमे कथ्य एव आकार उसी प्रकार अभिन्न रहते हैं जिस प्रकार प्रवहमान रक्त और रक्त मे निहित जीवन। इस सश्लेपण के कई स्वरूप और कई पक्ष होते है पर ये अलग-अलग अग या तत्त्व के रूप मे स्वीकृत नही किये जा सकते। कथ्य एव आकार का यह तादात्म्य कोई अप्रत्याशित घटना नही, काव्य का सार है। इस प्रकार कविता मे विशुद्ध कथ्य और विशुद्ध आकार का न तो कोई अस्तित्व ही होता है और न ही उनकी पृथक्-पृथक् प्रतीति ही की जा सकती है। काव्य की मूल्यगत महत्ता का कारण न एक है, न दूसरा और न ही दोनो का योग—वह तो स्वय कविता ही है जिसमे इन दोनो की असपृक्तता का कोई स्थान नही।"[४३]

बिंब अपने इसी व्यापक स्वरूप के कारण काव्य को सभी स्तरो पर उत्कर्ष प्रदान करता है। रोसेन्थाल व स्मिथ के शब्दो मे—"प्रत्यक्ष ऐंद्रिय बोध व चित्रात्मक सादृश्य विधान ही बिंब है। बिंबो के माध्यम से ही काव्यात्मक अनुभूति व अभिव्यक्ति के तिहरे स्वरूप का प्रकाशन होता है, यथा—सम्यक् व गहन वस्तु-बोध, भावो व अनुभूतियो का उद्दीपन तथा मानस का तरगन। काव्य-बिंब ऐंद्रिय बोध, भावावेग एव विवेक से प्राणोदित होने के कारण ही काव्य चेतना के इन तीनो स्तरो को सप्रेपित करने मे सक्षम होता है।"[४४]

काव्य-बिंब अपने इसी सश्लिष्ट स्वरूप के कारण, जहा एक ओर काव्य को उत्कर्ष प्रदान करता है वहा दूसरी ओर भावक को भी व्यक्तिगत योगक्षेम से परे एक ऐसी उच्चतर

भूमिका मे स्थित करता है, जहा वह विशुद्ध भाव से काव्यानन्द का आस्वादन करता है। भारतीय आचार्यों के 'ब्रह्मानन्द सहोदर' को ही मानो एजरा पाउड ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"बिंब वह है जो बौद्धिकता एव भावनात्मकता के ऐक्य को तत्काल ही प्रेषित करती है। तत्क्षण एकीकरण का यह गुण ही हमे अनायास ऐसी मुक्तावस्था मे ले जाता है, जिसमे हम दिक्काल की सीमा का अतिक्रमण कर आकस्मिक रूप-विकास का अनुभव करने लगते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि किसी महत् कलाकृति के रसास्वादन मे करते हैं।"[४५]

बिंब अपने स्वरूप-विस्तार मे ऐंद्रिय सवेदनाओ के सभी स्तरो पर समर्पित है और अपनी सिद्धि के लिए सादृश्यमूलक सभी अप्रस्तुतो को साधनभूत कर सकता है। वह विचारो तथा भावो का शब्दात्मक विग्रह है तथा अपने सादृश्य विधायक स्वरूप मे रूपक की आपेक्षिक निश्चितता से लेकर सभी ध्वन्यात्मक अनिश्चितताओ को समेटता है। ह्यूम के शब्दो मे—"बिंब हमारी इद्रियो को समर्पित एक ऐसा सादृश्य निबधन है जो मानस प्रत्यक्षीकरण को व्यक्त करता है। निर्भ्रांत पदावली से निर्मित यह सादृश्य निबधन रूपक का स्वरूप भी धारण कर सकता है और स्वतत्र अर्थ घन के रूप मे भी व्यवहृत हो सकता है।"[४६]

सक्षेप मे, काव्य-बिंब आतरिक रूप से भावावेग, गोचर रूप से भाषा की रूपसज्जा एवं सप्रेपण के रूप मे सद्य परनिर्वृत्ति है। वह एक ओर काव्य के अत पक्ष राग की अव्यवहित सन्निधि मे है तो दूसरी ओर कला, शिल्प, रूपादि बाह्य पक्ष को समग्रता से स्वायत्त करता है। हम कह सकते हैं कि राग ही शिल्प से प्रोत है या शिल्प ही रागमय है। यह वागर्थ की स्थूल सपृक्ति मात्र नही प्रत्युत दोनो का एकाकार सश्लिष्ट रूप है। अलकारशास्त्र मे जिस प्रकार गुण को शब्दधर्मा न मानकर आत्मा का धर्म माना गया है, ठीक उसी प्रकार बिंब भी आपातत अभिव्यक्ति पक्ष की ओर अधिक उन्मुख है, पर तत्त्वत वह राग का रूप-परिवर्तन ही है।

## काव्य बिंब क्यो ?

यहा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि आखिर काव्य बिंब क्यो ? इस प्रश्न का महत्त्व और भी बढ जाता है जब हम देखते हैं कि पाश्चात्य जगत् के समर्थ मेघावी समीक्षक आई० ए० रिचर्ड्स ने काव्य-बिंब को न तो काव्य का महत्त्वपूर्ण उपादान स्वीकृत किया है और न ही उसे मूल्य-निर्णायक माना हैं। 'Practical Criticism' नामक अपने विख्यात ग्रथ मे उन्होने लिखा है—

"जिन जीवत एव सुनिश्चित बिंबो का प्रत्यक्ष अनुभव हम करते हैं वे अपनी अधिकाश विशेषता व सूक्ष्मता के लिए कवि-कल्पना से परे किन्ही अन्य स्रोतो पर आश्रित रहते हैं। काव्य के महत्त्वपूर्ण उपादान या मूल्य-निर्णायक के रूप मे उनका प्रयोग या स्वीकार भ्रामक व्यापार है।"[४७]

रिचर्ड्स ने विश्वस्त व्यक्तियो के साक्ष्य के आधार पर मनुष्यो मे बिंबात्मक प्रतीति के अभाव की सूचना भी दी; पर साथ ही रहस्यमयी अन्य मानसिक प्रक्रिया की चर्चा की—"विश्वसनीय व्यक्तियो के वक्तव्य इस बात के साक्षी हैं कि उन्हे बिंबात्मक प्रतीति कभी हुई ही नही। ··कहना न होगा कि ऐसे व्यक्तियो मे काव्यास्वाद का माध्यम बिंब का स्थानापन्न कुछ और ही है, और जब तक यह बिंब प्रतिरूप प्रभविष्णु है, भावक मे बिंबात्मक प्रक्रिया के अभाव का कोई महत्त्व नही।···कुछ सहृदयो के लिए बिंब की उपादेयता निर्विवाद है पर सबके लिए

इसे अपरिहार्य मानना भ्रामक है।"[४८]

प्रश्न है—रिचर्ड्स के इस कथन मे जिस 'विंब के समानातर' की चर्चा की गयी है वह क्या है ? इसे समीक्षक ने स्पष्ट नही किया है—कही यह विंब-प्रतिरूप सूक्ष्म सवेदनीय विंब ही तो नही ?

जो हो, काव्य के सवध मे 'मूर्तता' एव 'साक्षात् लब्धता' ही सत्य है। कारलाइल ने लिखा है—"सभी कलाए अपने सच्चे अर्थो मे यथार्थ की आत्मा की मुक्ति हैं। इसमे असीम का ससीम से समन्वय होता है। उसे ऐसी मूर्तता प्रदान की जाती है मानो वह वहा साक्षात् लब्ध है।"[४९]

मैकेल ने भी आस्वाद के क्षणो मे काव्य की दृश्यता एव मूर्तधर्मिता को माना है—"ऐतिहासिक दृष्टि से कविता एक सवद्ध मनोवृत्ति है—सश्लिष्ट व्यक्तीकरण की अनवरत शृखला है · आस्वाद के क्षणो मे वह दृश्य-श्रव्य एव साकार होती है।"[५०]

वारफील्ड ने भी काव्यभाषा को रूपकात्मक कहा है, वह सवेदनाओ का पुन सर्जन है जो प्रत्यक्ष बोध, सहजानुभूति एव प्रत्ययो से अतीत तथा भिन्न होती है—"कवि अपनी रूपकात्मक भाषा मे प्रत्यक्ष बोध से अतीत वस्तुगत ऐक्य को प्रत्ययात्मक पुन प्रतिष्ठा देता है। उसकी कल्पनात्मक प्रज्ञा काव्य के रूप मे उन सवेदनाओ को पुन सर्जित करती है, जिनका अनुभव उसे कभी काव्यात्मक अनुभव से भिन्न सहजानुभूति के रूप मे हुआ था।"[५१]

काव्य-विंब कवि का सदर्शन है जहा हमे प्रत्येक स्तर पर जीवन को समग्रता से जीने का बोध होता है। यही हमारा आदि मानव प्रकृत भावना के साथ जीता है और हम अपने मानवीय सवेग को पुन प्राप्त करते हैं, जैसा कि विवान्ते ने कहा है—"काव्यात्मक सदर्शन मे हमारा सपूर्ण अस्तित्व, उसका प्रत्येक परमाणु झकृत हो उठता है। यद्यपि भदेस सहज प्रवृत्ति और आदिम अनुभव जीवित रहते हैं तथापि इन्हे यथार्थ मूल्यो एव रूपो के माध्यम से ग्राह्य बनाया जाता है। यहा यथार्थ से तात्पर्य है—गतिशील वर्तमान के रूप मे उनका नवीनीकरण।"[५२]

काव्य-विंब नि सदेह वैयक्तिक सर्जना है, पर उसकी सार्थकता इसमे है कि अकेला व्यक्ति इन विंबों से समष्टि के साथ साहचर्य स्थापित कर सकता है और इस प्रकार काव्यास्वादन के क्षणो मे वह अकेला, विविक्त होकर भी, समूह और समष्टिगत चेतना के साथ जीता है। काव्य के इस विरोधाभास को काडवेल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Ellusion and Reality' मे स्पष्ट किया है—"सामूहिक रूप से उत्पन्न सवेग मानस मे ऐकातिक भाव से सुरक्षित रहते हैं जिससे कि अकेला व्यक्ति भी काव्यात्मक अभिव्यक्ति के क्षणो मे सामूहिक विंबो से अपनी अनुभूतियो को अनुप्राणित करता है। इस प्रक्रिया से वह काव्य के उस विरोधाभास को स्पष्ट करता है जिसमे मनुष्य अपने वातावरण से विविक्त हो कला के ऐकातिक ससार मे प्रवेश करता है—केवल इसी उद्देश्य से कि वह कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण मानवता से अधिक अभिन्न सवध स्थापित कर सके।"[५३]

विंब योजना हमारे मानस मे समष्टिगत रागात्मकता को प्रत्यक्ष करती है—इसी सत्य को काडवेल ने प्रश्नात्मक शैली मे व्यक्त किया है—"कविता मे व्यक्त तत्त्व है ही क्यो ? विंबो का गमन क्यो नही ? कविता कथ्य को अभिव्यक्त, व्याख्यायित, वर्णित क्यो करे ? वह व्याकरण के अनुशासन मे क्यो बधे ? उसकी पद योजना क्यो हो ? उत्तर केवल एक ही है—क्योकि कविता बाह्य यथार्थताओ से आनुकूल्य स्थापन है, ससार के प्रति रागात्मक वृत्ति है। काव्य का व्यक्त तत्त्व बाह्य वास्तविकताओ का प्रतिनिधित्व करता है—भावात्मक तत्त्व

इसी बाह्य वास्तविकता से स्रवित होता है। व्यक्त तत्त्व, शाब्दिक अर्थ, व्याख्येय आलय सभी एक प्रकार के सेतु हैं जो प्रत्येक शब्द के प्रभावोत्पादक प्रवाह मे सपर्क स्थापित करते हैं।"[५४]

निर्विकल्प ज्ञान के पक्षधर, अमूर्त चिंतन एवं प्रत्ययात्मक बोध को सर्वोपरि मानने-वाले दार्शनिको ने भी बिंब की अनिवार्यता स्वीकार की है। विश्वविख्यात दार्शनिक शॉपेनहावर ने स्पष्ट शब्दों मे बिंबात्मकता एव मूर्तता को स्वीकार किया है—"समस्त निर्विकल्प *यथार्थ ज्ञान की आतरिक मूल शक्ति ऐंद्रिय बोध है*" ऐंद्रिय बोध विरहित मात्र अमूर्त धारणाए वास्तविकता के धूमिल रेखाचित्र ही हो सकते है · प्रतिमा और विवेक की आधार-भित्ति अमूर्त और भ्रात धारणाए नही, अपितु सूक्ष्म ऐंद्रिय सवेदन है।"[५५]

काव्य मे बिंबो का होना आवश्यक है, क्योकि बिंब यद्यपि अपने स्वरूप मे रसात्मक होता है पर जहा तक उसके प्रभाव का प्रश्न है वह राग के साथ ही हमारी बौद्धिक चेतना को भी कम प्रभावित नही करता। बिंबो की इसी प्रभविष्णुता को लिजरोरे ने व्यक्त किया है—"प्रतिनिधित्व, स्पदित अनुभूति, व्यावहारिक लक्ष्य एव रूपकात्मक विचार के द्वारा बिंब एक जीवित काव्य को मूर्तित करता है और इसी की शक्ति से एक जीता-जागता विश्व बन जाता है—जो केवल हमारी भावना को ही उद्वेलित नही करता, हमारी बौद्धिक चेतना को भी सक्रिय करता है।"[५६]

फाक्स यह नि सकोच स्वीकार करता है कि कविता अपने व्यापक परिवेश मे अखिल ब्रह्माड को केवल बिंबो मे ही समेट सकती है—"कविता मानवीय विचार एव भावना के दर्पण मे अखिल बहिर्जगत को अपने उद्भावित बिंबो के माध्यम से प्रतिबिंबित करती है।"[५७]

दर्शन के स्तर पर हम अमूर्त चिंतन व प्रत्यय-बोध का चाहे जितना ही यशस्तवन करें काव्य की श्रेष्ठता वही प्रारभ होती है जहा कवि प्रत्ययो का अतिक्रमण कर बिंब-सर्जना के क्षेत्र मे प्रवेश करता है। जहा दार्शनिक प्रत्ययो मे अपनी बात कहने मे असमर्थ होता है—कवि उन अगम बातो को बिंबो के द्वारा सहज सवेदनीय बनाता है—"नर-नारी का लावण्य के साथ जो सबध है वही पारस्परिक सबध काव्य का चित्र के साथ होना चाहिए। जिस मिलन-बिंदु पर दोनो सर्वथा तद्रूप रहते हैं वही काव्य का महत्तम व सर्वोपरि शिखर है। काव्यात्मक अनुभूति का पूर्ण परिपाक तभी सभव है जबकि वह बिंब-विधान के द्वारा ऐसे विषयो की बिंबात्मक अभिव्यक्ति करे जो कि प्रत्यय-बोधात्मक पदावली से अतीत होते है।"[५८]

प्रकृत जीवन और काव्य-जीवन की तुलना करते हुए कालरिज ने काव्य-जीवन को अधिक व्यवस्थित और अधिक भावावेगमय मानते हुए यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि यदि कविता मे कही भावावेग है तो वह उसके बिंबो मे ही है—"सामान्य जीवन मे प्रकृत रूप से पाये जाने वाले भावावेग की अपेक्षा कविता मे भावावेग तीव्रतर होता है और यही बात व्यवस्थाक्रम के सबध मे भी चरितार्थ होती है। ··जीवन से अधिक व्यवस्था जो काव्य मे पायी जाती है वह तो उसकी पद-योजना में रहती है, पर प्रश्न है कि जीवन से तीव्रतर पाया जानेवाला भावावेग कविता मे कहा रहता है?·· कविता मे यदि कही भी भावावेग है तो वह नि सदेह बिंबो मे है और यदि उनमे भी नही है तो उनकी सामूहिक नियोजना मे है।"[५९]

हमे चाहे अपने वैयक्तिक रागो, उद्गारो एव उमगो को व्यक्त करना हो, चाहे समष्टिगत चेतना को—कवि के सामने एक ही पथ है कि वह उन्हे सजीव स्पदित बिंबो मे ही प्रत्यक्षीकृत करे क्योकि कविता अतत बिंब ही तो है—"कवि अपनी कविता मे जिनके द्वारा या जिनमे मानव-जीवन को प्रत्यक्षीकृत करता है वह सपूर्ण कविता और कुछ नही—केवल एक बिंब, एक साग रूपक, एक प्रतीक है।"[६०]

## पाद-टिप्पणियां

१. डा० नगेन्द्र 'काव्य बिंब', विज्ञप्ति ।

2 "Every thing possible to be believed is an image of truth"
—Blake 'The Poetic Image', p 27

3. "Imaging is in itself the very height and life of Poetry"
—Drydon 'The Poetic Image', p. 17.

4. "It is better to present one image in a life time than to produce voluminous works"—'Literary Essays of Ezra Pound', p 17

5. "The first and most familiar function of imagination is the pictorial power, the power of creating images"
—H Caudwell Quoted in 'Topics and Opinions', p 196.

6. "Wisdom speaks first in images"—'The Poetic Image', p 25

7 "He has made after the manner of his kind mere images"
—'Romantic Image', p. 1.

8 "The Primary pigment of poetry is the image"
—'Romantic Image', p 138

9. "If the spectator could enter into these images in his imagination approaching them on the Fiery Chariot of his contemplative thought ..... or could make a friend or companion of one of these images of wonder . ..then would he arise form his grave, then would he meet the lord in the air and then he would be happy"
—'Romantic Image Preface'

10 "In case of a poet, I suggest, it is chiefly through his images that he unconsciously gives himself away.... .the poet unwillingly lays bare his own innermost likes and dislikes, observations and interests, associations of thought, attitudes of mind and beliefs in and through the images—the verbal picture he draws to illuminate something quite different in the speech and thought of his character"
—'Shakespeare's Imagery and what it tells us', 4

11. "Trends come and go, diction alters, metrical fashions change, even the elemental subject matter may change almost out of recongnition, but metaphor remains, the life principal of Poetry the poets chief test and glory"—'The Poetic Image', p 17

12. "Creative effort means new images."
Quoted in 'True Voice of Feeling', p 111

13 "Poetry is the image of man and nature"
—'English Critical Essays, 19th Century', p 14

14 "It is not rhyming and versing that maketh a poet . but it is that feigning notable images of virture, vice or what else"
—Lewis 'The Poetic Image', p 48

15 "Imagery and after-imagery that is all there is to poetry"
—'Writing Your Poem', p 64

16 "Aesthetic image is beauty which has the three attributes of integrity consonance and clarity.. . .apprehended as one thing .. self bounded and self contained upon the immeasurable background of space or time which is not it,. .. apprehended by the artist whose

mind is arrested in the luminous stasis of aesthetic pleasure.

—Frank Kermode : 'Romantic Image', p 1.

17. 'Shorter Oxford Dictionary.'
18. 'Chamber's Twentieth Century Dictionary.'
19. 'Webster's Third New International Dictionary.'
20. Ibid.
21. C W. Bray · 'Encyclopaedia Britannica.'
22. Richard Harter Fogle . 'The Imagery of Keats and Shelley', p. 3-4
23. Robert Tristram Coffin—'The Substance that is Poetry', p. 15.
24. Bliss Perry 'A Study of Poetry', p 48, 94-95.
25. Miss Edith Recort 'New Method for The Study of Literature', p. 24-27.

(उपर्युक्त उद्धरण डा० रामयतन सिंह 'भ्रमर' कृत 'आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्र-विधान' के पृ० १ के आधार पर।)

26. Greening Lamborne : 'Rudiments of Criticism.'
27. Allison Peers : 'Imagery in Imaginative Literature', p. 274.
28. Presscot 'The Poetic Mind', p 140
29 'The British Journal of Psychology.'
30 'Imagism and Imagist', p 135.
31. T. E Hulme 'Notes on Language and Style.'

(उक्त उद्धरण डा० रामयतन सिंह 'भ्रमर' कृत 'आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्र-विधान' के पृ० ३-३ के आधार पर।)

३२ 'आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्र-विधान', पृ० ३।

33 Caroline Spurjeon · 'Shakespear's Imagery and what it tells us', p. 5.

३४ डा० हरद्वारीलाल 'सौंदर्यशास्त्र', पृ० ७२।

३५ रामखेलावन पाडेय 'काव्य और कल्पना', पृ० १७।

(उक्त उद्धरण डा० रामयतन सिंह 'भ्रमर' कृत 'आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान' के पृ० ९-१० से उद्धृत।)

36. C D Lewis : 'The Poetic Image', p 19.
37 Sussane K. Langer 'Philosophy in a New Key'.
38 George Whelley 'Poetic Process', p. 76.
39 T E Hulme 'Speculation', p 135
40 Ezra Pound defined "the images not as a pictorial representation but as that, which presents intellectual and emotional complex in an instant of lime—a unification of disparate ideas"

—A. Warren 'Theory of Literature', p 191.

४१ डा० नगेन्द्र 'काव्य-बिंब', पृ० ४-५।

42. "Every notion which is any way on its occurence produces speech is given the common name of phantisia or image, but the name by this time has come primarily to be applied to instances where, in stress of inspiration and passion you think you actually see that of which you are speaking, and make your hearers behold it"

—'Problems of Style' (Article on The Sublime), p 123

43, A, C. Bradley : Quoted From 'Oxford Lectures on Poetry', p 14-16,

44 "Direct sense perceptions and pictured comparisons are called images It is through images that the three-fold nature of poetic experience and expression reveals itself as the accurate and intense perception of objects, the stimulation of feelings and the operation of mind Poetic imagery has a sensuous, an emotional and an intellectual source and it communicates on all three of these levels"
—'Problems of Aesthetics' (Article—'Elements of Poetry' by Rosenthal and Smith), p 425

45. "An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time……It is a presentation of such a complex instantaneously which gives the sense of sudden liberation, that sense of freedom from time limits and space limits, that sense of sudden growth which we experience in the presence of the greatest works of arts"—Lawerence Zillman Quoted from 'Writing Your Poem'

46. T E. Hulme defines "The image as an analogy offered to the senses expressing a vision This analogy composed of definite words is a solid thing which may take the form of a metaphor or an unattached concretion"
—William Y Tindall : Quoted from 'The Literary Symbol'

47 "The vivid and precise images· · · is a risky proceeding"
—I A Richards 'Practical Criticism', p. 236.

48 "There are trustworthy people who according to their accounts never experience any imagery at all . .that something takes the place of vivid images in these people and provided the image substitute is efficacious their lack of mimetic imagery is of no consequences·
No one would deny the usefulness of imagery to some people; the mistake is to suppose that it is indispensable to all"
—I A Richards · 'Principles of Literary Criticism', p 119

49 Carlyle—"All real art is the disimprisonment of the soul of fact The infinite is made to blend itself with the finite, to stand visible as it were attainable there"—'Principles of Literary Criticism' by I A Richards, p 20

50. G W Mackail—"Poetry is historically a connected movement a series of successive integrated manifestations · ·poetry has for the moment become visible, audible and incarnate"—'Principles of Literary Criticism' by I A Richards, p 19.

51. Barfield—"The poet in his metaphorical speech restores, conceptually a unity which has been lost from perception His imaginative thought recreates as poetry what was once experienced intuitively, but with no sense of poetic achievement, such as now pertains to it"
—'Archetypal Patterns in Poetry' by Maud Bodkin, p 36

52. In Poetic Vision, says Vivante, "Our whole being is stirred, every fibre of it, crude instinct and remote experiences are present but these are approached and made intelligible by actual values and formes

(actual, i e present and active realizing themselves anew)."

—Maud Bodkin : 'Archetypal Patterns in Poetry', p 66.

53 "......emotions generated collectively persist in solitude, so that one man alone singing a song, still feels the emotions stirred by collective images He is already exhibiting that paradox of art—man withdrawing from his fellows into the world of art, only to enter more closely into communion with humanity"

—Christopher Caudwell . 'Illusion and Reality', p 18

54 "Why is there manifest content at all 'each word into contact"

—Christopher Caudwell 'Illusion and Reality', pp 222-224

55 Schopenhauer—"The inmost kernal of all genuine and actual knowledge is perception .....merely abstract thoughts are the cloud structures of reality .. wisdom and genius have their foundation not in the abstract and discursive but in the perceptive faculty"

—'Poetic Pattern' by Robin Skelton, p 129

56. "It is always by means of representation vibrant feelings, a practical aim, a metaphorised thought that the image objectifies a living content and by force of this becomes a graphic object for us, acting not only on the feeling but also on the mind"

—'N. Leizerore : 'Art and Society', p 151.

57 W J Fox—"Poetry delineates the whole external world from its reflected imagery in the mirror of human thought and feeling"

—by M H Abrams . 'The Mirror and The Lamp', p 49.

58 Dante Gabriel Rossetti—"Picture and poem must bear .. in its full nature"—'Romantic Imagination' by Sir Maurice Bowra

59 Coleridge—"More that usual state of emotion . 'if there is emotion, it is in the image—or, if not in them then among them"

—'Poetry and Experience' by Archibald Macleish, pp 48-60

60 "We see the finished work as an image or extended metaphor or symbol, in and by which the poet envisages human life"

—D G James 'Metaphor and Symbol', p 101.

# २

# विंव ग्रौर कल्पना

"न कवेर्वर्णन मिथ्या कवि. सृष्टिकर पर ।
सर्वोपर्येव पश्यन्ति कवयोहन्येन चैव हि ॥" (वृहद्धर्म पुराण)

कवि परासृष्टि का सर्जक है, उसकी रचना मिथ्या नहीं होती,[1] उसकी दृष्टि सामान्य दर्शन को ग्रतिक्रांत करती है—वह क्रात द्रष्टा है ।

कवि की इस क्रातदर्शिता का, उसकी इस ग्रसामान्य सत्यान्वेषी दृष्टि का, उसके सौंदर्यात्मक वोध का स्रोत है—उसकी कल्पना । यो तो कल्पना मनुष्य मात्र की प्रकृति है जो उसे इतर प्राणियो से पृथक् करती है—"कल्पना मनुष्य को एक विकासमान प्राणी के रूप मे प्रतिष्ठित करने वाला व्यावर्तक गुण है । ग्रौर मैं पुन कहना चाहूगा कि सतत उत्कर्प एव सस्कार के उपकरण ग्रौर ग्रपरिहार्य साघन के रूप मे उसे सशक्त वनाना चाहिए ।"[2]

"···ग्रौर, यह भी सत्य है कि भापा चेतना के स्तर पर ग्रनुभवो का प्रत्यक्षीकरण है जो कल्पना के द्वारा ग्रस्तित्व मे ग्राया है ।"[3]

पर, "जव हम काव्यात्मक कल्पना की चर्चा करते हैं, तव एक ग्रोर उस सर्वजन सुलभ मानवीय सवेदना की चर्चा करते हैं जो कवि मे ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक विशेप, सस्कारित एव सान्द्र होती है, तथा दूसरी ग्रोर यह भी कहना चाहते हैं कि इसी कल्पना से हम साधारणतया ग्रप्राप्य वस्तुग्रो की ग्रोर ग्रर्थात् ग्रतीत, भविष्य, ग्रदृश्य एव वह सव जो हमारे ऐंद्रिय वोध ग्रौर प्रत्यक्षानुभव की परिधि से वहिर्भूत है—उनकी ग्रोर निरतर वढते हैं । इन ग्रज्ञात क्षेत्रो मे जाये विना हमारे ग्रनुभवो का ग्रर्थ न तो स्पष्ट होता है ग्रौर न ही पूर्ण ।"[4]

'इमेजिनेशन' पाश्चात्य काव्यशास्त्र का सर्वोपरि शब्द है जिसे भारतीय ग्राचार्यो ने प्रतिभा कहा है । दोनो पर्यायवाची-से होते हुए भी कल्पना ग्रौर प्रतिभा मे सूक्ष्म भेद है । इन दोनो का तुलनात्मक ग्रध्ययन करने से पहले दोनो के स्वरूप से परिचित होना समीचीन होगा ।

## कल्पना

ब्लेक के ग्रनुसार कल्पना ही कवि को वनाती है—"कवि को केवल एक ही शक्ति वनाता है—वह है कल्पना । एक दिव्य दृष्टि ।"[5]

कल्पना की दिव्यता, ग्रलौकिकता व सहज स्फूर्तता की चर्चा विद्वानो ने की है ।

प्लेटो ने काव्य-सुषमा का मूल अंतःस्फुरण को माना है—वह दैवी स्फूर्ति, दैवी पागलपन की दशा मे ही काव्य-सृजन मे सक्षम होता है—"कवि जब तक पूर्णत प्रेरित व आविष्ट होकर विक्षिप्त या बोधशून्य नही हो जाता तब तक वह मौलिक सृजन मे समर्थ नही होता।··· ये रचनाए ईश्वरीय कृतित्व होती हैं, मानवकृत नही और कवि इस अलौकिक शक्ति द्वारा अधिकृत उसका भाषातर मात्र होता है।"[६]

विश्वविख्यात नाटककार शेक्सपियर ने कल्पना के इस व्यापक स्वरूप की चर्चा करते हुए लिखा है कि "कल्पना स्वर्ग एव भूतल को एक कर अज्ञात वस्तुराशि का रूपायन करती है।"[७]

हेज़लिट के अनुसार—"कल्पना का क्षेत्र प्रधानत· मानस-प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र है—अज्ञात अनिर्देश्य का क्षेत्र है। प्रज्ञा कल्पनात्मक अयथार्थ आवरण को हटाकर किसी वस्तु को उसके यथार्थ, स्वाभाविक, अनावृत रूप मे उपस्थित करती है।"[८]

कविता मानसी कल्पना का व्यक्त रूप है—वह आवेगमय सहजोद्गार है। 'The Mirror and the Hunt' के लेखक ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है—"कविता सत्य, सौंदर्य एवं शक्ति विषयक आवेगमय सहजोद्गार है जो कल्पना या फैंसी के माध्यम से उनके प्रत्ययो और धारणाओ को मूर्तित और चित्रित करती है।"[९]

ब्लेक के अनुसार कल्पना का ससार एक शाश्वत ससार है जिसमे नश्वर का अनश्वर तत्त्व प्रत्यक्ष होता है—"कल्पना का ससार शाश्वत है।· ·इसी शाश्वत ससार मे उस जड़-चेतनात्मक ससार की सनातन वास्तविकता निहित है जिसे हम प्रकृति के भौतिक तत्त्वो मे प्रतिबिंबित देखते हैं।"[१०]

'The Use of Imagination' मे लेखक ने स्वीकार किया है कि कल्पना मे सहजानुभूति की प्रधानता रहती है—"कल्पना चेतना का आलोक-स्तम्भ है जिसमे सहजानुभूति ही प्रमुख रहती।"[११]

कल्पना मानव शासित यत्र प्रणाली नही स्वतःस्फूर्त शक्ति है—"कल्पना की शक्ति व ऊर्जा का कार्यव्यापार किसी ऐच्छिक शासन का परिणाम नही—वे स्वत स्फुरित होने-वाले उत्स हैं, न कि मानव शासित यत्र प्रणाली।"[१२]

वेकन इसे निरपेक्ष व स्वतत्र सत्ता के रूप मे स्वीकार करते हुए लिखते हैं—"नियति-कृत नियम से निरपेक्ष व स्वतंत्र होने के कारण कल्पना इच्छानुसार प्रकृत्या विसदृश तत्त्वो को सवद्ध व सदृश तत्त्वो को असबद्ध करती है।"[१३]

कवि-समीक्षको ने कल्पना को अलीक न मानकर उसे शाश्वत एव मृत्युहीन सत्य कहा है।[१४] कीट्स के शब्दो मे कल्पना जिसकी सौंदर्य रूप से प्रतीति कराती है, वह अवश्य ही सत्य होगा, चाहे वह अज्ञात पूर्व ही क्यो न हो।[१५]

शेली ने कल्पना को भविष्य-साक्षात्कार मे सक्षम मानते हुए लिखा है—"कवि वर्तमान जैसा है उसकी वास्तविकता का सूक्ष्म अवलोकन कर उसके परिचालक नियमो का ही उद्घाटन नही करता प्रत्युत अपनी क्रातदर्शिता से वर्तमान के अतराल मे प्रवाहित होने वाले भविष्य का भी साक्षात्कार करता है।"[१६]

कीट्स ने कल्पना की सृजनशीलता एव सत्य-प्रकाशन क्षमता को स्पष्ट किया है—"कल्पना एक ऐसी शक्ति है जो सृजन एव विवृति दोनो मे सक्षम है, अधिक समीचीन तो यह कहना होगा कि वह सृजन से ही विवृत करती है।"[१७]

कालरिज ने इसे 'Esemplastic Imagination' कहा है, जिसका अर्थ है—अव्यक्त

प्रकृति के ऊपर स्रष्टा के दैवी संकल्प के सस्कार। दैवी प्रत्यय एक अपरिच्छेद्य आदर्श है, जिसकी अनुकृति विश्व की घटनाओ व पदार्थों की रचना मे उपलब्ध होती है।

कविवर पत ने कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य स्वीकार करते हुए लिखा है—"मैं कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानता हू और ईश्वरीय प्रतिभा का सबसे बडा अश मानता हू।"[१८]

कल्पना सबधी इन उद्गारो से यद्यपि कवि-कल्पना के सहज स्फूर्त स्वरूप पर प्रकाश पडता है, पर साथ ही इस भ्रम के लिए भी पर्याप्त अवकाश मिल जाता है कि कल्पना जीवन और बुद्धि से सर्वथा मुक्त विशुद्ध सहजानुभूति का एक रहस्यमय अलौकिक स्फुरण है। यह सत्य है कि कवि-कल्पना व्यक्तिनिष्ठ है—स्वयप्रकाश्य है, पर अपनी अभिव्यक्ति मे उसे बुद्धि और औचित्य शासित वास्तविकता के धरातल पर ही विकसित होना होता है। स्पष्ट है कि सृजनात्मक कल्पना स्वैर और अनर्गल नही हो सकती। विद्वान समीक्षको ने कल्पना के वैचारिक स्वरूप को स्वीकार किया है। डलेस के अनुसार—"कल्पना को विचार से पृथक् एक शक्ति के रूप मे स्वीकार नही करना चाहिए, बल्कि सत्य यह है कि विचार अपनी स्वत परिचालना मे और अचेतन प्रक्रिया मे कल्पना है।"[१९]

'हिन्दी साहित्य कोश' मे प्रत्यक्ष को वर्तमान का अवगाहन करने वाला तथा कल्पना को अनागत तक पहुचने वाला व्यापार माना गया है—"पूर्व अनुभूतियो की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते है। वर्तमान का अवगाहन करने वाला प्रत्यक्ष, अतीत का अवगाहन करने वाली स्मृति तथा अनागत का अवगाहन करने वाली कल्पना।"[२०]

पाश्चात्य विद्वानो की सवेगसकुल, सहज स्फूर्त, भावाविष्ट कल्पना को आचार्य शुक्ल भाव की अनुगामिनी मानते हैं, पर एक ऐसी सहयोगिनी जिसके बिना कवि अपनी अनुभूति को दूसरे तक पहुचा नही सकता।[२१] यह कल्पना सप्रेषण के लिए तो अनिवार्य है ही, कही-कही भाव से इसका समीकरण भी हो जाता है—"एक अवस्था मे इन दोनो भाव व कल्पना का समीकरण होता है। रस काल मे दोनो का युगपत् अन्योन्याश्रित व्यापार होता है।"[२२] आचार्य शुक्ल 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' मे भी कल्पना पक्ष को स्वीकार करते हैं कुछ लोग कहते हैं कि वाक्य रसात्मक काव्यम् मे कल्पना पक्ष बिलकुल छूट गया है। पर, जो लोग रस पद्धति को जानते हैं वे आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा निरूपित भाव-स्वरूप से भी परिचित हैं। वह एक वृत्तिचक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रकृति और शरीर धर्म आते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सपूर्ण विभाव और अनुभाव कल्पना द्वारा ही योजित होते हैं।[२३]

शुक्लजी ने एक ओर जहा 'योजित' शब्द के प्रयोग से कल्पना की बुद्धिपरकता को स्वीकार किया है वहा दूसरी ओर 'रस के साथ उसके समीकरण' मे उसकी भावप्रवणता को मान्यता दी है। साथ ही 'विभावन व्यापार' को कल्पना का प्रधान कर्मक्षेत्र[२४] मानकर उनके सौंदर्यात्मक एव कलात्मक स्वरूप पर प्रकाश डाला है। शुक्लजी के ही शब्दो मे कल्पना के कार्य हैं—काव्य-वस्तु का रूप-विधान करना, अनुभाव कहे जाने वाले व्यापारो और चेष्टाओ का सयोजन करना, अप्रस्तुतो की योजना करना, लक्षणा और व्यजना की सहायता से भाषा-शैली को अधिक व्यजक व मार्मिक बनाना।[२५]

कॉलरिज ने कल्पना के सदर्भ मे नये विचार-क्षेत्रो का द्वार मुक्त किया। उन्होने फैंसी को कल्पना से भिन्न मानकर उसे सामान्य स्मृति के समकक्ष रखा जिसके सभी उपकरण

आसंग-नियम के बने-बनाये रूप मे गृहीत होते है। कल्पना को उन्होने दो प्रकार का माना है—प्राथमिक कल्पना, जो सभी मानवीय बोधो की सर्वोपरि अभिकर्त्री है—इद्रियगोचर व्यावहारिक विश्व का निर्माण करनेवाली सामान्य बोध-वृत्ति है। तथा द्वितीयक कल्पना, जो इस निर्मित विश्व का पुन सृजन कर हमे केवल काव्य-रूप ही प्रदान नही करती, प्रत्युत अपना विनियोजन करनेवाले प्रवाही विश्व के उन सभी आतरिक पक्षो का उद्घाटन करती है, जो हमे एक जीवित प्राणी के रूप मे सत्ता प्रदान करनेवाले सभी मूल्यो से सर्वथा भिन्न होते हैं। यह कल्पना पुर्ननिर्माण के लिए द्रवित होती है, प्रसरित होती है, विकीर्ण होती है। (It dissolves, diffuses, dissipates in order to recreate.)[२६]

सार्त्रे ने कल्पना को बोधरूपा स्वीकार किया है—"चैतन्य या बोध के बिना कल्पना का आविर्भाव नही हो सकता और कल्पना के बिना चैतन्य बोध की स्थिति ही सभव नही हो सकती।[२७]

फ्रैंक बैंटोन ने कल्पना व मौलिकता का अविनाभाव संबध स्वीकार किया है।[२८] और इस प्रकार उसे चिंतन का अभिन्न बना दिया।

कल्पना मे सगति स्थापित करने की विशिष्टता होती है।[२९] और अपने इसी स्वरूप के कारण उसमे बौद्धिकता का स्पर्श अनिवार्यत हो जाता है। 'The Poetic Image' मे इसे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, "यदि हम कल्पना की इस शक्ति मे विश्वास करते हैं कि वह काव्य के भीतर विचारो व अनुभूतियो को समीकृत कर उनका उत्कृष्ट रूपातरण करती है तब इसे भी मानना होगा कि बौद्धिकता काव्यात्मक हेतु का आधार न होते हुए भी इसके बिना वह अधरा ही होगा।"[३०]

कवि-कल्पना को रिचर्ड्स ने विशिष्ट मन स्थिति के पुनराह्वान का साधन माना है—"अनुभव को पुन: प्रत्यक्ष कर सकने का तात्पर्य यह नही कि हम किसी घटना के सबध मे कब, क्यो, कैसे आदि को स्मरण रखें, बल्कि इतना ही कि हम उसी विशिष्ट मन स्थिति को उपलब्ध कर सकें।"[३१] रिचर्ड्स ने कल्पना के मुख्य छ प्रयोजनो की चर्चा कर उसकी सीमा, वैशिष्ट्य एव उत्कर्ष को रेखाकित किया[३२]—

(१) जीवत चित्र-विधान,
(२) अलकृत भाषा का प्रयोग,
(३) दूसरे की मन स्थिति का सहानुभूतिपूर्ण कथन,
(४) सादृश्य विधान या अप्रस्तुत योजना,
(५) उदाहरण का सचयन,
(६) विरोधो का सतुलन तथा परिचित प्राचीन वस्तुओ मे असाधारण भावबोध के कारण नवीनता का आधान।

कल्पना, काव्य, कवि एव भावक तीनो के लिए अनिवार्यत अपेक्षित है—वह काव्य का उत्कर्ष विधायक है, कवि की सृजनात्मक शक्ति है और भावक के रसास्वाद का आधार है। इसी आधार पर शुक्लजी ने कल्पना को दो वर्गों मे विभाजित किया है—विधायक कल्पना एव ग्राहक कल्पना जो राजशेखर की कारयित्री प्रतिभा एव भावयित्री प्रतिभा के समकक्ष है। भावक कल्पना की आवश्यकता पर बल देते हुए 'Art and Society' मे लिखा है—"किसी साहित्यिक कृति के परिशीलन के समय हम बिंब को नही देखते बल्कि कृति की सवेगात्मक प्रतिक्रिया मे तन्मय होकर नये बिंबो की सर्जना अपनी कल्पना से करते हैं, जिससे कि हम उस वर्णित ससार मे पुन जीने का रस ले सकें।"[३३]

## प्रतिभा

यदुन्मीलन शक्तैव विश्वमुन्मीलयति क्षणात्
स्वात्मायतन विश्रान्ता ता वन्दे प्रतिभा शिवाम् ।
—ध्वन्यालोक लोचन, पृ० ६०

प्रतिभा शिव की पराशक्ति है, जो शिव मे विश्राम करती है और अपनी उन्मीलन क्रिया मे विश्व का उन्मीलन करती है ।

यही पराप्रतिभा मनुष्य मे कवि-प्रतिभा के रूप मे स्थित रहती है—इसके उन्मीलन के साथ ही समग्र विश्व क्षण भर मे रूपायित हो जाता है—अभिनव गुप्ताचार्य ने प्रतिभा के इस स्वरूप को प्रकाशित किया है—

"कवेरपि सहृदयायतन, सततोदित प्रतिभाभिधान पर वाग्वदेवतानुग्रहोत्थित, विचित्रा पूर्व निर्माण शक्तिशालिन प्रजापतेरिव कामजनित जगत. ।"[३४]

"कवि-सृष्टि ईश्वर-सृष्टि के अनुरूप ही अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप प्रदान करती है। काव्य मानो अपरिच्छिन्न चैतन्य के नित्य सृष्टि कार्य का परिच्छिन्न चैतन्य मे पुनरावर्तन है ।"[३५]

राजशेखर के अनुसार जिसमे प्रतिमा नही है उसके लिए प्रत्यक्ष दीखते हुए पदार्थ परोक्ष से मालूम पडते हैं और प्रतिभासपन्न व्यक्ति के लिए अनेक अप्रत्यक्ष पदार्थ भी प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं ।

भट्टतौत ने लिखा—"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा मता ।"

अभिनव गुप्त ने यद्यपि इसे 'अनादि प्राक्तन सस्कार' माना है पर फिर भी भट्टतौत की भाति वे इसे 'प्रज्ञा' ही मानते हैं—

"प्रतिभा अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा प्रज्ञा ।"

आचार्य वामन इसे 'जन्मान्तरागत सस्कार विशेष' कहते हैं और कुतक अम्लान प्रातिभ के द्वारा शब्द, अर्थ मे नवीन व्यजना का प्रकाशन स्वीकार करते हैं—

अम्लान प्रतिभोद्भिन्न नव शब्दार्थ वधुर
अयत्नविहित स्वल्प मनोहारि विभूषण ।[३६]

मम्मट ने काव्य हेतु के रूप मे प्रतिभा या शक्ति को प्रथम स्थान दिया है ।[३७]

प० जगन्नाथ के अनुसार—"सा (प्रतिभा) च काव्य घटनानुकूल शब्दार्थोपस्थिति ।"

प० बलदेव उपाध्यायजी के शब्दो मे—"प्रतिभा ही कवि की अलोक सामान्य अभिव्यक्ति का हेतु है । प्रतिभा के द्वारा आतर आर्ष चक्षु का उन्मीलन होता है जिससे साधारण जन के लिए अगम्य स्थानो मे कवि पहुचता है और अदृश्य वस्तुओ का सद्य: साक्षात्कार करता है ।"[३८]

भारतीय काव्यशास्त्र मे काव्य-सृजन की दृष्टि से प्रतिभा का सवापार स्थान है। प्रतिभा सहजा है, उत्पाद्या नही, वह नैसर्गिक है, काव्य का अपरिहार्य हेतु है। प्रतिभा अभिनव रूप सृष्टि है, यही मानसिक रूप-विधान है—विश्व का मानस प्रत्यक्ष है। रसात्मक परिवेश मे नये-नये रूपो की सृष्टि करनेवाली प्रज्ञा ही प्रतिभा है—तथ्या विशेषो रसावेश वैशद्य सौंदर्य काव्यनिर्माण क्षमत्वम् ।[३९] प्रतिमा मूलत कारयित्री है—जो कवि सापेक्ष है; भावक के लिए भावयित्री प्रतिभा की अपेक्षा है। यह प्रतिमा जहा नूतन निर्माण क्षमा है वहा शब्द सप्रेषण व भावन के लिए भी अनिवार्य है। इस प्रकार भारतीय काव्यशास्त्र का यह ऐसा शब्द है जो काव्य-स्वरूप को बहुत गहरे प्रभावित करता है ।

## कल्पना और प्रतिभा

भारतीय एव पाश्चात्य समीक्षा के सदर्भ मे डाक्टर नगेन्द्र ने प्रतिभा और कल्पना के व्यापक क्षेत्र का आकलन करते हुए लिखा है—"व्यक्त प्रतिक्रियाओ को पूर्ण अनुभूतियो मे मूर्तित करना कवि-कल्पना अथवा सृजनशील कल्पना का मूल धर्म है।...काट ने उत्पादन-शील कल्पना और क्रोचे ने इसे सहानुभूति कहा है। इन दोनो शक्तियो का मूर्त धर्म एक ही है—जीवन के सपर्क से मानव-चेतना मे उत्पन्न अरूप झकृतियो को रूप देना। समाहित चित्त मे शब्द-अर्थ के वास्तविक स्वरूप का प्रतिभासन सहजानुभूति ही है जो अभिव्यजना से भिन्न नही है। समाहित चित्त से विश्रृखलता व्यवस्थित हो जाती है—अनेकता एकाग्र हो जाती है। तभी विश्रृखल सवेदन समजित होकर मूर्तित हो उठते हैं और तभी शब्द-अर्थ का सच्चा स्वरूप प्रतिभासित हो जाता है। जिस शक्ति के द्वारा यह सब सघटित होता है, वह काट की सृजनशील कल्पना है, वही क्रोचे की सहजानुभूति है और वही अभिनव गुप्त की काव्य निर्माण क्षमा प्रतिभा है।[४०]

काट व कालरिज के कल्पना सबधी समीक्षण को, भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—

| | काट | कालरिज | भारतीय मन |
|---|---|---|---|
| (1) | Reproductive Imagination | Fancy | स्मृति |
| (2) | Productive Imagination | Primary Imagination | सविकल्प-प्रत्यक्ष |
| (3) | Aesthetic Imagination | Secondary Imagination | कवि-प्रतिभा |

(१) काट के Reproductive Imagination के व्यापार स्वतत्र नही होते क्योकि यह मानव-बुद्धि के सामने पूर्व से ही उपस्थित होनेवाले पदार्थों का केवल मिश्रण प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से यह कालरिज द्वारा व्याख्यात की समानता रखती है जो स्थिर व नियत निश्चितताओ को अपना विषय बनाती है और उसके समस्त उपकरण आसग-नियम के बने-बनाये रूप मे गृहीत होते हैं।[४१] यह भारतीय स्मृति के समकक्ष है जो मानव बुद्धि की आरभिक प्रवृत्ति है जिसमे अवलोकित अश इतस्तत विकीर्ण रहते हैं। इनमे जीवन नही होता। ये चित्र स्वत. निर्जीव, निष्प्राण तथा निराधार होते हैं।

(२) Productive Imagination के बारे मे काट लिखते हैं—

"It enables the mind to creat perceptions from the raw material of sense data bringing sensation and understanding together enables the latter to carry its work of discursive reasoning

कालरिज के Primary Imagination मे प्रत्यक्षानुभूति के समय मस्तिष्क क्रियाशील होता है और इद्रियजन्य पदार्थों को एकता के सूत्र मे शक्ति-विशेष के सहारे बाधता है।

इस दृष्टि से यह कल्पना नैयायिको के 'सविकल्प प्रत्यक्ष' का प्रतिनिधि है जिसमे इद्रिय-जन्य अनुभव का परस्पर तारतम्य मिलाकर बुद्धि उस पदार्थ को नवीन नाम प्रदान करती है।

(३) काट के अनुसार Aesthetic Imagination सौदर्यानुभूति की जननी होती है। यह केवल विधायक ही नही होती प्रत्युत स्वतत्र होती है। कवि इसी कल्पना के वल पर नवीन पदार्थो को, नूतन अनुभूतियो को जन्म दिया करता है। कालरिज के मतानुसार इसका अभिधान है Secondary Imagination, यह प्रारभिक कल्पना के द्वारा उपस्थित अनुभूतियो का विश्लेषण तथा विभाजन करती है और उसका नवीन ढग से निर्माण कर एक विचित्र सरस पदार्थ की रूपरेखा हमारे मानस-पटल पर खीच देती है।

भारतीय प्रतिभा का प्रधान कार्य है—पुनर्निर्माण। प्रकृति के इद्रियसाध्य अशो को ग्रहण कर उन्हे अपनी अभिरुचि तथा भावना के अनुसार पुन निर्मित करना कवि की प्रतिभा का महत्त्वशाली कार्य होता है। कवि की प्रतिभा इद्रिय ज्ञान-सभूत इन विखरे हुए अशो को परस्पर मिलाकर एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है। इसीलिए प्रतिभा जीवित तथा प्रतिभाशील होती है। इसे ही कालरिज ने dissolves, diffuses, dissipates, in order to recreate कहा है।[४२]

स्पष्ट है कि पाश्चात्य समीक्षा का Imagination या Intuition भारतीय प्रतिभा के समकक्ष है। कल्पना एव प्रतिभा का प्रयोग पर्यायवाची के रूप मे किया जाता है और इनका स्वरूप तथा कार्य भी लगभग एक-सा है, पर, भारतीय आचार्यों ने जहा प्रतिभा को स्पष्टत 'प्रज्ञा' कहा है वहा पाश्चात्य कल्पना के स्वरूप मे वुद्धि और विचार-तत्त्व का अतर्भाव होते हुए भी उसका स्पष्ट स्वीकरण नही। कल्पना शब्द कभी-कभी लौकिक ज्ञान के विरोध मे ध्वनि देता है—जीवन से पलायन-सा लगता है। उसका स्वरूप जगत-वाह्य, ऐकातिक अव्यावहारिक मन सृष्टि मात्र लगने लगता है—उसमे प्रतिभा की व्यापकता, विशदता एव गभीरता नही लक्षित होती। इसी पर प्रकाश डालते हुए डा० सत्यव्रत सिंह लिखते हैं—"काव्य मे रसध्वनि तत्त्व के द्रष्टा आचार्यों की प्रतिभा संवंधी धारणा अपने-आप मे इतनी पूर्ण है कि पाश्चात्य काव्यालोचको की कवि-कल्पना सवधी सभी विश्लेषण-दृष्टिया इसमे समा जाती हैं, और तव भी इसके लिए यही कहा जा सकता है कि यह इन सव कल्पनाओ से परे किंतु इन कल्पनाओ का अक्षय स्रोत है।'[४३]

जो हो, सामान्यत यही माना जाता है कि जो पाश्चात्य काव्यशास्त्र की कल्पना है वही भारतीय कवि-प्रतिभा। और कवि अपने अंतस् के भावो को इसी शक्ति के द्वारा अभिनव रूप प्रदान कर सहृदयो तक प्रेषित करता है।

## विव और कल्पना

पूर्वानुभूत विशिष्ट जीवनानुभवो का रागप्रेरित सौंदर्यात्मक पुन प्रत्यक्ष ही काव्य-विंव है जो कवि की विधायक कल्पना द्वारा रूपायित होता है। सर्जनात्मक कल्पना या कारयित्री प्रतिभा के द्वारा ही काव्य-विंव का सृजन होता है। कविमानस मे जैसे ही भावोद्वेलन होता है, कल्पना सद्य ही विंवो का सृजन करती है। कवि-कल्पना अपनी क्रातदृष्टि से ऐसे सत्यो का साक्षात्कार करती है जो सामान्य मनीषा से परे होते हैं। एम० वावरा लिखते हैं—"कल्पना का विषय अप्रत्यक्ष पदार्थों मे निहित एक महत्त्वपूर्ण सत्य का प्रकाशन है। सृजन के क्षणो मे वह अपनी क्रातदर्शिता से ऐसे सत्यो का साक्षात्कार करती है जो सामान्य मनीषा से परे होते हैं। यह एक विशेष अतर्दृष्टि, वोध और सहजानुभूति से अभिन्नत संववित है—सत्य तो यह है कि कल्पना और अतर्दृष्टि अविभाज्य हैं और सभी व्यावहारिक व्यापारो मे एक समस्त शक्ति के रूप मे काम करते हैं।"[४४]

डा० नगेन्द्र सर्जनात्मक कल्पना को काव्य-बिंब का कारण-तत्त्व मानते हैं—"काव्य-बिंब का प्रेरक तत्त्व है भाव, भाव के सस्पर्श के बिना काव्य-बिंब का अस्तित्व सभव नही। लेविस ने इसे अनिवार्य माना है—और ठीक ही माना है। काव्य-बिंब स्वभावत. सामान्य बिंब की अपेक्षा अधिक रगमय समृद्ध होता है और उसे यह रग या समृद्धि भाव से ही प्राप्त होती है। उसका निर्माण सक्रिय सर्जनात्मक कल्पना से ही होता है।···इस प्रकार सर्जनात्मक कल्पना काव्य-बिंब का कारण-तत्त्व है।"[४५]

कालरिज अपने 'लिटरारिया' मे लिखते हैं—"आधुनिक विचारक बिंब-रचना का सपूर्ण श्रेय कल्पना को देते हैं।··भाषा और अभिव्यक्ति की जितनी बारीकिया हैं, सभी कल्पना के फल हैं। कल्पना के सहारे कवि भाषा और शब्दो मे नये अर्थ भरता है।"[४६]

भावोद्दीप्ति के बाद काव्य-सृजन कल्पना का मुक्त व्यापार है। आलबन विधान, उद्दीपन योजना एव अप्रस्तुत विधान मे कल्पना शक्ति का रहस्य छिपा है। कलासृष्टि मे कल्पना के तीन विशिष्ट कार्य हैं

(१) अप्रत्यक्ष वस्तुओ के बिंबो का मानसिक पुनराह्वान,

(२) इन बिंबो का पुन प्रत्यक्ष,

(३) इन बिंबो के समीकरण से कला-सृष्टि मे योगदान।[४७]

बिंबो के समीकरण की क्षमता से ही काव्यकृति एक सगठित सपूर्ण का रूप धारण करती है और कल्पना के द्वारा ही रचना मे सगति स्थापित होती है। सत्य तो यह है कि "बिंब का प्राणतत्त्व कल्पना है, इसके अभाव मे बिंब छलना है।"[४८] वस्तुत काव्य-बिंब की सार्थकता कल्पना-सभूत है—'बिंब की सार्थकता व महत्ता विषय को सजीवता, ध्वन्यात्मकता एव सोद्देश्यता से प्रस्तुत करने मे निहित है, जो कल्पना से ही सभव है फैसी से नही।"[४९]

शेली का उदाहरण देते हुए लेविस इस बात पर बल देते हैं कि कल्पना काव्य-बिंब के रूप मे नश्वर वासना को मुक्ति देनेवाला अवतार है—"कल्पना वह शक्ति है जो काव्यात्मक बिंब का सृजन, रूपातरण और सप्रेषण करती है। शेली के अनुसार—'कल्पना वह अमर अवतार है जो नश्वर वासना को मुक्ति प्रदान करने के लिए विग्रह धारण करता है'।"[५०] कविमानस मे पूर्णरूपेण रेखाकित चित्र ही कल्पना के द्वारा बिंबो मे रूपायित होते है। बिंब कल्पना का व्यक्त रूप है जिसके लिए यह आवश्यक नही कि वह यथार्थ ही हो—"कलाकृति के लिए यह आवश्यक नही कि वह यथार्थ हो, यह तो ऐसा सृजन है जिसे हम कल्पना की वस्तु कहकर अभिहित करते हैं।··उसका सपूर्ण निर्माण तभी सभव है जबकि वह स्रष्टा के मानस मे पूर्णरूपेण रेखाकित हो।"[५१]

काव्य-बिंब एवं कल्पना का पार्थक्य असभवप्राय है। काव्यात्मक बिंब का सही एव यथार्थ अर्थ है—कल्पना-सर्जित बिंब या कल्पना-बिंब। कल्पना ही रग है, समृद्धि है, प्रेषण की क्षमता है, सृजन-कौशल है, मौलिकता है, स्फूर्ति है। कल्पना के अभाव मे काव्य-बिंब का अस्तित्व ही सभव नही। काव्य-बिंब कल्पना के क्रोड मे ही अपना रूप प्राप्त करता है। कवि मानस के अरूप प्रत्ययो को रूपायित करनेवाला प्राण-तत्त्व कल्पना ही है। स्टीफेन डडलस ने लिखा है—"कल्पना के पवित्र गर्भ मे अरूप शब्द को मासल रूपाकार मिला।"[५२]

यह सत्य है कि कल्पना के बिना बिंब अस्तित्व मे नही आता और यह भी सत्य है कि कल्पना की सार्थकता एव कृतकृत्यता उत्कृष्ट बिंब-निर्माण मे ही है—दोनो अन्योन्य भाव से एक-दूसरे को उत्कर्ष प्रदान करते हैं, अभिन्नत सबद्ध हैं, पर फिर भी कल्पना काव्य-बिंब नही। जहा काव्य-बिंब कविहृदय का सपूर्ण राग है, वहा कल्पना उस राग को रूपकात्मकता

प्रदान कर प्रेषणीय बनाने का एकमात्र साधन—अधिक समीचीन यह कहना होगा कि एक ऐसा साधन है जिसके बिना स्वय साध्य ही अस्तित्वहीन है।

## पाद-टिप्पणियां

१ "सेइ सत्य जा रचिबे तुमि
घटे जा ता सब सत्य नहे।"—रवि बाबू।

2 "The imagination is the distinguishing characteristic of man as progressive being, and I repeat that it ought to be carefully guided and strengthened as the indispensable means and instrument of continued amelionation and refinement."—'The Use of Imagination', p 25

3 "Language comes into existence with imagination, as a feature of experience at the conscious level"—'The Principles of Art', p 225

4 "When we speak of poetic imagination then we speak on the one hand, of a sympathy common to all men, though in the poet specialized, cultivated and intensified, and on the other hand a perpetual reaching out of his sympathy towards objects otherwise unattainable towards the past, the future, the absent, all that lies outside the compass of present experience, without which the meaning of this experience must be so much the less distinct and complete"
—'The Poetic Image', p 66

5 Blake—"One power alone makes a poet . Imagination, the Divine Vision"—'The Romantic Imagination', p 14

६ डा० निर्मला जैन 'प्लेटो के काव्य सिद्धान्त', पृ० ४३।

7 "The poet's eyes, in a fine frenzy rolling/Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven/And, as imagination bodies forth/The forms of things unknown, poets pen/Turn them to shapes and gives to airy nothing/A local habitation and name'—'A Midsummer Night's Dream'.

8 "The province of the imagination is principally visionary, the unknown and undefined, the understanding restores things to their natural boundaries and strips them of their fanciful pretentions"
—Hazlitt 'The Poetic Image', p 113

9 "Poetry is the utterance of a passion for truth, beauty and power embodying and illustrating its conception by imagination and fancy"
—Hunt 'The Mirror and The Lamp', p 49

10 Blake—"This world of imagination is the world of eternity. ······There exists in that eternal world the permanent realities of every thing which we see reflected in this vegetable glass of nature"
—'The Romantic Imagination', p 3.

11 " · the imagination is a kindled stake of consciousness in which intuitional awareness predominates"—'The Use of Imagination', p 203.

12 "The vitality and the energies of the imagination do not operate at

will; they are fountains, not machinary

—D. G. James 'Philosophy in A New Key', p. 33.

13. Bacon—"The imagination being not tied ot the laws of matter, may at pleasure join that which nature hath severed and sever that which nature hath joined."— 'The Romantic Imagination', p 6

१४ डा० कुमार विमल 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० १४६।

15 "What the imagination sees is beauty, must be truth whether it existed before or not."—Keats.

16. Shelley—"He not only beholds intensely the present as it is, and discovers those laws according to which present things ought to be ordered, but he beholds the future in the past"—'The Romantic Imagination', p. 21.

17 Keats saw imagination as a power which both creates and reveals, or rather reveals through creating.—Ibid, p. 15.

१८. 'आधुनिक कवि—सुमित्रानन्दन पंत'।

19 Dallas believed that imagination should be considered not as a separate faculty of thought, but thought in its automatic or unconscious operation —'The Poetic Image', p. 70.

२०. 'हिंदी साहित्य कोश', पृ० २०५-२०६।

२१ 'चिंतामणि', भाग २, पृ० १०४।

२२. वही, पृ० ११३।

२३. वही, पृ० ८६।

२४ 'रस मीमांसा', पृ० ९०-९१।

२५. वही, पृ० २६३।

26 I. A. Richards 'Coleridge on Imagination', pp. 57-59.

27 'The Psychology of Imagination', p. 211

२८. "जहां रचनात्मक कल्पना रहती है, वहां मौलिकता रहती है—और जहां मौलिकता रहती है वहां रचनात्मक कल्पना अवश्य रहती है। वस्तुतः भावना के क्षेत्र में जो कल्पना है वही चिंतन के क्षेत्र में मौलिकता।"—'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० ११४।

29 "The harmonizing faculty of imagination which can reconcile the most diverse elements into one compelling unity"

—'Literature and Criticism', p 48.

30. "The rational is not the basis of poetic reason; yet we must believe poetic reason to be incomplete without it If we look upon the imagination as a power which can unite thought and feeling within a poetic whole greater than the sum of its parts."

—'The Poetic Image', p. 115.

31. "What is in question here is not memory in stricter sense in which past experience is dated and placed, but free reproduction. To be able to revive an experience is not to remember when and where and how it occured, but merely to have that peculiar state of mind available —'Principles of Literary Criticism', p 181

32. Ibid, p 238-247.

33. "Reading a work of literature we do not see the image, but create

it for ourselves, immersing ourselves in emotional reaction to, and re-living of that which is being described "—'Art and Society', p. 146.

३४ 'अभिनव भारती', प्रथम भाग, पृ० ४।

35 'A repetition in the finite mind of the eternal act of creation in the infinite I am "—Coleridge.

३६ 'हिन्दी वक्रोक्ति जीवित', पृ० १०४।

३७ "शक्ति निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्"—काव्यप्रकाश, १-३।

३८ 'भारतीय साहित्यशास्त्र', प्रथम खड, पृ० ३२९-३३०।

३९ 'ध्वन्यालोक-लोचन', तृतीय उद्योत।

४० डा० नगेन्द्र 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका', पृ० २३१-२३२।

41. "Fancy, has no other counters to play with, but fixities and definites."
—Coleridge in Vs. L.

४२ बलदेव उपाध्याय 'भारतीय साहित्यशास्त्र'।

४३ 'हिन्दी काव्यप्रकाश', भूमिका, पृ० १४।

44 ". .. the imagination deals with the non-existent ...it reveals an important kind of truth.. . when it is at work it sees things to which the ordinary intelligence is blind and it is intimately connected with a special insight or perception or intuition.... imagination and insight are infact inseparable and form for all practical purposes, a single faculty "—'The Romantic Imagination', p. 7.

४५ डा० नगेन्द्र 'काव्य-बिंब', पृ० ६।

46 'Projection of meaning into words is itself an imagination "
– I A. Richards 'Coleridge on Imagination', p 86

४७ 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० ११०।

48 "The images are conceits without imaginative life"
—'Literature and Criticism', p 47

49 Ibid, p 47.

50 Lewis—"The faculty which creates or transmits poetic images is the imagination. Shelley—'Imagination is the immortal God which should assume flesh for the redemption of mortal passion ' "
—'The Poetic Image', p 65

51 "A work of art need not be what we should call a real thing It may be what we call an imaginary thing .. ..it may be completely created, when it has been created as a thing whose only place is in the artist's mind "—'The Principles of Art', p 130

52 "O! in the virgin womb of imagination the word was made flesh."
—Stephen Dedalus 'The Romantic Image', p 53.

# ३

# बिंब : एक परिदृश्य

काव्य एक जटिल सश्लिष्ट सरचना है। यह एक सास्कृतिक प्रक्रिया है जिसमे हमारा बाह्य-आतरिक जीवन, हमारा 'ज्ञानात्मक सवेदन', 'सवेदनात्मक ज्ञान', प्रतीको, मिथको, विविध शिल्पतत्रो मे 'नवीन अर्थ सयोग, नवीन अर्थवत्ता और नयी भगिमाओ'[1] के साथ अभिव्यक्त होता है। काव्य की बिंब-सर्जना कभी निरपेक्ष होती है और कभी प्रतीक, मिथक एवं रूपक कथा के माध्यम से अपने को व्यक्त करती है। आस्टिन वारेन और रेनेवेलेक के शब्दो मे—"कविता के अर्थ को जब हम उसकी समग्र जटिल सरचना के साथ समझने का प्रयत्न करते हैं तो हमे उसमे एक केंद्रीय सघटना का बोध होता है जो क्रमश बिंब रूपक, प्रतीक व मिथ के द्वारा व्यक्त होता है।"

अर्थविज्ञान की दृष्टि से ये शब्द परस्पर अतिक्रमण करते हैं और काव्य मे इनकी कार्यदिशा एक होती है। सभवत बिंब रूपक, प्रतीक और मिथ का यथाक्रम काव्य मे दो विशेषताओ के मिलन-बिंदु का प्रतिनिधित्व करता है, जो दोनो ही कविता के सिद्धात की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमे पहली विशेषता इद्रियसवेदी है—अर्थात् वासनाप्रवणता एव सौंदर्यधर्मिता का सातत्य है जो कविता को सगीत व चित्र से सबद्ध करता है। और दर्शन व विज्ञान से पृथक्। दूसरी विशेषता है—*अलकारशास्त्रीय या काव्यशास्त्रीय* द्व्यर्थकता जो लक्षण और रूपक मे व्यजित होती है।"[2] स्पष्ट है कि काव्य प्रतीक, रूपक, मिथ व रूपक कथा से प्रगाढभावेन सबद्ध है। पहले हम बिंब और प्रतीक को लेंगे।

## बिंब और प्रतीक

प्रतीक को बिंब या काव्य-बिंब के सदर्भ मे समझें इसके पूर्व प्रतीक क्या है, यह समझना अधिक समीचीन होगा। यो तो भाषा का प्रत्येक शब्द, प्रयोगार्ह पद प्रतीक है; पर प्रतीको का इतिहास एक प्राग्भाविक चेतना है।[3] प्रतीको के इसी स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लेंगर ने रिची का खडन करते हुए लिखा—"रिची के अनुसार, 'जहा तक चिंतन का प्रश्न है वह अपने सभी स्तरो पर एक प्रतीकात्मक प्रक्रिया है।···प्रतीकीकरण चिंतन का अपरिहार्य व्यापार है।'—पर सत्य तो यह है कि प्रतीकीकरण चिंतन का अपरिहार्य व्यापार नही प्रत्युत एक ऐसा प्राग्वैचारिक व्यापार है जिसके बिना चिंतन सभव ही नही।"[4] वस्तुत प्रतीक

हमारे ग्राह्य प्रत्यय है जो तर्कपूर्ण होते हुए भी अबौद्धिक नही।"[५]

मनुष्य का जीवन आरंभ से अंत तक प्रतीको के मध्य ही बीतता है। कैसिरर के अनुसार—"मनुष्य को बौद्धिक पशु (animal rationale) की अपेक्षा प्रतीकधर्मा पशु (animal symbolicum) कहना अधिक उचित है।"[६] "प्रतीक मानव चेतना का प्रस्थान-बिंदु है, मनुष्य की प्राचीनतम अंतर्राष्ट्रीय भाषा है जिसमे पुराकालीन विचार और भाव संकेंद्रित रहते हैं।"[७]

प्रतीक का काव्य के संदर्भ मे इतना विशद विवेचन नही हुआ जितना ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओ के संदर्भ मे। भिन्न-भिन्न मानव वर्गो की अपनी परंपरागत प्रतीक संपदा होती है और कवि की कारयित्री प्रतिभा काव्यात्मक प्रयोग के लिए उसी रिक्थ से प्रतीको का चयन करती है। अतः काव्य-प्रतीक के सही आकलन के लिए यह आवश्यक है कि हम काव्येतर प्रतीको को समझें।

## लक्षण

Symbol संज्ञा की व्युत्पत्ति Greek क्रिया से हुई है जिसका अर्थ है—throwing together, chance encounter, union in tension। पर, धीरे धीरे इसका अर्थ संकुचित होता गया। आज ग्रीक कोशकारो के अनुसार "'Symbolon' शब्द उन सब पदार्थों के संकेत-द्योतक के रूप मे व्यवहृत होता है जो अविलंब प्रदर्शित या उपस्थित नही किये जा सकते· यह एक ऐसा संकेत भी हो सकता है जिससे एक व्यक्ति अपना अभिज्ञान स्थापित करता है या दूरस्थ व्यक्ति अपना संदेश प्राप्त करते हैं।"[८]

आधुनिक आंग्ल कोशकारो के अनुसार "प्रतीक वह है जो अपने से भिन्न इतर वस्तु को सहेतुक या संबंध परिसर द्वारा ध्वनित करता है, अथवा वह दृश्य का अदृश्यमान संकेत है।"[९]

'गीता रहस्य' मे लोकमान्य तिलक ने प्रतीक को इस प्रकार व्याख्यायित किया है—"प्रतीक प्रति=अपनी ओर, इक=झुका हुआ। जब किसी वस्तु का कोई भाग गोचर होता है फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो तब उस भाग को प्रतीक कहते हैं।"[१०]

'शब्दसागर' के अनुसार "प्रतीयते अनेन इति प्रतीक"—अर्थात् जिससे प्रतीति हो या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो, वह प्रतीक है।"[११]

इस शब्द का संबंध संस्कृत के 'प्रति' उपसर्ग से है जो संज्ञा के साथ लगकर कभी असाम्यमूलक अर्थ देता है और कभी साम्यमूलक। हिन्दी मे प्रतीक सर्वत्र किसी न किसी रूप मे साम्यमूलक अर्थों का ही संकेत करता है।[१२]

गार्डिनर ने शब्द मात्र को प्रतीक माना है, पर उनमे ध्वनिव्यंजक शब्दो को प्रतीक पद पर प्रतिष्ठित किया है।[१३]

'मानविकी पारिभाषिक कोश' मे प्रतीक के स्वरूप की चर्चा करते हुए लिखा गया है—"वह कृत्रिम चिह्न या संकेत जो किसी वस्तु-विचार या कल्पना को व्यक्त करे। साधारणतया मानवीय जीवन के बौद्धिक और रचनात्मक पक्षो मे ही प्रतीको का प्रयोग स्वीकार किया जाता है। तात्पर्य यह कि प्रतीक मानव-मन का ही आविष्कार है। लेकिन, इसका यह मतलब नही है कि प्रत्येक प्रतीक पूर्णतया चेतन अवस्था मे, जानबूझकर प्रयुक्त किया जाता है। ··वे ऐसे चिह्न हैं जिनका अर्थ सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराओ पर किसी न किसी सीमा तक निर्भर है।"[१४]

डा० आनंद प्रसाद दीक्षित ने प्रतीक को गोचर माना है जो अगोचर का स्थानापन्न

है—"प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिनिधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।"[१५]

अज्ञेय ने प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन माना है—"प्रतीको द्वारा ज्ञान की खोज अपने-आपमे एक बडा कौतूहलप्रद विषय है, क्योकि यह ज्ञान ही दूसरे प्रकार का है।··· कवि प्रतीक द्वारा सत्य को जानता है।"[१६]

डा० राधाकृष्णन् ने दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग कर प्रतीक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"जो अधिवैयक्तिक (Supra-individual) सार्वदेशिका एव दैवी है ···जो स्वयसिद्ध एव निश्चित है, उसे ही प्रतीकात्मक साधनो से सूचित करते हैं।"[१७]

प्रतीक की सकेतधर्मिता पर प्रकाश डालते हुए आग्ल-कोशकारो ने उसे स्पष्ट किया है—"केवल मानस प्रत्यक्ष तथा कल्पना के क्षेत्र मे आनेवाले विचारो, भावो और अनुभूतियो के गोचर सकेत अथवा चिह्न 'प्रतीक' कहलाते हैं।"[१८]

## काव्य मे प्रतीक

प्रतीक के उक्त लक्षणो मे व्याख्याता के मन मे प्रकाश्य या अप्रकाश्य रूप मे दर्शन, धर्म, मनोविश्लेषण, सस्कृति, समाज आदि काव्येतर विषय ही प्रधान रहे हैं।

जो हो, काव्येतर क्षेत्र के प्रतीक—चाहे वे छद्मवेश धारण कर दमित वासनाओ को स्वप्न मे स्थापित करनेवाले फ्राइडियन प्रतीक हो या जुग के सामूहिक अचेतन मन के प्रारूप (Collective archetypes) हो, चाहे एडलर के आत्मसुरक्षात्मक व क्षतिपूरक व्यापार हो या फेनोमेना के द्वारा न्यूमेना को सकेतित करनेवाले विश्वास-भावना से वलयित अध्यात्म-प्रवण, रहस्यमय धार्मिक प्रतीक हो, चाहे गणित या विज्ञान के निश्चित चिह्न हो या शाश्वत सार्वभौम सत्य को ध्वनित करनेवाले दार्शनिक सकेत हो, चाहे सास्कृतिक परपरा के वाहक हो या समाज स्वीकृत मान्यताओ के द्योतक—जब काव्य के क्षेत्र मे कवि-कल्पना द्वारा नियोजित होते हैं तब वे अतीद्रिय और ऐंद्रिय के बीच एक सचेतन रूपक का काम करते हैं और प्रत्यक्षीकरण अथवा उपस्थापन का एक विभावनपूर्ण माध्यम बनकर हमे रसोत्सिक्त करते हैं। आचार्य शुक्ल ने प्रतीको को 'स्वरूप या भावना को जाग्रत करनेवाला'[१९] माना है। काव्य मे प्रतीको के प्रयोग से कवि सृष्टि के साथ अपने 'रागात्मक सबध को मूर्तित करता है।'[२०] आचार्य शुक्ल ने प्रतीको के इस भावना-सकेतक स्वरूप का सोदाहरण उल्लेख किया है—" 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौदर्य की भावना जाग्रत करता है 'कुमुदिनी' शुभ्र हास की, 'समुद्र' प्राचुर्य, विस्तार और गभीरता आदि की।"[२१]

'काव्यशास्त्र' मे प्रतीको के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए डा० भगीरथ मिश्र ने लिखा है—"अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओ के सादृश्य एव प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश-जाति, सस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता है तब वह प्रतीक कहलाता है।"[२२]

कालरिज ने प्रतीको के द्वारा अज्ञात, अमूर्त, अदृश्य, अव्यपदेश्य, अव्यक्त की अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हुए लिखा है—"पारभासक के रूप मे प्रतीक की विशेषता यो प्रकट की जा सकती है कि जहा अमुक मे विशेष, विशेष मे साधारण, साधारण मे विश्वात्मक और उससे भी बढकर नश्वर मे या उसके माध्यम से अनश्वर प्रतिभासित हो। · प्रतीक उस अज्ञात वास्तविकता का अशधर होता है, जिसको वह सुबोधगम्य बनाता है।"[२३]

काव्यात्मक प्रतीक को एक अंग-संघटना के रूप मे स्पष्ट करते हुए विलियम वाई० टिन्डैल लिखते हैं—"साहित्य के प्रतीक—चाहे संपूर्ण कृति ही हो या उसका एक अवयव—स्पष्ट ही साकार अंग-संघटना है 'विचार या भाव-रूप, आकार या कलेवर मे व्याप्त रहते हैं और इन्हे ही हम 'प्रतीक' के नाम से अभिहित करते हैं। इसे हम इसके प्रतिनिहित पदार्थ से पृथक् नही कर सकते क्योंकि प्रतीक स्वय वही है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है या फिर विशेष सादृश्यमूलकता से उसका एक अंग होता है।' प्रतीक मे एक ऐसी अनिश्चयात्मकता एव रहस्यमयता सदा ही बनी रहती है···जैसा कि कारलाइल ने लिखा है··· 'प्रतीक एकसाथ ही उद्घाटित एव गोपित करता है।···प्रतीक उस रूपक के समान दीखता है जिसका एक अंश अनकहा और अनिश्चित हो।'

"· प्रतीक एक ऐसा अर्थ उपस्थित करता है जिसके लिए यह आवश्यक नही कि वह कवि के द्वारा प्रस्तुत या अनुसंधानित हो।' प्रतीक हमारे लिए इतर को प्रस्तुत ही नही करता अपितु उसे वहन भी करता है। साहित्यिक प्रतीक किसी अनकहे सत्य की सादृश्य स्थापना के लिए प्रयुक्त एक ऐसी संरचना है जो संदर्भ एव अभिधा की सीमा का अतिक्रमण कर भावना तथा विचारो को एकीकृत कर, मूर्तित करता है। इस विलक्षण सादृश्य का एक अर्धभाग दूसरे अर्धभाग को मूर्तित करता है और प्रतीक स्वय भी वही है जिसको वह प्रतीकित करता है।"[२४]

काव्य मे प्रतीको के प्रयोग आवश्यक इसलिए हो जाते है कि सामूहिक अचेतन और प्रगाढ वैयक्तिक अनुभवो के जो भाव व्यवहार की तर्कपूर्ण भाषा या अभिव्यक्ति की स्वीकृत पद्धति मे नही व्यक्त हो पाते वे प्रतीको के माध्यम से व्यंजित किये जा सकते है।[२५] साहित्यिक प्रतीको के प्रयोग मे प्रभविष्णुता एव रागात्मक विश्वसनीयता हो—इस बात पर बल देते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग लिखते हैं—

" finall its aesthetic appearence must have such a convincing appeal to feeling that no sort of argument can be raired against it on the score."[२६]

प्रतीको की परिवर्णना मे ससीम-असीम, सापेक्ष-निरपेक्ष, व्यष्टि-समष्टि संबंध-संदर्भ का किसी न किसी प्रकार उल्लेख है, जिसका अर्थ है—जाति की समष्टिगत भावना, उसकी अंतर्मुखी चेतना, उसकी रहस्यगर्भी प्रवृत्ति का अंतर्भाव। यथा "मनुष्य की नियति मे ससीम और असीम, सापेक्ष और निरपेक्ष के बीच होते रहनेवाले चिरंतन द्वंद्व की अभिव्यक्ति प्रतीक हैं ··ये प्रतीक व्यक्तिगत एकात विविक्त स्थिति के परिचायक हैं पर साथ ही उसकी समष्टिगत आकाक्षा के द्योतक भी।"[२७]

"प्रतीक वह है जो किसी का स्थानापन्न है, जो संबंध सहेतुकता, आसंग, आकस्मिकता या परंपरा से सादृश्य विधान के द्वारा इतर को ध्वनित करता है। यह किसी अदृश्य के लिए, किसी प्रत्यय के लिए, किसी गुणोत्कर्षता या समग्रता के लिए एक द्रश्यमान संकेत है।"[२८]

डा० नित्यानंद शर्मा ने प्रतीक के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उनमे निम्न वैशिष्ट्यो का उल्लेख किया है—

(१) अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रस्तुत का नाम है।
(२) वह हमारे मन मे तुरत किसी भावना को जाग्रत करता है।
(३) उस पर युग, देश, संस्कृति एव मान्यताओ की छाप रहती है।
(४) यह अपने विशेष अर्थ मे रूढ़ हो जाता है। कविजनो के द्वारा प्रयोग में लाये

जाने वाले बहुत से नये प्रतीक आरंभ मे व्यक्तिगत होते है, पर धीरे-धीरे वे भी रूढ हो जाते हैं।"[२९]

स्मरणीय है कि काव्य के संदर्भ मे प्रतीक योजना का महत्त्व एक सीमा तक है। प्रतीको के द्वारा काव्यस्रष्टा कथन को सक्षिप्तता, लाघव, प्रभावर्धमिता, अर्थधर्मिता तथा सस्कारोद्बोधकता दे सकता है; पर प्रतीको के बल पर काव्ययात्रा निरापद नही क्योकि प्रतीक अपनी जातीय मान्यताओ, गोपन प्रवृत्तियो एव रहस्यमय सकेतो के कारण अर्थ की अनिश्चितता से बद्ध हो जाते हैं और विचारो और भावो के साधारणीकरण मे उनकी क्षमता सीमित हो जाती है। 'Literary Symbol' मे इसी सत्य को स्पष्ट किया गया है—"विचारो और भावो के सप्रेषक के रूप मे प्रतीक की एक सीमा है एक पदार्थ के प्रतीयमान के रूप मे उनकी निश्चित सत्ता होते हुए भी अपने अर्थबोध मे वह अनिश्चित रहता है। क्योकि, प्रथमत तो वह किसी अपरिभाषित का प्रतीक होता है और दूसरे, हमारे द्वारा उस सादृश्य विधान का अर्थग्रहण सामान्यतः अपूर्ण रहता है। साथ ही, सादृश्य निबधन अनिर्दिष्ट रहता है, क्योकि प्रतीक मे एक वस्तु अन्य मे मूर्तित रहती है अत मूर्तता से पृथक् उसके अर्थग्रहण का हमारा प्रयास प्रतीकार्थ मे सक्रमित होना आवश्यक है। और, इस प्रकार हम अपने को एक ऐसे रूप-विधान के मध्य पाते हैं जो एक साथ ही निश्चित और अनिश्चित दोनो रहता है।"[३०]

## प्रतीक की मूल सवेदना

आपातत प्रतीक किसी दृश्य या अमूर्त का सीधा प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है जिसे भारतीय काव्यशास्त्र उपलक्षण या साध्यवसाना गौणी प्रयोजनवती लक्षणा[३१] की आख्या देता है; पर तत्त्वत प्रतीक का सीधा सबध वस्तु से नही वस्तु-विषयक प्रत्यय से होता है।[३२]

"प्रतीक किसी वस्तु का स्थानापन्न नही अपितु वस्तु-विषयक प्रत्ययो का वाहक होता है। ' प्रतीको का प्रत्यक्ष सबध मानस चित्रो से रहता है न कि यथार्थ वस्तु से।'

प्रतीक को जब सूक्ष्मता से विवेचित करते हैं तो ऐसा लगता है कि पदार्थ और उसके प्रतीक के मध्य कुछ है—इस 'कुछ' को सबध कहकर ही औचित्यपूर्ण अभिव्यक्ति दी जा सकती है। यह एक ऐसा सबध है जिसमे व्यक्तिगत सस्कार, जातीय मान्यताए, सामाजिक परिवेश, विविध सदर्भ सकेंद्रित रहते हैं। 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व' मे डा० कुमार विमल ने प्रतीक मे इस सबध के व्यजनागर्भी बोध का उल्लेख किया है "प्रतीक मे वर्ण्य नही, वर्ण्य के विविध सदर्भों या सबधो का व्यजनागर्भी बोध रहता है। अत प्रतीक मे अर्थव्यजना की तरलता नही, उसकी गाढघनता रहती है।"[33]

प्रतीक को 'सबध ही' मानते हुए 'Poetry and Experience' के लेखक ने स्पष्ट किया कि यद्यपि प्रतीक के लिए दो समीकृत वस्तुओ की अनिवार्यता है पर उसकी मूल सवेदना तो सबध ही है। "प्रतीक मे दो बातें ध्यान देने योग्य हैं—दो वस्तुओ का अस्तित्व एव उनमे सबध की परिकल्पना। सत्य तो यह है कि यह सबध ही प्रतीक है। जार्ज वेली के शब्दो मे—"प्रतीक सबध का सकेंद्रण है।"[३४]

सबध के रूप मे प्रतीक व्यक्ति एवं जाति के चतुर्दिक व्याप्त परिवेशो की दीर्घ परपरा को उसके समग्र वैशिष्ट्य के साथ आत्मसात् करने के कारण गोपन एव प्रकाशन की द्वाभा से वेष्टित रहता है—"मानवी अस्तित्व की प्रवहमान सरिता के दृश्य एव अदृश्य दो

तटो को मिलानेवाला सेतु बनता है।"[३५]

प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि बोदलेयर ने प्रतीक से अभिन्नत सबद्ध आसगो एव सबधो को इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्रकृति-मदिर के हर सजीव स्तभ से,
समय-समय पर धुँधले शब्द निकलते हैं।
मनुष्य प्रतीको के वनकुजो से होकर चलता है—
प्रतीको के वनकुज,
जो अपरिचित भी हैं और गभीर भी,
फिर भी आँखो मे परिचय की आभा लिये
जो मनुष्य के पीछे-पीछे चलते हैं।[३६]

प्रतीक मे सहजानुभूति की धारणा एव दृश्य जगत के इसी सबध की चर्चा बार-बार की गयी है—"प्रतीक मे एक ओर सहजानुभूति और दृश्य जगत की विद्यमानता रहती है तो दूसरी ओर धारणा तथा अदृश्य सत् चेतना की व्यजना भी। प्रतीक विधान मे वह समीकरण मिलता है जो अपने भीतर सहजानुभूति और विभावन के सगम के साथ ही दृश्य जगत और अदृश्य जगत का मेल छिपाये रहता है।"

प्रतीक की मूल सवेदना 'सबध' है, पर प्रतीक जिस सबध को लेकर चलता है वह हमारे प्रत्यक्ष जीवन के सबधो का प्रतिरूप नही। "प्रतीक का लक्ष्य कभी भी किसी वस्तु को ज्यो का त्यो रखना अथवा पुन प्रत्यक्ष या पुनरुत्पादन नही।"[३७]

प्रतीक द्वारा पुन प्रत्यक्षीकृत मानवीय सबधो के निर्भ्रांत सश्लिष्ट रूप की चर्चा करते हुए सुसान लागर लिखती हैं—" 'ऐंद्रिक सन्निकर्षों की प्रातितिक स्मृति भी वास्तविक अनुभवो का यथातथ्य मूर्तन नही होती प्रत्युत प्रतिमूर्तन की प्रक्रिया मे अभिनव स्थायी आयामो के साथ एक चित्र के रूप मे प्रक्षेपित होता है जिसमे प्रत्यक्ष वास्तविक अनुभव की चपलता, अस्थिरता एव भ्रातता नही बल्कि उसे मनोभाव से भिन्न एक मानस सपदा के रूप मे प्रतिष्ठित करनेवाली अन्विति एव स्थायी तद्रूपता रहती है।"[३८] इसे ही मनोविश्लेषक जुग ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"प्रतीक अपनी सामजस्य विधायक शक्ति के द्वारा चेतन और अचेतन मे ऐक्य स्थापित करता है।"[३९]

ह्वाइट हैड ने इसे अनुभवो के एकीकरण का साधन माना है।[४०]

स्पष्ट है कि प्रतीक के स्थानापन्न, प्रतिनिधि, Proxy, सकेतक अवयव, सादृश्य विधायक आदि सभी रूपो मे एक ही मूल स्वर है—सबध जिनमे सामाजिक गत्यात्मकता अपने बदलते विश्वासो, मान्यताओ, आस्थाओ, अनिश्चितताओ, रूढ़ियो, प्रश्नाकुल जिज्ञासाओ, प्रत्ययो के साथ राशीभूत होती रहती है और जो अपने स्वरूप मे बौद्धिक प्रतीको की तरह व्यक्ति निरपेक्ष तो हो सकते हैं पर कवि निरपेक्ष नही हो सकते। कलात्मक प्रतीक के नदतिक (Aesthetic) मूल्य का यही मूलभूत कारण है।

## बिंब और प्रतीक साम्य और वैषम्य

काव्य एव विविध काव्येतर क्षेत्रो मे बिंब एव प्रतीक अनेक रूपो से परिभाषित, व्याख्यायित होते रहे हैं। जीवन प्रतीको से आरभ हुआ है या बिंबो से, प्रतीक से बिंब बनता है या बिंब से प्रतीक, दोनो परिपथी हैं या समानधर्मी, सहयोगी हैं या स्पर्धी आदि विवादास्पद प्रश्न उठते रहे हैं। इन प्रश्नो के अतिरिक्त प्रमुख जिज्ञास्य प्रश्न है कि सौंदर्य-बोध की

दृष्टि से काव्य के लिए किसका महत्त्व अधिक है ? काव्य मे प्रतीको का असीम महत्त्व है; श्रेष्ठ एव उदात्त काव्य की सर्जना मे प्रतीको ने शताब्दियो तक अपने को सयोजित किया है, पर, जब काव्य को विशुद्ध रस दृष्टि या सौंदर्य दृष्टि से भावित करने का उपक्रम हुआ, तब काव्यास्वाद, साधारणीकरण व सप्रेषण की दिशा मे बिंब की प्रकर्षता स्वय सिद्ध रही।

यह सत्य है कि काव्यक्षेत्र मे प्रतीक कवि के सस्पर्श से नवोन्मेषित हो कब बिंब की विच्छित्ति से आलोकित हो उठेगा और बिंब प्रयोगाधिक्य के कारण रूढ, निश्चेष्ट, एक आयामी होकर कब प्रतीक बन जायेगा—नही कहा जा सकता, पर सीमात के इस सूक्ष्म विवाद से हटकर बिंब और प्रतीक के साम्य-वैषम्य को स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है।

प्रतीक व बिंब दोनो ही उद्गम की दृष्टि से ऐंद्रिय बोध (Sense perception) से प्रत्यक्षत सबधित रहते हैं, पर विकास-क्रिया मे प्रयोग, परपरा और जातीय स्वीकृति के साथ प्रतीक की ऐंद्रियता विरल होती जाती है और प्रत्ययात्मकता घनी। जबकि बिंब मे ऐंद्रियता अक्षुण्ण ही नही, शीर्ष होती है। ह्वाइट हैड ने भी प्रतीको की ऐंद्रियता को माना है—"प्रतीको का उस बोध प्रत्यक्ष (Sense perception) से घनिष्ठ सबंध है जो सभी प्रकार के आनुभविक ज्ञान के मूल मे है।"

प्रतीक अपने विकास-क्रम मे प्रत्ययोन्मुख हो जाता है—इसे ही डा० नगेन्द्र ने 'अचल बिंब' का अभिधान दिया है—"प्रतीक इस प्रकार के रूढ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ हो जाता है, तो वह प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप मे उपमान होता है, धीरे-धीरे उसका बिंब रूप या चित्र रूप सचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है। अत प्रतीक एक प्रकार का अचल बिंब है।"[४१]

डा० नगेन्द्र के इस 'अचल बिंब' मे प्रतीक की आरभिक ऐंद्रियता और परिणति की जडता दोनो का स्वीकार है। प्रतीक की इसी परिणति को लक्षित कर सुसान लागर ने उसे प्रत्ययात्मक सकेत (Conceptual sign) कहा।

बिंब और प्रतीक की चर्चा मे अर्थ की निश्चितता-अनिश्चितता को लेकर अनेक बार परस्पर विरोधी स्थापनाए की गयी हैं, जो उलझन पैदा करती है। जैसे—ह्यूम के अनुसार—"बिंब प्रतीक के विसदृश नही, पर हमारा प्रतीक जहा अपनी उपस्थिति से किसी अन्य अनिश्चित का सकेत करता है वहा उनका बिंब अपने ही समान निर्भ्रांत किसी अन्य को ध्वनित करता है।"[४२]

'Decline of The West' के लेखक ने प्रतीक मे निर्भ्रांत अर्थ की गहरी छाप का उल्लेख किया—"प्रतीक युक्तियुक्त चिह्न है जो पूर्ण, अखड और उससे भी बढकर निर्भ्रांत अर्थ की सहज गहरी छाप लिये है। प्रतीक यथार्थता की एक सरणि है जिसका भावना-सतर्क व्यक्ति के लिए तात्कालिक एव आतरिक निश्चितता-गर्भित महत्त्व होता है।"[४३] एजरा पाउड लिखते हैं—"प्रतीक मे अडिग परपरागत अर्थ है, जबकि दूसरी ओर बिंब मे शबलित अर्थवत्ता।"[४४]

प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि मलार्मे बोधगम्यता को प्रतीक का विरोधी मानते हैं—"जो बोधगम्य हो वह और चाहे जो कुछ हो, प्रतीक नही।"

डा० पद्मा अग्रवाल ने प्रतीक मे गतिशील अर्थवत्ता (Dynamic meaning) का होना स्वीकार किया है।[४५]

अस्तित्ववादी दर्शन के व्याख्याता और प्रसिद्ध चिंतक सार्त्र लिखते हैं—"जिसे हम सामान्य चिंतन के नाम से अभिहित करते हैं वह एक ऐसी चेतना है जो अपने पदार्थ के किसी

गुण विशेष को पदार्थ पर चरितार्थ किये बिना ही प्रतिष्ठित करती है। इसके विपरीत बिंब ऐसी चेतना है जिसका उद्देश्य पदार्थ को प्रस्तुत करना होता है, अत उसका निर्माण एक विशेष प्रकार के निर्णय से होता है।"[४६]

इस निश्चितता एव अनिश्चितता को 'Problem's in Aesthetics' के लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"जब कवि किसी बिंब के विशेष अर्थ को स्पष्ट करता हुआ या उस अर्थ को भावक के लिए व्याख्यायित करता हुआ उस बिंब पर विशेष बल देता है, तब इस प्रमुखता के कारण ही वह प्रतीक बन जाता है।"[४७]

डा० भगीरथ मिश्र के शब्दो मे—"बिंब-विधान के अतर्गत चित्रात्मकता या प्रत्यक्षीकरण की प्रवृत्ति के कारण जो सहज सवेद्यता रहती है, प्रतीक-विधान मे उसका अभाव रहता है। प्रतीक केवल सकेत करता है, जबकि बिंब उसे पूर्णतया प्रत्यक्ष और ग्राह्य बना देता है· ।"[४८]

ये परस्पर विरोधी बातें तत्त्वतः विरोधी नही हैं—आवश्यकता इस बात की है कि विषय का सतर्क समीक्षण हो। सत्य तो यह है कि बिंब और प्रतीक दोनो को ही निश्चित भी कहा जा सकता है और अनिश्चित भी। बिंब निश्चित है—इस अर्थ मे कि उसके द्वारा कोई विशेष अनुभूति मूर्तित हुई है, वह इद्रियग्राह्य मूर्त एव मुक्त होने के कारण अर्थ-द्योतन व सप्रेषण मे स्वत सक्षम है, उसके निर्माण मे व्यक्ति अधिक व जाति कम क्रियाशील है, वह कवि-कल्पना का परिणाम है, वह अपने आपमे एक सपूर्ण व्यापार है, पर, बिंब अभिव्यक्ति की तरलता, रागात्मक प्रगाढता, अप्रस्तुत विधान की सश्लिष्टता, विभावन व्यापार की रमणीयता, शैली की विशिष्टता के कारण व्यजनागर्भी, लावण्यमय ध्वनि-काव्य बन जाता है और उसमे अर्थ की अनेक ध्वनिया उद्भूत होती रहती हैं—यही बिंब की अनिश्चतता है।

उधर प्रतीक जातीय चेतना से उद्भूत है, दार्शनिक सस्कारो व धार्मिक रहस्यो का सकेतक है, स्वरूप से प्रत्ययात्मक है, मौन है, परपरा-स्वीकृत है, esoteric होने के कारण अर्थ-प्रकाशन मे प्रमाता-सापेक्ष्य व सप्रेषण मे दीक्षागम्य है—अत उसमे काव्य की भाति गोपन व प्रकाशन दोनो की स्थिति है, और यही उसकी अनिश्चितता है। पर, प्रतीक विधान मे रागात्मकता, व्यजकता, कवि-प्रतिभा, कल्पना, विदग्धता आदि के सम्यक् विनियोग का क्षेत्र सीमित हो जाने के कारण वह जडता व स्थिरता से बद्ध हो नि स्पद एक आयामी हो जाता है, निश्चित हो जाता है।

हम देखते हैं कि जो निश्चितता-अनिश्चितता बिंब-विधान मे काव्य का उपकारी व उत्कर्षक है वही प्रतीक-विधान मे काव्य की सामर्थ्य-सीमा। लेविस ने लिखा है—"एक उत्कृष्ट बिंब प्रतीक का विलोम होता है। प्रतीक साकेतिक होता है और केवल एक वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है·· बिंब कभी-कभी ही प्रतीकात्मक अर्थ देते हैं · वे भावनाओ से सपन्न होते हैं।"[४९]

बिंब और प्रतीक पर शब्द शक्तियो की दृष्टि से भी विचार किया गया है। बिंब को अभिधामूलक व प्रतीक को व्यग्य कहा गया है। यहा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि—बिंब को अभिधामूलक केवल इसी अर्थ मे कहा जा सकता है कि बिंब का अर्थग्रहण बिंब-निरपेक्ष नही हो सकता क्योकि बिंब अपने विभिन्न अर्थ-सकेतो को किसी न किसी रूप मे समेटे है और भावक उन्ही सकेतो के आधार पर अर्थ-विकास करता है। इसके विपरीत प्रतीक मौन है और प्रमाता अपने जातीय सस्कार व व्यक्तिगत क्षमता के अनुरूप उसे अलग-अलग अर्थ देते रहते हैं। इसी अर्थ मे ही प्रतीक को व्यग्य कहा जा सकता है। बिंबो

की स्पष्टता, मूर्तता मे भी ध्वनि की सत्ता को स्वीकार करते हुए सुसान लागर लिखती हैं—"बिंब जिन पदार्थों के ऐंद्रिक अनुभवो से उद्भूत होते हैं उन्हे ध्वनित करने की ही क्षमता नही रखते अपितु उनमे अर्थ-द्योतन की ऐसी असंक्राम्य प्रवृत्ति होती है, जिसमे वे मूल अर्थ से तर्क-सम्मत सादृश्य विधान द्वारा नूतन अर्थ को ध्वनित करते हैं।"[५०]

बिंब के ध्वन्यात्मक रूप का कारण है—अप्रस्तुत अशभागी के साथ उसका असंगत एव अनौचित्यपूर्ण सबध। प्रतीक और युगल बिंब की तुलनात्मक चर्चा करते हुए 'Poetry and Experience' के लेखक ने इसे ही स्पष्ट किया है—"प्रतीक और युगल बिंब दोनो एक चीज नही हैं, यद्यपि इनकी मूलभूत सरचना एक-सी है। दोनो मे ही अर्थ तक पहुचने का एक ही मार्ग है—सबध। लेकिन प्रतीक मे यह सबध औचित्य एव सगति का है, अर्थात् इसमे जब अप्रस्तुत अशभागी का प्रस्तुत के साथ सबध जुडता है तो वह औचित्य पर आधारित होता है। इसके विपरीत बिंबो के सबध मे अनौचित्य या असगतता रहती है। · जो हो, दोनो ही प्रस्थान-भेद से विश्वजनीन सादृश्य स्थापित करते है। प्रतीक मे एक पदार्थ दूसरे की वृत्ति का अशभागी बनता है जबकि बिंब मे दोनो दूरस्थ व पृथक् रहते हैं।"[५१]

कवि जब अपनी विधायक कल्पना द्वारा एक सश्लिष्ट, सम्यक् परिप्रेक्ष्य के भीतर से जीवन के किसी सत्य की रागात्मक अभिव्यक्ति करता है तब कविता का निर्माण होता है। "काव्यार्थ के सप्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु को उसके पूरे सदर्भ के साथ समझा जाय। 'Poetry and Experience' मे इसी सदर्भ की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है—"सहृदय शब्दो के माध्यम से सदर्भ मे पहुचता है, सदर्भ से बिंब, बिंब से उनके पारस्परिक सबध और इस सबध के अत मे उनके अर्थ तक पहुचता है। ऊपरी स्तर पर यह क्रमिक प्रगति है, पर तत्त्वत वह किसी को छोडकर नही सबको लेकर अर्थ तक बढता है। कविता मे पाठक वस्तुत परिप्रेक्ष्य ही पढता है, जिसमे वस्तु, वस्तु का सदर्भ, दूर-पास के वस्तु का बोध, सभी एक ही समय मे एक ही स्थान पर समाहित रहता है। वह परिप्रेक्ष्य ही है जिसकी कविता मे खोज होती है, क्योकि काव्यार्थ वस्तुत परिप्रेक्ष्य ही है। ऐसा परिप्रेक्ष्य जो सबको यथास्थान स्थापित और नियोजित करता है।"[५२]

बिंब और प्रतीक के अर्थग्रहण मे भी सदर्भ सापेक्षता को आवश्यक माना गया है। जैसे, "कविता का वर्ण्य वह सोपान है जिसके सहारे मूल सवेदना आरोहण करती है। इस विकास-क्रम मे बिंबो के किसलय भीतर से अनवरत फूटते हैं और चतुर्दिक बिखरते है।"[५३]

"बिंब अपने सदर्भो के भाव-स्पदनो से तरगायित होते हैं।"[५४]

"किसी कलाकृति के विषय का वक्तव्य मात्र पर्याप्त नही, अपितु आवश्यकता इस बात की है कि कलाकार कथ्य को व्यापकत्व प्रदान करे, उसे सौंदर्य-मडित करे।"[५५]

"अधिकाश प्रतीक अपनी समृद्ध ध्वन्यात्मकता मानव-समूह की भाषिक एव आचारिक आसगो की राशि से प्राप्त करते हैं।"[५६]

"साहित्य मे सभी स्थितियो मे प्रतीक के रूप मे स्वीकृत किसी भी वस्तु का अर्थ उसके सदर्भ द्वारा ही निर्णीत होता है। सत्य तो यह है कि प्रतीक को दो अतिव्याप्त सदर्भो के मध्य प्रकट होना होता है। प्रथम, जिस कृति मे उसका नियोजन हुआ है उसका सदर्भ और उससे भी वृहत्तर अर्थ-सदर्भ जिसका सयोजन कवि रचना-प्रक्रिया मे करता है। इतना ही नही, सवेदनशील सहृदय पाठक के गतिशील एव विकासमान जीवन-सदर्भ मे भी इसका सक्रमण होता है।"[५७]—कालरिज।

"प्रतीक भावना मे या प्रतीक के अर्थग्रहण मे प्रतीको की सदर्भ-भूमि अथवा प्रसग-परिवेश को रिचर्ड्स और आगडेन ने बहुत महत्त्व दिया है ।·· प्रतीको की अर्थवत्ता उनकी सदर्भ भूमि या प्रसग परिवेश पर निर्भर करती है ।"[५८]

उक्त वक्तव्यो से यह स्पष्ट है कि काव्य मे प्रयुक्त बिंबो और प्रतीको के अर्थग्रहण मे सदर्भ की अनिवार्यता है । ऐसा होकर भी, बिंब और प्रतीक की सदर्भ सापेक्षता मे मौलिक अतर है ।

कवि अपनी कविता मे कथ्य को उसके सपूर्ण सौंदर्य के साथ उभारने तथा उसे सर्व-सवेद्य बनाने के लिए जिस सदर्भ का विधान करता है, वह नि सदेह ही बिंब-योजना और प्रतीक-योजना दोनो का अपरिहार्य अग है, और यह भी निर्विवाद है कि भावक अपनी सहृदयता, आस्वादक्षमता, मानसिक विशदता के अनुरूप ही रसमग्न होता है, पर जहा बिंब का सदर्भ कवि-प्रतिभा द्वारा नियोजित एक सश्लिष्ट योजना के रूप मे काव्य-परिधि के भीतर ही प्रत्यक्षत उभरता है वहा प्रतीक मे इस कवि-सर्जित सदर्भ से अधिक महत्त्व जातीय स्मृति मे सुरक्षित धर्म एव सस्कृति के अप्रत्यक्ष सदर्भ का है । हम कह सकते है कि बिंब का सदर्भ है—कथा-प्रवाह, कवि-भावना का वेग, बिंब-शृखला, और प्रतीक सदर्भ है—अतीत मे छिपी धर्म, सस्कार, दर्शन आदि की जातीय धारणाए । यही कारण है कि प्रतीक मे सहृदय सवेद्यता एवं रसात्मकता बिंब की अपेक्षा कम रहती है ।

पाश्चात्य साहित्य की प्रतीकवादी काव्यधारा ने बिंब और प्रतीक की तुलना मे प्रतीक को कविता की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण माना है, क्योकि उनके अनुसार प्रतीक अपने सूक्ष्म रहस्यमय रूप मे सगीत के अधिक निकट है । जैसे—"जिस प्रकार लय, गति और ताल की सूक्ष्म लहरो पर सगीत तैरता है उसी प्रकार उन्होने सकेतो तथा बिंब-सकेतो के सहारे अपनी अभिव्यक्ति को अनुभूत सवेदना के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रोमाचो (Sensations) का वाहक बनाया । ध्वनि व सुगध की विचित्र विविधवर्णी भावनाए प्रतीकवाद मे हैं । ध्वनियो, प्रतिध्वनियो, सूक्ष्मतम तरगो और रहस्यपूर्ण सकेतो को काव्य-विषय बनाया गया ।"[५६]

दिनकर के शब्दो मे "रहस्य को मलार्मे कवि का यत्र समझते थे । अर्ध-ज्योतियो, ध्वनियो—दूरागत झकारो को कला का अभिन्न अग मानते थे । उनका विचार था कि साहित्य, सगीत और चित्र सभी कलाओ का तीसरा आयाम ध्वनि है ।"[६०]

प्रतीकवादियो के इस आग्रह को कि प्रतीक सगीतप्रवण है—यदि मान भी लिया जाय तब भी यह स्वीकार्य नही कि बिंब सगीत-विरहित है । काव्य-बिंब क्योकि काव्य से भिन्न और कुछ भी नही, सगीत से वह प्रकृत्या सबद्ध है क्योकि कविता अतत एक सगीतात्मक विचार ही तो है ।[६१] स्पष्ट है कि सगीत के आधार पर प्रतीक को बिंब से श्रेष्ठ नही माना जा सकता । इसके विपरीत, सत्य यह है कि बिंब मे सगीतात्मक लय के साथ चित्रकला के तरल वर्ण-विन्यास एव मूर्तिकला के आकार-सौष्ठव का समाहार होने के कारण वह काव्य का जीवित बन जाता है ।

निष्कर्षत —

(१) बिंब के निर्माण मे व्यक्ति, प्रतीक जातीय चेतना से उद्भूत ।

(२) बिंब समग्र, वह पूरे दृश्य को मूर्तित करता है, प्रतीक एक भाव या वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है ।

(३) बिंब मूर्त, स्पष्ट पर साथ ही ध्वन्यात्मक; प्रतीक रहस्यगर्भी, अस्पष्ट फिर भी

अर्थ की एक सीमा।

(४) बिंब मे रागात्मक स्पर्श अधिक, प्रतीक प्रत्ययात्मक।

(५) बिंब मुखर अत सहज सवेद्यता व साधारणीकरण मे अधिक सक्षम, प्रतीक मौन अत अर्थग्रहण मे सदर्भ सापेक्ष व साधारणीकरण मे दीक्षागम्य।

(६) बिंब मे ऐंद्रियता, प्रतीक मे बौद्धिकता।

(७) बिंब एक सश्लिष्ट योजना, प्रतीक मे अभिव्यक्तिलाघव।

(८) बिंब मे सगीत, मूर्ति व चित्र का समाहार, प्रतीक मुख्यत सगीतधर्मी।

(९) बिंब के सादृश्य विधान मे सबध योजना असगत तथा अनौचित्यपरक, प्रतीक के प्रतिनिधित्व मे सबध सगत व औचित्यपूर्ण।

(१०) बिंब का प्रमुख क्षेत्र काव्य, प्रतीक का धर्म व दर्शन।

## बिंब और रूपक

रूपक भाषा का सर्वोपरि उत्कर्ष विधायक है। परपरा-सम्मत परिभाषा के अनुसार रूपक का अर्थ है—"साभिप्राय सादृश्य-विधान, अर्थ की दृष्टि से किसी एक वस्तु पर चरितार्थ होनेवाले भाषात्मक रूप का अन्य पर आरोपण। रूपक मात्र अलकरण या स्पष्टीकरण नही प्रत्युत हमारी मन स्थितियो को रूपायित करने का, अनुभवो को व्याख्यायित करने का, अज्ञेय सत्यो को प्रकाशित करने का अनिवार्य उपकरण है। हमारे विवेक को उत्तेजित कर और उसके प्रयोग का अवसर प्रदान कर यह हमारी वृत्तियो के सस्कार मे समर्थ होता है जब हम किन्ही विषयो को स्पष्ट करना चाहते हैं, तब हम उन्हे एक वर्ग मे रखने का प्रयत्न करते हैं—उन्हे किसी अन्य समान गुणधर्मी वस्तु के सदृश बताते हैं। रूपक की प्रक्रिया भी ठीक इसी प्रकार है और यही कारण है कि वह केवल स्पष्टीकरण के लिए ही उपयोगी नही अपितु नये अर्थ-सधानो का भी पथ-निर्देशन करता है।"[६२]

'मेटाफर' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—साधारण स्वीकृत अर्थ से अतिवाहित कर भाव या अर्थ को अन्य मे सक्रमित करना।[६३] आक्सफोर्ड डिक्शनरी मे रूपक का अर्थ है—"जिस अलकार मे किसी सज्ञा या वर्णनात्मक शब्द का सक्रमण उसके यथार्थ पदार्थ से भिन्न पर तुलनीय किसी अन्य पदार्थ मे होता है, उसे रूपकात्मक अभिव्यक्ति का उदाहरण कहा जाता है।"[६४]

"A figure of speech by which a thing is spoken of as being that which it only resembles."—'Chambers Dictionary'

'हिन्दी साहित्य कोश' मे रूपक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है "सादृश्यगर्भ, अभेदप्रधान, आरोपमूलक अर्थालकार जिसमे अतिसाम्य के कारण प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है।"[६५]

रूपको के माध्यम से कथ्य की अभिव्यक्ति के पीछे एक मनोवैज्ञानिक सत्य है—जिसे हम चाहते है, जिसे प्यार करते हैं, जिसके प्रति सवेदनशील होते हैं, उसे सभी श्रेष्ठ उपमानो के द्वारा अधिकाधिक प्रभविष्णुता एव सवेदनीयता के साथ प्रेषित करना चाहते हैं। अपनी प्रगाढ, सान्द्र अनुभूति को समग्र भाव से व्यक्त करने के लिए सादृश्य विधान का आश्रय लेते हैं। कवि मे यह मानवीय सवेदना अपेक्षाकृत अधिक गहन व सस्कारित होने के कारण

उसकी अभिव्यक्ति मे रूपको का प्रयोग सहज ही हो जाता है। सी० डी० लेविस 'Poetic Image' मे लिखते हैं—"चाहना हमे सादृश्य विधान की ओर प्रेरित करती है। उपमा व रूपक इस बात के द्योतक हैं कि कवि-हृदय मे अपने से भिन्न बहिर्भूत पदार्थ के प्रति प्रेम व सहानुभूति है।"[६६]

'Theory of Literature' के लेखक के अनुसार रूपक विषयक समग्र विचारणा के मूलभूत तत्त्व चार हैं—सादृश्य, द्विपार्श्व दर्शन, ऐंद्रिय बिंब जो अतीद्रियता का उद्घाटक है और सर्वात्मवादी प्रक्षेपण।"[६७]

प्राच्य एव पाश्चात्य विद्वानो ने रूपक के सर्वोपरि महत्त्व को स्वीकार किया है—भाषा रूपकात्मक है,[६८] रूपको के अभाव मे भाषा का बौद्धिक विकास अवरुद्ध हो जाता है,[६९] यही एक ऐसा गुण है जिसे निर्यातित नही किया जा सकता,[७०] रूपक आदि एव आदिम प्रवृत्ति है,[७१] भाषा रूपी शस्य के लिए धूप व पावस है,[७२] भाषा का सर्वव्यापक सिद्धात है,[७३] मस्तिष्क की सहज स्फूर्त एव आवश्यक क्रियाशीलता है,[७४] अर्थविकास के विचार का नियम है जो एक विकसनशील प्रक्रिया नही प्रत्युत विकसित सिद्धात है,[७५] नये सदर्भो से युक्त अर्थ-विपर्यय है,[७६] उपमेय एव उपमान की प्रगाढ निबद्धता है,[७७] द्विशिर जनस है जो हमे इस योग्य बनाता है कि हम दूरवर्ती वस्तुओ को युगपत् देख सकें,[७८] सबध सयोजन है,[७९] रगमच की एकमात्र शैलूपी है,[८०] अलकारो का मूल है, सपूर्ण लक्षणा व्यापार या उपचार है,[८१] नाटक का पर्याय है,[८२] नीरसता से बचने का एकमात्र मार्ग है,[८३] विचारो का पारस्परिक अध्या-हरण एव सदर्भ विनिमय है,[८४] आदि।

आदि आचार्य अरस्तू ने रूपक को भारतीय लक्षणा व्यापार या उपचार[८५] के अर्थ मे ग्रहण किया—"रूपक अपरिचित सज्ञा है जो सक्रमणशीलता, सादृश्य या सानुपातिकता से व्यक्त होती है। रूपक के उपादान अनिवार्यत रमणीय होने चाहिए और यह रमणीयता उनकी ध्वन्यात्मकता मे निहित है। उपमा स्फीत-रूपक है ·मुहावरे भी रूपक के सजातीय हैं ··सफल अतिशयोक्ति भी रूपक ही है।"[८६]

विद्वान समीक्षक रिचर्ड्स रूपक को केवल अलकार या शैली तत्त्व न मानकर काव्य का प्रमुख उपादान मानते हैं—"अलकारशास्त्र के इतिहास मे आज तक रूपक को शब्दो के साथ प्रसन्न-क्रीडा-कौशल माना गया है और उसे एक ऐसे आकस्मिक सुअवसर के रूप में स्वीकार किया गया है जहा हम शब्दो की सर्वतोमुखी शक्ति का सधान कर सकते हैं और जिसके लिए असाधारण पटुता व सजगता दोनो की अनिवार्यता है। सक्षेप मे, रूपक भाषा की अतिरिक्त शक्ति है, शालीनता व अलकार ही माना गया—काव्य-रूप का उपादान तत्त्व नही। पर शेली के अनुसार "रूपकात्मकता भाषा का प्राण है, अर्थात् वह पदार्थो के प्राक्बोध अनवधारित सबधो को दर्शाता है।"[८७]

वस्तुत प्रगाढ सवेदनाओ को समग्रत मूर्तित करने के लिए लक्षणा द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अभेद सादृश्य निबधन ही रूपक है जो अपनी सजीवता के लिए एकमात्र कवि-प्रतिभा का मुखापेक्षी है।

उक्त धारणाओ के आधार पर रूपक का समीक्षण निम्न शीर्षको के अतर्गत किया जा सकता है—

१ आद्या भाषा रूपक

२ भाषा की विकास-प्रक्रिया मे रूपक

३. काव्य-सृजन मे रूपक
४. अलंकार के रूप मे रूपक
५. काव्य-बिंब एव रूपक

## (१) आद्या भाषा रूपक

रूपक केवल काव्य का शृगार नही, आद्य मानव की आद्या भाषा है। चिंतन-प्रक्रिया अमूर्त का अमूर्त पर आस्फालन नही—चित के मूल मे रूपको की सृष्टि है। इस रूपक ने ही अतर्बाह्य के अनेक अविन्यस्त विषयो को सादृश्य प्रदान कर चिंतन को एक नया आयाम दिया।

रूपक आदिम मानव की सकुल एव जटिल सवेदनाओ का समर्थ वाहक है और रूपक के प्रयोग का आरभ भी वही से होता है क्योकि समाज की प्राथमिक अवस्था मे निषेधो की अधिकता थी। जी० बेली ने इसे एक सहज प्रवृत्ति माना है—"आदिम अनुभूतिया एव आदिम अभिव्यक्तिया ऋजु नही जटिल थी और अन्य काव्यात्मक प्रवृत्तियो की भाति रूपक भी आदि एव आदिम प्रवृत्ति है।"[८८]

डा० ह्यूज ब्लेयर ने रूपक को अभिव्यक्ति का प्राचीनतम आद्य माध्यम स्वीकार करते हुए लिखा है—"मनुष्य की आदि भाषा ऐंद्रिय सन्निकर्षो के वर्णनात्मक शब्दो से ही पूर्णत निर्मित होने के कारण, वह अनिवार्यत पर्यान्तिक रूप से रूपकात्मक हो गयी।"[८९]

तीव्र सवेगो और प्रचड भावनाओ को उनके गतिशील परिवेश के भीतर से समग्रत: उभारने मे सपाट अभिधात्मक कथन की असमर्थता ने रूपक के प्रयोग को आवश्यक बनाया। आदि मनुष्य के लिए रूपक भाषा की सज्जा नही वरन् उसकी विवशता थी क्योकि इसके अभाव मे मानसिक तनाव और भावसकुलता की न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति सभव नही। "रूपक मानसिक तनाव व उत्तेजना की नैसर्गिक भाषा है क्योकि यही हमारी दमित एव प्रचड परिस्थितियो के साथ न्याय करने की क्षमता प्रदान करता है जिनसे वे उद्भूत होती हैं।"[९०]

प्रारभिक भावप्रवण जीवन से विकसित चिंतन-प्रधान जीवन तक की कहानी रूपको के अधिकाधिक प्रयोग की ही कहानी है। घनीभूत विचारो को उनकी भावात्मक गभीरता के साथ व्यक्त करने मे केवल रूपक ही सक्षम है। 'Poetic Image' मे इसी बात को स्पष्ट किया गया है—"जब कविता मे वैचारिक दबाव तीव्र हो जाता है तब उपमा हमे उस तनाव से मुक्ति दिलाती है ··इसके विपरीत यद्यपि रूपक बिंब विधायक है, फिर भी स्वय को विचार-तत्त्व पर केंद्रित कर देता है, और इस प्रकार विचारो का भावगाभीर्य घना हो जाता है।"[९१]

## (२) भाषा की विकास-प्रक्रिया मे रूपक

भाषा के अर्थ-विकास मे रूपक या उपचार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शब्द के प्रचलित सामान्य अर्थ से मानव हृदय सदा ही असतुष्ट रहा है—वह शब्दो को नये अर्थो, नूतन सदर्भो, अभिनव शक्तियो से सवलित कर अपनी अमूर्त-आकुल भावना को रूपायित करता है। मैक्स ब्लेक के अनुसार "किसी वाक्य के रूपकात्मक होने का तात्पर्य है—अर्थ सबधी किन्ही विशेषताओ का प्रकाशन, न कि उसके वर्ण-विन्यास, ध्वनि-सरचना और वैयाकरणिक गठन का कथन।"[९२] इसी सदर्भ मे पुन वे लिखते है—"कई रूपको की सर्वोत्तम

व्याख्या अर्थ-विस्तार के रूप मे की जा सकती है, क्योकि वे प्रत्यय सरणियो के परिकल्पित अर्थ-सदर्भों को ध्वनित नही करते।"[६३]

रूपक द्वारा भाषा मे नये अर्थों की प्रतिष्ठा को समीक्षक रिचर्ड्स ने भी स्वीकार किया है—"रूपक एक पर्यंयण है जिसमे एक शब्द को उसके सामान्य प्रयोग से भिन्न नूतन अर्थ मे प्रतिष्ठित किया जाता है। बोधात्मक रूपक मे यह पर्यंयण सामान्य प्रयोगगत एव अभिनव प्रयोगगत पदार्थों के सादृश्य एव साधर्म्य से अनुप्राणित-अनुमोदित रहता है, जबकि भावात्मक रूपक मे पर्यंयण का आधार मौलिक और नयी परिस्थिति द्वारा उन्मेषित अनुभूति-साम्य होता है।"[६४]

मनुष्य ने भाव, कल्पना एव चिंतन, सभी स्तरो पर भाषा की सामर्थ्य सीमा का अनुभव किया है और यह भी अनुभव किया है कि अतर्बाह्य के निरतर फैलते परिवेश ने उसकी भाषा शक्ति को अधिक चुनौती दी है। मनुष्य बहुआयामी प्राणी है और आज उसके चिंतन की दिशा धर्म, दर्शन और साहित्य तक ही सीमित नही वरन् ज्ञान-विज्ञान की बढती हुई शत-शत शाखाओ से आक्रात है, और वह अपनी अनुभूतियो को उनके व्यापक सदर्भ के बीच सूक्ष्मता से विवेचित करना चाहता है। अत उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह रूपको के द्वारा भाषा को भी उतनी ही सूक्ष्मता, अर्थवत्ता एव व्यजकता प्रदान करे। भाषा अपनी जीवन-यात्रा के प्रारभ मे जिस रूपक का सबल ले आगे बढी है, आज भी वही रूपक उसके लिए उतना ही आवश्यक है—स्यात् और भी अधिक।

## (३) काव्य-सृजन मे रूपक

शेष सृष्टि से रागात्मक सबध स्थापित करने के अपने प्रयत्न मे, सवेदनशील कवि अपनी अनुभूतियो को रसात्मक वाक्य के रूप मे प्रेषित करता है और इसके लिए वह अलकार, ध्वनि, रीति, शैली आदि काव्य-विधायको का सम्यक् प्रयोग करता है। इन बहुविध काव्य-उपकरणो मे रूपक का अपना विशिष्ट स्थान है और कविता की सृजन-प्रक्रिया तथा उसकी प्रभाव-निष्पत्ति मे रूपक के अशेष महत्त्व को विद्वानो ने स्वीकार किया है। कविता के लिए रूपक व उपमा को अनिवार्य नही माननेवाले हाउसेनियन को भी कहना पडा—"रूपक एव उपमा कविता के लिए अनिवार्य नही। ये स्पष्टत काव्य के उत्कर्ष-विधायक हैं और कवि के लिए सहायक मात्र हैं जिससे वह अपने कथनीय को स्पष्टता एव प्रत्यय को सजीवता प्रदान कर सके।"[६५]

कथनीय को स्पष्टता एव प्रत्यय को सजीवता प्रदान करनेवाला रूपक काव्य के सदर्भ मे विविध रूपो मे व्याख्यायित एव समीक्षित हुआ है। यवन मनीषी अरस्तू ने रूपक के महत्त्व को काव्य-द्रष्ट्या प्रतिष्ठित किया है—"कवि के लिए रूपक पर अधिकार होना सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। यही एकमात्र ऐसी शक्ति है जो दूसरो तक निर्यातित नही की जा सकती।"[६६]

स्पष्ट है कि अरस्तू ने रूपक को कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा-प्रतिभा का पर्याय माना है जो कवि का निजी एव स्वत स्फूर्त वैशिष्ट्य होता है। सी० डी० लेविस ने इसे ही स्रष्टा की सफलता का एकमात्र निकष[६७] माना है। कविता कवि की निजी अनुभूति है, व्यक्ति की अपनी बात है, पर उसकी चरितार्थता है—भावक की अनुभूति बनने मे, समष्टि की बात बनने मे—"उपजत अतन, अतन छवि लहहिं"—ही काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप है। और इस दिशा मे रूपक कवि का प्रमुख उपकारी है। बेली के अनुसार—"वास्तविकता की सकुलता

एवं जटिलता रूपकों द्वारा सप्रेषित होती है।"[६८]

रूपक की सप्रेषण क्षमता के मूल मे उसकी ऐंद्रियता है, मूर्तता है। वह प्रतीक की भाति सूक्ष्म नही, अनुभव घटको की बिबात्मक सश्लिष्टि है—"भिन्न-भिन्न अनुभव घटको की प्रभावशाली बिंब मे सश्लिष्टि ही रूपक है। यह जटिल विचारो की अभिव्यजना है—जहा विश्लेषणात्मकता नही, सीधा वक्तव्य नही, पर जहा सहसा आकस्मिक रूप से वस्तु-निष्ठ सबंध का ऐंद्रिक बोध है।"[६९]

"रूपको के बल पर कविता का क्षेत्र विस्तृत होता है, रूपक परस्पर विच्छिन्न भावो या पदार्थों मे सामजस्य स्थापित करने का सर्वोपरि उपकरण है जिसकी सहायता से इतस्ततः विपर्यस्त एव परस्पर विच्छिन्न तत्त्वो का कविता मे एकत्र सयोजन या समजन होता है।"[१००] रूपक मे यद्यपि उपमेय एव उपमान का अनमेल परिणय होता है, पर वे इतने प्रगाढभावेन निबद्ध रहते हैं कि असदृश्यो मे सद्य सादृश्य-बोध कराने मे सक्षम होते हैं—"रूपक मे दो का अनमेल विवाह अवश्य ही एक-दूसरे के सबधो पर प्रभाव डालता है—वे पार्श्ववर्ती नही होते अपितु अध्याहृत शब्दो के द्वारा नद्ध किये जाते हैं। प्रगाढ रूप से निबद्ध किये जाने के कारण वे हमे अधिक गहराई से प्रभावित करते हुए शीघ्रतर एव निबिडतर भाव से असदृश्यो मे सादृश्य-बोध कराने मे सक्षम होते है।"[१०१]

रूपक सबध सयोजन है, दो अनेमेल वस्तुओ का परिणय। प्रस्तुत एव अप्रस्तुत, ज्ञात एव अज्ञात, आतरिक एव बाह्य सभी मे रूपक द्वारा परस्पर ऐक्य स्थापित होता है जिससे कविता को एक अभिनव समृद्धि एव शक्ति प्राप्त होती है। अरस्तू के अनुसार—"रूपक सदा ही सबध सयोजन है जिसमे किसी नाम या वर्ण्य वस्तु का ऐसी वस्तु मे सक्रमण होता है जो पूर्णतः उस पर लागू या आरोपित हो सकती है। किसी भी सजीव रूपक मे हमेशा दो वस्तु या दो पदार्थ होते है और दो अनमेल वस्तुओ का परिणय होता है।' किसी रूपक की सपूर्ण शक्ति इसी बात मे निहित है कि इसके दो भागीदार होते हुए भी तिल तडुल न्याय से पृथक्-पृथक् रहते हैं।"[१०२]

स्पष्ट है कि कवि रूपको के माध्यम से जहा एक ओर जटिल एव सकुल अनुभवो की प्रभावशाली अभिव्यक्ति करता है वहा दूसरी ओर वैषम्य मे साम्य स्थापित कर भावो और अनुभूतियो को उनकी सपूर्ण गहनता एव तीव्रता के साथ प्रेषित करता है। यह सत्य है कि सीमित अर्थ मे रूपक काव्य का शृगार है, भाषा का अलकरण है पर अपने व्यापक अर्थ मे वह काव्य का महत्त्वपूर्ण उपादान है—अमूर्त का मूर्तिकरण है, अपरिचित का परिचय है, अज्ञात सत्यो का प्रकाशन है, अन्तस्-बाह्य का सेतु है।

## (४) अलंकार के रूप मे रूपक

उपमैका शैलूषी सम्प्राता चित्रभूमिका भेदात्।
रजयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ति तद्विदा चेत।

—चित्रमीमासा।

चित्रमीमासाकार ने सादृश्यमूलक अलकारो को महत्त्व प्रदान करते हुए "उपमा को नटी तुल्य बताया है जो काव्य के रगमच पर वेश बदलकर रग दिखाती है और सहृदय का अनु-रजन करती है।"

आचार्य वामन ने "उपमा ही अलकारो का मूल है"[१०३] कहकर औपम्य या सादृश्य को

गौरव प्रदान किया है। सादृश्यमूलक अलकारो का सौंदर्य रूपक मे पूर्णतया स्फुट होता है। रूपक सादृश्य गर्भ, अभेद-प्रधान आरोपमूलक अर्थालकार है जिसमे अतिसाम्य के कारण प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है। इस शब्द का अर्थ है—एकता अथवा अभेद की प्रतीति।[१०४]

आचार्य भामह के अनुसार रूपक की दो विशेषताए है—"उपमेय की उपमान मे एक-रूपता तथा गुणो की समता।"[१०५]

आचार्य दंडी के अनुसार "गुण, क्रिया, द्रव्य किसी भी प्रकार से उद्भूत सादृश्य का नाम उपमा है और जब उपमान उपमेय का परस्पर भेद तिरोभूत हो जाता है तब उस सादृश्य को ही रूपक कह देते है।"[१०६]

आचार्यों ने रूपक मे गुणसाम्य के आधार पर अभेद आरोपण को लक्षित कर उसे उपमा से श्रेष्ठता प्रदान की है, जहा गुण-लेश का चमत्कार नही, गुणो की विशेष समता है।[१०७]

मिडिल्टन मुरी के अनुसार—"Metaphor is a compressed simile."

'Greek Metaphor' के विद्वान् समीक्षक डब्ल्यू० बी० स्टेनफोर्ड के शब्दो मे—उपमा गद्यवत् विश्लेपणात्मक है, रूपक कविता के सदृश सश्लेषणात्मक उपमा तर्कणाप्रवण रूपक प्रातिभ-प्रभा से प्रोद्भासित।"[१०८]

अग्रेजी साहित्य के मेटाफर का निश्चित अर्थ नही—कही वह रूपक अलंकार है और कही लक्षणा व्यापार। 'मानविकी साहित्य कोश' मे मेटाफर के इस अनिश्चित अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है—'Metaphor'—रूपक, उपचार, लक्षणा अलकारशास्त्र मे रूपक का अर्थ है अभेद की प्रतीति। पाश्चात्य आचार्यों ने इसका बडा गुणगान किया है। वहा इसका प्रयोग व्यापक रूप मे 'उपचार' के अर्थ मे होता है। अरस्तू ने प्रतीयमान वैषम्य मे साम्य खोजने की शक्ति को कवि का सर्वश्रेष्ठ वरदान माना है।[१०९]

हम कह सकते है कि रूपक भाषा के इस अलकरण मे सर्वाधिक सबल है और इसे बिंब का पर्याय भी माना जाता है। रूपक शब्द गुणो को आत्मसात् करता है और साथ ही अन्य अनेक गुणो से सबद्ध रहता है। रूपक का यह धर्म है कि वह शब्दो की सहज और प्रयोग-प्राप्त सभी ऐंद्रिक प्रत्ययात्मक सभावनाओ को प्रकाशित करे।[११०]

'Models and Metaphors' मे रूपक के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसकी मूल प्रवृत्ति को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

(१) रूपकात्मक वक्तव्य मे स्पष्टत दो विषय होते है—प्रधान व उपाश्रित।
(२) इन विषयो का सही ग्रहण अधिकाशत वस्तु योजना के रूप मे होता है न कि भिन्न वस्तुओ के रूप मे।
(३) रूपकात्मक व्यापार में प्रधान विषय के साथ एक ऐसे आनुषगिक सकेतार्थ का सश्लेषण होता है जो सकेतार्थ उपाश्रित विषय का वैशिष्ट्य हो।
(४) ये सकेतार्थ सामान्यत तो उपाश्रित विषयो के प्रचलित अर्थ ही होते हैं, पर अनुकूल सदर्भो मे लेखक द्वारा तदर्थ प्रतिष्ठित भिन्नार्थो की व्यंजना भी करते है।
(५) रूपक सामान्यत उपाश्रित विषयो पर चरितार्थ होनेवाले प्रकरणो को मुख्य विषय पर लागू कर उसके वैशिष्ट्य का चयन, रेखाकन, नियत्रण व सयोजन करता है।

(६) इसके लिए उन शब्दो के अर्थ-अपसरण की अपेक्षा रहती है जो रूपकात्मक अभिव्यक्ति के सजातीय एव पारिवारिक होते है।

(७) सामान्यत अर्थ-अपसरण की इस आवश्यकता का कोई विशुद्ध आधार नही।[१११]

## (५) काव्य-बिंब एवं रूपक

रूपक को बिंब के सदर्भ मे भी विवेचित किया गया है। कही इसे बिंब का पर्याय माना गया, कही इसे बिंब-निर्माण की सर्वोपरि विधा और कही बिंब की रूपकात्मक अनिवार्यता को प्रमुखता दी गयी। लेविस के अनुसार—"प्रत्येक काव्यात्मक बिंब, स्वत ही कुछ-कुछ रूपकात्मक होते हैं।"[११२]

डा० सुधा सक्सेना ने जायसी की बिंब-योजना मे लिखा है—"बिंबो का कार्य काव्य का अलकरण भी होता है। आतरिक भावो की अभिव्यजना के साथ बिंब काव्य की रूपसज्जा मे भी सहायता करते हैं।"[११३] वे आगे लिखती है—"बिंब-प्रधान भाषा आलकारिक हो जाती है, यद्यपि आलकारिकता बिंब का प्रधान गुण नही फिर भी बिंब रूपसज्जा मे वृद्धि तो करते ही है। अधिकाश अर्थालकार बिंबात्मक या चित्रात्मक होते हैं।"

'पल्लव' मे सुमित्रानदन पत ने रूपक के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"रूपक अलकार है—यह माना, पर अलकार केवल वाणी की सजावट मात्र नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाव की पुष्टि और राग की पूर्णता के आवश्यक उपादान हैं, वाणी के आचार-व्यवहार, रीति-नीति हैं।"[११४]

डा० नगेन्द्र ने काव्य-बिंब को रस-विमर्श तक ले जाने मे सकोच किया है, पर रूपक एव काव्य-बिंब के पार्थक्य निर्धारण मे उनका स्पष्ट कथन है—"अलकार और बिंब का सबध और भी गहरा है—यहा तक कि अलकार-विधान और बिंब-विधान दोनो प्राय. अप्रस्तुत विधान के वाचक और परस्पर समानार्थक बन जाते है। फिर भी अलकार और बिंब दोनो मे भेद है· सहजानुभूति वास्तव मे आत्मा की वह क्रिया है जो बिंब का उत्पादन करती है—किसी भी पदार्थ की सहजानुभूति मनुष्य को बिंब रूप मे होती है, अत क्रिया रूप मे सहजानुभूति और बिंब मे अभेद सबध है ··रूपक लक्षणा के प्रयोग का पर्याय है, वह बिंब का साधन है।"[११५]

दिनकर लिखते है—"चित्र-रचना की सामग्री अक्सर अलकारो की सामग्री होती है किंतु चित्र अलकार लाये बिना ही रचे जा सकते है।"[११६]

'Poetry in Practice' के लेखक ने बिंब-निर्माण के स्वाभाविक रूपाधार के रूप मे रूपक को विवेचित किया है—"बिंब-निर्माण के सबसे अधिक स्वाभाविक रूपाधार हैं—रूपक एव उपमा। रूपक मे विचार का बिंब के साथ अभेद आरोपण रहता है।"[११७]

'Poetic Image' मे रूपक एव बिंब के अतर को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि "रूपक मानसिक तनाव व उत्तेजना की नैसर्गिक भाषा है और बिंब जीवन के तनाव को मिटाकर सहजता देता है।"[११८]

स्पष्ट है कि रूपक प्रतीक की भाति बिंब का परिपथी नही वरन् उसका सहयोगी है, उपकारी है, महत्त्वपूर्ण उपादान है, भाव-सप्रेषण के लिए समर्पित है। वह बिंब का सजातीय है, विजातीय नही। पर फिर भी वह बिंब का पर्याय नही। रूपक चाहे कितना भी सजीव, सफल एव प्रतिभा-प्रसूत हो, वह राग नही—राग-प्रेरित अप्रस्तुत विधान ही है। वह काव्य

का आतरधर्म नही, आतरधर्म को बिंबात्मकता देनेवाला अपरिहार्य अशभूत है। काव्य-बिंब समग्र कविता है, रूपक उसकी प्रभविष्णुता एव लावण्य सवर्द्धन का उपस्करण मात्र है। काव्य-बिंब अपनी सफलता के लिए रूपक का मुखापेक्षी नही, लेकिन रूपक की चरम सार्थकता काव्य-बिंब के निर्माण के लिए समर्पित होने मे है। काव्य-बिंब स्वय साध्य है जबकि रूपक उसकी सिद्धि का एक प्रमुख साधन। काव्य-बिंब राग का रूपातरण है जबकि रूपक रागानुकूल बाह्यार्थ के द्वारा राग की साद्रता को प्रकट करनेवाला प्रमुख माध्यम—कही-कही अनिवार्य माध्यम भी। रूपक मे भाव-घनता होते हुए भी वह भाव की उस विशदता एव सपूर्णता का स्पर्श नही करता जो बिंब का प्राण है। काव्य-बिंब जीवन की व्यापकता का एक पूर्ण चित्र उभारता है और इसके लिए अप्रस्तुत योजना तथा प्रस्तुत विभावन व्यापार दोनो का उसमे समाहार रहता है जबकि बिंब एक विशेष साद्र अनुभूति को उसके घनत्व के साथ प्रक्षेपित करता है और यही कारण है कि उसमे प्रस्तुत विभावन व्यापार के लिए कोई स्थान नही रहता। औचित्य के शासन मे उभरनेवाला काव्य-बिंब राग, ऐंद्रियता, अप्रस्तुत विधान आदि की सावयविक अन्विति है जो एक सपूर्ण व्यापार के रूप मे कवि द्वारा प्रेषित होता है। रूपक केवल एक विशिष्ट खड दृष्टि है—साधनभूत साध्य समर्पित एक श्रेष्ठ सामग्री।

निष्कर्षत —

(१) बिंब स्वय साध्य, रूपक प्रमुख साधन।
(२) बिंब राग का उसके सपूर्ण वैभव के साथ रूपातरण, रूपक राग-प्रेरित अप्रस्तुत विधान।
(३) बिंब व्यापक, विशद सपूर्ण दृष्टि, रूपक घनीभूत, विशेष खड दृष्टि।
(४) बिंब प्रस्तुत-अप्रस्तुत की सावयविक सश्लिष्टि, रूपक प्रस्तुत-अप्रस्तुत का अभेद आरोपण।
(५) बिंब जीवन के तनाव को दूर कर सहजता प्रदान करता है, रूपक मानसिक तनाव की नैसर्गिक भाषा है।
(६) बिंब सजीव व गत्यात्मक, रूपक यद्यपि प्रतीक की भाति स्थिर नही फिर भी कुछ सीमा तक परपरा-प्राप्त व जातीय।

## बिंब और मिथ

"अतोस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम"[११९]

साहित्य मे लोक सस्कृति एव शिष्ट सस्कृति दोनो सपृक्त हैं—यहा लोक और वेद, जनसामान्य और अभिजात, प्रेय और श्रेय, इह और पर के सभी भेद तिरोहित हैं। राहुल ने लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य से अभिन्न ही नही माना अपितु उसे शिष्ट साहित्य का उपजीव्य कहकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की।[१२०] आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास मे लिखा—"जब-जब शिष्टो का काव्य पडितो द्वारा बधकर निश्चेष्ट और सकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार, देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्त्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"[१२१]

डा० बलदेव उपाध्याय ने दोनो को परस्पर सहायक व पूरक बताते हुए स्पष्ट किया है—"लोक सस्कृति शिष्ट-सस्कृति की सहायक होती है। किसी भी देश के धार्मिक विश्वासो, अनुष्ठानो तथा क्रिया-कलापो के पूर्ण परिचय के लिए दोनो सस्कृतियो मे परस्पर सहयोग

अपेक्षित रहता है।"[१२२] अस्तु, चाहे वह लोक साहित्य हो या शिष्ट साहित्य—सबके मूल मे, जीवन के विविध अनुभवो को कहने की मानव-सुलभ सहज प्रवृत्ति है। मनुष्य का कुछ कहना ही कहानी है। इस कहने की प्रक्रिया मे उसके अतस्थ रागो और विचारो का प्रसार होता है, साथ ही सृजन का आनद उसे उल्लसित करता है। कथा की इस परपरा मे लोक कथाओ के विविध भेदो का महत्त्व है—नाराशसी गाथा, गाथा-चक्र, ऐतिह्य, वार्ता, आख्यान, आख्यायिका, ख्यात, निजधरी कथा, नीति कथा, अवदान, पुराकथा या मिथ आदि के अभिधान से लोक सस्कृति, लोक जीवन, धार्मिक विश्वासो, सामाजिक मान्यताओ को वाणी मिली है। इतना ही नही, इनके माध्यम से वह उन वस्तुपरक मानो को उपलब्ध करता है, जिनसे वह अपना मूल्याकन कर सके।

"मनुष्य अपने निजी व्यक्तित्व का परिचय तथा उसकी परिकल्पना तभी कर सकता है जबकि वह अपने स्व को ईश्वरीय प्रतिभा मे व्यक्त करे। वह भाषा, मिथक, कला आदि अपनी अलौकिक सर्जनाओ मे उन वस्तुपरक मानो को उपलब्ध करता है जिनसे वह अपना मूल्याकन कर सके, स्वय को विशिष्ट सरचनात्मक नियमो से उपेत एक स्वतत्र ब्रह्माड के रूप मे समझ सके।"[१२३]

## मिथ . आरभ और विकास

मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासु है—यह सृष्टि क्या है, जीवन क्या है, सूरज व चाद के पीछे क्या चेतना है, मानव धरती पर कब उतरा, पाप का प्रवेश कब हुआ, आदि-आदि प्रश्न निरंतर ही उसके मानस को झकझोरते हैं। इन सब प्रश्नो का समाधान उसने मिथकीय कथाओ के माध्यम से ढूढा। इसके अतिरिक्त मृत्यु की विभीषिका, मृत्यु पर जीवन की विजयाकाक्षा, जिजीविषा आदि की उसकी अनुभूतियो को भी मुखरित करने का उसे एक ही मार्ग मिला—अतिमानवीय एव अलौकिक कथाओ का सृजन।

मनोविज्ञान की दृष्टि से पौराणिक कथाओ के मूल मे मनुष्य के स्थायी भावो, उसकी आकाक्षाओ तथा कार्य-पद्धतियो का प्रकाशन है। दमित एव बहिष्कृत इच्छाए भी इनमे छिपी हैं। पुराण-कथाए आतरिक भाव-प्रतिमाए हैं। जुग ने इनमे जाति की बाल्यावस्था के स्वप्न को साकार देखा है। फ्रायड के अनुसार—"सभव है कि पौराणिक कथाए सपूर्ण देश की कल्पनात्मक इच्छा की विकृत अवशिष्ट सपत्ति के समरूप है—नवमानवता का युगीय स्वप्न है।"[१२४]

मिथक की उत्पत्ति की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए डा० शम्भूनाथ सिंह लिखते हैं—"सभी जातियो के पौराणिक विश्वास प्राचीन परपरा से प्राप्त हैं अर्थात् उनकी उत्पत्ति उस काल मे हुई थी जिसे सास्कृतिक विकास की दृष्टि से पौराणिक युग कहा जा सकता है। पौराणिक विश्वासो मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई कथा आवश्यक रहती है ये पौराणिक कथाए सत्य समझी जाती हैं।···पौराणिक विश्वासो और आख्यानो का धर्म के साथ घनिष्ठ सबध है क्योकि वे प्रकृति की शक्तियो, देवताओ और अन्य की शक्तियो की स्थिति का रहस्य समझाते हैं और इस प्रकार उससे मनुष्य का सबध स्थापित करते हैं।"[१२५]

मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार—"प्राकृतिक शक्तियो की व्याख्या करने के प्रयोजन से पुराणो के देवी-देवताओ की कल्पना की गयी है। रूपको और काव्यमय वर्णनो द्वारा पुराणो मे जगत की रचना, प्रकृति की परिवर्तनशीलता, मानव की क्षमताए, नैतिक

मूल्यों की शाश्वतता इत्यादि के बारे मे विचार व्यक्त किये गये है ।"[१२६]

कैसिरर मिथकों को विश्व की अभिव्यक्ति का आदिम रूप मानते हुए लिखते हैं—"मानव चेतना मे विश्व का आविर्भाव इद्रियबोधात्मक पदार्थों की समग्रता और इद्रिय सन्नि-कर्षात्मक वैशिष्ट्यो की सश्लिष्टि के रूप मे होने के बहुत पहले ही उसका व्यक्तीकरण मिथ-कीय शक्तियो एव प्रभावो की समष्टि के रूप मे हो चुका था ।"[१२७] वे आगे लिखते हैं कि "मिथ अपने सही अर्थों मे उस समय प्रादुर्भूत नही होता जब विश्व की अनुभूति का, उसके विभिन्न अंगो का, उसकी विविध शक्तियो का निश्चित बिंबो मे रूपायन मात्र हुआ हो' प्रत्युत उसका आरभ तभी होता है जब वे बिंब एक प्रारंभ, एक विकास तथा कालक्रम मे एक जीवन से आविष्ट होते हैं ।"[१२८]

इतना ही नही, प्रारभ मे स्व की चेतना भी एक निश्चित धार्मिक मिथकीय चेतना मे सात्मीकृत रहती है ।[१२६]

'Philosophy in a New Key' मे मिस लागर ने मिथ को पराभौतिक चिंतना का आद्य रूप माना है—"पौराणिक कथाओ के मूल मे ससार की गतिशीलता होते हुए भी उसके उद्देश्य मे दर्शन का गाभीर्य व स्थैर्य है। यह पराभौतिक चिंतना का आद्य रूप है—सामान्य ज्ञान का प्रथम सम्मूर्तन है । "पौराणिक तथा पारलौकिकता की अपरिहार्य सदेश-वाहिका है ।"[१३०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथक हमारी कथा परपरा का आदि रूप है और अपनी उत्पत्ति मे यह उतना ही प्राचीन है जितना कि स्वय वह विश्व । यद्यपि, कुछ विद्वानो ने इसे कर्मकाड का सह-सबधी माना है—"ऐतिहासिक रूप से मिथ एव धार्मिक कर्मकाड सह-सबधी हैं । जिस कथा को कर्मकाड अभिनीत करता है मिथ उसका सलापात्मक भाग है ।"[१३१] पर, सत्य यह है कि मिथ जीवन की आधार-भित्ति है—उसका जीवन से पार्थक्य सभव नही । "मिथ जीवन की आधार-भित्ति है । यह एक पवित्र सूत्र की कालातीत योजना है जिसको जीवन अज्ञात रूप से भरता है और उसे भरने की प्रक्रिया मे स्वय भी निर्मित होता है—उभरता है ।"[१३२]

## लक्षण

'Dictionary of Folklore' मे मिथ की परिभाषा देते हुए लिखा गया है—

"मिथ वह कथा है जो किसी युग मे घटित दिखाई गयी हो । इन कथाओ मे किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरो, देवी-देवताओ, जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परपराओ तथा सृष्टि-रचना का वर्णन होता है ।"[१३३]

जी० एल० गोम ने मिथ को विज्ञान पूर्व युग की घटनाओ का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण माना है ।[१३४]

अरस्तू के काव्यशास्त्र मे मिथ का प्रयोग कथावस्तु, वर्णनात्मक ढाचा, नीतिकथा के अर्थ मे हुआ है । मिथ एक वर्णनात्मक कथा है, जिसका विरोधी रूप है—वाद-विवाद-मय भाषण एव व्याख्या । व्यवस्थापूर्ण दार्शनिकता के विरुद्ध यह अबौद्धिकतापरक एव सहजोद्गार है ।[१३५]

'Theory of Literature' मे मिथक को विश्व के मूल उद्गम सबधी कथा के रूप मे व्याख्यायित किया गया है—" मिथ का तात्पर्य किसी अज्ञात द्वारा गढ़ी हुई, विश्व के मूल

उद्गम एव उसकी नियति सबघी एक कथा से है। यह युवको के लिए समाज का स्पष्टीकरण है कि यह जगत क्या है, हम जैसा करते है वह क्यो करते है, प्रकृति का शिक्षणात्मक बिंब क्या है, मानव की नियति क्या है ?"[१३६]

क्रिउज़र और जोहान ने मिथ को रहस्यार्थ सभूत प्रतीकात्मक या रूपक कथात्मक भाषा माना है। उसे एक ऐसे विशुद्ध आदर्श के रूप मे स्वीकार किया है जिसका आभास उसके बिंबो के अतराल मे पाया जा सकता है।[१३७]

इन लक्षणो के आधार पर हम कह सकते है कि मिथ कथा का एक प्राचीनतम प्रकार है जो जीवन के स्थूल तथ्यो एव घटना-प्रवाहो का अतिक्रमण कर मनुष्य का सबध अलौकिक, अतिप्राकृतिक और अमानवीय शक्तियो के साथ स्थापित करता हुआ जाति के परपरागत स्वप्नो की गभीर व्यजना करता है और स्वतत्र आशयो एव स्वतत्र दशाओ के विभिन्न घटको मे तथ्य को विभाजित करनेवाली विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के निषेध की ओर उसका झुकाव रहता है।

## स्वरूप और वैशिष्ट्य

मिथ के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि कर्मकाड, परीकथा, दिवास्वप्न आदि से उसके पार्थक्य को हम समझें। मिथ का सबध धर्म से जुड जाने के कारण उसे कर्मकाड का भाषिक रूप माना जाने लगा, पर जैसा कि 'Art and Society' के लेखक ने स्पष्ट किया है वह अपने मूल रूप मे एक अकृत्रिम सहज स्फुरणा थी। वे लिखते है—"मिथ अपने मूल रूप मे एक अकृत्रिम सहज स्फुरणा थी—मनुष्य और निसर्ग चेतना और पदार्थ को जोडनेवाली शृखला की सजगता या एक बोध। तदनतर धर्म ने अपने ऐतिहासिक एव सामाजिक प्रचारात्मक ध्येय को अस्त्र बनाकर उसके मूल बोधात्मक स्वरूप को रहस्यात्मक, ऐंद्रिजालिक, धूमिल और अलौकिक बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप धर्ममय कलागर्भी मिथको का सहित स्वरूप उठ खडा हुआ।' 'वास्तविक ऐतिहासिक परपरा से यह स्पष्ट लक्षित हो गया है कि कला ने धर्म के निर्मोक से मिथ को मुक्त किया है और धरती के कथ्य से उसे भरा है—उसे यथार्थ बनाया है। 'मिथ अपने कथ्य के आधार से धर्ममय नही बना—धर्मानुष्ठान एव धार्मिक विचार ही उसे धर्म से जोडते हैं।"[१३८]

धार्मिक कर्मकाडो की सहज विश्वसनीयता का उल्लेख करते हुए 'Metaphor and Symbol' मे लिखा है—"धार्मिक कर्मकाड अशत विश्वासो और धारणाओ को, अधिकाशत सवेगो को और सर्वाधिक रूप से सबधित व्यक्तियो की मनोवृत्ति को प्रभावित करता है। कर्मकाड कोरा वक्तव्य मात्र नही। इसका न तो स्वीकार होता है और न निषेध, और न ही इसे प्रमाणित किया जाता है। यह एक कार्यव्यापार है जिसमे हम भाग लेते है। 'यह हमे एक ऐसा दृष्टिकोण प्रदान करता है जिससे हम महत् एव श्रेष्ठ कल्पना-प्रसूत कृतियो को विश्वसनीय परिप्रेक्ष्य मे देख सकें।"[१३९]

यह सत्य है कि धार्मिक स्वीकारो को अपना विषय बनाकर कथा-रचना करनेवाले मिथ को विश्वसनीय एव जातिग्राह्य बनाने मे हमारे अनुष्ठानो का अनिवार्य योग है, पर उनमे अतर है—"कर्मकाड एव मिथ का मूलभूत अतर है जहा कर्मकाड एक विहित कार्य है, एक विशेषीकृत व्यापार है वहा मिथ अपने आपमे एक विशेषीकृत विवरण भी नही। वह तो एक प्रकार की सभाव्य कथा है, जो किन्ही विशेष अवसरो पर प्रस्तुत की जाती है।"[१४०]

'Philosophy in a New Key' मे मिस लागर मिथ व परीकथा के पार्थक्य को इस प्रकार स्पष्ट करती हैं—"पौराणिक कथाओ की सत्यता मे चाहे अक्षरश विश्वास न किया जाय, पर यह निर्विवाद है कि उनका स्वीकार एक ऐतिहासिक तथ्य या रहस्यात्मक सत्य के रूप मे धर्मपरक गभीरता के साथ होता है। 'पौराणिक कथाओ का साध्य परीकथाओ से कही गभीर होता है। यद्यपि दोनो के उपकरणो मे पर्याप्त साम्य है तथापि प्रयोग की दृष्टि से दोनो सर्वथा भिन्न हैं। परीकथा वैयक्तिक भोगतुष्टि है, वासनाओ की अभिव्यक्ति और उनकी काल्पनिक पूर्ति है, वास्तविक जीवन के अभावो की क्षतिपूर्ति है, जागतिक सघर्षों एव कुठाओ से पलायन है। इसके विपरीत पौराणिक कथा कम से कम अपने सर्वश्रेष्ठ रूप मे, प्रकृत सघर्षों और अतिमानवीय शक्तियो, वर्वर प्रपीडनो अथवा विपरीत आकाक्षाओ से दमित मानव-वासनाओ की प्रतिपत्ति है। यह मनुष्य के जन्म की, उसकी आदिम वासनाओ की, अपरिहार्य नियति के रूप मे मृत्यु से उसके पराभव की कहानी है। इसका चरम लक्ष्य ससार का काल्पनिक मिथ्या वर्णन नही बल्कि उसके मूलभूत सत्यो का गभीर अभिव्यजन है—यह नैतिक अनुस्थापन है न कि पलायन।"[१४१]

वस्तुत पौराणिक कथाओ या मिथको का स्वरूप व्यापक है जिसमे कर्मकाड, निजधरी कथाओ, वशानुक्रम आदि का अतर्भाव स्वत हो जाता है। Mythology के अतर्गत प्रमुख विशिष्ट गुण है Myth। हमारे यहा पुराण शब्द भी इतना ही व्यापक है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वतराणि च।
वशानुचरित चैव पुराण पचलक्षणम्॥

वस्तुत पौराणिक और निजधरी आख्यानो मे तात्त्विक भेद है। निजधरी कथाए महापुरुषो, सतो, देवताओ या राक्षसो के जीवन और कार्यों से सबधित होती है, पर इनमे इतिहास का तत्त्व किसी न किसी मात्रा और रूप मे अवश्य वर्तमान रहता है। पौराणिक आख्यान यदि प्रकृति सबधी जिज्ञासामूलक अनुभूतियो के काल्पनिक, धार्मिक और कलात्मक प्रतीक या समाधान हैं तो निजधरी कथा मे जीवन की ठोस अनुभूतियो का प्रतीक है।[१४२]

मिथ व निजधरी का भेद स्पष्ट करते हुए कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं—"कोई कथा तभी मिथ कही जा सकती है जव उसके प्रधान पात्र देवी और देवता हो अथवा इन पात्रो मे देवत्व की भावना वनी हो। परतु जव ये पात्र देवत्व की कोटि से नीचे उतरकर मनुष्य की श्रेणी मे आ जाते हैं तव उस कथा को लीजेंड कहने लगते हैं।"[१४३]

डा० पद्मा अग्रवाल मिथ को स्वप्न मानकर भी उसे व्यक्ति के स्वप्न से भिन्न समझती हैं। वह दिवास्वप्न नही। "पौराणिक आख्यान जाति का स्वप्न होता है, दिवा-स्वप्न व्यक्ति का स्वप्न होता है। पौराणिक कथाओ मे काल्पनिक चित्र मिलते हैं, दिवास्वप्न मे नाटकीय व्यक्तित्व। पौराणिक आख्यानो की भावकल्पनाओ मे मनुष्य को सतोष की प्राप्ति होती है क्योकि इनका सवध इदम् से होता है और वे सव प्रकार के तर्क-विचार से मुक्त होते हैं।"[१४४]

मिथ के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध चिंतक कैसिरर लिखते हैं—"मिथ का आरभ आत्मा या अह के समापित वोध से या वस्तुगत यथार्थ और परिवर्तन के पूर्ण स्थापित चित्र से नही होता, अपितु इस प्रकार का पूर्णत्व वोध उसे निष्पन्न करना होता है मिथ के लिए आत्मवोध कोई नियत जड धारणा नही, जिसमे वह अपने वशवर्ती सभी वोधो को वलात् समाहित कर ले प्रत्युत वह एक ऐसा तरल नमनीय तत्त्व है जो मिथ के हाथो रूपा-

कार बदलता रहता है। पुराकथात्मक कल्पना मे पूर्ण सश्लिष्टि का भिन्न-भिन्न अगो मे विभाजन सभव नही—वहा तो एक अविभाज्य पूर्ण की अभिव्यक्ति होती है जिसमे विषयगत बोध एव विषयीगत अनुभूति का अलगाव नही—अभेद सबध रहता है।"[१४५]

मिथ एक खड दृष्टि नही, सपूर्ण सर्जना है जिससे मनुष्य आस्थावान बनता है, भविष्य के प्रति आशावान होता है। मिथ का कार्य अपने प्रभावो का प्रकाशन नही, वह तो अपने लोकसग्रही स्वरूप को ध्वनित करता है।

'Metaphor and Symbol' के लेखक ने मिथ के लोकसग्रही स्वरूप पर बल देते हुए लिखा है—"मिथ का काम मुखरण नही ध्वन्यात्मक प्रभाव डालता है—उसका कार्यव्यापार विश्व सबधी किन्ही प्रश्नो का उत्तर देना उतना नही जितना कि समाज मे विद्यमान वास्तविकता मे योग देना और उसे सुरक्षित रखना है। ' मिथ किसी गोरखधधे की बौद्धिक प्रतिक्रिया नही बल्कि श्रद्धा का एक असदिग्ध कार्य है, जो प्रचड एव आक्रात करनेवाले विचारो के सवेगात्मक, सहज तथा आतरिक प्रतिक्रिया मे प्रेरित होता है। ' इस प्रकार की पुराकथा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—उसका लोकसग्रही होना। वह स्थानीय ऐक्य के आधार-भूत तत्त्वो को प्रेरित करती है और सशक्त बनाती है। मिथ तार्किक बुद्धि को प्रभावित कर अपना कार्य निष्पन्न नही करता बल्कि कल्पना के द्वारा मानस की मर्मस्पर्शिता को प्रभावित करता है।"[१४६]

मिथ व्यक्तिगत स्वप्न नही, व्यक्ति का सृजन नही—वह जाति की आशाओ-आकाक्षाओ का, विश्वासो-मान्यताओ का, श्रेयो-प्रेयो का सम्मूर्तन है। मिथ अपने स्वरूप मे व्यक्ति-निरपेक्ष तो है ही, स्रष्टा-निरपेक्ष भी है, वह आपादमस्तक जाति ही है—"मिथ सामाजिक, अज्ञात एव जातीय है। वर्तमान युग मे मिथ के कुछ सर्जको से परिचित होना शक्य है, पर मिथ की गुणात्मक स्थिति की दृष्टि से वह आज भी उतना ही सत्य है कि उसका रचयिता विस्मृत हो—साधारणतया ज्ञात न हो, और कोई भी घटना जो मान्यता की दृष्टि से महत्त्वहीन है पर यदि वह समाज द्वारा अगीकृत है, तो उसे निष्ठा की सहमति प्राप्त हो जाती है।"[१४७]

मिथ केवल व्यक्ति और स्रष्टा-निरपेक्ष ही नही होता, वह कार्यकारण-शृखला से भी मुक्त रहता है। वह स्वतत्र, निरपेक्ष एव अपने आपमे पूर्ण होता है। उसके इस पूर्ण सश्लिष्ट रूप मे इद्रियबोध और प्रत्यय के विभाजन का कोई स्थान नही। विद्वानो ने मिथ के इस वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है—"जहा इद्रियबोधात्मक प्रत्यक्ष चिंतन किन्ही विशिष्ट कारणो एव विशिष्ट कार्यो मे असदिग्ध सबध स्थापित करने के लिए अनिवार्यत निर्देशित होता है, वहा मिथकीय विचारधारा मे कारणो का चुनाव कार्य-कारण न्यायेन नही अपितु स्वतत्र होता है जिसमे किसी भी कारण का कुछ भी परिणाम हो सकता है।"[१४८]

"मिथ विशुद्ध रूपात्मक ससार मे जीता है और उसे वह पूर्णत वैषयिक मानता है। किंतु इस ससार मे उसके सबध मे इद्रियबोधात्मक एव प्रत्ययात्मक ज्ञान मे पार्थक्य स्थापित करनेवाले निर्णायक सकट का कोई चिह्न भी नही रहता।"[१४९] यद्यपि मिथ अज्ञात अतीत काल से चला आ रहा है—वह भूत मे ही जीता है, वर्तमान का उसके लिए कोई महत्त्व नही, फिर भी कैसिरर ने मिथ को अतीत काल से अज्ञातभावेन चली आती हुई कथा के रूप मे स्वीकार कर साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि वह अतीत व वर्तमान का पार्थक्य निरूपित करता है। उन्ही के शब्दो मे—"मिथ 'होने' और 'हो चुकने'—वर्तमान तथा भू

के बीच विभाजक रेखा भी खींचता है, किंतु एक बार अतीत की उपलब्धि हो जाने पर मिथ उसी मे जीता है—एक चिरतन तथा आप्त प्रमाण तथ्य के रूप मे उसे स्वीकार कर। मिथ के लिए काल का स्वरूप केवल एक पर्ययण नही जिसमे भूत, वर्तमान एव भविष्य के उपादानो का नित्य पर्ययण या अतर्स्थापन होता रहता है—इसके विपरीत मिथ मे एक अनम्य अवरोधक वर्तमान प्रत्यक्ष बोध एव मिथकीय उद्‌भव को पृथक् करता है।"[१५०]

मिथ के द्वद्वात्मक स्वरूप की भी व्याख्या विद्वानो ने की है। उनके अनुसार वह एक ऋजु व्यापार नही जो जीवन-घटनाओ की सीधी सरल अभिव्यक्ति करता है, प्रत्युत एक द्वद्वात्मक प्रक्रिया है—"मिथकीय सश्लेषण केवल यदि एक विरोधरहित ऋजु व्यापार को ही द्योतित करे तो उसका स्वरूप सच्चे अर्थों मे आध्यात्मिक नही हो सकता।·· उसके विकास-क्रम के विविध सोपान परस्पर अनुगामी ही नही होते बल्कि एक-दूसरे की तीक्ष्ण विरोधात्मक अवज्ञा भी करते है। मिथ के विकास का केवल इतना ही तात्पर्य नही कि पूर्व पक्ष से कुछ मूलभूत वैशिष्ट्यो, किन्ही अभौतिक स्थापनाओ को विकास तथा पूर्णता मिली है, साथ ही यह भी है कि उनका निषेध एव पूर्ण निर्मूलन भी हुआ है ··यह सत्य है कि मिथ अपनी परिधि के बाहर विचरण नही करता या एक सर्वथा भिन्न सिद्धात मे अतर्मुक्त नही होता किंतु अपने वृत्त की पूर्णता के लिए ही उसका उल्लघन करता रहता है।"[१५१]

'Illusion and Reality' मे इसे ही 'स्व-प्रत्याख्यान की साहसिकता' का अभिधान दिया गया है। उनके अनुसार—"सहज स्फूर्त निर्माण कौशल एव स्व-प्रत्याख्यान की साहसिकता मिथक का वैशिष्ट्य है। ·इसका आधार सघटित होता है और साथ ही यह सामाजिक सघटना का एक अग भी होता है। मिथक का उसके कर्मकाड से और कला का उसके व्यापार से एक ही रचनात्मक सबध है—मानव भावनाओ को सामाजिक सहयोग की अनिवार्यताओ के अनुकूल बनाना। मिथक की वृत्ति आत्मशोधन की है और सामान्यत वह सत्य ही होता है।"[१५२]

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार मिथ की प्रधान विशेषताए निम्नाकित हैं—

(१) इनकी पृष्ठभूमि धार्मिक होती है।

(२) इनमे प्रधान पात्र देवी-देवता होते हैं।

(३) इनका प्रधान वर्ण्य विषय सृष्टि की रचना है।

मिथ के स्वरूप एव महत्त्व को सुधी समीक्षक रिचर्ड्‌स ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—"सयत एव महत् पुराकथा फैंसी का परिणाम नही—मनुष्य के सपूर्ण मानस की सहज स्फूर्त वाणी है और यही कारण है कि उनका अक्षुण्ण भाव से सतत मनन किया जा सकता है। ये विश्राति के रजक उपकरण या विलास साधन नही जिनके द्वारा जीवन के कठोर सत्यो से पलायन हो सके अपितु वे जीवनगत कठोर वास्तविकताओ के ही प्रक्षेपण हैं।·· इन पुराकथाओ के माध्यम से हमारे सकल्पो का सघनन होता है, शक्ति का सपुजन होता है, विकास का नियत्रण होता है। इन्ही के द्वारा हमारी दिग्भ्रमित वृत्तियो का सतुलन एव समजन होता है। ·अपनी पारपरिक पुराकथा के अभाव मे मनुष्य केवल पशु है—एक बर्बर, चेतनाहीन पशु।

## काव्य-बिंब और मिथ

मिथ के सबध मे सामान्य प्रचलित मान्यता है कि वह हमारी विश्वास भावना एव

श्रद्धावृत्ति को तुष्ट करने वाला एक काल्पनिक सृजन है और जो कवि की काव्य-कल्पना का विषय भी बन सकता है, पर, मिथ विषयक इन विवेचनो से स्पष्ट है कि वह अपने मूल एव प्रकृत रूप मे—मानव अनुभूतियो को, उसके सकल्प-विकल्प को, उसकी सफलता-विफलता को, उसके स्वप्नो-आकाक्षाओ को, जीवनगत वास्तविकताओ को वैयक्तिक एव सामूहिक परिवेश मे समग्रता से व्यक्त करने वाला सहज स्फूर्त माध्यम है जो इतिहास के तथ्य की अपेक्षा 'सभाव्य सत्य' पर आस्था रखता है। और अपने इसी रूप के कारण वह काव्य से प्रगाढभावेन सबद्ध हो जाता है। इतिहास मे तथ्य का, धर्म मे मगल का, विज्ञान मे सत्य का और मिथ मे सभावना का स्वर प्रमुख है—अर्थात् मिथ का सत्य काव्य का सत्य है; दोनो ही सभाव्य सत्य के पक्षधर हैं। फित्ज़ स्ट्रच के अनुसार—"मिथ का प्रत्यय भी काव्य के ही समान एक प्रकार का सत्य है या सत्य का पर्याय है—जो इतिहासगत या विज्ञान-सम्मत सत्य का प्रतिद्वद्वी नही प्रत्युत पूरक है।"[१५३]

काव्य एव मिथ का गहरा सबध है। प्राचीन महाकाव्यो का मूल स्रोत ही धार्मिक-मिथकीय चेतना है—सत्य तो यह है कि काव्य के प्राचीन रूप मे मिथ, धर्म एव काव्य का अविभाज्य सबध है। प्राचीन महाकाव्यो एव चरितकाव्यो के मूल मे जातीय मिथ परपरा है जो इतिहास-बोध के साथ निजधरी कथाओ का रूप धारण करती है और कवि के भावो-द्वेलन का सस्पर्श पाकर इद्रियग्राह्य एव सवेद्य बन जाती है। मिथ की सार्वकालिकता और शाश्वतता से काव्य कालजयी बनते है।

काव्य एव मिथ दोनो के मूल मे सदृश मन स्थिति है—मन की सकल्पात्मक अनुभूति दोनो के मूल मे है। कवि अपने उद्‌गारो एव भावो की व्यजना मे मिथको का सदा ऋणी रहा है—उसने मिथको को उपजीव्य बनाकर अपने भाव-प्रासाद का निर्माण किया है। जाति के प्रतिनिधि-काव्यो मे तो मिथको की अनिवार्यता निर्विवाद है ही। आज भी काव्य अपने बिंबात्मक स्वरूप को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्राचीन मिथको को नये सदर्भों में रूपायित करता है—युग-चेतना को मूर्तित करने के लिए उन्हे नूतन परिप्रेक्ष्यो मे प्रस्तुत करता है। युग की जटिल स्थितियो, सकुल मनोवृत्तियो एव खडित चेतना को ध्वनित करने के लिए मिथको की ओर प्रत्यावर्तन आवश्यक है।

कालरिज मिथ या पुराकथा को एक सहज ज्ञान का विशेषण देते हुए कहते हैं कि यह किसी राष्ट्र को एक ऐसा कथात्मक ताना-बाना बुनने के लिए प्रेरित करता है जिसमे उसके मानस की आशा-आकाक्षा समाहित हो, और साथ ही उन्होने यह भविष्यवाणी भी की है कि कविता मे मिथ का प्रयोग उसके प्रतीको के अर्थगर्भत्व और स्थिति-स्थापक वैशिष्ट्य के कारण सदा ही होता रहेगा और इसी आधार पर वह मानव जाति की अनुभूति के साथ सदा समन्वित हो सकेगा।[१५४] कालरिज का यह कथन सर्वथा उचित है क्योकि आज की आधुनिक एव प्रगतिशील कविता को भी कथ्य की प्रभविष्णुता और सवेद्यता के लिए बहुत बार मिथको का आश्रय लेना पडता है।

काव्य-बिंब एव मिथक दोनो के मूल मे कल्पनाप्रवण सर्जक मानस है जो व्यक्ति का शेष सृष्टि से रागात्मक सश्लेषण स्थापित करता है। जहा मिथ जातीय रागो, भावो, अनु-भूतियो एव प्रश्नाकुल मन स्थितियो का सपूर्ण ब्रह्माड के साथ रागात्मक सश्लेषण है वहा काव्य-बिंब भी अमूर्त भावनाओ का शेष सृष्टि के साथ इद्रिय-सवेद्य सम्मूर्नन है। मिथ के पीछे जातीय मानस है—बिंब के पीछे वैयक्तिक मानस, पर दोनो ही अपनी सर्जना के पीछे

अचेतन मानस की रहस्यगर्भी अंत प्रेरणा को छिपाये हैं। मिथ भौतिक-कारण शृंखला की अवमानना करता है और इस रूप मे वह काव्य या काव्य-बिंब के 'नियति कृत नियम रहिता' के समीप है। मिथ अपनी उत्कृष्टता के लिए, अपने उत्कर्ष के लिए बिंबधर्मा बनता है तो काव्य-बिंब भी मिथको को अपनी सवेद्यता के लिए नियोजित करता है। दोनो अपने आप मे पूर्णदृष्टि एव सपूर्ण सृजन होकर भी एकसाथ कवि द्वारा नियोजित किये जाने पर अपने सर्वोपरि रूप मे उभरते है।

जो हो, दोनो मे एक मौलिक अंतर है—जहा मिथक अबौद्धिक एव अव्यवस्थित है वहा काव्य-बिंब प्रज्ञा की एक सजग चेतना है, उसमे एक शृखला है—व्यवस्था-क्रम है।

हम कह सकते हैं कि—

(१) बिंब व्यक्ति की दृष्टि है, मिथ जाति की।
(२) बिंब विशुद्ध काव्य है—मिथ अपने प्रारभिक रूप मे भले ही विशुद्ध काव्य रहा हो, पर आज उसमे धार्मिक विश्वासो का प्रगाढ सबंध है।
(३) बिंब एक व्यवस्थित सृजन है—मिथ मे व्यवस्था-क्रम की अवहेलना है।
(४) बिंब चेतना शासित कल्पनात्मक सम्मूर्तन है—मिथ नितात सहज स्फूर्न।
(५) बिंब अधिक लौकिक मानवीय एव वास्तविक मिथ मे अलौकिकता, अति-मानवीयता एव काल्पनिकता अधिक।
(६) बिंब मे शुद्ध आह्लादकत्व है—मिथ मे जिज्ञासामूलक विस्मयी समाधान।

## काव्य-बिंब और रूपक कथा

श्रेष्ठ बिंब के निर्माण मे रूपक का महत्त्व उसके पर्याय की सीमा तक पहुच गया है। रूपक शब्दो-वाक्यो तक सीमित है—जब वह काव्य-व्यापी हो जाता है तब उसे ही रूपक कथा कहा जाता है। रूपक कथा मे दो पक्ष होते हैं—एक प्रस्तुत और दूसरा अप्रस्तुत और दोनो तुल्यबल होते हैं। हम कह सकते है कि रूपक कथा एक बृहत् रूपक है जो सपूर्ण काव्य मे फैला है—रूपक कथा के आधार पर बिंब-सर्जना मे दोनो पक्षो का व्यापक क्षेत्र सहज ही मिल जाता है।

'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार 'रूपक-कथा काव्य' (Allegory) वह कथानक प्रबध है, जिसमे प्रस्तुत कथा के भीतर कोई अन्य अप्रस्तुत कथा भी अंत सलिला की भाति छिपी रहती है। 'एलिगरी' के लिए हिन्दी मे रूपक, प्रतीक, अन्योक्ति और उपमित कथा शब्दो का प्रयोग होता है। किंतु यह अनुवाद भ्रामक है। रूपक एक अलकार है जिसमें उपमेय और उपमान का अभिन्नत्व दिखाया जाता है। परतु एलीगरी मे यह बात नही होती। 'रूपक' नाटक का प्राचीन नाम भी है अत रूपक-काव्य से नाटक-काव्य का भ्रम भी हो सकता है। इसी कारण कुछ लोगो ने एलीगरी को केवल रूपक न कहकर अध्यवसित रूपक कहा है जो अधिक उपयुक्त है। प्रतीक भी एलीगरी से भिन्न अर्थ का बोधक है, यद्यपि एली-गरी मे प्राय प्रतीकात्मकता भी रहती है। प्रतीक मे प्रस्तुत नगण्य होता है—उसमे अप्रस्तुत या प्रतीयमान अर्थ ही साध्य होता है। अन्योक्तिया प्राय प्रतीकात्मक ही होती हैं, किंतु एलीगरी मे कभी-कभी अन्योक्ति नही समासोक्ति होती है जिसमे प्रस्तुत एव प्रतीयमान दोनो अर्थों का समान रूप से महत्त्व होता है। चद्रबली पाडेय ने इसे उपमित कथा कहा है, परतु उपमित कथा से दृष्टात कथा (Parable) का बोध होता है, जो रूपक कथा से भिन्न काव्य-

रूप है। अत अग्रेजी के एलीगरी शब्द मे जो व्यापकता है वह हिंदी के रूपक, प्रतीक, अन्योक्ति या उपमित कथा शब्दो मे नही है। ये अलग-अलग और सीमित अर्थ के द्योतक है। अध्यवसित रूपक से कथात्मकता का बोध नही होता अत वह भी पूर्ण अर्थ व्यक्त नही करता। अतएव एलीगरी के लिए हिन्दी मे 'रूपक कथा' ही सबसे उपयुक्त शब्द है।[१५५]

वेब्सटर कोशकार ने रूपक कथा के लक्षण मे रूपक, प्रतीक, टाइप आदि शब्दो का व्यवहार कर उसकी सीमा को आका है—"एलीगर ऐसा लबा या कथात्मक रूपक है जिसमे एक कथा दूसरी कथा के आवरण मे छिपाकर कही जाती है और जिसकी घटनाए प्रतीकात्मक होती हैं और पात्र भी प्राय मानवीकृत और 'टाइप' होते हैं।"[१५६] उसमे या तो भावो, मनोवृत्तियो, सूक्ष्म अशरीरी वस्तुओ और शक्तियो को मानवीकृत करके कथा का पात्र बनाया जाता है या किसी पात्र के माध्यम से कथा रूप मे कई सैद्धातिक, नैतिक या राजनीतिक बातें कही जाती हैं।"[१५७]

'मानविकी पारिभाषिक कोश' के अनुसार, "एलीगरी—अन्योक्ति रूपक, साध्यवसाना—पाश्चात्य आलोचना मे इस शब्द का व्यवहार सर्वप्रथम भाषणशास्त्र मे हुआ था। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार अन्योक्ति अलकार वह है जिसमे प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ अतर्निहित रहता है। कालातर मे अन्योक्ति शब्द का व्यवहार मात्र एक अलकार के लिए ही नही, वरन् ऐसी सपूर्ण कलाकृति के लिए भी किया जाने लगा, जिसमे प्रत्यक्ष कथा की अपनी रोचकता के अतिरिक्त सपूर्ण वस्तु व्यापार मे कथा-व्याज से महत्त्वपूर्ण नीति एव उपदेश निहित हो।[१५८]

आचार्य शुक्ल ने 'पद्मावत' के समीक्षण मे इसी रूपक कथा को समासोक्ति कहना अधिक उपयुक्त समझा था। उनके अनुसार, "जहा व्यग्य अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत मानें, तो जहा-जहा दूसरे अर्थ भी निकलते है वहा-वहा अन्योक्ति माननी पडेगी।' 'पर ऐसे स्थल कथा के अग है और पढते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो ही नही सकती। अत इन स्थलो के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नही कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए।"[१५९]

डा० शम्भूनाथ सिंह रूपक कथा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए काव्यात्मक दृष्टि से उसकी विशेषताओ को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"रूपक कथा के अनेक प्रकार हैं। किसी मे 'पात्र सूक्ष्म भावनाओ या वस्तुओ के मानवीकृत रूप होते हैं', किसी मे मानवीकृत तो नही पर प्रतीकात्मक अवश्य होते हैं, किसी मे मानवेतर जीवित प्राणी या जड पदार्थ होते हैं ··(जिनका) उद्देश्य कोई नैतिक पाठ पढाना या धार्मिक आध्यात्मिक उपदेश देना होता है। पर, काव्यात्मकता की दृष्टि से यह चौथा प्रकार ही महत्त्वपूर्ण होता है—जिसमे पात्र तो स्वाभाविक मानव होते हैं, घटनाए भी यथार्थ और कभी-कभी ऐतिहासिक होती हैं, पर उनका समष्टि प्रभाव गूढार्थ-व्यजक होता है। उसमे लेखक पात्रो का मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चरित्र चित्रित करता है, और ऐसी घटनाओ और परिस्थितियो का चुनाव करता है कि पूरी कथा मानव-जीवन के किसी चिरतन सत्य की ओर सकेत करती है। यह सकेत पूरी कथा के समन्वित प्रभाव द्वारा प्रतिभासित होता है।"[१६०]

अध्यवसित रूपक या रूपक कथा के मूल मे एक भावना काम करती है कि हम अमूर्त सिद्धातो भावनाओ, भावो, सवेगो, उद्वेगो या आदर्शों को लोकमानस तक सप्रेषित करने मे सक्षम हो। उसके कथात्मक कलेवर, ऐंद्रिय बोधात्मक स्वरूप, मूर्तता तथा चित्रात्मकता

का यही मूलभूत हेतु है। समीक्षको ने रूपक कथा की इस दृश्यता या मूर्तता को लक्ष्यीभूत किया है। कालरिज के शब्दो मे—"अध्यवसित रूपक कथा अमूर्त विचारो का चित्रात्मक भाषा मे रूपातरण है, जो स्वय भी ऐंद्रिय विषयो के अमूर्त रूप के अतिरिक्त और कुछ भी नही।"[१६१]

एज़रा पाउड ने अध्यवसित रूपक को 'स्पष्ट चाक्षुष बिंब स्फुरण' कहकर व्याख्यायित किया और इस प्रकार उसके बिंबधर्मी स्वरूप पर बल डाला और उसे काव्य-बिंब से सबद्ध किया—"एक निष्णात कवि के लिए अध्यवसित रूपक का अर्थ है—स्पष्ट चाक्षुषबिंब स्फुरण इन उद्घोषणाओ मे ऐंद्रिय सवेदनाओ पर जोर न होकर विशेषत्व एव जगद्व्यापी द्वद्वो के ऐक्य स्थापन पर होता है।"[१६२]

उपमा की अविन्यस्तता एव विच्छिन्नता रूपक मे प्रगाढ सान्द्रता एव अभेदता मे परिणत हो जाती है—यही कारण है कि काव्य मे उपमा की अपेक्षा रूपक का विशेष गौरव है। रूपक कथा भी रूपक ही है—उसमे भी रूपक की भाति समीकरण होता है, उपमा के सादृश्य विधान के लिए उसमे अवकाश नही होता—"रूपक कथा अपने आख्यान या चित्र मे ऐसे व्यक्तियो एव पदार्थों की निरपेक्ष स्वतत्र सत्ता दर्शाती है जो वास्तविकता की दृष्टि से अपनी सत्ता के लिए समीकृत प्रत्ययो, विशेषताओ, नैतिक आदर्शों पर आधारित रहती है। जो हो, अध्यवसित रूपक का अभिप्राय तुलना नही, समीकरण होता है।"[१६३]

रूपक कथा मे अमूर्तता को व्यक्ति-स्पर्श मिल जाता है, जिससे ये अमूर्तताए केवल रूपाकृति ही धारण नही करती प्रत्युत मानवीय सवेदनाए, सजीवता एव प्रासादिकता भी प्राप्त कर लेती हैं। उनकी सप्रेषणीयता का यही कारण है। रूपक कथा के वैयक्तिक स्पर्श के विषय मे मॉड बाडकिन लिखते हैं—

"रूपक कथात्मक तत्त्व दो असयोज्य पदार्थों को सम्मिलित करने का प्रयास है जिसमे अमूर्तताए वैयक्तिकता के गहन स्पर्श से अनुप्राणित हो उठती है।"[१६४]

स्पष्ट है कि रूपक कथा के भीतर कोई न कोई गूढार्थ अवश्य निहित रहता है—चाहे वह प्रधान हो या गौण। डा० शम्भूनाथ सिंह के शब्दो मे—"इन रूपक कथाओ मे रूपकातिशयोक्ति या साध्यवसान रूपक अलकार का अधिक योग होता है, क्योकि उनमे अप्रस्तुत कथा ही प्रधान होती है और प्रस्तुतो मे अध्यवसित होती है। अन्योक्ति-प्रधान रूपक कथा की प्रत्येक घटना, परिस्थिति और पात्र का अप्रस्तुतार्थ होता है और वह दूसरा अर्थ ही प्रधान होता है, प्रस्तुत अर्थ अपने आपमे कोई महत्त्व नही रखता। समासोक्ति-प्रधान रूपक कथा मे प्रस्तुत कथा ही प्रधान होती है पर उससे बीच-बीच मे और अत मे समष्टि रूप मे भी अप्रस्तुत अर्थ स्फुरित होता है। उसमे प्रत्येक घटना, पात्र या वस्तु का साकेतिक अर्थ होना आवश्यक नही है। नैतिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक या राजनीतिक निष्कर्ष वाली रूपक कथाओ में लक्षणा, व्यजना और ध्वनि की सहायता से अप्रस्तुत कथा व्यजित होती है।"[१६५]

काव्य-बिंब की दृष्टि से रूपक कथा का महत्त्व इस बात मे है कि उसके द्वारा स्रष्टा को प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनो का विशाल क्षेत्र सहज ही लब्ध हो जाता है। रूपक कथा मे कथा-कलेवर के भीतर जीवन के गभीर तत्त्वो का अत प्रदेश कवि-कल्पना के लिए विचरण व चयन का एक विशाल क्षेत्र प्रदान करता है जहा से वह मनोनुकूल बिंबो का चयन कर अपने भावो व विचारो को रूपाकृति प्रदान करने मे समर्थ हो सकता है। रूपक कथा कवि को वर्तमान के भीतर बहनेवाले शाश्वत एव चिरतन आदर्शों को ध्वनित करने का सुअवसर भी

प्रदान करती हैं। रूपकों की भांति रूपक कथा के द्वारा कवि सजीव, सप्राण एवं प्रभविष्णु बिंबों में जीवनव्यापी विशालता को संप्रेषित कर सकता है—ऐसे बिंबों का सृजन कर सकता है जिनमें बाह्य प्रकृति, आंतरिक प्रकृति, चिंतन-तत्त्व, आदर्श एवं उद्देश्यों को समीकृत किया जा सकता है और काव्य को जनमानस का विषय बनाया जा सकता है। डा० नगेन्द्र ने रूपक कथा को बिंब-प्रकार स्वीकार करते हुए लिखा है—"अन्योक्ति रूपक व कल्पकथा (myth) संश्लिष्ट प्रबंध-बिंब के विशेष प्रकार हैं। अमूर्त सिद्धांत या विचार-धारा को मूर्त रूप देने के लिए जिस शृंखलित या निबद्ध बिंब-विधान की सृष्टि की जाती है, वही अन्योक्ति रूपक है। इस प्रकार अन्योक्ति रूपक और पुराकथा या कल्पकथा निश्चय ही बिंब-प्रकार हैं।"[१६६]

## काव्य-बिंब एवं चिह्नादि

काव्य-बिंब की मूल संवेदना सौंदर्य-बोधात्मक एवं कलात्मक है, उसके गर्भ में भावों का विशाल जगत है जहां से कला की सृष्टि होती है। यही बिंब जब पुनः प्रयुक्त होने के कारण अपनी स्पंदनशीलता एवं सजीवता से रहित हो जड़ीभूत होने की दिशा में जाने लगता है तब इसका स्वरूप प्रतीकात्मक हो जाता है। पर, फिर भी प्रतीक में निश्चितता व स्थिरता होकर भी वह काव्य की सीमा में गृहीत होता रहा है, उससे श्रेष्ठ बिंबों का निर्माण संभव हुआ है। यह केंद्र में रहकर अपनी अर्थछवि की ज्योति से संपूर्ण संदर्भवृत्त को आलोकित करता है या कर सकता है।[१६७] प्रतीक जब अपने काव्यात्मक अंश को खो देता है, एक स्थिर निश्चितता को व्यक्त करने लगता है तब वह मात्र संकेतात्मकता का वाहक चिह्न बन जाता है। बिंब में भाव, वातावरण एवं परिवेश सभी हैं, प्रतीक में परिवेश है, भाव-ध्वनि है, पर चिह्न में केवल एक जड़ संकेत जिसमें विवक्षित वस्तु का सभी वातावरण पाठक की ओर से अध्याहृत होता है। यह काव्य या सौंदर्य-बोध की दृष्टि से अवर स्थानीय है।

यह सत्य है कि चिह्न में दृश्यता व संदर्भशीलता प्रारंभ में रहती है पर धीरे-धीरे वह क्षीण हो जाती है, प्रायः समाप्त ही हो जाती है। चिह्न की व्याख्या करते हुए कहा गया है—"चिह्न वह अनुभव है जो चेतना में पहले कभी सक्रिय, किसी संपूर्ण दृश्य या समूचे संदर्भ का एक अंग रहा हो और जिसकी पुनः प्रत्यक्षता में वह सारा संदर्भ ही सजीव हो उठा हो। निर्दिष्ट विषय की जटिल घटनाओं की व्याख्या में हमें उन्हें उभारने वाली परिस्थितियों का कृत्रिम विभाजन अपेक्षाकृत ऋजु चिह्न नियोगों में करना होता है, पर साथ ही यह भी स्मरण रखना होता है कि जटिलता की व्याख्या के लिए व्याकृत ये चिह्न नियोग परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।"[१६८]

चिह्न किसी वस्तु के बोध के लिए निश्चित किया गया एक निशान है; पर ऐसा निशान जिसमें उस बोधक वस्तु का किसी भी प्रकार का सादृश्य, साधर्म्य, सारूप्य संबंध नहीं रहता। यह चिह्न सहेतुक भी हो सकता है और यादृच्छिक भी। "चिह्न किसी वस्तु के बोध के लिए दिया गया व्यावर्तक निशान है जो सहेतुक या आकस्मिक, स्वाभाविक या कृत्रिम, ध्वन्यात्मक या वर्णनात्मक या फिर पूर्णतः यादृच्छिक होता है।"[१६९]

चिह्न के साथ अनिश्चितता एवं अहेतुकता संबद्ध हैं। "चिह्न सकारण या अकारण, सहेतुक या अहेतुक, सचयन या अचयन किसी भी वस्तु का द्योतन करता है।"[१]

कहना न होगा कि चिह्न काव्यात्मक बिंब-सर्जना के लिए उपयोगी नही। किसी समुदाय, सस्था, कबीलो के अपने चिह्नो का महत्त्व स्थानीय रचनाओ मे कुछ सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है, पर काव्य की सर्वजन सवेदनीयता के लिए निश्चित, नियत, जड चिह्नो का मूल्य नही।

यहा हम 'एम्ब्लेम' को भी विचारार्थ ले सकते है। ये चिह्नात्मक प्रतीक हैं। प्रतीक जब क्षीण होने लगते है तब वे एम्बलेम बन जाते हैं। "एम्बलेम व्यक्ति विशिष्ट न होकर समुदायगत हुआ करता है और उसके पीछे व्यक्ति की नही, समुदाय विशेष की धार्मिक और जातिगत धारणाए तथा अधविश्वास काम करते है। जैसे हस सरस्वती के लिए, उल्लू लक्ष्मी के लिए एम्बलेम का काम करते हैं।"[११]

अति आवृत्ति और नियत सोद्देश्य प्रयोग के कारण चिह्नादि मे प्रसग, वातावरण सभी समाप्त हो जाते हैं। काव्य किसी नियत, सुनिश्चित मान्यताओ को लेकर नही चलता, अत इन अभिधात्मक, रूढि लक्षणापरक चिह्नो का काव्य के लिए कोई महत्त्व नही रह जाता। रूढिग्रस्तता एव ध्वन्यात्मकता का अभाव इनकी काव्यात्मक सुषमा को समाप्त कर इनके सामान्य प्रयोगो को ही विषय बना देता है।

कहना न होगा कि काव्य-बिंब चिह्न आदि का परिपथी है, विलोम है। प्रतीक, रूपक, रूपक कथा, मिथ आदि के सदर्भ मे काव्य-बिंब की इस चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि जब सृजन के क्षणो मे बिंबो का रूपायन करता है तब उसकी भावानुभूति की निष्पत्ति लघु शब्द-बिंब रूपक से लेकर प्रबधव्यापी रूपक कथात्मक बिंब के विस्तृत क्षेत्र तक, किसी भी रूप मे हो सकती है। हम कह सकते हैं कि काव्य-बिंब अपने भीतर प्रतीक, रूपक, मिथ, रूपक कथा आदि की समग्र विशेषताओ को आत्मसात् करनेवाला काव्य-स्वरूप है, जो अपने प्रेरक तत्त्व के रूप मे अमूर्त सवेगो का आभारी है और अपनी मूर्तता के लिए कवि-कल्पना पर आश्रित। भारतीय दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'रस ध्वनि' ही अपने सम्यक् विभावन व्यापार के साथ 'काव्य-बिंब' मे रूपायित होती है।

## पाद-टिप्पणियां

१ गजानन माधव मुक्तिबोध 'नयी कविता का आत्म-सघर्ष तथा अन्य निबध', पृ० ४-५।

2 Austin Warren and Rene Wellek : 'Theory of Literature', p. 190

3 "......mind tends to operate with symbols far below the level of speech" —Susanne K Langer 'Philosophy in a New Key', p 127

4 Ritchie— 'As far as thought is concerned, and at all levels of thought, it is a symbolic process ... the essential act of thought is symbolization"

"As a matter of fact it is not the essential act of thought that is symbolization, but an act essential to thought and prior to it"
—Susanne K Langer 'Philosophy in a New Key', p 45.

5 "Symbolization is pre-rationative but not pre-rational"
—Susanne K Langer 'Philosophy in a New Key', p 45.

6. Quoted from—'Symbolism and American Literature' by Charles Feidelson, p 55.
7 " ... .Symbols are men's oldest and most international language in which thoughts and emotions, many of them archaic have become fossilized but which can reappear in most unexpected manner."
—Felix Marti Ibanez 'Symbology and Medicine', p 140
8 Quoted from article—'Symbolism and Education of Book'—'Symbols and Society' by Robert Ulich, p 205
9. According to 'Modern English Dictionaries' Symbol is 'that which suggests something else by reason or relationship' or a 'visible sign for something invisible'
—Quoted from article—'Symbolism and Education of Book'—'Symbols and Society' by Robert Ulich, p 206
१० लोकमान्य तिलक 'गीता रहस्य', पृ० ४१५।
११ 'शब्दसागर', भाग ३, पृ० २२०८।
१२ डा० चंद्रकला 'आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद', पृ० १।
13 H H. Gardiner . 'Speech and Language', p 101
१४ 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (दर्शन खंड), पृ० १७४।
१५ 'हिन्दी साहित्य कोश', पृ० ४७१।
१६. अज्ञेय 'आत्मनेपद', पृ० ४०-४४।
१७ डा० राधाकृष्णन 'सत्य की ओर', पृ० १३६।
18. "A symbol is a visible or audible sign or emblem of some thought emotion or experience, interpreting what can be really grasped only by the mind and imagination by something which enters into the field of observation" —'Encyclopaedia of Religion and Ethics' (Vol XII), p 139
१९ "किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना चट मन में आती है, उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनोविकारों या भावना को जागृत कर देती हैं।"—रामचन्द्र शुक्ल 'चिंतामणि', द्वितीय भाग, पृ० १२।
२० "यह संबंध जब तक हृदयस्थ रहता है तब तक इसकी अमूर्तावस्था रहती है, किंतु जब हम प्रकृति के पदार्थों का प्रयोग अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ करते हैं तब उस रागात्मक संबंध का मूर्तिकरण कर देते हैं।"— प्रेमनारायण शुक्ल 'हिंदी साहित्य में विविधवाद', पृ० ४६८।
२१ 'चिंतामणि', द्वितीय भाग, पृ० १२।
२२ डा० भगीरथ मिश्र 'काव्यशास्त्र', पृ० २९४।
23. "A symbol" wrote Coleridge, "is characterized by the translucence of the special in the particular, or of general in the special, or of the universal in the general above all, by the translucence of the eternal through and in the temporal . A symbol partakes of the reality which it renders intelligible" —Archibald Macleish 'Poetry and Experience', p 77-78
24. Book—'Symbols and Society' (Article—'The Literary Symbol') —William Y Tindall, p 345
२५ " कलाकार स्वानुभूति के अकथनीय अंशों को प्रतीक के द्वारा कथनीय व प्रेषणीय बनाता है।
—कुमार विमल 'सौंदर्यशास्त्र', पृ० २४५।

26 C G Jung 'Psychological Types', p 291
27 'Symbols and Society', p 206
28. Ibid, p 207
२९ डा० नित्यानद शर्मा 'आधुनिक काव्य में प्रतीक विधान', पृ० २१ ।
30 William Y Tindall 'The Literary Symbol', p 345.
३१ एक पदेन तदर्थान्यिपदार्थं कथमुपलक्षणम् ।
32 "Symbols are not proxy for their objects but are vehicles for the conception of objcets .. it is the conception not the things that symbols directly mean"

—Susanne K Langer 'Philosophy in a New Key', p. 61

३३ डा० कुमार विमल - 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० २५६ ।
34 " .They define symbol by assuming the existence of two things and further by postulating a relationship between them Indeed it is the relationship which is the symbol. . .Symbol is not one thing substituted for another A symbol is always what George Whalley has called—'a focus of relationship."

—Archibald Macleish 'Poetry and Experience', p 78.

35 " bridge between the two banks of the seen and the unseen which flank the river of human existence' "

(Article—'Symbolism and Education of Man'), 'Symbol and Society', p 205

३६ दिनकर 'शुद्ध कविता की खोज', पृ० २७१ ।
37 "A symbol might be defined as a representation which does not aim at being a reproduction" —A Symon 'Symbolist Movement in Literature', p 1
38. 'Philosophy in a New Key', p. 127
39 "Jung speaking of the symbols as reconciler finds it uniting the unconscious with the conscious"

—William Y Tindall 'The Literary Symbol', p 346

40 Whitehead finds it connecting mode of experience

—Ibid, p 346.

४१ डा० नगेन्द्र 'काव्य-बिंब' पृ० ८ ।
42 T E Hulme "An image is not unlike a symbol . ..but where as our symbol presenting itself, suggests something indefinite, his image suggesting something almost as definite as itself......"

—William Y Tindall 'The Literary Symbol', p 348

43 'Symbols are sensible signs, final, indivisible and, above all, unsought impressions of definite meaning A symbol is a trait of actuality that for the sensuously alert man has an immediate and inwardly sure significance'

Oswald Spenglar 'Decline of the West', p 169.

44. "Symbol has a fixed traditional meaning The image on the othe rhand has variable significance."
—Ezra Pound 'The Literary Symbol', p. 350
45. 'Symbolism . Psychological Study' by Dr Padma Agrawal, p 17.
46. Jean Paul Sartre 'Psychology of Imagination'.
47. " .....if a poet lays emphasis on an image by pointing out that it has a special meaning, and perhaps even defining that meaning for us, it then becomes a symbol almost by main force "
—'Problems in Aesthetics' by Morris Weitz', p. 448.
४८ डा० भगीरथ मिश्र 'काव्यशास्त्र', पृ० २६६ ।
49. C D. Lewis : 'The Poetic Image', p 40-41
50. "···They are not only capable of connoting the things from which our sense-experience originally derived them······but they also have an inalienable tendency to mean things that have only a logical analogy to their primary meanings "
S. Langer · 'Philosophy in a New Key', p 128
51 'Poetry and Experience' by Archibald Macleish, p. 79-80
52 "One reads through . through the sounds but never leaving the sounds, into their reference... . through their realations to each other to the feel of the meaning It is the perspective one reads for in the poem ......because meaning in a poem is perspective—the perspective which puts everything in place "
—A. Macleish 'Poetry and Experience', p. 85
53 "The subject of a poem... .grows "
—C. D Lewis 'The Poetic Image', Chapter IX
54. "...They are affected by the emotional vibrations of their context."
—C D Lewis 'The Poetic Image' Chapter IX
55. "It is not sufficient to state the theme of the work of art; it must be elaborated and embroidered "
—Morris weitz · 'Problems in Aesthetics', p 177.
56 "Most symbols derive their rich suggestiveness from their gradual accumulation of association in the speech and thought of mankind at large "
—Morris Weitz 'Problems in Aesthetics', p 452
57. "In literature at all events......the meaning of anything that be we recognise as a symbol is determined by a context The more exact, there are two overlapping contexts namely the work within which it occures and yet wider contexts of meanings which the artist draws on in making his work, and their is the context into which it enters—namely the moving and developing life of the person responding "—Coleridge
—'Symbol and Metaphor' (From the article by L C Knight), p 135.
58 'The Meaning of Meaning', p 209

५९ डा० प्रेमनारायण शुक्ल 'आधुनिक हिन्दी कविता मे बिंबवाद'।
६० दिनकर 'शुद्ध कविता की खोज'।
61 Shelley "Poetry is a musical thought"
62 James Sledd 'Some Notes on English Prose Style', p. 201-233
63. "Metaphor itself is a metaphor meaning the 'carrying across' of a term or expression from its normal usage to another"—'Style', p 165
64 "Metaphor The figure of Speech in which a name or descriptive term is transferred to some object different from, but analogous to that, to which it is properly applicable, an instance of this a metaphoric expression"
—Max Black : 'Models and Metaphors', p 31
६५ 'हिन्दी साहित्य कोश', पृ० ६६७।
66 According to Dallas "to like impels us to liken Simile and Metaphor are signs of sympathy of love felt by the poet for things outside himself"
—C D Lewis 'Poetic Image' p 89
67 "The four basic elements in our whole conception of metaphor would appear to be that of analogy, that of double vision, that of sensuous image revelatory of the imperceptible, that of animistic projection"
Austin Warren and Rene Wellek 'Theory of Literature', p 203
68 Maxmuller 'Science of Thought'
69 'The world of Imagery', p. 36
७० 'अरस्तू का काव्यशास्त्र', पृ० ६०
71 G Whalley : 'Poetic Process', p. 143
72 Maxmuller 'Science of Thought', p 485.
73 'Theory of Literature', p. 201.
74 "Metaphor appears as the instructer and necessary act of mind"
—Poetic Image', p 74
75 "Metaphor is the law of growth of every semantic It is not a development but a principle"
—'Philosophy in a New Key', p 130
76 "Metaphor is a specis of catachresis...the use of word in new sense"
—'Models and Metaphors', p. 33
77 'Poetry and Experience', p 74.
78 Ibid
79 Ibid.
८० उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिका भेदात्।
रजयति काव्यरङ्गे नृत्यती तद्विदां चेत॥—चित्र मीमांसा।
81 Aristotle.
८२ भरत मुनि।
83 F L Lucas 'Style', p 173.

84 "Metaphor is fundamentally a borrowing between and intercourse of thought—a transaction between contexts."
—'Philosophy of Rhetorics', p. 93.

८५ अत्यन्त विशकलितियो पदार्थयो सादृश्यातिशय महिम्ना भेद प्रतीति स्थयगणम् उपचार ।

86 J V Cunningham 'The Problem of Style', p 67-70

87 'Philosophy of Rhetorics', p 90-91

88 "Primitive experience and expressions are not simple but complicated And metaphor like many other features of the poetic mentality is primal and primitive"
—'Poetic Process', p 143

89 "Hence the early language of men being entirely made up of words, descriptive of sensible objects, it became of necessity extremely, metaphorical"
—Quoted by Owen Bonfield in 'Poetic Diction', p. 72.

90 "Metapher is the natural language of tension, of excitement because it enables man by a compressed violence of expression to rise to the level of violent situation which provokes it"
—The Poetic Image', p 99

91. "A simile can relax tension when the strain of the thought is becoming too great......Metaphor, on the other hand, though it introduces an image, concentrates on the thought emotionally"
—'The Poetic Image', p 123.

92 "To call a sentence an instance of metaphor is to say some thing about its meaning, not about its orthography, its phonetic pattern or its grammatical form"—'Models and Metaphors', p 28

93 "Many of them are best described as extensions of meaning because they do not involve apprehended connections between two systems of concepts.'—'Models and Metaphors', p 42

94. "A metaphor is a shift, a carrying over of a word from its normal usage to a new use In a sense—metaphor the shift of the word is occasional and justified by a similarity or analogy between the object it is usually applied to and the new object In an emotive metaphor the shift occures through some similarity between the feelings, the new situation and the normal situation arouse"
—'Practical Criticism', p 231.

95 "Houseman frankly says that metaphor and simile are things in essential to poetry They are frankly 'accessories', for they are employed by the poet to be helpful to make his sense cleared and his conception more vivid"
—Cleanth Brooks 'Modern Poetry and the Tradition', p 4

96 "The greatest thing by far is to have a command of metaphor ...... This alone can not be imparted to another"
—'Poetic Image', p 18

97 "We should always be prepared to judge a poet... by the force and originality of his metaphors"—'Poetic Image', p 17

98 'Poetic process', p 143.

99. "..... .metaphor is the synthesis of several units of observation into one commanding image, it is the expression of a complex idea, not by analysis nor by direct statement; but by a sudden perception of an objective relation"

—'Seven Types of Ambiguity', p 2.

100 ". . metaphor is the supreme agent by which disparate and hitherto unconnected things are brought together in poetry"

—'Poetry and Experience', p 74

101 "The 'alien name' the marriage, does of course affect the relation of the partners to each other They lie not side by side; but raped together by a borrowed word But because they are closely linked they move us more deeply and so enable us more immediately or more profoundly to perceive the similarity in dissimilars"

—'Poetry and Experience', p 82

102 'Poetry and Experience', p 81.

१०३ "तन्मूलञ्च उपमेति सैव विचायते ।"

१०४ 'हिन्दी साहित्य कोश' ।

१०५ आचार्य भामह 'काव्यालकार' ।

१०६ 'काव्यादर्श' २ १४ ।

१०७. "उपमानोपमेयस्य गुण साम्यात् तत्त्वारोपो रूपकम् ।"

—काव्यालकार सूत्राणि, ४ ३ ६ ।

रुद्रट के मतानुसार उपमान के सिद्धगुण का उपमेय में साध्य बनाना तो उपमा अलकार है और गुणों के साम्य से उपमान एव उपमेय के अविवक्षित सामान्य भेद को रूपक कहते हैं ।"

—'काव्यालकार', ८ ३८ ।

108 "Simile like prose is analystic, metaphor like poetry is synthetic .. simile reasons metaphor apprehends by intuition"

—'Greek Metaphor', p 28-29.

१०९ 'मानविकी साहित्य कोश', पृ० १६६ ।

110 "This is the boldest of language figures and is even a synonym for Image Metaphor takes to itself the properties of all words and is concerned with other properties . . .. it is the business of metaphor to find out the sensory and ideational possibilities of words which are inherent in them and which they acquire through use and abuse"—'A Primer for Poets', p 35

111 'Models and Metaphors', p 43

112 "Every Poetic image, therefore, is to some degree metaphorical"

—'Poetic Image', p. 18.

११३ 'जायसी की बिंब योजना', पृ० ५६ ।

११४ 'पल्लव', पृ० १६ ।

११५ 'काव्य-बिंब', पृ० ८ ।

११६ 'चक्रवाल', पृ० ७१ ।

117 Norman Callan 'Poetry in Practice', p 123.
118 'Poetic Image', p 29
११९ 'गीता', १५।१८।
१२० "लोक साहित्य शिष्ट साहित्य के लिए सदा उपजीव्य रहा है और भविष्य मे रहेगा।"
—'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', भाग १६, पृ० १३।
१२१ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ६००-६०१।
१२२ डा० वलदेव उपाध्याय 'समाज', वर्ष ४, अक ३, पृ० ४४६।
123 "......man can apprehend and know his own being only in so far as he can make it visible in the image of his gods . ...he draws from his spiritual creations—language, myth and art—the objective standards by which to measure himself and learn to understand himself as an independent cosmos with its peculiar structural laws."
—Ernest 'Cassirer Philosophy of Symbolic Form', Vol 2, p 218
124 Whitehead 'Psychoanalysis', p 85
१२५ 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास', पृ० २८।
१२६ 'मानविकी पारिभाषिक कोश', दर्शन खड।
127 ' Long before the world appeared to the consciousness as a totality of empirical things and a complex of empirical attributes, it was manifested as an aggragate of mythical powers and effects "
—'The Philosophy of Symbolic Form', p 1
128 "True myth does not begin when the intuition of the universe and its parts and forces is merely formed into definite images. ....... it begins only when a genesis, a becoming, a life in time is attributed to these figures "—'Philosophy of symbolic Form', p 104
129 "In the earliest stages we find the feeling of self immediately fused with a definite mythical religious feeling of the community "
—'The Philosophy or Symbolic Form', p 175
130 "The origin of myth is dynamic but its purpose is philosophical It is the Primitive phase of the metaphysical thought, the first embodiment of general ideas ..myth is the indespensable forerrunner of metaphysics "—'Philosophy in a New Key',p 172-173
131 'Historically myth follows and is corelative to ritual, the story which the ritual enacts "—'Theory of Literature', p 195
132 Thomas Mann—"Myth is the basis of life, it is a timeless scheme, a pious formula and life fills it unconsciously reproducing its own features in the process "—'Art and Society', p 156
१३३ 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', पृ० ११९।
१३४ वही, पृ० १२०।
135. "Myth appears in Aristotle's Poetics as the word for plot, narrative structures, fables The myth is narrative "
136 S H Hooks—" .....myth comes to mean any anonymously composed story telling, of origins and destinies, the explainations the

society offers to its young of why the world is and why we do as we do, its pedagodic images of the nature and destiny of men"
—'The Theory of Literature', p. 195.

137 "Creuzer and Johann looked on myth as an allegorical symbolic language concealing a secret meaning a purely ideal content which can be glimpsed behind its images"
—'Philosophy of Symbolic Forms', p. 38

138 'Art and Society', p 155
139 'Metaphor and Symbol', p 125
140 "The basic distinction between a ritual and a myth is that the former is a thing carried out, a particularized activity, whereas a myth is not in itself eveh a particular narrative, it is something like a potential narrative which may be set forth in this or that particular occasion of narration"
—'Metaphor and Symbol', p. 125.
141 'Philosophy in a New Key', p 152-153.
१४२. 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास', पृ० २८।
१४३ 'हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास', भाग १६, पृ० १२०।
१४४ 'प्रतीकवाद', पृ० २४३।
145 'Philosophy of Symbolic Form', p 71.
146 'Symbol and Metaphor', p 123.
147 "... The myth is social, anonymous and communal In modern times we may be able to identify the creators or some of the creators of a mytn, but it may still have the qualitative status of a myth if its authorship is forgotten, not generally known, or at any event unimportant to its validation—if it has been accepted by the community has received the consent of the faithful"
—'The Theory of Literature', p 196.
148 'Philosophy of Symbolic Form', p 46
१४६ वही, पृ० ३५।
१५० वही, पृ० १०६।
१५१ वही, पृ० २३६।
152 'Illusion and Reality', p 25-27
153 "The conception of myth as like poetry, a kind of truth or equivalent of truth—not a competitor to historic or scientific truth but a supplement"
—Fritz Strech 'Theory of Literature', p 195
154 "Coleridge attributed myths genesis to 'an instinct' which induces nations to 'weave a fabric of fable accomodated to the wants and yearnings of their own minds, and predicted its continued use in poetry, because of the pregnancy of its symbols and the plastic facility with which it accomodates itself to the fancy and feelings of mankind"—'The Mirror and the Lamp', p. 294
१५५ 'हिंदी साहित्य कोश', पृ० ६७०।

156, "An allegory is a prolonged metaphor in which typically a series of actions are symbolic of other actions while the characters are offten type or personification "

—'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप' से उद्धृत, पृ० ५८१।

१५७ वही, पृ० ५८१।

१५८ 'मानविकी पारिभाषिक कोश', साहित्य खड, पृ० १५२।

१५९ रामचद्र शुक्ल, 'जायसी ग्रथावली' पृ० ५५।

१६० 'हिंदी महाकाव्य का विकास', पृ० ५८२।

161 Coleridge—"An allegory is but a translation of abstract notions into a picture language, which is itself nothing but an abstraction from object of the senses."—'Symbol and Metaphor'

162 Ezra Pound—"For a competent poet allegory means 'dear visual imagery'. ....In all his pronouncements the stress in rather on particularity and the union of the worlds than it is on the sensuous."—'Theory of Literature', p 192.

163. ". .. allegory implies the apparent independence of objects or persons, within a story or picture, which are in reality dependent for their existence upon concepts, morals or qualities with which they are equated Allegory, however implies equation rather than comparison."—'The Poetic Pattern'

164. J A Symonds—".. .. the allegorical element the attempt to combin eincompatibilities.. ...to enliven abstractions by investing them with personality "—'Archytypal Patterns in Poetry', 'by Maud Bodkin', p 187

१६५ डा० शम्भूनाथ सिंह 'हिंदी महाकाव्य का स्वरूप', पृ० ५८२।

१६६ 'काव्य-बिंब', पृ० ८।

१६७ 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० २५४।

168 "A sign is something which has once been a member of a context or configuration that worked in the mind as a whole When it reappears its effects are as though the rest of the context were present In analysing complex events of referring we have to break them up artificially into simpler sign situations out of which they arise not forgetting meanwhile how interdependent the parts of any interpretation of a complex sign are"

—'Principles of Literary Criticism', p. 90

169 "A sign is any distinctive mark by which a thing may be recognised or its presence known, and may be intentional or accidental, natural or artificial suggestive, discriptive or wholly arbitrary"

—'Synonyms, Antonyms and Preposition', p 390

170 A sign does actually suggest the thing with or without reason and with or without intention or choice"

—'Synonym, Antonyms and Preposition', p 174

171 Heinrich Zimmer . 'Myths and Symbols in Indian Art', p 48.

# ४

# काव्य-बिंब विषयक भारतीय चिंतन

'काव्य-बिंब' पाश्चात्य काव्य-समीक्षा की प्रमुख सवेदना व सर्वोपरि निकष 'Poetic Image' का हिन्दी पर्याय है। भारतीय काव्य के क्षेत्र मे इसका स्वीकार आधुनिक युग मे पाश्चात्य प्रभाव की देन है।

प्राचीन शास्त्रीय चिंतन मे काव्य-बिंब का विचार ठीक इस अर्थ मे नही हुआ है, जिस रूप मे आज वह स्वीकृत है, पर रस सप्रदाय से लेकर औचित्य तक की विचार-शृखला मे हमारे आचार्यों की दृष्टि इतनी पूर्ण एव व्यापक रही है कि उसमे काव्य-बिंब की स्वरूपगत विशेषताओ को सहज ही देखा जा सकता है। आधुनिक युग मे आचार्य शुक्ल ने 'बिंब-ग्रहण' शब्द का प्रयोग काव्य के सदर्भ मे किया और उसके बिंबधर्मा स्वरूप पर प्रकाश डाला। तब से साहित्यकारो, आलोचको एव समीक्षको का ध्यान काव्य-बिंब के विवेचन की ओर तीव्रता से गया और उसे पूर्ण विधा के रूप मे प्रतिष्ठित कर उसके आधार पर काव्य-समीक्षा का प्रयास होता रहा है। काव्य-बिंब-सबधी भारतीय चिंतन को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

(१) प्राचीन शास्त्रीय दृष्टि
(२) आधुनिक चिंतन

## प्राचीन शास्त्रीय दृष्टि

भारतीय काव्य-समीक्षा के प्राचीनतम निकष 'रस' की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि काव्य-बिंब की स्थिति रस-निष्पत्ति एव रस-सप्रेषण या साधारणीकरण दोनो के लिए अनिवार्य है। प्रसिद्ध भरत-सूत्र 'विभावानुभाव व्यभिचारी सयोगाद्रस निष्पत्ति' मे रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया पर विचार करने से निश्चित हो जाता है कि जिस विभावन व्यापार की चर्चा आचार्य ने दृश्य-नाटक के सबध मे की है वह श्रव्य-काव्य का शब्दाश्रित मूर्ति-विधान ही है। दृश्य-काव्य की रगसज्जा, वेश-भूषा, आगिक अभिनय, सवाद, सगीत आदि विविध उत्कर्ष-विधायको को उनके सपूर्ण प्रभावो के साथ शब्दबद्ध करना सीधे वक्तव्य से शक्य नही, अत कवि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी कल्पना से विभावन व्यापार का एक ऐसा सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करे कि सारा का सारा वातावरण भावक के मानस

मे मूर्तित हो उठे। कह सकते हैं कि अपने सूत्र मे भरत मुनि ने काव्य के बिंबात्मक स्वरूप को परोक्ष रूप से प्रतिपादित किया।

इतना ही नही, रस-निष्पत्ति मे जिस प्रकार अमूर्त स्थायी भाव विभावन व्यापार की मूर्तता से व्यक्त होकर अमूर्त रसानद मे प्रतिफलित होता है उसी प्रकार अमूर्त सवेगो से उत्प्रेरित मूर्त शब्दचित्र भी पुन अमूर्त रागो मे रूपातरित हो जाते है। हम देखते है कि अमूर्त का मूर्तीकरण और फिर उसकी विशुद्ध रागात्मक अमूर्तता—यही क्रम रस-निष्पत्ति एव बिंब-प्रक्रिया दोनो का सार है।

भाव की व्याख्या मे भरत लिखते है—"भाव इति कारण साधन।" इस प्रकार भाव को रस का कारण-साधन बताना मानो लेविस के 'Charged with emotion' का प्रकारातर ही है।

रसवादियो ने जिस साधारणीकरण को काव्य की अपरिहार्य परिणति मानकर अनेक प्रकार से विवेचित व व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है, उसका मूल स्वर है—विशेष के चित्रण द्वारा सामान्य रागो का उद्दीपन और इस प्रकार सर्जक तथा भावक का सपूर्ण तादात्म्य। कवि के व्यक्तिगत रागो, सवेगो, अनुभूतियो को एक सर्वसवेद्य रूप देना बिंब-सृजन के बिना सभव नही। चाहे वह लोल्लट का उत्पत्तिवाद हो या शकुक का अनुमितिवाद, भट्ट नायक का भोगवाद हो या अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद—सभी में एक ही प्रक्रिया है—सर्जक द्वारा बिंब-प्रेषण और भावक द्वारा बिंब-ग्रहण।

अलकार-सप्रदाय मे औपम्य या सादृश्य का सर्वोपरि महत्त्व है। यह अप्रस्तुत विधान है जिसका उद्देश्य ही मूल भाव के चारुत्व को अधिक से अधिक मूर्तता प्रदान करना है। दृष्टात व निदर्शना के लक्षणो मे 'बिंब' शब्द का प्रयोग है—

**दृष्टांत—**

(क) दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनम्।[1]

(ख) जहा उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिंब-प्रतिबिंब भाव हो वहा दृष्टात अलकार होता है।[2]

**निदर्शना—**

(क) यत्र बिम्बानुबिम्बत्व बोधयेत् सा निदर्शना।[3]

(ख) जहा वस्तुओ का परस्पर सबध उनके बिंब-प्रतिबिंब भाव का बोध करे वहा निदर्शना अलकार होता है।[4]

पर 'काव्य-बिंब' मे प्रयुक्त बिंब शब्द इन अलकारो के बिंब-प्रतिबिंब से बहुत व्यापक है। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे—"उपर्युक्त दोनो सदर्भों मे बिंब-प्रतिबिंब शब्द-युग्म का प्रयोग एक प्रकार से (प्रतीयमान) प्रभाव-साम्य के अर्थ मे किया गया है। फिर भी यहा अप्रस्तुत विधान निश्चय ही प्रस्तुत भाव या विचार का बिंब उपस्थित करता है। · पर दृष्टात एव निदर्शना के लक्षणो मे प्रयुक्त बिंब शब्द का अर्थ उसके आधुनिक अर्थ से भिन्न है। उक्त लक्षणो मे बिंब-प्रतिबिंब भाव का अर्थ प्राय उपमेय-उपमान भाव ही है—अर्थात् बिंब यहा अमूर्त मूल भाव का वाचक है और प्रतिबिंब उसके मूर्ति-विधान का, जबकि आधुनिक आलोचना मे बिंब मूल भाव का नही वरन् उसको बिंबित करने वाले मूर्ति-विधान का ही वाचक है। इस प्रकार सस्कृत-अलकारशास्त्र मे प्रतिबिंब का प्रयोग ही आधुनिक बिंब के निकट है। परतु शब्द को छोड यदि सदर्भ का विश्लेषण करें तो कुछ रोचक सकेत यहा अवश्य मिल जाते है।···अप्रस्तुत विधान सादृश्यमूलक होने के कारण प्राय बिंबात्मक ही होता है ··पर उनमे

सहव्याप्ति मानना समीचीन नही—बिंब विधान की परिधि मे प्रस्तुत एव अप्रस्तुत दोनो का समावेश हो सकता है।"[५]

काव्य-बिंब एव अप्रस्तुतो मे एक और भी पार्थक्य है—काव्य-बिंब कल्पना या प्रतिमा से अव्यवहित रूपेण संबद्ध है, अत उसमे नतन सर्जना, मौलिकता या सद्य: सृष्टि है। काव्य-बिंब कलेवर या ऐंद्रिय बोध मात्र नही उसके मूल मे भाव-ससार का उत्स है।

कुतक के वक्रोक्ति सिद्धात मे कवि-व्यापार का अत्यत सूक्ष्म व गभीर वर्णन है। डा० नगेन्द्र ने इस बात को स्वीकार किया है कि "वक्रोक्ति विवेचन मे बिंब-विधान के नाना रूपो और प्रणालियो का समावेश स्वभावत हो गया है क्योकि व्यापक अर्थ मे हम यह मान सकते है कि कवि-व्यापार एक प्रकार से बिंब-विधान का ही बृहत्तर रूप है। वक्रता के अधिकाश भेदो मे चारुत्व का निवधन अर्थात् सौंदर्य की उद्भावना बिंब रूप मे ही होती है।"[६]

काव्य का लक्षण निरूपित करते हुए कुतक लिखते है—

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणी॥

अर्थात् काव्यमर्मज्ञो के आह्लादकारक वक्र कवि-व्यापार से युक्त रचना मे व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य है।[७]

कुतक की इस परिभाषा मे 'व्यवस्थित' शब्द काव्य को एक निश्चित साधारता प्रदान करता है। सार्थक शब्दो की अनर्गल सहिति काव्य नही, शब्द व अर्थ की, वाचक व वाच्य की परस्पर आकृतिमूलक अचिति ही काव्य है जो कवि की असामान्य कल्पना से रूपायित हो सहृदयो के आह्लाद का कारण बनता है। कुतक की इस परिभाषा मे यद्यपि काव्य-बिंब की सांद्र रागात्मक प्रेरणा की ध्वनि नही, पर उसकी ऐंद्रियता, नवीनता, सजीवता, औचित्य आदि वैशिष्ट्यो का समाहार अवश्य है।

वक्रोक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कुतक कहते हैं—"वक्रोक्ति प्रसिद्धाभिधान-व्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी, वैदग्ध्य भगी भणिति। वैदग्ध्य विदग्धभाव कवि कर्म कौशल, तस्य भगी विच्छित्ति:, तया भणिति। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते।" —अर्थात् प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन-शैली ही वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य कविकर्म का कौशल, उसकी भगी शैली या विच्छित्ति से कथन करना। असाधारण वर्णन-शैली ही वक्रोक्ति है।[८]

इसमे विचित्र वर्णन-शैली कहकर सामान्य अभिधात्मक कथन से व्यावर्तन किया गया है। कविकर्म की विदग्धता कवि की सृजनात्मक कल्पना ही है जिससे वह कथ्य को असाधारण रूप प्रदान करता है, एक विशेषत्व देता है। विच्छित्ति उसका आतरधर्म है, ध्वन्यात्मक स्वरूप है। कहना न होगा कि काव्य-बिंब की विशेषताओ का इससे पर्याप्त मेल है।

डा० नगेन्द्र ने वक्रता के भेदो मे बिंब-चमत्कार को ही प्रधान मानकर वक्रोक्ति एव काव्य-बिंब की बिंब-विधायक शक्ति को समकक्ष प्रतिस्थापित किया है—" कहने का अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त वक्रता भेदो मे भी बिंब-चमत्कार ही प्रधान है। वर्ण-विन्यास-वक्रता मे श्रौत बिंबो की योजना रहती है, पद-पूर्वार्ध-वक्रता और पद-परार्ध-वक्रता मे पर्याय विशेषण, लिंग, कारक, उपचार आदि पर आश्रित रूपो मे बिंबात्मकता पर आधार सर्वथा स्पष्ट है। ' 'वस्तु-वक्रता मे वस्तु के रमणीय स्वरूप को कल्पना के द्वारा भास्वर करने मे बिंब-विधान का आश्रय लेना पडता है' ' 'विशेषकर आहार्य वस्तु का सौंदर्य विधान प्राय लक्षित बिंबो के माध्यम

से ही सभव होता है। इसी प्रकार प्रकरण-वक्रता और प्रबध-वक्रता के भेदो मे भी कुतक ने नाना प्रकार के प्रकरण-बिंबो और प्रबध-बिंबो का व्याख्यान किया है।"[९]

भारतीय काव्यशास्त्रीय मान्यताओ मे लक्षणा-व्यजना या ध्वनि काव्य-बिंब के सर्वाधिक समीप है और रसध्वनि को तो काव्य-बिंब का भारतीय पर्याय भी माना जा सकता है। आनदवर्धन ने प्रतीयमान अर्थ को काव्य की आत्मा मानकर, अगना के प्रसिद्ध अवयवो से भिन्न लावण्य की उपमा से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है—

प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यमिवागनासु॥

तथा "महाकवियो की वाणियो मे वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो प्रसिद्ध अलकारो अथवा प्रतीत होनेवाले अवयवो से भिन्न, सहृदय-सुप्रसिद्ध अगनाओ के लावण्य के समान (अलग ही) प्रकाशित होता है।"[१०]

इसी प्रकार काव्य-बिंब भी काव्य का केवल कलेवर नही, निरी आत्मा भी नही, बाह्य शृगार-सज्जा नही—इन सबसे भिन्न काव्य का एक ऐसा रूप जो प्रस्तुत-अप्रस्तुत सभी उपादान-उपकरणो को आत्मसात् कर एक विशिष्ट काव्य-प्रकार के रूप मे भावक को रसमग्न करता है। इस दृष्टि से वह 'औचित्य' से अभिन्न लगता है जिसमे भाव, कल्पना, अनुभूति, शिल्प, गुण, रस, ध्वनि, व्यजना, प्रस्तुत-अप्रस्तुत, आतर-बाह्य, आत्मा-कलेवर सभी का एक समीकरण रहता है।

यहा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि अमूर्त 'रस-ध्वनि' को मूर्त काव्य-बिंब के समान कैसे माना जा सकता है? यह सत्य है कि रस-ध्वनि की अमूर्तता एव काव्य-बिंब की मूर्तता मे विरोध प्रतीत होता है पर वस्तुत ऐसा है नही।

काव्य शब्दो के माध्यम से भावाभिव्यक्ति है, अर्थ-व्यक्तीकरण है। काव्य के शब्द और अर्थ दोनो पक्षो मे अन्योन्य सबध होता है। दोनो परस्पर सहयोगी होते है, एक-दूसरे के उत्कर्ष विधायक। ध्वनिकाव्य का विभावन व्यापार उसका मूर्त पक्ष है और अभिधार्थ का अतिक्रमण कर ध्वनित होने वाला प्रतीयमान रस उसका अमूर्त पक्ष है। इसी प्रकार काव्य-बिंब के मूर्त शब्द शरीर से अमूर्त रमणीय अर्थ की व्यजना होती है।

डा० नगेन्द्र काव्य-बिंब और ध्वनि का घनिष्ठ सबध मानते है—"बिंब का सबध लक्षणा और व्यजना अथवा ध्वनि से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ है। लक्षणा मे मूर्ति-विधान की स्वाभाविक क्षमता निहित है, अत बिंब-निर्माण उसका सहज गुण है। व्यजना मे भी बिंब उद्‌बुद्ध करने की शक्ति है और ध्वनि के अनेक भेद बिंब-रूप होते हैं। · ध्वनि का मूल आधार वैयाकरणो का स्फोट माना गया है। यद्यपि स्फोट का मौलिक सबध शब्द के साथ है, फिर भी उसी से सकेत ग्रहण कर आनदवर्धन ने ध्वनि की प्रकल्पना की है, इसमे सदेह नही। · मैं समझता हू कि स्फोट की प्रकल्पना बिंब के मूल रूप से काफी निकट है। प्रत्येक सार्थक शब्द के द्वारा, अथवा वाक्य के द्वारा जो बिंब स्फुटित होता है वह वैयाकरणो के स्फोट से भिन्न नही। और प्रत्येक काव्योक्ति के द्वारा जिस काव्य-बिंब की उद्‌बुद्धि होती है उसका अतर्भाव 'भारतीय काव्यशास्त्र की ध्वनि' अनायास किया जा सकता है।"[११]

अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' के रस प्रकरण मे 'अभिज्ञान शाकुतल' का 'ग्रीवा-भगाभिरामम्' छद उद्धृत करते हुए लिखा है कि उससे मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति होती है। उस प्रतीति मे मृगशावक विषय-रूप भासता है। प्रतीति की प्रवृत्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए अत मे कहा गया है कि 'साक्षात् हृदय मे प्रविष्ट होता हुआ-सा, आख

के आगे घूमता हुआ-सा 'भयानक रस' होता है।"[१२]

हम कह सकते हैं कि भारतीय काव्यशास्त्र मे बिंब का विवेचन अनेक प्रकार से मिलता है—चाहे प्रकारातर से ही हो। सादृश्यमूलक अलकारो, लक्षणा और ध्वनि तथा कुतक के कवि-व्यापार मे बिंब की स्वरूपगत विशेषताए प्राय सभी मिल जाती है। यह सत्य है कि बिंब के आधुनिक अर्थ मे उसे विवेचित नही किया गया है, पर काव्य के बिंबात्मक रूप की चर्चा भारतीय साहित्य-परपरा के क्षेत्र मे नयी बात नही।

## आधुनिक चिंतन

काव्य-बिंब काव्य का प्रकृत एव सर्वांगपूर्ण शब्द है, जिसके अतर्गत रस, अलकार, ध्वनि एव औचित्य आदि का सुष्ठु समाहार है। विभाव पक्ष के निर्माण को आचार्य शुक्ल व्यापक रूप से बिंब-निर्माण मानते थे और इसी विभावन व्यापार की प्रमुखता काव्य मे उन्होंने स्थापित की।[१३] आचार्य शुक्ल की यह निर्विवाद मान्यता थी कि काव्य मे बिंब-ग्रहण ही होता है, अर्थ-ग्रहण नही— और जब बिंब होगा तब 'विशेष' का ही होगा, सामान्य का नही। काव्य के बिंबात्मक रूप और बिंब के वैयक्तिक स्पर्श को शुक्ल जी स्वीकार करते थे, साथ ही साधारणीकरण के लिए उस 'विशेष बिंब' के सामान्यीकरण की स्थापना करते है। शुक्ल जी की यह मान्यता आधुनिक अर्थों मे 'काव्य-बिंब' की ही ध्वनि है। 'चिंतामणि' मे वे लिखते हैं—"बिंब-ग्रहण कराने के लिए चित्रण काव्य का प्रथम विधान है, जो विभाव मे दिखाई पडता है। काव्य मे विभाव मुख्य समझना चाहिए। भावो के प्रकृत आधार या विषय का कल्पना द्वारा मूर्त और यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण कविता का पहला और सबसे आवश्यक काम है। रस का आधार खडा करने वाला जो विभावन-व्यापार है वही कल्पना का सबसे बडा प्रधान कार्य-क्षेत्र है। किंतु वहा उसे यो ही उडान भरना नही होता, उसे अनुभूति या रागात्मिका वृत्ति के आदेश पर चलना पडता है।'[१४]

स्पष्ट है कि इसमे काव्य-बिंब के मानस प्रत्यक्षीकरण के वैशिष्ट्य का समर्थन है और साथ ही उसके रागोद्रिक्त स्वरूप की प्रतिष्ठा। काव्य-धर्म विषयक, शुक्लजी की इस स्थापना मे हम पाश्चात्य समीक्षक एव काव्य-बिंब के मर्मज्ञ विद्वान सी० डी० लेविस की बिंब विषयक विख्यात परिभाषा का अविकल रूप पाते है।

रस-मीमासा मे रस की समर्थ व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल ने काव्य मे बिंब के महत्त्व को निर्भ्रांत, अभीत भाव से स्वीकार किया है—

(क) काव्य का काम है कल्पना मे बिंब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार (Concept) लाना नही। बिंब जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का होगा, सामान्य या जाति का नही।[१५]

(ख) काव्य मे बिंब-स्थापन (Imagery) प्रधान वस्तु है। वाल्मीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियो मे यह पूर्णता को प्राप्त है।[१६]

(ग) भाषा के दो पक्ष होते है—एक सांकेतिक या प्रतीकात्मक (Symbolic) और दूसरा बिंबात्मक (Presentative)। एक मे नियत सकेत द्वारा अर्थ-बोध मात्र होता है, दूसरे मे वस्तु का बिंब या चित्र अत करण मे उपस्थित होता है।[१७]

(घ) कवि का लक्ष्य 'बिंब-ग्रहण' कराने का रहता है, केवल अर्थ-ग्रहण कराने का नहीं। वस्तुओ के रूप और आस-पास की परिस्थिति का ब्योरा जितना स्पष्ट

या स्फुट होगा उतना ही पूर्ण बिंब-ग्रहण होगा और उतना ही अच्छा दृश्य चित्रण कहा जायेगा।[१८]

डा० नगेन्द्र ने यद्यपि काव्य-बिंब को एक माध्यम के रूप मे स्वीकार किया है; पर उनकी रसाग्रही दृष्टि भी बिंब को सर्वथा कलेवरधर्मी सिद्धातो मे प्रक्षेपित न कर सकी; इसे माध्यम मानकर भी 'अत्यत प्रभावी', 'मूल्य असदिग्ध' के विशेषणो से विशेषित करने की विवशता का अनुभव करती रही—"बिंब काव्य का अत्यत प्रभावी माध्यम है और इसीलिए काव्य के सदर्भ मे उसका मूल्य असदिग्ध है, परतु वह स्वतत्र नही है—माध्यम ही है, प्राण-तत्त्व नही, काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है, प्राथमिक मूल्य नही।[१९]

'काव्य-बिंब' मे डा० नगेन्द्र ने काव्य-बिंब के स्वरूप व विशेषताओ को विवेचित किया है—

(क) बिंब पदार्थ नही है वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिच्छवि है। मूल सृष्टि नही, पुन सृष्टि है।

(ख) बिंब का मूल विषय मूर्त और अमूर्त दोनो प्रकार का हो सकता है अर्थात् पदार्थ का भी बिंब हो सकता है और गुण का भी। किंतु उसका अपना रूप मूर्त ही होता है। अमूर्त बिंब नही होता, जिन बिंबो को अमूर्त माना जाता है वे अचाक्षुष होते हैं, अगोचर नही होते।

(ग) काव्य-बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है जिसके मूल मे भाव की प्रेरणा रहती है।

(घ) सर्जनात्मक कल्पना काव्य-बिंब का शरण-तत्त्व है और ऐंद्रिय अनुभव उसके मूल उपकरण तत्त्व।

(ङ) काव्य-बिंब सार्थक शब्द के माध्यम से मूर्त रूप धारण करता है।

(च) सहजानुभूति आत्मा की वह क्रिया है जो बिंब का उत्पादन करती है किसी भी पदार्थ की सहजानुभूति मनुष्य को बिंब रूप मे ही होती है, अत क्रिया रूप मे सहजानुभूति और बिंब मे अभेद सबध है यद्यपि सहजानुभूति और बिंब मे मूलत उत्पादक-उत्पाद्य सबध है।

डा० भगीरथ मिश्र ने "बिंब-रचना काव्य का मुख्य व्यापार है" कहकर कवि के लिए उसकी अनिवार्यता प्रतिपादित की है। वे लिखते हैं—"बिंब-रचना काव्य का मुख्य व्यापार है। बिंबो के द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकार पदार्थों और मानस क्रियाओ को प्रत्यक्ष एव इद्रियग्राह्य बनाता है।"[२०]

'सौदर्यशास्त्र के तत्त्व' मे डा० कुमार विमल ने बिंब को "सूक्ष्म भावनाओ या अमूर्त सहजानुभूतियो को मूर्तता अथवा अभिव्यक्ति की चारुता"[२१] प्रदान करने वाला माना है।

डा० नामवर सिंह कविता को चित्र या रचना मानते हुए लिखते हैं—"कविता यदि रचना है तो बिंबधर्मी कवि ही सच्चा रचयिता है।"[२२]

पंत ने कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता का अनुभव किया है—"झंकार मे चित्र और चित्र मे झंकार"[२३] कहकर उन्होने काव्य के सगीत एवं चित्रधर्मिता को प्रकाशित किया है।

डा० हरद्वारीलाल ने रस के प्रश्न मे मूर्त एव विशेष के महत्त्व को मानते हुए लिखा है—"रस का प्रश्न सार (essence), भाव (abstract) अथवा सामान्य (universal) का प्रश्न नही, बल्कि इसके विपरीत अस्तित्व (existence), सत्तात्मक (concrete) और

विशेष (particular) अनुभूति का प्रश्न है।"[२४] यहा पर काव्य के विशेषत्व एव मूर्त स्वरूप पर बल देकर समीक्षक ने दूसरे शब्दो मे बिंब का ही समर्थन किया है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे "कवि का प्राथमिक कर्तव्य बिंब-ग्रहण कराना है और उसका साधन अप्रस्तुत-विधान है। इसके बिना कवि मनोरम भाव को हृदयहारी बनाकर कह ही नही सकता।"[२५] द्विवेदीजी के इन शब्दो मे बिंब का सर्वोपरि एव निर्भ्रांत महत्त्व स्थापित होता है।

अखौरी जी ने काव्य-बिंब सबधी अपनी विवेचनात्मक पुस्तक मे काव्य-बिंब को नये सदर्भो मे व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। शब्दो को भावोत्प्रेरक शक्ति का एकमात्र स्रोत बिंबोत्पादन को मानते हुए वे लिखते हैं—"...उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि शब्दो की भावोत्प्रेरक शक्ति मुख्य रूप से उनके सगीतात्मक रूप मे नही बल्कि उनके बिंबोत्पादन तथा साहित्यिक सबधो के सकेत तथा उद्घाटन की शक्ति मे निहित है। काव्य मे सगीत के प्रभावो को ग्रहण करने की एक दूसरी रीति भी है। यह रीति बिंब-सृजन है। उपयुक्त बिंबो का सृजन कर भी हम सगीत के गुणो को काव्य मे उतार सकते हैं।"[२६]

इस प्रकार उन्होने काव्य सगीत के साथ बिंब को सबद्ध कर काव्य-बिंब के महत्त्व मे एक और शीर्षक की स्थापना की है। वे लिखते है—"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि विभिन्न रागो की रस-परिपाक शक्ति विभिन्न स्वरो के प्रयोग पर निर्भर करती है, ऐसे स्वर जो अतत अपनी विशेष ध्वनि के कारण एक निश्चित भाव-बिंब की सृष्टि करने मे सक्षम होते हैं।"[२७] सर्जक के हृदयस्थ रागो के उद्रेक के लिए भी वे बिंबो का आधार आवश्यक मानते हैं—"जहा तक कवि के हृदय मे भावोद्रेक का प्रश्न है, जहा तक उसके भावलीन होने की समस्या है, वह बिंबो की आधार-भूमि के बिना सभव नही।"[२८]

साधारणीकरण के लिए डा० नगेन्द्र द्वारा स्थापित "भाषा के भावमय प्रयोग"[२९] की विवेचना करते हुए अखौरी जी लिखते हैं—"भाषा का भावमय प्रयोग उसी दशा मे सभव है जब कवि उसके द्वारा बिंबोद्भावना की शक्ति का परिचय दे, अर्थात् वह अपने काव्य मे ऐसी भाषा का प्रयोग करे जो सहृदय पाठको मे मनोबिंब की सृष्टि करने मे समर्थ हो सके। अभिनवगुप्त ने साधारणीकरण की समस्या को सुलझाते हुए काव्य मे मात्र वाक्यार्थ-बोध पर ही जोर नही दिया है, प्रत्युत मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति को भी अत्यत महत्त्वपूर्ण माना है। विश्लेषण करने से पता चलता है कि यदि किसी कविता को पढने के बाद पाठको के हृदय मे सुस्पष्ट मनोबिंबो का सृजन नही हो तो इस मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति का होना असभाव्य होगा और फलस्वरूप कवि के भावो का साधारणीकरण भी असभव होगा।"[३०]

काव्यात्मक बिंब और रस-सिद्धात के परस्पर स्वरूप-साम्य पर अपना निष्कर्ष देते हुए अखौरीजी लिखते है—"काव्यात्मक बिंब का सिद्धात रस-सिद्धात की सीमाएं नही प्रस्तुत करता। यदि रस-सिद्धात की विवेचना श्रव्य-काव्य और उसकी समस्याओ को सम्मुख रखकर की जाये तो विचार करने के क्रम मे हम स्वत ही काव्यात्मक बिंब के सिद्धात की ओर उन्मुख एव आकृष्ट हो जाते हैं। निष्कर्षत यह कहना तर्क के विपरीत नही पडेगा कि काव्यात्मक बिंब का सिद्धात, रस-सिद्धात का ही श्रव्य-काव्य के परिप्रेक्ष्य मे स्वाभाविक एव आवश्यक विकास तथा प्रसार है।"[३१]

बिंब विषयक भारतीय चिंतन को एक अन्य दृष्टि से भी समझने का प्रयास किया जा सकता है। भारतीय प्राचीन लक्षण-ग्रथकारो ने काव्य-बिंब जैसी स्पष्ट अवधारणा व्यजित नही की है, फिर भी यह स्पष्ट है कि साहित्यशास्त्र के आकर ग्रथो मे काव्य के जो उत्कृष्ट

उदाहरण अनेक प्रसगो पर सकलित किये गये हैं वे आचार्यों की दृष्टि मे चाहे रस, ध्वनि, अलकार आदि के महत्त्व से मडित हो, पर उन सबमे जो एक सामान्यतो दृष्ट, प्रभावी तत्त्व है वह उनकी बिंबधर्मिता है। आधुनिक स्रष्टा और समीक्षको ने तो काव्य-बिंब के महत्त्व को उसके आधुनिक अर्थो मे ही स्वीकार किया है, पर जो बिंब जैसी धारणा से अनवगत है उन प्राचीन आचार्यों की भी श्रेष्ठ काव्य विषयक धारणाओ मे बिंबो का ही रूपायन हुआ है। यथा—

य: कौमारहर स एव हि वरस्ता एव चैत्र क्षपा-
स्ते चोन्मीलित मालती सुरमय प्रौढा कदम्बानिलय
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापार लीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी तरुतले चेत समुत्कठते।

—काव्यप्रकाश, पृ० १७
—साहित्यदर्पण, पृ० १६४

इन पक्तियो को पढते ही मानो एक व्यक्ति हमारे सामने आता है जो अपने आतरिक उद्‌गारो को अभिन्न भाव से व्यक्त करता है और हम उसके श्रोता के रूप मे अपना तादात्म्य उससे करते हैं। स्मृति की गहन वेदना से ये पक्तिया उद्‌भूत हैं। वातावरण का निर्माण सजीव है—चैत की राते, बासती बयार और वह भी प्रौढ कदबानिलय-उन्मीलित मालती की सुवास से भरा। इन शब्दो मे मानो मन की प्रगाढ उन्मादकता फूट पडी हो। वक्ता के मुख पर भावो का उतार-चढाव एकदम स्पष्ट दिखाई पडता है। इधर रेवा का तट, तट की वेतसी लता, लतातराल का वह एकात सुरत स्थान और वहा मैं। इस प्रकार मिलन का मोहक चित्र अपने सपूर्ण वैभव के साथ मानस मे प्रत्यक्ष हो उठता है, साथ ही स्मृति की गहन आकुल धारा की अनुभूति पाठक को होती है।

'शून्य वासगृह विलोक्य शयनादुत्थायकिंचिच्छनै-
निद्रा व्याजमुपागतस्य सुचिर निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्ध परिचुम्ब्य जातपुलकामोलोक्य गडस्थली
लज्जानम्र मुखी प्रियेण हसता बाला चिरचुम्बिता।

—काव्यप्रकाश, पृ० १०१

शृगार का यह सुविख्यात उदाहरण है। 'शून्य वासगृह' मे एक भरापूरा मधुर चित्र है। नववधू की प्रगाढ रागमयी सलज्ज भावना एक नाटकीय भगिमा से युक्त है। सारा का सारा वातावरण चाक्षुष बिंबो मे उभारा गया है वासगृह को शून्य देखकर नववधू का शय्या से धीरे से उठना, फिर पति के मुख को गौर से देखना, निद्रामग्न जान दबे पाव पास जाना, झिझक के साथ पति का चुबन लेना, तत्क्षण ही पति के कपोलो के रोमाच को देखकर लज्जित होना, पति का हसते हुए उसे प्रगाढ भाव से चुबन करना। प्रेम की यह पूरी कथा कई बिंबो मे उभारी गयी है। बिंब चलचित्र की भाति एक के बाद एक मानसपटल पर उभरते जाते हैं, और अत मे एक सपूर्ण सश्लिष्ट चित्र का निर्माण कर हमे शृगार की मादकता से रसप्लुत करते है।

ग्रीवाभगाभिराम मुहुरनुपततिस्यदने बद्धदृष्टि
पश्चार्धेन प्रविष्ट शरपतनभयाद भूयसापूर्वकायम्
दर्भैरर्धावलीढै श्रम विवृत मुखभ्रशिभि कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतर स्तोकमुर्व्यो प्रयाति।

इस श्लोक का मृग एकसाथ अनेक भाव-मुद्राओ मे हमारे सामने आता है। नैसर्गिक उल्लास से चौकडी भरने वाला स्वच्छद मृग अचानक जैसे दुष्यन्त के तने हुए धनुप को देखकर पल-भर के लिए भय मे स्तब्ध होकर, फिर प्राणरक्षा के लिए तेजी से भाग रहा हो। स्वाभाविक मुद्राओ मे सारा चित्र मुग्धकारी है। वाण के भय से पीछे मुडकर देखना, मौत के भय से टकटकी वध जाना, फिर प्राण-रक्षा के लिए भाग खडा होना—कही पीछे के अगो मे वाण प्रविष्ट न हो जाय इस भय से पिछले अगो को यथाशक्ति समेट लेना, फिर हवा की गति से भागना मानो आकाश मे उड रहा हो। भय, गतिशीलता, आतुरता, व्यग्रता आदि सहज प्रवृत्तियो का चित्र इसमे स्पष्ट रूप से उभरता है।

सैपास्थली यत्र विचिन्वता त्वा भ्रष्ट मयानूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत विच्चरणारविन्द विश्लेष दुखादिव वद्धमौनम् ॥

हेतूत्प्रेक्षा का यह उदाहरण है। राम के वचनो मे कवि ने एक रमणीय लघु बिंब का सृजन किया है—"तुम्हारे चरणो के वियोग-दुख से ही मानो मौन हुआ एक नूपुर मुझे इसी स्थान पर मिला था।" सैपास्थली कहकर कवि ने उस स्थान की व्यजना की है जहा विरहातुर राम ने सीता को खोजा था। नूपुर के 'भ्रष्ट' से साफ ही यह चित्र सामने आता है कि छटपटाती-बिलखती सीता को रावण वलपूर्वक ले जा रहा था और वह अपने-आपको मुक्त करने का प्रयास कर रही थी। इन पक्तियो से राम की मन स्थिति का निदर्शन होता है—"झकृत होने के स्वभाव वाला नूपुर ही जब तुम्हारे वियोग के कारण, चरणो से ही भ्रष्ट होने के कारण, मौन हो गया तो फिर मेरी क्या दशा हुई होगी!" विश्लेप व्यथा की गहन मौन व्यजना का चित्र है यह।

भ्रम धार्मिक विश्रव्व शुनकोऽद्य मारितस्तेन
गोदानदी कच्छ निकुज वासिना दृप्त सिंहेन।

नायिका की इस सामान्य उक्ति के भीतर मन की असामान्य दशा का चित्र है। एक-एक शब्द के पीछे एक-एक भाव का समग्र चित्र है। गोदावरी नदी के तट पर अभिसार करनेवाली नायिका को क्रीडा मे स्नान करनेवाले धार्मिक पडित की उपस्थिति से बाधा पहुचती है। उसकी उक्ति है—"मजे मे घूमो।" पर उसका अर्थ है कि भूलकर भी उधर मत जाना क्योंकि तुम जिस कुत्ते से डरा करते थे उसे एक सिंह ने मार डाला है—सिंह भी कोई प्रवासी नही, निकुजवासी है और ऊपर से दृप्त। एक चपल, वाक्पटु और स्वैरिणी नायिका हमारे सामने आती है जो धार्मिक पर कायर व भीरु पडित की हकवकाई हुई मन स्थिति का मजा ले रही है।

अस्तु, इन कतिपय लक्ष्यो से यह सकेत करने का प्रयास किया गया है कि आचार्यों की दृष्टि मे जो सफल व उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं वे बिंबगत विशेषताओ के कारण ही सपन्न होते हैं। काव्य बिंब ही है—यह सत्य भारतीय चिंतन के द्वारा भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से समर्थित है।

## पाद-टिप्पणियां

१ 'साहित्य-दर्पण', १०।५१।
२ 'काव्य-दर्पण', पृ० ३८०।
३ 'साहित्य-दर्पण', १०।५२।
४ 'काव्य-दर्पण', पृ० ३८१।
५ 'काव्य-बिंब', पृ० ४०-४१।
६ वही, पृ० ४३।
७. डा० नगेन्द्र 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा'।
८ वही।
९ 'काव्य-बिंब', पृ० ४४।
१० 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा'।
११ 'काव्य-बिंब', पृ० ४२-४३।
१२ डा० नामवर सिंह 'कविता के नये प्रतिमान', पृ० १२२।
१३ "काव्य मे विभाव ही मुख्य है।"—'रस-मीमासा', पृ० १०९।
१४ 'चिंतामणि', भाग २, पृ० २।
१५ 'रस-मीमासा', पृ० २५२।
१६ वही, पृ० २९२।
१७ वही,।
१८ 'चिंतामणि', भाग २, पृ० २।
१९ 'काव्य-बिंब', पृ० ६२।
२० डा० भगीरथ मिश्र 'काव्यशास्त्र', पृ० २८१।
२१ 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० २३०।
२२ नई कविता 'उपलब्धिया और बिंब-विधान' शीर्षक लेख से उदधृत, पृ० ४३।
२३ 'पल्लव', प्रवेश, पृ० १७।
२४ 'रस और आस्वादन', पृ० २४६।
२५ स० उदयभानु सिंह 'छायावाद, नया मोड', पृ० २८।
२६ 'काव्यात्मक बिंब', पृ० १७०।
२७ वही, पृ० १७४।
२८ वही, पृ० २०२
२९ 'रस-सिद्धात'।
३० 'काव्यात्मक बिंब', पृ० २१२।
३१ वही, पृ० २१६।

# ५

# काव्य-बिंब

## काव्येतर बिंबो से व्यावर्तन

'बिंब' शब्द का प्रयोग काव्य, मनोविज्ञान, दर्शन आदि सभी स्तरो पर होता है। "बिंब किसी पदार्थ का मनश्चित्र है।"[1] इस परिभाषा मे बिंब के जिस मूल स्वरूप का स्वीकार है वह सभी क्षेत्रो मे पाया जाता है, पर ऐसा होकर भी काव्य-बिंब को मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक बिंबो का पर्याय नही माना जा सकता। यह सत्य है कि बिंब-निर्माण मे कवि दार्शनिक मनोवैज्ञानिक बिंबो का प्रयोग विषय की माग के अनुकूल करता रहा है, पर काव्य-बिंब और काव्येतर बिंबो मे स्पष्ट पार्थक्य है।

मनोविज्ञान मे बिंब प्रत्यक्ष दर्शन नही, स्मृति मे पूर्वानुभवो का आना है। 'वेब्सटर डिक्शनरी' के अनुसार—"मनोविज्ञान मे इमेज से अभिप्राय किसी ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव की स्मृति से है, जिसका परवर्ती अनुभव के द्वारा रूपातर हो जाता है और जिसमे अतर्मनोवैज्ञानिक उद्दीपन द्वारा उद्बुद्ध बौद्धिक एव रागात्मक तत्त्व अतर्भुक्त रहते है। वह सग्राहक यत्र पर अकित उद्दीपक पदार्थ की प्रतिच्छवि का पर्याय है।"[2]

डा० पद्मा अग्रवाल मनोवैज्ञानिक बिंबो के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं—"सवेदनात्मक उत्तेजन की अनुपस्थिति मे सवेदन, अनुभूति की पुनरावृत्ति।"[3] वे आगे लिखती है—"वस्तु की अनुपस्थिति मे उससे सबधित अनुभूति की मानसिक चित्रो के रूप मे पूर्वजागृति ही स्मृति-प्रतिमा है। स्मृति-प्रतिमा (Memory Image) का अनुभव प्राय हमे समय और स्थान के प्रसग मे होता है।"[4]

'मानविकी पारिभाषिक कोश' मे स्मृति-प्रतिमाओ की चर्चा की गयी है—"स्मृति-बिंब वे मानस प्रतिमाए हैं, जो पूर्व दृष्ट वस्तुओ अथवा दृश्यो की स्मृति की चेतना मे सचित अवशेष हैं। ये समय-समय पर सजग या सहज रूप से मन मे पुनः अकुरित होते रहते हैं।"[5]

डा० नगेन्द्र के अनुसार—"बिंब किसी पूर्वानुभूत किंतु तत्काल अनुपस्थित पदार्थ या घटना के गुणो या विशेषताओ के न्यूनाधिक पूर्ण मानसिक प्रत्यकन मानस चित्र का नाम है, जिसमे मूल अनुभूति की अतीतता का अभिज्ञान निहित रहता है। यह पूर्व अनुभव की पुनरुद्बुद्धि है जो मूल के सदृश होने पर भी अनिवार्यत उसकी यथावत् प्रतिकृति नहीं होती। बिंब

किसी पदार्थ या घटना के प्रत्यक्ष ज्ञान की पुनरावृत्ति है जो मूल पदार्थ या घटना के बिना ही घटित होती है।"[६]

प्रत्यक्ष इद्रिय सवेदन के आधार पर पचतन्मात्राओ के अनुसार रूप-बिंब, भाव-बिंब, गंध-बिंब, स्वाद-बिंब, त्वचा-बिंब बनते हैं। कुछ मनीषी गति-बिंब भी मानते हैं। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान मे अनुबिंब, स्मृति-बिंब, कल्पना-बिंब, स्वप्न-बिंब, तद्रा-बिंब आदि की भी विवेचना हुई है। सामूहिक अचेतन मन से उद्भूत होनेवाले आद्य बिंबो मे हमारे आनुवशिक सस्कार प्रकट हैं। ये आद्य बिंब "किसी जाति एव समुदाय की ऐतिहासिक परिधि के भीतर विकसित होने वाले कथा-प्रसगो के विशिष्ट अनुभवो पर अशत आधृत भावात्मक प्रवृत्ति की सघटना हैं।...साथ ही उनकी अनुभूति सार्वभौम अनुभवो की गतिशीलता एव विन्यास के रूप मे भी होती है।"[७]

काव्य-बिंब की सामाजिकता एव स्मृत स्वप्न-बिम्बो की स्वैर असामाजिक मुक्तता पर प्रकाश डालते हुए 'Illusion and Reality' के लेखक ने स्पष्ट किया—"काव्य का निर्माण शब्दो से होता है, स्वप्नो का स्मृत-बिंबो से। स्वप्न न तो निर्दिष्ट विचार है और न ही नियत्रित अनुभूति, प्रत्युत मुक्त प्रवाह है—अर्थात् वह मानस का असामाजिक आसग है। काव्यात्मक असगतता इस दृष्टि से स्वप्न के सदृश है, पर ऐसा होकर भी वह स्वप्न-बिंब की भाति सर्वथा मुक्त आसग नही। काव्य की अनुभूति तो सामाजिक अहम् के नियत्रण मे विकसित होनेवाली निर्देशित अनुभूति है।"[८]

प्रसिद्ध चिंतक सार्त्र ने मनोवैज्ञानिक बिंब को एक पश्चात्कालीन कार्य की सज्ञा देते हुए उसे पदार्थ से अवर स्थानीय माना है—"बिंब अपने प्रकृत रूप मे केवल एक पश्चात्कालीन कार्य के रूप मे ही व्याख्यायित किया जा सकता है जिसमे प्रमाता की चेतना मूल वस्तु से हटकर उसके प्रस्तुतीकरण की ओर उन्मुख होती है। कुर्सी का बिंब कुर्सी नही और न ही कुर्सी हो सकता है। सत्य तो यह है कि जिस कुर्सी पर मैं बैठा हू उसे चाहे प्रत्यक्ष देखू या कल्पना मे—प्रत्येक स्थिति मे वह चेतना से बहिर्भूत है। अत बिंब शब्द केवल चेतना और वस्तु के सबध का सकेतक ही हो सकता है। प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ससार मे प्रत्येक वस्तु अन्य के साथ अनत रूपो मे सबधित रहता है इसके विपरीत बिंब के सबधो में एक प्रकार की अनिवार्य सकीर्णता रहती है।...सक्षेप में, प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय प्रमाता के विषय सबधी बोध का निरतर अतिक्रमण करता रहता है और बिंब का विषय, विषय सबधी चेतना तक ही सीमित रह जाता है। बिंब से न तो बोधात्मक प्रसार होता है, न नूतन प्रभावो की प्रतिष्ठा और न ही वस्तु के नये पक्षो का प्रकाशन। वह तो पूरे के पूरे पदार्थ को एकबारगी प्रस्तुत करता है।"[९]

काव्य-बिंब इन सबसे भिन्न है। काव्य-बिंब के मूल में राग का सवेग है, भावोद्बोधन की ऊर्जा है, सर्जक-कल्पना का वैभव है। काव्य-बिंब अनुभूत बिंबो का कल्पनाप्रसूत रूपायन है। यह मनोवैज्ञानिक बिंबो की भाति मानसी प्रतिकृति मात्र नही, नवनिर्माण की प्रक्रिया है जिसमें कवि का सपूर्ण व्यक्तित्व अतर्भुक्त है। प्रत्यक्ष रूप-विधान कवि की उपादान सामग्री है, साथ ही उसमें चेतन-अचेतन मानस के द्विविध प्रवाह की सम्यक् सश्लिष्टि है। काव्य-बिंब मनोवैज्ञानिक बिंब की भाति अचेतन मानस का कार्यव्यापार नही, एक मुक्त अधप्रवाह नही, इसके विपरीत यहा अचेतन मानस की क्रीडा पर चेतना का शासन रहता है, औचित्य का नियत्रण रहता है। राग की प्रेरणा एव औचित्य का नियत्रण काव्य-बिंबो को मनोवैज्ञानिक बिंबो से पृथक् करते हैं। इसके अतिरिक्त द्रष्टा कवि की प्रतिभा या कल्पना बिंबो को नये

आयाम, नूतन अर्थ देती है—मनोवैज्ञानिक बिंबो की बोधात्मक संकीर्णता, प्रभावात्मक सीमितता एव सबधो की कृपणता का स्थान वहा नही। सत्य तो यह है कि कल्पनात्मक काव्य-बिंबो के माध्यम से कवि अपने जड अनुभवो को एक गतिशील सजीव स्पदन प्रदान करता है।

यह सत्य है कि कवि अपनी अनुभूतियो को रूपाकार या सम्मूर्तन देने के लिए इन विषयभूत बिंबो का मुक्त प्रयोग करता है, यह भी सत्य है कि इन मूल बिंबो के अभाव मे काव्य-बिंबो का सृजन शक्य नही, पर ऐसा होकर भी काव्य की आतरिक रागमूलकता एव बाह्य औचित्यपरकता उसे काव्येतर बिंबो से एकदम पृथक् कर देती है। नगेन्द्र लिखते हैं—"काव्य-बिंब और स्वप्न-बिंब में मूल भेद यही है कि काव्य-बिंब की अन्विति स्पष्ट और दृढ होती है—उसकी योजना क्रमबद्ध और व्यवस्थित होती है जिसके पीछे विवेक और तर्क का निश्चित आधार रहता है, जबकि स्वप्न-बिंब की अन्विति शिथिल—प्राय छिन्न-भिन्न होती है।"[१०]

इसके अतिरिक्त काव्य-बिंब का सप्रेपणीय होना उसकी समष्टि की आकाक्षा है, जबकि मनोवैज्ञानिक बिंबो के लिए सप्रेषण की माग नही। काव्य-बिंब व्यक्ति की सपदा होकर भी समष्टि के लिए, साधारणीकरण के लिए समर्पित है जबकि मनोवैज्ञानिक बिंबो मे नितात वैयक्तिकता है। मनोविज्ञान हमे काव्य-बिंब के एक पक्ष को समझा सकता है, उसकी अनेक-विध उपादान सामग्री मे इसका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर मनोवैज्ञानिक बिंबो और काव्य-बिंबो मे स्पष्ट पार्थक्य है।

दार्शनिक दृष्टि से भी बिंबो का तात्त्विक विवेचन हुआ है। प्लेटो मूल तत्त्व की स्थिति आत्मा मे मानता है और ससार मे उसका प्रतिबिंब—मूल प्रत्ययो की अनुकृति। प्लेटो इस मूल तत्त्व को अरूप प्रत्यय न मानकर सूक्ष्म बिंब (Form) मानता है।

शैवाद्वैत के अनुसार—"चेतनो हि स्वात्मदर्पण भावान् प्रतिबिम्बवत् आभासयति।" यहा चैतन्य बिंब है जो ससार के रूप मे प्रतिबिंबित होता है। अन्य भारतीय दर्शनो मे भी जिसे बिंब के रूप मे प्रतिष्ठित किया है वह विशुद्ध चैतन्य या ब्रह्म ही है। कहना न होगा कि हमारे यहा धर्म और दर्शन मे बिंब की चर्चा आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-जीव के सबधो को स्पष्ट करने के लिए ही हुई है। दर्शन मे जिस बिंब की चर्चा विचारको ने की है वह विशुद्ध प्रज्ञात्मक व्यापार है, मनीषा का चेतन कार्य है, एक सुचिंतित, नियत व स्थिर प्रत्यय है। काव्य-बिंब की तरह न तो उसमे राग का स्पर्श है, न सहजोद्गार है, न कल्पना की क्रिया-शीलता है, न नूतन निर्माणक्षमा है, न जीवन की सक्रियता है, न मानस का हलचल है। हा, दर्शन मे बिंब की कल्पना जिस प्रकार ईश्वर की सिसृक्षा के रूप मे की गयी है, उसी प्रकार कवि भी अपनी अनुभूतियो एव अरूप भावनाओ को व्यक्त करने के लिए विविध बिंबो का सृजन करता है। जगत व स्रष्टा का जो बिंब-प्रतिबिंब भाव सबध है, वही काव्य-सृष्टि के साथ कवि का।

## बिंब की सृजन-प्रक्रिया

प्राचीन काव्यशास्त्र के लिए इतने ही प्रश्न अलम् थे कि काव्य का स्वरूप या लक्षण क्या है ? काव्य के हेतु या प्रयोजन क्या हैं ? पर काव्य-बिंब सबधी प्रश्न, आज के इस मनो-वैज्ञानिक-वैज्ञानिक युग के विश्लेषणपरक प्रश्न हैं।

काव्य मे बिंब-सृजन की प्रक्रिया ऋजु नही, चेतन-अचेतन मानस की जटिल, गहन

प्रक्रिया है। मनोविज्ञान के नये खुलते आयामो ने उसे और भी जटिल एव धूमिल बना दिया है। सत्य तो यह है कि काव्य में बिंब-सृजन प्रक्रिया इतनी अधिक स्रष्टा सापेक्ष है कि स्पष्ट व्याख्येय नही।

बिंब-सृजन के संदर्भ में अनेक प्रश्न हैं—कवि बिंब-सर्जना में क्यो प्रवृत्त होता है ? बिंब-निर्माण के मूलभूत उपादान और बाह्य-आतरिक प्रेरक आधार क्या है ? स्रष्टा मानस में प्रत्यक्ष बोध, स्मृति व कल्पना का नियोजन किस प्रकार होता है ? स्रष्टा के सर्जक-विश्लेषक रूप का समाहार किस प्रकार होता है ? आदि-आदि।

बिंब-निर्माण के मूल में भी अन्य सभी सृजनात्मक व्यापारो की भाति आत्माभिव्यक्ति की प्रबल वासना है। मनुष्य जो कुछ देखता है, अनुभव करता है, जिन प्रभावो को ग्रहण करता है, जिन तत्त्वो के प्रति तीव्र रूप से सवेदनशील होता है, जिन सत्यो पर गभीर चिंतन करता है उन्हे प्रकट करने की विवशता का अनुभव उसे होता है। अपने अतस् की हलचल को व्यजित कर आत्म-मुक्ति की प्रबल आकाक्षा उसे निर्माण के लिए विवश करती है। बिंब-सर्जना भी कवि की ऐसी ही विवशता है, क्योकि उसके अभाव मे वह सम्यक् आत्माभिव्यक्ति मे सक्षम नही हो सकता।

बिंब-सर्जना की प्रक्रिया मे यद्यपि क्रोचे जैसे सौदर्यशास्त्री ने बाह्य प्रभावो की अवमानना कर उसे एक स्वत स्फूर्त अंतर्मुख, स्वयप्रकाश्य अभिव्यजना के रूप मे प्रतिष्ठित किया है, पर इस बात को अस्वीकार करना सभव नही कि कवि के अतस् की अरूप झकृतियो के मूल मे बाह्य पदार्थों का, इस विस्तीर्ण सचराचर जगत का प्रभाव है जो अपने सूक्ष्म रूप मे सर्जक मानस मे सुरक्षित रहता है। प्रसिद्ध विचारक स्पेंगलर लिखते हैं—"हम अपने चतुर्दिक व्याप्त विश्व को देखते हैं क्योकि प्रत्येक मुक्त चेतन प्राणी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी सुरक्षा के लिए इसे समझे। अत प्रतिदिन के ऐंद्रिक एव ज्ञानात्मक अनुभवो का स्थायी कोष हमारे मानस मे बन जाता है और ज्यो ही हम वाक् को स्वायत्त करते हैं, उन्हे बिंब मे रूपायित करने लगते हैं।"[११]

जब हृदय के गहन रागतत्त्व का उद्वेलन होता है तब ये मूल बिंब ही काव्य-बिंब के रूप मे प्रकट होते हैं। काव्य-बिंब हमारे विचारो एव अनुभवो के मध्य सह-सबध का वाहक है, और कवि जब राग एव विचार की इस प्रगाढ अभिन्नता को वाणी देता है तब उसके लिए बिंब-निर्माण के अतिरिक्त अन्य मार्ग नही रहता। 'Poetry in Practice' मे इसी पर प्रकाश डाला गया है—"विचारो एव अनुभवो के मध्य सह-सबध को बिंब ग्रहण करता है। हम विचार को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुचाए प्रत्यक्ष प्रणाली से प्रकट कर सकते हैं···पर जब किसी विचार मे गहन रागतत्त्व उद्वेलित हो जाता है और उसे उस विचार के एक अश के रूप मे अभिव्यक्त करने का कवि अभिलाषी होता है, तब ऐसे वैज्ञानिक वक्तव्य अपर्याप्त होते हैं और कवि को अपने ज्ञानात्मक सवेगो को अभिव्यक्ति देने के लिए बिंब की शरण मे जाना पडता है · और यही कविता अभिव्यक्ति की अन्य विधाओ से व्यावर्तित हो जाती है। कवि 'बिंबात्मक वक्तव्य' द्वारा ही अपने विचारो को भाव से सपृक्त करता है और इस प्रकार एक नये सश्लेषण की निष्पत्ति होती है।"[१२]

कवि के विचार और भाव उसके जीवन के अनुभव हैं जिन्हें कविमानस धीरे-धीरे सस्कार के रूप में परिणत करता है। कवि इन प्रभावो को व्यक्ति के सपर्क मे व्यक्तिगत सीमा से मुक्त कर देता है। नगेन्द्र के शब्दो मे—"सस्कार बन जाने के बाद फिर इस अनुभूति का व्यक्ति-ससर्गों से मुक्त होना आवश्यक है क्योकि जब तक अनुभूति व्यक्ति अथवा विषयी

का अभिन्न अंश रहेगी, उससे पृथक् विषयभूत नही बनेगी, तब तक उसका काव्य-सृष्टि के लिए प्रयोग नही हो सकेगा।"[१३]

काव्य-बिंब मानस के इन सस्कारो का निर्वैयक्तिक रूप है जो सृजन के क्षणो में अपनी सस्कारगत अमूर्तता से मुक्त हो रागोद्वेलित कल्पना के द्वारा रूपायित होता है। यहा कवि का चेतन मानस, उसकी प्रज्ञा, उसकी बौद्धिक चेतना का कार्य आरभ होता है। बिंब त्वरा एव स्पष्टता के साथ उभरते है, प्रसग तथा परिस्थिति से रूपातरित होते है। लेविस के शब्दो में—" कवि जब गहरे पानी मे पैठता है, तब उसके अचेतन मानस मे जो उद्भूत होता है वह बिंब है। स्रष्टा इस नवनिर्मित बिंब के प्रति प्रश्नोन्मुख होकर यह जानना चाहता है कि उसका अर्थ क्या है और वह उसे कहा ले जायेगा। इस प्रश्नात्मक प्रक्रिया के समय अन्य बिंब इस मूलभूत प्रमुख बिंब के साथ जुटने व सबद्ध होने लगते है। इस बिंदु पर स्रष्टा को सर्वाधिक जटिल समस्या का सामना करना पडता है। एक ओर उसे अपने मस्तिष्क के वातायन को प्रवहमान बिंबो के लिए उन्मुक्त रखना होता है क्योकि बिंब-प्रवाह रुद्ध हो जाने से कविता शुष्क और इतिवृत्तात्मक हो जाती है, तो दूसरी ओर कविता ज्यो-ज्यो रूप व आकार धारण करने लगती है त्यो-त्यो स्रष्टा को ग्रहण करने की स्थिति से क्रमश विश्लेषक वृत्ति की ओर उन्मुख होना पडता है, जिससे कि काव्यात्मक रूप-विधान रचना-तत्र के नियत्रण में अधिकाधिक रह सके। यह नियत्रण अथ से इति तक अत्यत दु साध्य है क्योकि वह विशेष शक्ति जो बिंबो को चेतन मानस के क्षेत्र मे लाती है स्वय अधप्रवाही व अनुशासित होती है।

" बिंब-चयन प्रायश उत्तेजना-विहीन क्षणो मे सायास चेतना के द्वारा होता है क्योकि, एक विशेष स्थान पर सुष्ठु ढग से उसे प्रतिष्ठित होना है तथा स्फूर्तिमय होकर कविता को विकास की अगली मजिल पर ले जाना है।' बिंब-रचना के कार्यकाल मे किसी भी क्षण कवि-मानस मे नये बिंब तैर सकते हैं। यह भी हो सकता है कि कभी ये बिंब स्मृति के द्वारा स्वत - स्फूर्त होकर अप्रासगिक रूप से झलक उठे हैं और यह भी सभव है कि कभी कविता की अर्थवत्ता के सधानस्वरूप ये बिंब सायास लाये गये हो और मूल बिंब-रचना के उत्कर्षक के रूप मे प्रयुक्त हो।"[१४]

एक उभरता बिंब नये बिंबो को जगाता है, बिंबो की एक शृखला बनती है। उनमे केंद्रीय बिंब को पकडना फिर उसके आस-पास सहयोगी शोभा विधायक बिंबो का चयन करना और फिर एक पूर्ण बिंब का सृजन करना यही स्रष्टा का कार्य है।

'The Poetic Pattern' मे बिंब-प्रक्रिया पर सम्यक् प्रकाश इन शब्दो मे डाला गया है—कवि-ससार मे वास्तविक पदार्थो के प्रतिबिंब के रूप मे प्रकटित प्राथमिक बिंब पुन, प्रतिबिंबित होकर द्वितीयक बिंबो का सृजन करते हैं—मानो कविमानस मे उसकी वैयक्तिक रुचि एव विशेषताओ के द्वारा विविध कोणो पर स्थापित बिंब 'विवर्तित दृष्टि' के सिद्धात को चरितार्थ करते हैं और इस प्रक्रिया मे अन्य बिंबो का सृजन करते हैं। ये यद्यपि कारण रूप प्राथमिक बिंबो के ही कार्य होते हैं पर उनका अपना स्वतत्र अस्तित्व होता है। रचना-प्रक्रिया के इस सोपान पर बिंब से उद्भूत बिंब, ससार की अमूर्तताओ से उद्भूत सूक्ष्म अमूर्तता द्वारा निर्मित ससार किसी भी प्रकार की वास्तविकता के साथ सबध व परिभाषा की अपेक्षा नही रखता और अपने ही व्यापकत्व मे स्थित पृथक् सत्ता के रूप मे उसका ग्रहण होता है। इस बिंब-प्रक्रिया को फैंसी की कल्पना के माध्यम से क्रातदर्शिता तक की यात्रा के समानातर कहा जा सकता है। ' फैंसी किसी आकस्मिक सयोग से ऐसी बिंब-शृखला का निर्माण करती है जिससे जीवन की एक विशेष रूपरेखा के निर्माण का उपक्रम होता है और

तब कल्पना आकर द्वितीयक तथा तृतीयक बिंबो के सृजन के द्वारा इस प्रारभिक प्रयास को पूर्णता प्रदान करती है। इस प्रकार काव्य की रचना-प्रक्रिया फैंसी से क्रातदर्शिता मे पर्यवसित होती है। जब हम क्रातदर्शिता की चर्चा करते हैं तब सामान्यत हमारा तात्पर्य बोध के एक ऐसे स्वरूप से होता है जो हमारी चेतना के स्तर से बहिर्भूत किसी आतरिक शक्ति से उद्भूत होता है। पर फिर भी इन अज्ञात निर्देशो के परीक्षण से काव्य-विन्यास को आधार प्रदान करनेवाली एक सशक्त तर्कसगतता दृष्टिगोचर होती है। इस 'स्व-विस्मृति' मे चेतन मानस अतर्भुक्त रहता है और वह प्रतीको की सर्जना मे चेतन-अचेतन दोनो के दायित्वो को साथ-साथ निष्पन्न करती हैं। सहजस्फूर्त कविता अध्याहार्य होती है। बिंब एक के बाद एक द्रुत गति से उभरते जाते हैं और यद्यपि उनमे तर्कसगतता का सधान किया जा सकता है, पर वह प्राय स्पष्ट नही होती। मानस की विकेंद्रित शक्ति ही कवि द्वारा बिंबो के प्रस्तुतीकरण एव भावन को सभाव्य बनाती है। प्राथमिक बिंब पूर्णरूपेण चेतन मानस का ही कार्य-व्यापार है, पर द्वितीयक बिंब तर्क एव पर्यवेक्षण पर अपेक्षाकृत कम तथा वैचारिक आसगो पर अधिक आधारित होने के कारण चेतन-अचेतन के सहकार्य से सर्जित होता है, और जहा तक तृतीयक बिंब का प्रश्न है, वह शुद्ध सहज स्फूर्ति का ही प्रतिफलन है।"[१५]

बिंब-रचना मे सघर्ष तनाव की एक विशाल भूमिका है। स्रष्टा एक साक्षी की तरह, एक द्रष्टा की तरह अपने भीतर उमडते बिंबो को सघर्ष करते हुए देखता है। बिंब बनते है, टूटते हैं। बिंबो का यह द्वद्व बिंब-सर्जना का अनिवार्य अग है—और यही कविता है। डाइलन थामस के अनुसार—"कविता को बिंबो के जमघट की आवश्यकता है, क्योकि उसके केंद्र मे एक बिंब नही, बिंबो का जमघट होता है। काव्य-सृजन-प्रक्रिया मे मैं एक बिंब बनाता हू—सत्य तो यह है कि अपने भीतर के भावावेग से एक बिंब बनने देता हू और इसके बाद अपनी समस्त बौद्धिक एव विवेचनात्मक शक्ति को उस ओर नियोजित कर देता हू। फिर एक नये बिंब को बनने देता हू—उसे पूर्व निर्मित बिंब से टकराने देता हू। इस प्रक्रिया मे एक तीसरा बिंब बनता है और उन सबके सघर्ष से एक नया बिंब पैदा हो जाता है। क्रम से उत्पन्न होने वाले इन बिंबो को अपनी सीमा के भीतर सघर्ष के लिए खुला छोड देता हू। बिंब-निर्माण की यही मेरी द्वद्वात्मक पद्धति है। मैं समझता हू कि निर्माण एव ध्वस के कारण बिंब बनते-बिगडते रहते हैं और फिर केंद्रीय बीज के रूप मे मुझे बिंब उपलब्ध हो जाता है, जो स्वय भी एक ही समय मे बन भी रहा है और टूट भी रहा है। बिंबो के इस अनिवार्य द्वद्व के भीतर अनिवार्य इसलिए कि उन्हे प्रेरित करने वाली केंद्रीय शक्ति भी सर्जनात्मक, पुन सर्जनात्मक, ध्वसात्मक व विरोधात्मक होने के कारण युद्ध का उद्गम है। इसके मध्य मे क्षणस्थायी शाति को पाने का प्रयास करता हू—और वही है कविता।"[१६]

सी० डी० लेविस बिंब की रचना-प्रक्रिया के द्वद्वात्मक स्वरूप पर एक अन्य दिशा से प्रकाश डालते हुए लिखते है—"बिंब-रचना-प्रक्रिया मे पहली बात है सहानुभूति जो किसी वस्तु को स्मरणीय बनाती है। फिर अनुभवो के अतराल मे रहने वाली पुष्कल स्मृतियो मे से सचय और तत्पश्चात् धैर्य है, जो स्मृतियो को गभीरता एव परिपक्वता प्रदान करता है और तभी वे स्मृतिया अपने को आसगो से आविष्ट कर सकने मे सक्षम होती है। अत मे शुद्धीकरण की वह द्वद्वात्मक पद्धति आती है जिसके द्वारा कवि कोमलता पर दृढता के साथ नये उभरते बिंबो को सभालता है। वह कविता मे जमनेवाली अवाच्छित सामग्री को तिल-तिल बाहर फेंक देता है और इस प्रकार सर्जना का एक साचा ढलकर बाहर आ जाता है—अर्थात् कविता का सृजन होता है। कविता जो न अनुभव है, न स्मृति, न शब्दो का अमूर्त नर्तन; बल्कि

इस त्रयी के सयोग से प्रकट होनेवाला एक नव्य जीवन है।"[१७]

डा० नगेन्द्र ने बिंब-रचना मे अनुभूति सस्कार, स्मृति, कल्पना, चयन व सश्लेपण के सोपानो को आवश्यक माना है—"अनुभूति को बिंब रूप मे परिणत करने की प्रक्रिया का पहला चरण है भोगावस्था की समाप्ति के बाद अनुभूति का सस्कार मे रूपातर। • प्रेरक परिस्थितियो मे स्मृति और कल्पना की सहायता से कवि इस ससार को पुनर्जीवित करता है—अर्थात् पूर्वानुभूति की कल्पनात्मक आवृत्ति करता है। इस प्रक्रिया मे वह सबसे पहले तो इस अनुभूति से सबद्ध भौतिक उपकरणो का आकलन करता है—अर्थात् कल्पना के द्वारा उन पदार्थों, व्यक्तियो, घटनाओ की पुन सर्जना करता है—जिनके संदर्भ या परिवेश मे उस या वैसी ही अनुभूति का निर्माण हुआ था • पुन सर्जना की स्थिति मे इन सस्कारो के मानस चित्र अनायास ही उसकी पश्यन्ति कल्पना मे उद्‌बुद्ध होने लगते है और वह अपने विवेक के द्वारा अनावश्यक का त्याग तथा आवश्यक का ग्रहण करता हुआ उनका उचित सश्लेषण कर अभीष्ट बिंबो की रचना कर लेता है।"[१८]

बिंब-रचना की प्रक्रिया स्थूलत कवि-सापेक्ष तथा व्यष्टिनिष्ठ लगती है, पर सफल एव प्रेपणक्षम बिंब एक ओर बाह्य जीवन के गहन सस्पर्शो से पुलकित होते हैं, तो दूसरी ओर सामूहिक चेतना से अनुप्राणित। समष्टि की सवेदनाओ से पृथक् बिंब कवि की आत्मक्रीडा तक ही सीमित रह जाते है। हरबर्ट रीड ने कविता के लिए बाह्य स्थूल पदार्थों का सम्मिश्रण अनिवार्य माना है और उसके अभाव मे कविता को ऊष्मा-विहीन—"कविता एक सारतत्त्व या निष्कर्ष है जिसे तरल सवेदनीय बनाने और रूपायित करने के लिए अनेक बाह्य स्थूल पदार्थों का मिश्रण अपेक्षित है। इसके बिना बिंब-रचना ऊष्मा-विहीन एव इद्रिय सवेदनातीत स्फटिक शुभ्र प्रतिमा मात्र होगी।"[१९]

बिंब-रचना मे सामाजिक तत्त्व के इसी रूप को 'Archetypal Patterns' के लेखक ने "समुदाय के सवेगात्मक अनुभवो का व्यक्तिकरण" कहा है। वे लिखते हैं—"फैंटेसी की प्रक्रिया मे ही पदार्थों के सुचिंतित वैशिष्ट्य अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से विच्छिन्न हो सवेदनशील मानस की आकाक्षाओ एव सवेगो की अभिव्यक्ति के लिए प्राप्त हो सकते हैं। • समुदाय की फैंटेसी परपरा मे विकसित कथाओ को जब महान कवि अपने काव्य का विषय बनाता है तब वह केवल अपनी वैयक्तिक सवेदनाओ को ही मूर्तित नही करता अपितु समुदाय के सवेगात्मक अनुभवो को व्यक्त करनेवाले इन शब्दो एव बिंबो को असाधारण लगाव के साथ इस प्रकार सयोजित करता है कि उनकी उद्दीपन शक्ति का अधिकाधिक प्रयोग किया जा सके। इस प्रकार वह अपनी चेतना व चतुर्दिक व्याप्त जीवन के बीच घटित होनेवाले अनुभवो को स्वायत्त करता है और इन अनुभवो को, जो एकबारगी वैयक्तिक और सामूहिक दोनो होते हैं, अन्य तक निवेदित करता है।"[२०]

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र मे सृजन-प्रक्रिया पर अनेक दृष्टियो से विवेचन होता रहा है। किन मानसिक तनावो मे से द्वद्वात्मक उलझनो से स्रष्टा गुजरता है—इस पर मतैक्य सभव नही, क्योकि यहा स्रष्टा स्वय ही विश्लेपक है। यही कारण है कि बिंब-सर्जना सबधी धारणाओ मे एकरूपता नही। जो हो, सामान्यत हम उसे तुलसी के काव्य-सृजन विषयक साक्ष्य से समझ सकते हैं—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकतामनि चारू॥[२१]

इसमे राग, कल्पना, औचित्य, सश्लेपण आदि सोपानो का समाहार हो जाता है।

## काव्य-बिंब के गुण

बिंब काव्य की महत्ता का निकष है, वह काव्य का मूल्यबोध है। उत्कृष्ट एवं सफल बिंब-रचना एक समग्र सृष्टि है, वह एक अयुत सिद्धावयव या सावयविक रचना है। बहुविध तत्त्वो का सावयव सबध ही कविता को सत्यता प्रदान करता है, उसके प्रज्ञात्मक एव नैतिक बोध को सभाव्य बनाता है, आनुभूतिक गहनता को निष्पन्न करता है—कविता अभिव्यक्ति का ऐसा स्वरूप है जिसमे असाधारण शक्तिमत्ता महत्त्वपूर्ण अनुभवो की सावयविक अन्विति के निश्चित आकार मे केंद्रित रहती है।[२२]

बिंब की पूर्णता व उत्कृष्टता के लिए उसमे अनेक गुणो का समाहार आवश्यक है। बिंब के लिए मूलभूत आतर-गुण है—अनुभूति, सवेग या राग से अव्यवहित या अविच्छिन्न सपृक्ति तथा जीवनानुभवो की व्यापक सवेदनीयता। "एक प्रतिभासपन्न स्रष्टा के द्वारा सजीव और प्रत्यग्र बिंब का प्रयोग इस सपूर्णता के साथ होता है कि वह कथ्य को अधिकाधिक प्राजल व समृद्ध बनाता है। सफल बिंब रचयिता की वर्ण्य विषयक पकड को ही सूचित नही करता अपितु हमे यह भी अनुभव कराता है कि उसने विषय या स्थिति को कितनी सूक्ष्मता, सजीवता, आवेगशीलता व लाघव के साथ आयत्त किया है। ऐसे प्रभावो के लिए यह आवश्यक है कि जिन उपादानो से बिंब की सर्जना हुई है उनमे स्वैरता व अनुभवो से विच्छिन्नता न हो बल्कि हमे तत्काल अनुभव हो कि यह हमारे जीवन के ताने-बाने से किसी न किसी प्रकार सबद्ध है। इस तात्कालिक मूल्य के साथ ही यह भी आवश्यक है कि बिंब सपूर्ण कृति के अग-प्रत्यग के साथ सुग्रथित व सुनियोजित हो।"[२३]

विद्वान समीक्षक आई० ए० रिचर्ड्स ने बिंब को सर्वाधिक महत्त्व ऐंद्रिक अनुभूतियो से सबद्ध एक मानसिक व्यापार के रूप मे प्रदान किया है।[२४]

बिंबो की मौलिकता उसे अधिक प्रभविष्णुता प्रदान करती है। बिंब का आतरिक गुण उसकी प्रत्यग्रता मे निहित है। पर्युषित बिंबो मे भावदीप्ति प्रकट नही हो सकती। पर मौलिकता या प्रत्यग्रता का अर्थ चौंकाने वाली नवीनता या नितात वैयक्तिकता नही; क्योकि काव्य कुतूहलधर्मी नही, व्यापक अनुभूति का क्षेत्र है। परिमाण की दृष्टि से बिंबो मे भाव-सघनता आवश्यक है। चतुर्दिक परिवेश के बीच अपने मे अधिक से अधिक भावो का सकेंद्रण ही बिंब को समग्रता प्रदान करता है। बिंब का एक आयाम काल है—अर्थात् उसमे सातत्य का भी महत्त्व है। बिंब की सफल निर्मिति का साक्ष्य है—भावक मे उन्ही भाव विशेषो का सहज उद्वेलन, जिनसे वह प्रेरित है।

काव्य-बिंब के गुणो की चर्चा विद्वानो ने की है। 'Poetic Image' मे लेविस के अनुसार—"मेरी मान्यता है कि आधुनिक युग बिंब-विधान मे जिन गुणो की अपेक्षा करता है, वे हैं प्रत्यग्रता, सघनता एव भावोत्तेजन की शक्ति। सघनता से हमारा तात्पर्य है—लघु परिमिति मे यथाशक्य अधिकतम तत्त्वो का सकेंद्रीकरण एव सपुजन। अलग-अलग बिंबो के एकीकरण से ही सघनता का गुण नही आ सकता, वह तो बिंब योजना मे बिंबो की अनन्य सन्निधि से ही आता है। भावोद्वेलन बिंब की वह शक्ति है जो हमे काव्यात्मक आवेग जगाने के लिए प्रतिक्रियमाण करती है। भावोत्तेजक शक्ति की जाच वैयक्तिक एव आत्मपरक होती है।...बिंब-रचना के लिए यदि किसी की अपेक्षा है तो वह पुलभता या सघनता नही, और न ही भावोत्तेजन की शक्ति, प्रत्युत औचित्य है। और यह औचित्य काव्यात्मक रचना की आवेशमूलक तर्कसगतता और उसकी रूपविधा दोनो के साथ समान

रूप से आवश्यक है।[२५] लेविस ने अन्य गुणो की अपेक्षा औचित्य पर अधिक बल दिया है जो समीचीन है। इसके बिना काव्य-बिंब विशृंखलित और विच्छिन्न होगा तथा सम्प्रेषणीय भी नहीं हो सकेगा।

डा० नगेन्द्र ने इन्ही गुणो को सजीवता, समृद्धि एवं औचित्य का नाम दिया है—"बिंब का प्रमुख गुण है, सजीवता अर्थात् बिंब की रूपरेखा इतनी सुस्पष्ट होनी चाहिए कि प्रमाता तुरत ही ऐंद्रिय साक्षात्कार कर सके। बिंब का अन्य गुण है, समृद्धि। यो तो इस शब्द का अर्थ सर्वथा परिभाषित नही, पर सामान्यत यह मधुर और उदात्त अथवा कोमल और विराट तत्त्वो के प्राचुर्य का द्योतक है। इन दोनो गुणो का अनुशासक गुण है औचित्य, अर्थात् प्रसग के प्रति अनुकूलता या सार्थकता। उधर परिमाण की परिधि मे प्राचुर्य और वैविध्य आदि गुणो का अतर्भाव है।"[२६]

'काव्यात्मक बिंब' के लेखक ने 'Portrait of the Artist as a Young Man' से उद्धरण देते हुए कलात्मक बिंब के तीन गुण माने हैं—रूपकता (Integrity), सदर्भ-सटीकता (Consonance) और स्पष्टता (Clarity)।[२७] इसके अतिरिक्त वे औचित्य को अनिवार्य मानते हैं—"कविता मे प्रयुक्त बिंबो के प्रसागानुकूल औचित्य पर भी ध्यान देना अनिवार्य है। किसी कविता की रचना के पूर्व जिस प्रधान बिंब की सृष्टि होती है, वही उस कविता का आधार-तत्त्व बनता है, लेकिन एक पूर्ण कविता की रचना के समय कवि का समस्त व्यक्तित्व अपनी सभी शक्तियो के साथ केंद्रित हो जाता है। इसके फलस्वरूप एक कविता के प्रधान बिंब के साथ अन्य बिंब भी उपस्थिति हो जाते हैं। और वे प्रधान बिंब से अपना सबध-सूत्र स्थापित कर अर्थपूर्ण बनते है और अपना महत्त्व तथा औचित्य स्थापित करते है।"[२८]

डा० सुधा सक्सेना ने काव्य-बिंब के निम्नलिखित छः गुण माने हैं—

(१) भावनाओ को उत्तेजित करने की शक्ति—Evocativeness
(२) भाव को तीव्रता के साथ प्रस्तुत करने की सामर्थ्य—Intensity
(३) अभिव्यक्ति की नवीनता व ताजगी—Novelty and freshness
(४) परिचितता—Familiarity.
(५) उर्वरता—Fertility
(६) औचित्य—Congruity.[२९]

'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व' मे डा० कुमार विमल के अनुसार बिंब के गुणो की सार्थकता तभी है जबकि बिंब सवेगो की घनता से अवगुठित हो—सवेगो की घनता उत्कृष्ट बिंब-विधान का अविच्छेद्य गुण है। जो बिंब स्रष्टा के चित्त से 'वासित' नही हो पाते वे चित्तात्मक होने पर भी जीर्ण बिंबो की तरह (Trite Image) अरसनीय सिद्ध होते है। वे ही बिंब प्रेषणीय हो सकते हैं जिनमे ये तीन गुण विद्यमान हो—प्रत्यग्रता, तीव्र घनता उद्बोधन-शीलता। प्रत्यग्रता वह गुण है जो प्रयोग-भगिमा, रगन्यास, स्वरारोह, अवसरोह या पदलालित्य के सहारे बिंबो मे जीवन-सत्य भरती है। तीव्र घनता वह गुण है जिसमे बिंब छोटे फलक पर ही अधिकतम अर्थवत्ता के केंद्रीकरण की शक्ति अर्जित करते हैं। और उद्बोधनशीलता वह शक्ति है जिसके द्वारा बिंब कृतिगत भावावेग के प्रति सहृदय चित्त की प्रत्यर्थता को उद्बुद्ध करते हैं।"[३०]

उत्कृष्ट बिंब-सर्जना के दो व्यावर्तक गुण होते हैं जो साधारण बिंबो से उन्हें वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं—"आसगो से आवृत होने के कारण उत्कृष्ट बिंब के दो व्यावर्तक लक्षण होते

हैं। पहला यह है कि उत्कृष्ट बिंब-विधान मे सवेदनो अथवा प्रभावो का सातत्य रहता है क्योकि सवेदनो और प्रभावो के सातत्य का निर्वाह करने वाले बिंब ही कलाकार की मर्मन्तुद् जीवनानुभूति से सत्य ग्रहण कर बलिष्ठ होते हैं। बात यह है कि कला के बिंब ऐंद्रिय सन्निकर्ष मे आयी हुई वस्तुओ का निरपेक्ष मानसिक पुनर्निर्माण नही करते बल्कि उस मानसिक पुनर्निर्माण मे आयी हुई वस्तु अथवा वस्तुओ को इस तरह किसी अनुभूति के सदर्भ मे उपस्थित करते है कि वे बिंब रूप-विधान होने के साथ ही भाव विशेष के सफल वाहक भी बन सकें। ·· उत्कृष्ट बिंबो का दूसरा व्यावर्तक लक्षण यह है कि वे प्रसग, अनुबध और विधान के साथ अनुपात-रक्षा का निर्वाह करने मे सक्षम होते है।"[31]

जो नही कर पाते हैं वे, जैसा कि लेविस ने कहा है, निरर्थक बिंब बन जाते हैं और उनसे किसी कलाकृति का कोई उपकार नही होता। इसलिए बिंब-विधान मे बिंबो के सृजन के अतिरिक्त बिंबो के पारस्परिक सग्रथन-सामर्थ्य को सौदर्यशास्त्रीय कला-विवेचक की दृष्टि से बहुत महत्त्व दिया जाता है। वस्तुतः श्रेष्ठ कलाकार अपनी रचना को क्रमहीन बिंबो का 'अलबम' नही बनाता है, बल्कि बिंबो को एक सारगर्भ और अर्थवती शृखला प्रदान करता है।

बिंब-निर्माण के पूर्व जो अनिवार्यता साद्र रागात्मकता की है, वैसी ही अनिवार्यता निर्मित बिंब मे सातत्य व औचित्य की है। समता, सघटना, सामजस्य सानुपातिकता, भाव एव बुद्धि का एकीभाव बिंबो का पारस्परिक सयोजन, भाव व शिल्प की सपृक्ति और भावोद्दीप्त करने की शक्ति—इन सबका समाहार ही औचित्य है। औचित्य के महत्त्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से स्थापित किया गया है। इसमे व्यवस्था का भी महत्त्व है। 'Literature and Criticism' के अनुसार—"बिंब को प्रभावशाली बनाने का एक तत्त्व जीवन मे साधारणतया विच्छिन्न पदार्थों का एकत्र सयोजन है। इस प्रकार का सयोजन स्रष्टा के विभिन्न प्रकार के अनुभवो को समाहृत करने की शक्ति का सूचक है जो उसके इद्रियबोध, भाव एव विचार की एकत्र सावयविक अभिव्यक्ति मे योग देती है।[32]

महत् बिंब योजना की प्रमुख विशेषता सानुपातिकता का ज्ञान है।[33] रिचर्ड्स ने भी काव्यभाषा मे व्यवस्था को स्वीकार किया है जो संगत है क्योकि काव्यभाषा का अपना एक विशिष्ट स्वरूप होता है। उसके अर्थद्योतन की समग्रता मे व्यवस्था, समस्वरता एव लयात्मकता का अतर्भाव रहता है।[34]

ब्रैडले के इस कथन को हम रिचर्ड्स मे इस प्रकार पाते हैं—"अनुभवो को व्यवस्थित करने की विस्मयकारिणी कवि-शक्ति का एक अश भाषा विषयक व्यवस्था है।"

व्यवस्था पर बल देते हुए लेविस लिखते है—"कविता का एक निश्चित आदि, मध्य और अवसान हो। · इसके बिंब जो देश व काल की परिधि से लिये जाते हैं—चाहे वे उसकी मूल सवेदना को विकसित करें या वे उसके बाहर विकसित हो—हर स्थिति मे उनका विकास एक विशेष व्यवस्था और विशिष्ट पारस्परिक सबध से ही होना चाहिए। पाठक भी समग्र कविता को युगपत् ग्रहण नही करता—उसके लिए भी कविता अनुभव-कडियो की शृखला होती है।"[35]

"अलग-अलग बिंबो का उभार नही बल्कि उनका एकत्र सयोजन ही रचना को प्रभविष्णु बनाता है। यह कार्य कवि के अनुभव सातत्य के द्वारा ही सभव है क्योकि जब तक उनके अनुभवो मे शृखलित सातत्य नही होगा बिंबो मे भी बिखराव आयेगा। विशृखलित बिंब योजना मे कविता का प्रकृत स्वरूप नही उभरता। काव्य अतत बिंबो, विचारो एव सवेगो के अनुभव सातत्य की अनुभूति है, अत प्रत्येक कलाविद् को प्रभाव सातत्य की ओर दृष्टि रखनी

चाहिए क्योकि इसके अभाव मे काव्यात्मक सत्य का सप्रेपण सभव नही।"[36]

काव्य-बिंब की यही सपूर्ण एकान्विति औचित्य है जिसके शासन मे सजीवता, मौलिकता, प्रत्यग्रता, नवीनता, सवेगात्मकता, समृद्धि, उद्‌बोधनशीलता, सघननता, उर्वरता आदि अलग-अलग गुण अपने वैभव एव उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र मे भी औचित्य की महिमा अक्षुण्णभावेन स्वीकृत है अनौचित्य ही रसभग है—'अनौचित्याद् ऋते न्यान्यद् रसभगस्य कारणम्।"[37]

औचित्य के महत्त्व को आचार्यो ने इस विख्यात श्लोक द्वारा स्थापित किया है—

कठे मेखलया, नितम्ब फलके, तोरण हारेण वा।
पाणौ नूपुरबधेन, चरणे केयुरपाशेन वा।
शौर्येण प्रणते रियौ करुणया नायान्ति के हास्यता।
औचित्येन विना रुचि प्रतनुते नालकृतिर्नो गुणा॥

अस्तु, जब हम बिंबो के औचित्य की चर्चा करते है तब यह समझना चाहिए कि हम बाह्य सतही सादृश्य से भिन्न किसी अन्य बात को बता रहे हैं। बिंबो का सुष्ठु विन्यास एव उनका परस्परावलबन हमे कविता के तलप्रदेश मे खोजना चाहिए। कविता मे प्रभावो का ज्ञातत्य इस का सुफल है कि कवि ने उन अनुभवो को सफलतापूर्वक शृखलित किया है जिनसे कविता समुद्‌भूत होती है। कविता के बिंब कवि के सपूर्ण जीवनव्यापी अनुभव क्षेत्र से जुटाये-सजोये जाते हैं जिससे कि वे काव्य की सपूर्ण रचना मे योग देने के साथ-साथ वस्तुओ के अतराल मे रहनेवाले सुसगत व्यवस्था के अस्तित्व को भी सकेतित करें।

इन अतर-बाह्यगुणो के अतिरिक्त श्रेष्ठ बिंब का निकष है कि उसके प्रभाव को झुठलाना सभव नही। 'Art and Society' मे बिंब के इसी महत् स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"सच्चे अर्थो मे महत् वही है जो मनन के लिए बाध्य करता है और जिसके प्रभाव को झुठलाना कठिन ही नही असभव हो जाता है तथा जिसकी सशक्त स्मृति को मिटाना दुष्कर हो जाता है। साधारणत उन्ही उदात्त तत्त्वो को उत्कृष्ट व विशुद्ध मानना चाहिए जिनका आनद काल व व्यक्ति-निरपेक्ष हो।"

## बिंब व्यापार

भारतीय काव्य दृष्टि काव्य को एक ओर भाव या रस से उद्रिक्त मानती है और दूसरी ओर उसका व्यजना के प्रति भी आग्रह है। आनदवर्धनाचार्य के शब्दो मे "महाकवि का यह मुख्य व्यापार है कि वह रस, भाव को ही काव्य का मुख्य अर्थ मानकर उन्ही शब्दो तथा अर्थो की रचना करे जो उसकी अभिव्यक्ति के अनुकूल हो।"[38] तथा सारभूत अर्थ स्व शब्दो से वाच्य न होकर यदि प्रकाशित किया जाय तो विशेष शोभा धारण करता है।[39] भावो को अभिधा से हटाकर प्रकाशित करना ही आधुनिक शब्दावली में बिंब-सृजन है।

श्री भगीरथ मिश्र ने बिंब-रचना को काव्य का मुख्य व्यापार माना है—"बिंब-रचना काव्य का मुख्य व्यापार है। बिंबो के द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकार पदार्थों और मानस क्रियाओ को प्रत्यक्ष एव इद्रियग्राह्य बनाता है।"[40] यही ध्वनिकार के शब्दो में "महाकवेर्मुख्यो व्यापार" है।

इस मूल व्यापार के अतिरिक्त बिंब योजना काव्य में कुछ और भी कार्य सिद्ध करती है। बिंब के इन विविध कार्यो को डा० मिश्र ने स्पष्ट किया है। उन्होंने बिंब-व्यापार के चार पक्ष माने हैं[41]—

(१) काव्यार्थ को पूर्णतया स्पष्ट करना—अर्थव्यक्ति।
(२) भाव को सप्रेषित एव उत्तेजित करना—भाव-सप्रेषण।
(३) वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष करना—प्रत्यक्षीकरण।
(४) रूप, सौंदर्य या गुण को हृदयगम करना—सौदर्यात्मक अनुभूति।

## (१) अर्थव्यक्ति

बिंब-रचना का मुख्य व्यापार काव्यार्थ को स्पष्ट या स्फुट करना है। जीवन के गहन गभीर भाव, निगूढ अदृश्य चिंतनाए, जटिल, सकुल अनुभूतिया बिंब के द्वारा ही ग्राह्य बनती हैं। बिंब योजना का प्रथम प्रमुख व्यापार सूक्ष्म विचारो को प्रभावशाली रूप मे, सबको समझने के हेतु रूपायित करना है जिससे हम उनकी सूक्ष्मता को समझ सकें।[४२] बिंब व्यापार के इस पक्ष को इन उदाहरणो से स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) पानीकेरा बुदबुदा जस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यो तारा परभात॥
(२) माली आवत देखकर कलियाँ करी पुकार।
फूले-फूले चुन लिये कालि हमारी बार॥
—कबीर

'जीवन नश्वर है' इस वाक्य के शब्दार्थ से सभी परिचित है, पर यह एक प्रभावहीन तथ्य कथन मात्र है जिसमे न कोई अनुभूतिप्रवणता है और न ही प्रभावतीव्रता। लेकिन इसी को जब कबीर 'पानी केरा बुदबुदा' और 'तारा परभात' के बिंबो मे उभारते है, तो जीवन की क्षणिकता का हमे सद्य साक्षात्कार हो जाता है। इसी प्रकार मृत्यु की अवश्यम्भाविता 'कलिया करी पुकार' के बिंब द्वारा जड सूचना मात्र से स्पदित सत्य मे रूपायित हो जाती है।

## (२) भाव-सप्रेषण

"अर्थ की स्पष्टता के समान ही भाव-सप्रेषण एव भावोत्तेजना मे बिंब-विधान का मुख्य हाथ रहता है। वास्तव मे कवि अपने अतस् की तीव्र अनुभूतियो को उसी तीव्रता के साथ दूसरो तक भी पहुचाने के लिए व्याकुल हो उठता है। इसी छटपटाहट की स्थिति मे वह बिंब-सृष्टि करता है। उसकी सफलता इसी मे है कि वह दूसरो के हृदय मे भी अपनी आग जगा दे, अन्यो को उत्तेजित कर दे।"[४३]

बिंब-सृष्टि के मूल मे कवि का भाव-सवेदन है, उसकी सार्थकता भाव-सप्रेषण मे है। कवि जितना ही अधिक भावो की गहनता, तीव्रता, सान्द्रता व व्यापकता का अनुभव करेगा, उसी के अनुपात से बिंबो मे नवीनता, स्फूर्ति व प्रभविष्णुता व्यक्त होगी और इसी अभिव्यक्ति मे भाव-सप्रेषण की क्षमता उत्पन्न होगी। "सवेदना प्रदान करना बिंब का प्रमुख लक्ष्य है। बिंब का उपयोग ही भाव को सवेदनीय बनाने के लिए होता है। बिंब काव्य मे ऐंद्रियगम्य वर्णनो के द्वारा सवेदना जाग्रत करता है। आलोचक ब्लिस पेरी कविता को बिंब और बिंब को सवेदना कहता है। उसके अनुसार कविता का कार्य वस्तु का ज्ञान कराना नही वरन् उसका ऐंद्रिय अनुभव कराना है। बिंब केवल शब्दो से नही बनता है, वरन् वह यथार्थ सवेदन है।"[४४]

"बिंब केवल कवि के अमूर्त भावो अथवा विचारो को ही मूर्त नही करता वरन् वह

कवि के आवेगमय भावात्मक क्षणो को भी अभिव्यक्त करता है। बिंब कवि के चरम सीमा तक पहुचे हुए भाव को मूर्तित करता है। वह कवि के तीव्रतम हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या आदि की अभिव्यक्ति है।"[४५] जैसे—

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
अधोमुख रहत उरध नहिं चितवति ज्यो गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिउर बदन कुम्हलाने, ज्यो नलिनी हिमकर की मारी।[४६]

राधा के इस विषण्ण चित्र मे व्यथा, उदासी, सर्वस्वहृतता, नैराश्य की चरम सीमा का अभीष्ट सप्रेपण बिंब के द्वारा ही सभव हो सका। सूर की भावतीव्रता जब 'अधोमुख रहत' तथा 'उरध नहि चितवत' शब्दो मे नही समा पाती तब 'थकित जुआरी' का बिंब ही उसे वहन कर सम्यक् प्रकार से प्रेषित करता है। इसी प्रकार विरहजन्य कृशता व मलिनता अपने सपूर्ण गाभीर्य के साथ 'छूटे चिउर बदन कुम्हलाने' मे स्पष्ट नही हो पाता और 'नलिनी हिमकर की मारी' के बिंब से ही अभीप्सित सप्रेषण हो पाता है।

## (३) प्रत्यक्षीकरण

बिंब योजना का महत्त्वपूर्ण प्रभावी व्यापार वस्तु, घटना आदि को प्रत्यक्ष करना है। इससे चरित्रो के व्यक्तित्व सजीव, घटनाए प्रत्यक्ष और वातावरण स्पदित हो उठता है। स्पर्श, ध्वनि, रग, वर्ण आदि की सपृक्ति से प्रत्यक्षता मुखर हो उठती है। कवि जितना ही अधिक खुली आखो से जीवन व प्रकृति का पर्यवेक्षण करता है उसके चित्र उतने ही अधिक प्रभविष्णु व प्राणवत होते हैं। आचार्य शुक्ल ने आदि कवि वाल्मीकि के इस चित्र की प्रत्यक्षता का उदाहरण दिया है—

मुक्तासकाश सलिल पतद्वै सुनिर्मल पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः सुरेन्द्रदत्त तृषिता पिबन्ति॥[४७]

मोती जैसी स्वच्छ पानी की बूदो का गिरना, गिरकर पत्तो की नोको पर लग जाना, चिडियो के पखो का विवर्ण हो जाना और पत्तो की नोको पर लगे पानी को पीना—सारा का सारा दृश्य चाक्षुष प्रत्यक्ष हो उठा है। इसी प्रकार बिहारी के इस दोहे मे वासती पवन के झकोरे श्रुति प्रत्यक्ष हो गये हैं—

रनित भृग घटावली, झरतदान मधु नीर
कुज-कुज आवत चलै, कुजर कुज समीर।[४८]

## (४) सौदर्यात्मक अनुभूति

कवि बिंबो के द्वारा रूप, छवि, छटा, काति, दीप्ति, माधुर्य, लावण्य आदि सभी सौदर्य उपादान की सश्लिष्टि से ऐसे अभिनव बिंबो की सर्जना करता है कि हमारे मन मे तन्मयी भवन अनुभूति अनायास ही जाग उठती है और हम आह्लादकत्व का अनुभव करते हैं। डा० भगीरथ मिश्र ने बिंब द्वारा तीव्र सौंदर्यात्मक अनुभूति को मतिराम के पद द्वारा स्पष्ट किया है—

कुदन को रग फीको लगै झलकै अति अगन चारु गोराई।
आँखिन मैं अलसानि चितौनि मैं मजु विलासिनी की मधुराई।
को बिनु मोल बिकात नही मतिराम लखै अँखियान लुनाई।
ज्यो-ज्यो निहारिये नीरे ह्वै त्यो-त्यो सखी निखरै ह्वै निकाई।[४९]

घनानन्द का यह बिंब भी द्रष्टव्य है—

झलकै अति सुदर आनन गौर थकै दृग राजत कानन छ्वै।
हस बोलन मे छवि फूलन की वर्षा उर ऊपर जात है ह्वै।
लट लोल कपोल करें कल कठ बनी जलजावलि ह्वै।
अग-अग तरग उठै दुति की पर है मनो रूप अबैघर च्वै।[५०]

अग-अग मे द्युति की तरग उठने और रूप के चू पडने मे तरलित लावण्य का यह चित्र अनुपम है।

बिंब कविमानस मे उद्वेलित अनंत भावोर्मियो को रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द आदि इद्रिय सवेदनो के द्वारा सहृदय सवेदनीय बनाता है। बिंब व्यापारो की कृतार्थता इसी मे है कि जिन भावो से उद्वेलित होकर स्रष्टा ने रूप-सृष्टि की है, वैसे ही भाव पाठक व भावक के अतस् मे जग सके—सच्चे अर्थो मे यही बिंब व्यापार है।

## पाद-टिप्पणियां

1. 'Shorter Oxford Dictionary'.
२ डा० नगेन्द्र 'काव्य-बिंब'।
३ डा० पद्मा अग्रवाल 'मनोविज्ञान कोश'।
४. वही।
५ 'मानविकी पारिभाषिक कोश', पृ० १४०।
६ 'काव्य-बिंब', पृ० २२।
7. 'Archetypal Patterns in Poetry', p 315
8 'Illusion and Reality', p 206
9. Sartre 'Psychology of Imagination', p 3-12
१० डा० नगेन्द्र 'काव्य-बिंब'।
11 "We see the world around us and since every free-moving being must for its own safety understand that world, the accumulating daily detail of technical and emperical experience becomes a stock of permanent data which man, as soon as he is proficient in speech collects into an image of what he understands"
—'Decline of the West', p 300.
12 "Imagery bears the corelative of thoughts and experience .. ..etc
—'Poetry in Practice', p 120
१३. 'काव्य-बिंब', पृ० ५०।
14 What emerges from the unconsciousness when... etc
—C D Lewis 'Poetic Image', pp 70-71
15. 'The Poetic Pattern' मे 'Fancy and Imagination' शीर्षक अध्याय का साराश।
16 Dylan Thomas 'From the Poetic Image', p 122
17 'The Poetic Image', p 86
१८ 'काव्य-बिंब', पृ० ४६।
19. "Poetry is an assence which we have to dilute with grosser elements

to make it viable or practicable A poem that is pure imagery would be like a statue of crystal—something too cold and transparent for our animal senses

—Herbert Read . 'The Poetic Image', p 130.

20. 'Archetypal Patterns in Poetry', pp. 7-8
२१. रूपक के आवरण को हटाकर बिंब-सृजन-प्रक्रिया को इसमे देखा जा सकता है। कविता रूपी मुक्तामणि आज के शब्दो मे काव्य-बिंब के निर्माण की भूमि है—हृदय या राग। केवल राग पर्याप्त नही, वह अध-अनर्गल भी हो सकता हैं, अत इसके आगे का सोपान है मति, इसे हम चेतना का विश्लेषक रूप या औचित्य का शासन कह सकते हैं। भाव और बुद्धि के सम्यक् सश्लेषण मे कल्पना या प्रतिभा की सक्रियता और आगे की प्रक्रिया है—यही तुलसी की स्वाति सारदा है।
22. "It is the relationship of many elements that make for a poem's sense of reality, its intellectual and moral realization, and its level of emotional intensity.... A Poem is a form of expresson in which an unusual number of resources of language are concentrated into a patterned organic unity of significant experience"

—'Elements of Poetry', p. 432

23 'Literature and Criticism', pp 43-44.
24 "What gives an image efficacy is less its vividness as an image than its character as a mental event peculiarly connected with sensation"

—'Principles of Literary Criticism', pp. 119-120

25. 'The Poetic Image', pp 41-46.
२६ 'काव्य-बिंब', पृ० ५७।
२७ ब्रजनन्दन प्रसाद अखौरी 'काव्यात्मक बिंब', पृ० २६।
२८ वही, पृ० ४६-४७।
२६ 'जायसी की बिंब योजना', पृ० ४२।
३० 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० २०३-२१२।
३१ वही, पृ० २१२।
32. ". a factor that makes for the great effectiveness in imagery is the just aposition, in any image of things which ordinarily are not associated with one another . .such a conjunction shows the writer's power of assimilating different kinds of experience, and this helps him to fuse his sense perception, his emotion and his thought into an organic expression"—'Literature and Criticism', p. 63
33 "In this knowledge of proportion lies the essential character of great imagery."—'The Poetic Imagery', p 47
34. "Language receives in poetry a peculiar form. It represents in its meaning a perfection which is always an order, harmony or rhythm'

—Bradley 'Oxford Lectures on Poetry', p' 158.

35 'Poetic Image', p 120
36 Ibid, p. 74
३७ ध्वन्यालोक।

३८ अद्यमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यत् रसादीने मुख्यतया काव्यार्थी कृत्य तद्व्यक्त्नुगुणत्वेन शब्दाना-मर्थोनांचोप निबन्धनम् ।—'ध्वन्यालोक', पृ० १८१ ।

३९ सारभूतो हि अर्थ स्व शब्दानभिधेयत्वेन प्रकाशित सुतरामेव शोभामावहति ।

—'ध्वन्यालोक', पृ० ३१ ।

४० डा० भगीरथ मिश्र 'काव्यशास्त्र', पृ० २८१ ।

४१. वही, पृ० २८२ ।

४२ वही ।

४३ वही ।

४४ डा० सुधा सक्सेना 'जायसी की बिंब योजना', पृ० ५४-५५ ।

उक्त कथन के समर्थन मे उदाहरण है—

"The function of poetry is to convey the 'sense' of things rather than the knowledge of things—and the image were not made of words at all but were naked sense stimulus,"

—Bliss Perry 'Study of Poetry', pp 94-95.

४५ डा० सुधा सक्सेना 'जायसी की बिंब योजना', पृ० ६७ ।

४६ 'सूरसागर', नागरी प्रचारिणी सभा, पद १६६, पृ० ४८३ ।

४७ आचार्य शुक्ल 'चिंतामणि', भाग २, पृ० १३ ।

४८ जगन्नाथदास रत्नाकर 'बिहारी रत्नाकर', दोहा ८८ ।

४९ 'काव्यशास्त्र', पृ० २८४ ।

५० 'घनानद कवित्त', पृ० २ ।

६

# काव्य-बिंब : वर्गीकरण के आधार

वर्गीकरण या प्रकार के भेद का विषय जटिल है और उसे वैज्ञानिक एवं तर्कसगत बनाना कठिन है क्योकि जीवन एक जटिल, सकुल एर अविभाज्य सपूर्णता है—एक अखड इकाई है। काव्य-विंव इसी जीवन का नवनिर्माण है। विभिन्न आधारो पर किये गये वर्गीकरण को काव्यगत मूल सवेदना के प्रकाश मे देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि वर्गीकरण व्यावहारिक एव स्थूल प्रयास मात्र है। जो हो, यह अवश्य है कि वर्गीकरण के द्वारा काव्य-विंव के विधायक तत्त्वो, मूल उत्सो एव रूपाकारो को एक सीमा तक समझा जा सकता है और प्रकार भेदो का विस्तार काव्य-विंव की सीमा, शक्ति, अतर्गठन एव प्रभविष्णुता को मूल्याकित करने मे सहायक हो सकता है। यहा हम समीक्षको द्वारा किये गये वर्गीकरण पर एक दृष्टि डालने का प्रयत्न करेंगे।

'The Poetic Pattern' के लेखक ने काव्यात्मक विंवो का विशद विवेचन कर उन्हे वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार—

(१) सरल विंव—वह विंव जो भावो को इस प्रकार जगावे कि उनका मानस प्रत्यक्ष हो जाय। जैसे—चमकीला, नीला, पीला, शीत, कोमल आदि।[1]

(२) भावातीत-विंव—मानस अथवा अन्य ऐंद्रिय प्रत्यक्ष से रहित भाव को जगाने वाले विंव। जैसे—सत्य, प्रत्यय आदि।[2]

(३) आशु विंव—श्रुति, दृष्टि, गध, रस और स्पर्श के भावो को सद्य समीरित करने वाले विंव। जैसे—कलकत्ता, टलमल, खुरदुरा, मीठा आदि।[3]

(४) विकीर्ण विंव—ऐंद्रिय प्रत्यक्ष से अनुजु या प्रकारातर संबध रखनेवाले अथवा किसी एक इद्रिय के प्रति भाव निवेदन नही रखने वाले विंव, अर्थात् अनेक इद्रियो के प्रति भाव निवेदन रखने वाले विंव। जैसे—गोष्ठी, इच्छा, साहस आदि।[४]

(५) अमूर्त विंव—[ (२) से नितात साम्य] भावानयन से निर्मित ऐसे विंव जो मानवीकरण अथवा ऐसे ही उपायो से वर्ण्य का मानस प्रत्यक्ष करते हो।

जैसे—दया, विद्या आदि ।[5]

(६) **संयुक्त बिंब**—दो या दो से अधिक शब्दो के सयोग से बननेवाले बिंब जो किसी एक वस्तु या भाव का मानस प्रत्यक्ष कराते हो। जैसे—समाज, क्राति ।[6]

(७) **संकुल बिंब**—दो या दो से अधिक शब्दो का ऐसा संयोग जो एक से अधिक बिंबो का सृजन करता हो। जैसे—सुनहले डैफोडिल्स, रक्तकमल आदि ।[7]

(८) **संयुक्त भाववाची बिंब**—शब्दो का ऐसा सयोग जिससे कोई भाववाची बिंब (मानस प्रत्यक्ष से रहित) पैदा होती है। जैसे—भद्र, सत्य, शालीन करुणा आदि ।[8]

(९) **सकुल अमूर्त बिंब**—शब्दो का ऐसा सयोग जिससे एकाधिक भाववाची बिंब (मानस प्रत्यक्ष से रहित) पैदा होते हैं। जैसे—विश्वस्त दानशीलता, ईमानदार प्रेम ।[9]

(१०) **अमूर्त सयुक्त और अमूर्त सकुल बिंब**—वह सकुल या सयुक्त बिंब जिसमे भावानयन बिंबधर्मिता से अधिक प्रधान हो और बिंबधर्मिता उस भावानयन का केवल गुणबोध कराती हो। जैसे—स्वर्णिम सटीकता, विकपित-विगलित करुणा आदि ।[10]

स्केलटन के इस वर्गीकरण को विषय-सीमा की दृष्टि से अनुपयोगी बताते हुए डा० कुमार विमल लिखते हैं—"उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि राबिन स्केलटन द्वारा प्रस्तुत विवेचन का सबसे बडा दोष है—शब्द-प्रधान आधार का होना। स्केलटन ने बिंबो को मात्र शब्दाश्रित माना है और फलस्वरूप शब्दो के आधार पर उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।"[11]

डा० कुमार ने अपने वर्गीकरण मे ऐंद्रिय बोध एव ऐंद्रिय प्रभावो को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आधार माना है। उनका वर्गीकरण मूलत पचतन्मात्राओ पर आधृत है। उनके अनुसार बिंब आठ प्रकार के हो सकते है—१ चाक्षुष, २ श्रवण, ३ स्पर्शिक, ४. घ्राणिक, ५ रासनिक, ६ आगिक अथवा जैव, ७ वेगोद्भेदक और ८ गत्वर। इसके अतिरिक्त ऐंद्रिक प्रभावो से सबद्ध दो प्रकार के बिंबो की चर्चा उन्होने की है—१ सहसवेदनात्मक सश्लिष्ट बिंब (साइनेस्थेटिक), २ समानुभूतिक बिंब (इम्पैथिक)।

"सहसवेदनात्मक सश्लिष्ट बिंब मे शारीरिक तथा मानसिक अनेक प्रकार के सवेगो, सवेदनो, अनुभूतियो अथवा प्रतीतियो का मिश्रण या समीकरण होता है। सहसवेदनात्मक सश्लिष्ट बिंबो मे सवेदनो का गाढ घनीकरण रहता है और विभिन्न इद्रिय बोधो का सम्मिश्रण भी। एक ही बिंब जब घ्राणिक, स्पर्शिक, रासनिक, आगिक इत्यादि अनेक प्रकार के सवेदनो को सुगढ ढग से अभिव्यजित करता है, तब हम उसे सहसवेदनात्मक सश्लिष्ट बिंब कहते हैं।··· समासत सहसवेदनात्मक सश्लिष्ट बिंब-विधान की सबसे बडी विशेषता है कि इसमे विभिन्न प्रकार के सवेगो या सवेदनो का एक ऐसा सौहार्दपूर्ण सतुलन रहता है, जिसके अभाव मे हम अपने आवेष्टन की सकुलता और उसके विचित्र ऐश्वर्य के साथ अपने अत करण का रागात्मक सबध नही स्थापित कर सकते।"

"समानुभूति वहा रहती है जहा हम अपने अहम्, मन स्थति, क्रियाव्यापार, शरीरस्थ सचरण या अतर्वृत्ति का आरोप मानवेतर दृश्य जगत पर करते हैं। इस तरह मानवीकरण से लेकर 'Pathetic Fallecy' तक का क्षेत्र समानुभूतिक बिंबो के अतर्गत पडता है।"[12]

कुमार विमल के इस वर्गीकरण के पीछे कोई ठोस सुनिर्णीत आधार नही है—यह

पूर्णरूपेण यादृच्छिक है। इसे स्वीकार करते हुए वे स्वय लिखते हैं—"हमे यह स्वीकार करना पडता है कि अद्यावधि कला-विचारको ने बिंबो के प्रकार की कोई सुनिश्चित सारिणी निरूपित नही की है और न उनके विभाजन का कोई सर्ववादिसम्मत मानदड निर्णीत किया है।"[13]

'काव्यात्मक बिंब' के लेखक श्री व्रजनदन अखौरी ने भी स्केलटन के वर्गीकरण को समीचीन नही माना है—"स्केलटन द्वारा दी गयी, बिंबो के विभिन्न प्रकारो की तालिका के अध्ययन से बिंबो के स्वरूप-वैविध्य का आभास हमे होता है। ··इसका कारण यह है कि कोई भी काव्यात्मक बिंब किसी कविता के जीवन-विकास का अभिन्न अग होता है तथा काव्य से सर्वथा विच्छिन्न करने से उसका सौंदर्य मलिन पड जाता है और उसका उचित मूल्याक· असमव हो जाता है। इसके उपरात वर्गीकरण की इस रीति मे उलझन की बहुत अधिक सभावना है क्योकि यदि एक ओर ऐसे बिंब हैं जिनका वर्गीकरण सरलतापूर्वक सभव है, तो दूसरी तरफ ऐसे काव्यात्मक बिंबो की सख्या भी अपरिमेय है जिनका स्पष्ट वर्गीकरण किसी भी प्रकार सभव नही।"[14]

ज्ञानेंद्रियो के आधार पर वर्गीकृत बिंब को स्वीकार करते हुए भी अखौरी जी उन्हे मात्र स्थूल व प्रारभिक प्रयास मानते हैं—"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि बिंबो के विविध प्रकारो का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि एक मनुष्य की ज्ञानेंद्रियो के जितने प्रकार हैं काव्यात्मक बिंबो के भी उतने ही प्रकार हैं · किंतु इस प्रारभिक विवेचन से ही हमारा कार्य पूर्ण नही होता। काव्यात्मक बिंबो का सबध मनुष्य की एकमात्र ज्ञानेंद्रियो से ही नही है बल्कि उसका संबध काव्य की उस आतरिक कला से है जो उसमे प्राण-स्फूर्ति का सचार करती है।"[15]

अखौरी जी काव्यात्मक बिंबो मे उपमा व रूपक को प्रमुख स्थान देते हैं—"काव्यात्मक बिंबो के विविध प्रकारो के अध्ययन मे हमारा ध्यान सर्वप्रथम उपमा तथा रूपक की ओर आकृष्ट होता है। · उपमा के दो प्रकार—मूर्त का अमूर्त रूप-विधान और अमूर्त का मूर्त रूप-विधान काव्य मे प्रयोग मे आये हैं और दोनो के माध्यम से भावनाओ का प्रभावपूर्ण परिवहन भी हुआ है। ·काव्य मे रूपको के प्रयोग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन यह है कि इनमे भावनाओ को सक्षिप्त रूप मे अभिव्यजित करने मे कवि को प्रचुर सफलता मिलती है।"[16]

उपमा व रूपक के साथ भी अखौरी जी 'आकृति बिंब' व 'ध्वनि बिंब' के रूप मे भी बिंब को वर्गीकृत करते हैं 'आकृति बिंब' (Shape Imagery) की अवतारणा काव्य को चित्रकला के बहुत समीप पहुचा देती है। ·· 'ध्वनि बिंबो' मे निरर्थक ध्वनि की व्यवस्था से भी गहरी भावानुभूति होती है।"[17]

यहा पर स्पष्ट ही अखौरी जी काव्येतर अन्य कलाओ के आधार पर बिंबो को समझने का उपक्रम कर रहे हैं। विभिन्न कलाओ का परस्पर सीमातिक्रमण और साकर्य बहुधा होता ही है और इस दृष्टि से यह वर्गीकरण समीचीन भी है। इसके अतिरिक्त 'काव्य की आतरिक शक्ति के अनुशीलन के आधार पर ···बिंबो के दो प्रकार उपलब्ध होते हैं—विचार-प्रधान बिंब तथा भाव-प्रधान बिंब।' विचार-प्रधान काव्यात्मक बिंबो की विवेचना से यह पता चलता है कि इन बिंबो की अवतारणा अनिवार्यत कोई शब्दचित्र प्रस्तुत करने के ध्येय मे नही की जाती इन बिंबो मे कवि का प्रमुख मतव्य है अपने विचारो को काव्य मे प्रतिष्ठित करना। · दूसरे प्रकार का काव्यात्मक बिंब जिसे हम भाव-प्रधान काव्यात्मक बिंब की सज्ञा दे सकते हैं। ऐसे बिंब साकेतिक अथवा लक्षणात्मक रीति से अपना प्रभाव डालते हैं। इन

बिंबो की शक्ति को समझने के लिए हमे उनके द्वारा उपस्थापित शब्दचित्रो पर पूरा ध्यान देना पडता है।"[१८]

डा० नगेन्द्र ने काव्य-बिंब को अनेक कोणो एव विविध आधारो पर वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार "बिंबो मे ऐंद्रिय आधार प्रमुख रहता है अत ऐंद्रिय आधार पर बिंब के पाच भेद किये जा सकते हैं—दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य और रस्य या आस्वाद्य।"[१९] सर्जक कल्पना के आधार पर बिंबो का वर्गीकरण उन्होने दो प्रकार से किया है—**स्मृत बिंब**-कल्पना प्राय निष्क्रिय रहती है और स्मृति के द्वारा ही बिंब की उद्बुद्धि होती है। **कल्पित बिंब** कवि प्रौढोक्ति-सिद्ध बिंब जो सक्रिय कल्पना की सृष्टि होते हैं। स्मृत व कल्पित बिंब के समानातर लक्षित एव उपलक्षित बिंबो को भी डा० नगेन्द्र ने स्थान दिया है। प्रेरक अनुभूति के आधार पर वे बिंबो के पाच प्रकार मानते है—"सरल, मिश्र, जटिल, पूर्ण या समाकलित। इसके अतिरिक्त खडित अनुभूतियो के आधार पर खडित बिंब और बिखरी हुई अनुभूति के आधार पर विकीर्ण बिंब। काव्यार्थ की दृष्टि से दो प्रकार के बिंब होते हैं—एकल या मुक्तक जो अपने मे स्वतत्र और अन्य बिंबो के पूर्वापर सबध से मुक्त होते हैं, सश्लिष्ट या निबद्ध जिनमे अनेक बिंब परस्पर सबद्ध रहते हैं। प्रबध काव्य के सदर्भ मे 'घटना बिंबो' और 'प्रकरण बिंबो' का निर्माण होता है। 'घटना बिंब' काव्यगत घटना पर आधृत रहते हैं और इनके समन्वय से 'प्रकरण बिंबो' का निर्माण होता है। अनेक प्रकरण बिंबो से मिलकर सपूर्ण कथानक का एक बृहत् बिंब निर्मित होता है जिसे 'प्रबध बिंब' कहा जा सकता है।

"काव्य-दृष्टि के आधार पर वस्तुपरक अथवा यथार्थ और रोमानी अथवा 'स्वच्छद बिंबो' की प्रकल्पना भी की जा सकती है। मनोविश्लेषण-शास्त्र के क्षेत्र मे 'स्वप्न बिंब' एव 'आद्य बिंब' का उल्लेख मिलता है। अत मे, बौद्धिक या प्रज्ञात्मक तथा 'भावात्मक बिंब' के रूप मे भी बिंबो को वर्गीकृत किया जा सकता है।"[२०]

काव्य-बिंब के वर्गीकरण की इस शृखला मे डा० भ्रमर का वर्गीकरण भी महत्त्वपूर्ण है। 'आधुनिक हिंदी कविता मे चित्र-विधान' पर लिखते हुए उन्होंने रूप-विधान की तीन कोटिया मानी हैं—(१) परपरित रूप-विधान, (२) सामयिक रूप-विधान, (३) नव्य रूप-विधान। इनके पुन उपभेद करते हुए उन्होने काव्य-बिंब को (अ) सास्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक, (आ) राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, (इ) व्यावसायिक, दैनदिन, वैज्ञानिक, भावात्मक, गुणात्मक शीर्षको मे वर्गीकृत किया है।

डा० भ्रमर ने रूप-विधान का वर्गीकरण परिशिष्ट-१ मे विस्तार से किया है और एक पूरी सारिणी तैयार की है। यद्यपि वह वर्गीकरण वैज्ञानिक नही, पर इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि काव्य मे बिंब योजना के लिए कवि-कल्पना एक व्यापक क्षेत्र मे कार्य करती है। डा० भ्रमर ने काव्य-बिंब का प्राथमिक वर्गीकरण वस्तु पक्ष और कला पक्ष के रूप मे किया है। वस्तु पक्ष के अतर्गत सास्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक बिंबो को स्थान दिया है और भावात्मक बिंबो के अतर्गत रस पक्ष को। कला पक्ष मे प्रभाव, नाद से लेकर विशेषण, क्रिया, शब्द, रेखा, सकेत, गति एव अलकार का समावेश है।[२१]

'जायसी की बिंब योजना' मे भी डा० सुधा सक्सेना ने जायसी के बिंबो का वर्गीकरण विशदता से किया है। पात्र और वस्तु के आधार पर लेखिका ने बिंबो को दो भागो मे विभक्त किया है—प्रकृति सबधी और जीवन सबधी। प्रकृति सबधी बिंबो को पुन सात भागो

मे विभाजित किया है—जलीय, आकाशीय, वनस्थलीय, पर्वतीय, खनिज, समय और मौसम, जीव-जतु, पशु-पक्षी।[२२] इसी प्रकार जीवन व जगत सबधी बिंबो के भी उप-विभाग किये गये हैं—लोक जीवन, मानव जीवन, विद्याए, खेलकूद, राजसी, खान-पान, अस्त्र-शस्त्र।[२३] सवेदनाओ के आधार पर दृष्टिपरक, स्पर्शपरक, घ्राणपक, श्रव्यपरक व स्वादपरक भेद हैं।[२४] इसी प्रकार भाव के आधार पर रति, उत्साह व क्रोध, भय, आश्चर्य, शोक, शम या निर्वेद के प्रकारो मे बिंब को वर्गीकृत किया है।[२५]

विविध वर्गीकरण के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिंब को काव्यगत विशेषताओ की दृष्टि से निर्भ्रांत एव निर्दुष्ट भाव से वर्गीकृत नही किया जा सकता, फिर भी वर्गीकरण के कुछ स्थूल आधार बनाये जा सकते है और काव्य-बिंब के बहुविध कोणो, गति, परिधि, मूल उत्स, व्यापक सृजन-सामग्री का अनुमान लगाया जा सकता है। ये आधार निम्न हो सकते हैं—

(अ) ऐंद्रिय बिंब
(आ) प्रकृति एव जीवन बिंब
(इ) मनोवैज्ञानिक बिंब
(ई) पारस्परिक या स्वच्छद बिंब
(उ) केंद्रीय या सहकारी बिंब
(ऊ) गीतात्मक या प्रबधात्मक बिंब

**(अ) ऐंद्रिय बिंब** काव्य-बिंब का ऐंद्रिय आधार सबसे अधिक स्पष्ट, प्रभावशाली एव महत्त्वपूर्ण है। हमारे मानस मे सुरक्षित ऐंद्रिय सन्निकर्षों के प्रभावो का पुनरुद्‌भवन ही बिंब है। काव्य-बिंब इद्रिय सन्निकर्ष से पडनेवाली मानस-छवियो से ही निर्मित होता है। ऐंद्रिय आधारो मे चाक्षुष प्रधानता निर्विवाद है। डा० नगेन्द्र ने इसे प्रमुख मानते हुए लिखा है—"बिंब मे ऐंद्रिय आधार प्रमुख रहता है, अत ऐंद्रिय माध्यम के आधार पर पाच भेद किये जा सकते है। दृश्य या चाक्षुष बिंब आकारवान् होते हैं। इनका स्वरूप सबसे अधिक स्पष्ट होता है क्योकि उसके आयाम अधिक मूर्त होते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक अनुभव के लिए, जिसमे किसी भी इद्रिय का सीधा सन्निकर्ष होता है, प्रत्यक्ष विशेषण का ही प्रयोग किया जाता है और जीवन तथा काव्य मे दृश्य बिंबो का प्रयोग सर्वाधिक होता है।[२६]

काव्य मे बिंब-ग्रहण होता है और उसकी चाक्षुषधर्मिता ही वैज्ञानिक अर्थग्रहण से उसे भिन्न स्वरूप प्रदान करती है। आ० शुक्ल लिखते हैं—"अभिधा द्वारा ग्रहण दो प्रकार का होता है—बिंब-ग्रहण और अर्थ-ग्रहण। किसी ने कहा, 'कमल'—अब इस 'कमल' पद का ग्रहण कोई इस प्रकार भी कर सकता है कि ललाई लिये हुए सफेद पखुडिया और नाल आदि के सहित एक फूल का चित्र अत करण मे थोडी देर के लिए उपस्थित हो जाय, और इस प्रकार भी हो सकता है कि कोई चित्र उपस्थित न हो केवल पद का अर्थ मात्र समझकर काम चलाया जाय। काव्य के दृश्य चित्रण मे सकेत-ग्रहण पहले प्रकार का होता है। उसमे कवि का लक्ष्य बिंब-ग्रहण कराने का रहता है केवल अर्थ ग्रहण कराने का नही। वस्तुओ के रूप और आसपास की परिस्थिति का ब्योरा जितना स्पष्ट या स्फुट होगा उतना ही पूर्ण बिंब ग्रहण होगा उतना ही अच्छा दृश्य चित्रण कहा जायेगा।"[२७] "कल्पना द्वारा अन्य विषयो की अपेक्षा नेत्रो के विषय का ही सबसे अधिक आनयन होता है। बाह्य कारणो से सब विषय अत करण मे चित्र रूप मे प्रतिबिंबित हो सकते है। इस प्रतिबिंब को हम दृश्य या चाक्षुप

कहते हैं।"[२८]

यह सत्य है कि ऐंद्रिय बिंबो मे चाक्षु ष-प्रधानता रहती है, पर श्रव्य, स्पर्श्य, स्वाद एव घ्रातव्य बिंबो का उचित सश्लेषण ही चाक्षुक बिंबो को अधिक रसनीय एव सवेदनीय बनाते है।

(आ) **प्रकृति या जीवन बिंब** काव्य का सबध मानव-जीवन से है जो प्रकृति के साहचर्य या सघर्ष मे विकासमान है। तृण गुल्म, लता-पादप, सागर-मेखला, धरित्री, पर्वत-मालाए, चारो ओर व्याप्त प्राणिजगत, जनसमूह—इन सबके बीच मे उनका जीवन विकसित होता है। काव्य इसी जीवन-वैविध्य का सम्यक् चित्र है—स्रष्टा अपने बिंब-सृजन के लिए इसी प्रकृति से, इसी जीवन से, इसी व्यापकत्व से सामग्री सजोता है, सवारता है और उस अभिनव रूप प्रदान करता है। अत करण के सवेगो की अभिव्यक्ति के लिए स्रष्टा जिस सादृश्य विधान मे प्रवृत्त होता है उसके सभी उपकरण-उपादान इसी विशाल क्षेत्र से लब्ध होते हैं। कवि की सर्जक कल्पना जितनी ही अधिक उन्नत होगी बिंबो का निर्माण उतना ही उत्कृष्ट होगा। मुक्त प्रकृति के माध्यम से वह मानसिक तनावो, कुंठाओ से मुक्ति पाता है। काव्य का विभाव पक्ष वस्तुत दृश्यमान जगत ही है।

(इ) **मनोवैज्ञानिक बिंब** आज काव्य के लिए मनोविज्ञान या मनोविश्लेषणशास्त्र का अपरिहार्य महत्त्व है। काव्य-बिंब व्यक्तिगत रुचियो, अभीप्साओ, लिप्साओ, कुठाओ, वासनाओ के व्यक्त रूप है। इतना ही नही, सामूहिक जातीय भावनाओ, हमारे आद्य सस्कारो के वाहक भी। यही कारण है कि आज काव्य मे खडित बिंबो का प्राचुर्य है।

(ई) **पारपरिक या स्वच्छद** काव्य मे बिंबो की एक परपरा है। कवि उपमा, रूपक, प्रतीक, मिथ आदि का परपरा-प्राप्त प्रयोग करता है—उनके माध्यम से बिंबो का निर्माण करता है। काव्य मे पारपरिक बिंबो का महत्त्व है पर अतिशय प्रयोग के कारण वे जीर्ण और प्रभावहीन हो जाते है। कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राचीन, जड बिंबो को अभिनव आयाम दे, नूतन परिप्रेक्ष्य दे। स्वच्छद, मौलिक बिंबो का निर्माण भी कवि करता है। आज की जटिल एव सकुल भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए उसे नये रूपको, नयी उपमाओ, नूतन व्यंजनाओ का सृजन करना होता है। कवि की गरिमा का भान वस्तुत मौलिक बिंब ही है। यह सत्य है कि काव्य मे हमारा आग्रह जीर्ण, मैले बिंबो के स्थान पर नये बिंबो के निर्माण का रहता है, पर नवीनता का आग्रह जब मात्र नवीनता के लिए होने लगता है तो काव्य की गरिमा समाप्त हो जाती है। आचार्य शुक्ल इस अनर्गल आस्फालन की आलोचना करते हुए लिखते है—

"यो ही सिरचप्पी करके बिना किसी भाव मे मग्न हुए कुछ अनोखे रूप खडे करना या कुछ को कुछ कहने लगना या तो बावलापन है या दिमागी कसरत—सच्चे कवि की कल्पना नही। वास्तव के अतिरिक्त या वास्तव के स्थान पर जो भाव सामने लाये गये हो उनके सबध मे यह देखना चाहिए कि वे किसी भाव की उमग मे उस भाव को सभालने वाले या बढानेवाले होकर खडे हुए हैं या यो ही तमाशा दिखाने के लिए, कुतूहल उत्पन्न करने के लिए ज़बरदस्ती पकडकर लाये गये हैं।"[२९] कवि जब अभिनव अनुभूति से अपने को अनुप्राणित पाता है, उस आवेग मे जब नये बिंब स्वत भावासिक्त हो उठते हैं तभी स्रष्टा की मौलिकता वरेण्य है—केवल नवीनता को शौक या परपरा को तोडने का उन्मादक अतिवादी सामर्थ्य-प्रदर्शन मौलिकता नही।

(उ) **केंद्रीय या सहकारी बिंब** काव्य-बिंब एक इकहरा बिंब नही क्योकि कोई भी

भाव शुद्ध निराविल नही होता—भावो का एक चक्र होता है जिसमे मूल भाव के साथ अनेकानेक सजातीय-विजातीय भावो का सांकर्य रहता है। यही कारण है कि बिंब-प्रक्रिया मे एक केंद्रीय बिंब होता है और उसे उत्कर्ष प्रदान करने के लिए स्रष्टा अनेकानेक सहकारी बिंबो को उनके साथ सबद्ध करता जाता है। इस सश्लेषण के अभाव मे कवि की बिंब योजना को एक सपूर्ण रूप नही दिया जा सकता और न कृति का सम्यक् प्रभाव पड सकता है। मुक्तको मे भले ही एक बिंब अकेला ही प्रभावोत्पादक हो सकता है पर अन्यत्र अनेक बिंबो का सम्यक् सयोजन ही अपेक्षित है।

(ऊ) **गीतात्मक या प्रबंधात्मक बिंब** काव्य को स्थूल रूप से दो भागो मे विभक्त किया गया है—आत्मपरक या गीतिकाव्य तथा विषयप्रधान या प्रबंध काव्य। इसी आधार पर बिंब भी गीतात्मक एव प्रबंधात्मक होते हैं। गीतात्मक बिंब एक भाव, एक अनुभूति, एक रस को लेकर सर्जित होते हैं जबकि प्रबंधात्मक बिंबो मे घटना बिंबो, प्रकरण बिंबो आदि का एक सामूहिक रूप केंद्रीय बिंब से अभिन्न भावेन सबद्ध रहता है।

काव्य मे बिंब की सृजन-प्रक्रिया एक सश्लिष्ट पूर्ण दृष्टि है—उसका वर्गीकरण भेदाकारो को समझने के लिए एक स्थूल रेखाकन मात्र है। काव्य-बिंब का वैज्ञानिक वर्गीकरण दुष्कर है। काव्य-बिंब का महत्त्व उसकी प्रभविष्णुता के आधार पर ही आका जाना चाहिए और इस दृष्टि से उसके दो भेद ही अधिक समीचीन प्रतीत होते हैं—सफल बिंब और असफल बिंब। सफल बिंब के लिए अनिवार्य है कि उसमे भावो को उत्तेजित करने की शक्ति हो, भावो की तीव्रता हो, उर्वरता हो, व्यजकता हो, औचित्य हो, सप्रेषण-क्षमता हो तथा हमारे परिचित हो। इन्ही गुणो के आधार पर वह उत्कृष्ट बनता है।

बिंब चाहे जिस भी कोटि का हो, काव्य मे उसके बहुविध कार्य हैं—सवेदनात्मकता, अलकरण, प्रभविष्णुता, प्राणवत्ता, क्रमबद्धता, बाह्य जगत से भावात्मक सबध, अमूर्त भावो एव विचारो का मूर्तीकरण एव मर्मस्पर्शी भावो की अभिव्यक्ति। काव्य मे बिंब का अशेष महत्त्व है।

## पाद-टिप्पणियां

1 *Simple Image*—A word which arrouses of sensory perception, cold, bright, loud, bitter etc

2 *Abstraction Image*—A word which arouses no idea of sensory perception, truth, concept, idea etc

3. *Immediate Image*—An image fundamentally concerned with arousing ideas of touch, sound, sight, smell, taste, yellow, loud, rough etc

4 *Diffused Image*—An image concerned only indirectly with stimulating the senses or restricted in its appeal to no one sense—meeting, desire, parting, vigour etc.

5 *Abstract Image*—An abstraction which contrives to arouse ideas of sensory perception because of personification or similar devices—Truth, mercy, love etc

6 *Combined Image*—A combination of words containg more than one true image—cold as charity, accurate knife etc

7. *Complex Image*—A combination of words containing more than one true image—golden daffodils, bitter rice etc
8. *Combined abstract Image*—A combination of words containing one abstract image and no true images—Noble truth, just, mercy etc
9. *Complex Abstract Image*—A combination of words containing more than one abstract image, but no true image Faithful charity, sincere love etc
10. *Abstract combined and Abstract complex Image*—A complex or combined image in which the abstraction is of more importance than the image, in which the image or images merely qualify the abstraction. Golden accuracy, cold chaste charity etc

—'The Poetic Pattern', pp 90-91.

('काव्यात्मक बिंब' से उद्धृत)

११ 'सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व', पृ० २१६।
१२ वही, पृ० २२४-२२५।
१३. वही, पृ० २२७।
१४. 'काव्यात्मक बिंब', पृ० ७७।
१५ वही, पृ० ७८।
१६ वही, पृ० ८०-८१।
१७ वही, पृ० ८८-९०।
१८ 'काव्यात्मक बिंब', पृ० ९२-९४।
१९ 'काव्य-बिंब', पृ० ९।
२० डा० नगेन्द्र का वर्गीकरण 'काव्य बिंब' पुस्तक के 'स्वरूप और प्रकार' शीर्षक अध्याय का साराश है।
२१ 'आधुनिक हिंदी कविता मे चित्र-विधान', परिशिष्ट-१।
२२ 'जायसी की बिंब योजना', पृ० १७६।
२३. वही, पृ० १९४।
२४. वही, पृ० २०९।
२५. वही, पृ० २२३।
२६ 'काव्य-बिंब', पृ० ९।
२७ 'चिंतामणि', भाग २, पृ० १-२।
२८ वही, पृ० १।
२९ 'रसमीमांसा', पृ० ३४८।

७

# काव्य-बिंब का महत्त्व

काव्य के त्रिपक्ष हैं—स्रष्टा, ग्राहक एव भावक। काव्य का मूलाधार स्रष्टा है, वही काव्य का ग्राद्य पक्ष है, कविमानस मे ही समस्त रचना-प्रक्रिया होती है। यह मानसिक सर्जना जब साकार हो शब्दो मे रूपायित होती है तब काव्य का निर्माण होता है। काव्य-सृजन कवि के लिए मानसिक विलास नही, जीवनव्यापी अनुभवो, आवेगो, उद्वेगो, भोगो एव तनावो से मुक्त होने की विवशता है, सपूर्ण जीवन की, उसकी गतिशीलता की अभिव्यक्ति है।

मनीषी धारणाओ, प्रत्ययो की निर्गुण सृष्टि करता है—यह बौद्धिक सर्जना है। हृदय-प्रधान भावुक वर्ग भावना-प्रवाह मे अतस्थ रागो की अभिव्यक्ति को सर्वोपरि मानता है। क्रात द्रष्टा कवि अमूर्त प्रत्ययो एव अमर्याद भावनाओ के मध्य मे रहता है। यही बिंब-सृष्टि है जिसमे विवेक और औचित्य के शासन में उद्रिक्त राग रूपायित होते हैं। बिंब एक ओर सवेदनो की तरह रसप्लुत है तो दूसरी ओर प्रत्ययो की तरह सयमित एव व्यवस्थित। कार्ल ग्रूस ने बिंब के इस सश्लिष्ट रूप को स्पष्ट किया है।

"The image or appearance is midway between sensation and concept The image is full like sensation and regulated like the concept"

कवि की दृष्टि से इनका अशेष महत्त्व है। तर्कप्रवणता और यथातथ्यता से परे की अभिव्यक्ति के लिए सभाषण की असमर्थता का बोध कवि को बिंब-विधान की ओर उन्मुख करता है। इसके द्वारा ही वह तर्कसगतता से अतीत, अतिरिक्त विशेषताओ एव असगत गूढार्थो को सपूरित करने में सक्षम होता है। 'काव्यात्मक बिंब' के लेखक ने कवि की दृष्टि से इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा—"जहा तक कवि के हृदय मे भावोद्रेक का प्रश्न है, जहा तक उसके भावलीन होने की समस्या है—वह बिंबो की आधार-भूमि के बिना असभव है।"[1]

बिंबो के द्वारा कवि अपने सपूर्ण व्यक्तित्व को मुखर करता है। इतना ही नही रमणीयार्थ प्रतिपादन के रूप मे काव्य के सौंदर्यात्मक पक्ष को भी वह बिंबो के द्वारा प्रोद्भासित करता है। कविमानस के चेतन, अचेतन एव अर्ध-चेतन स्तरो से उद्भूत बिंब रमणीयता प्राप्त

करने के लिए 'धारणा बिंब' (Conceptual Image), 'ऐंद्रिय बिंब' (Sensual Image), 'आलबन बिंब' (Objective Image) आदि के वैशिष्ट्यो को स्वायत्त कर 'रमणीय बिंबो' (Aesthetic Images) मे व्यक्त होते हैं।

रस, अलकार, ध्वनि, रीति आदि सभी काव्य-निकषो की सार्थकता उनकी बिंबधर्मिता मे ही है। कवि चाहे रसागो की सम्यक् योजना मे प्रवृत्त हो या अलकरण की साज-सज्जा मे, चाहे ध्वनि की गूढार्थ व्यजना उसका अभीष्ट हो या व्यक्तिगत शैली का निखार, बिंब-निर्माण से ही वह सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति कर सकता है। कवि दृश्य काव्य के अभिनय, रग-मच, वेश-भूषा, दृश्याकन आदि की मूर्तता एव दृश्यता को बिंबो के माध्यम से ही सम्यक् रूपेण प्रस्तुत करता है। आतरिक अनुभूति एव बाह्य व्यजना के मध्य मे बिंब की मूर्तता है—बिंबो मे ही कवि का सारा मानस-जगत प्रत्यक्षीकृत होता है।

काव्य का लक्ष्य न अलकार है, न रस; न व्यजना है, न कथन की वक्रता—उसका लक्ष्य है मानव-जीवन की अनत विस्तृति का पुन आकलन व जीवन का सवेदनशील पुन सृजन। जीवन कोई अमूर्त प्रत्यय नही, विचारो का पुजीभूत स्तूप नही—वह एक गतिशील जीवत प्रवाह है, जटिल सकुल एव अनत ऊर्मियो का अथाह सागर है। ऐसे जीवन की अभिव्यक्ति के लिए रस, अलकार आदि एकागी दृष्टियो की असमर्थता उसे बिंब-विधान की शरण मे ले जाती है जिसमे रस की व्यक्तता, अलकरण की सुषमा, व्यजना की वक्रता, सगीत की ध्वनि साधना, शिल्प का सौष्ठव, चित्र का रगबोध, शैली की वैयक्तिकता, मच की गतिशीलता का सहज समाहार हो जाता है। बिंब ही कवि की इन समस्त वृत्तियो को एक व्यवस्था प्रदान करती है। प्रसिद्ध लेखक सार्त्र के अनुसार—"यदि अभिधात्मक शब्दो, मुखर विचारो या विशुद्ध प्रत्ययो के स्थान मे बिंब उभरते हैं तो उसे आकस्मिक आसगो का परिणाम नही कहा जा सकता—यह सदा ही, समाहित करने वाली एक विशिष्ट प्रवत्ति है जिसकी अपनी निश्चित अर्थवत्ता एव उपयोगिता होती है।"[2]

कहना न होगा कि कवि इसी विशिष्ट प्रवृत्ति से काव्य के आत्मपक्ष एव कलेवर पक्ष को सानुपातिक एव सावयविक सिद्धि प्रदान करता है। बिंब-सृजन कवि की सौंदर्यानुसधायिनी प्रतिभा है—इस मानस-निर्मिति मे ताल, लय, गति, विन्यास, सतुलन आदि सपूर्ण अगो सहित कवि-प्रतिभा का आविर्भाव होता है। बिंब कवि की शक्ति है, ऊर्जा है, उसके मानस की गति-शीलता है जिसके द्वारा वह रचनातर्गत मूल विचारो, सवेदनाओ और वृत्तियो का पुनराह्वान करता हुआ समग्र कृति की शक्ति एव सघटना मे योग देता है। काव्य-बिंब के मर्मज्ञ लेविस के शब्दो मे—"किसी कविता मे बिंब-दर्पण पक्ति की भाति भिन्न-भिन्न कोणो मे नियोजित होते हैं जिससे जैसे ही काव्य का मूल सवेदन आगे बढे, वह विभिन्न रूपो मे, नानाविध रूपो मे प्रतिभासित हो—प्रतिबिंबित हो। पर बिंब जादुई दर्पण होते हैं जो केवल मूल सवे-दना को ज्यो का त्यो नही झलकाते प्रत्युत उसे जीवन देते हैं, रूपविधा प्रदान करते है। वे काव्य की आत्मा को प्रत्यक्षता प्रदान करने की शक्ति रखते हैं।"[3]

बिंब के बल पर ही कवि मनीषी से, वैज्ञानिक से, धर्मोपदेशक से, समाज-सुधारक से आगे बढ जाता है। यही कवि का व्यावर्तक निकष है और यही उसके कातासम्मित उपदेशक रूप को सार्थक बनाता है।

काव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है—सहृदय सामाजिक, प्रबुद्ध पाठक या तन्मयीभवन योग्यता-सपन्न व्यक्ति जिन तक स्रष्टा अपने-बिंब-निर्माण को प्रेषित करता है। उत्कृष्ट एवं सफल बिंब का अतिम निकष यही लोक है। 'जे प्रबध नही बुध आदरही, ते स्रम वृथा बाल

कवि करहीं' कहकर कविर्मनीषी तुलसी ने मानो काव्य का एक शाश्वत मान उपस्थित कर दिया है। बिंबो के द्वारा पाठक अपने ऐंद्रिय बोध के साक्ष्य मे जीवन को पूर्णतया अनुभव कर पाता है। 'बिंब-रचना हमारी सहजात ऋजु भावना को तुष्ट करती है और हम अमूर्तता के धूमिल आकाश से ठोस धरती पर आश्वस्त भाव से उतर सकते है। एक ऐसे वास्तविक विश्व मे जो स्पष्ट है, इद्रियग्राह्य है, अमूर्त धारणाए प्रत्यक्ष सवेदनीय होकर सजीव एव प्रकाशित हो उठती हैं।"[४] बिंबो के द्वारा पाठक ज्ञान का रसात्मक अनुभव करता है—उस ज्ञान का जो दुर्ज्ञेय होने के कारण ज्ञानात्मक बोध से परे है। काव्य मे नियोजित बिंब केवल हमारे भावावेग को उद्वेलित करने नही आते—वे इसलिए भी नियोजित होते हैं कि हम अनुभवो के उन क्षणो को भी स्वायत्त कर सकें जो भावावेग मे स्पर्शित हो। बिंब इसलिए योजित होते हैं कि हमारी अनुभूतियो को उद्वेलित कर हमे विश्वजनीन भावना के सहोदरत्व का सद्य बोध करावें। बिंब परस्पर विरुद्धधर्मा पदार्थों के सानुरूप सश्लेषण के द्वारा हमारे मानस को रसात्मक आनद से परिप्लुत करता है। वर्ड्सवर्थ के शब्दो मे—"बिंब के द्वारा परस्पर विरुद्धधर्मा पदार्थों मे सानुरूपता का बोध होता है—उसी से हमारा मानस आनद की उपलब्धि करता है। यही हमारे मानस की क्रियाशीलता का अजस्र उत्स और प्रमुख पोषक है।"[५]

स्रष्टा एव भोक्ता, कवि एव सामाजिक का तादात्म्य काव्य की चरितार्थता है। साधारणीकरण की इस प्रक्रिया का मूल आधार काव्य-बिंब ही है। कवि अपनी भावनाओ क बिंबो मे प्रेषित करता है और सामाजिक उसका ग्रहण भी बिंब रूप मे करता है क्योंकि प्रत्येको कल्पनात्मक बिंब को विषय बाह्य विश्व देता है पर उसकी रागात्मकता कलाकार एव सामाजिक दोनो के व्यक्तित्व से ही आती है। किसी कृति को चरितार्थता तभी प्राप्त होती है जबकि उसका भावन एव उसकी व्याख्या को व्यक्तिगत स्पर्श मिले। हममे से प्रत्येक की अर्हता केवल भावन की ही नही होती अपितु कल्पना मे अर्थगर्भित सजीव बिंबो के निर्माण की भी होती है—यही कारण है कि काव्यानुशीलन मे सामाजिक बिंब ही ग्रहण करता है।

काव्य के सप्रेषण पक्ष के इस महत्त्व को सुधी समीक्षक आई० ए० रिचर्ड्स ने स्वीकार किया है—"मूल्य एव सप्रेषण के दो आधार-स्तभो पर काव्यालोचन का सिद्धात अवस्थित है। यह सत्य है कि सामान्यत कलाकार सप्रेषण का सचेतन प्रयास नही करता और उसका प्रमुख कर्म कृति को पूर्णता प्रदान करना है, यह भी सत्य है कि जिन विशिष्ट अनुभवो पर काव्य-मूल्य आधारित है उन्हें समूर्तित करने, उनमे ऐक्य स्थापित करने, उनका प्रतिनिधित्व करने मे कृति को सक्षम बनाना उसका प्रमुख लक्ष्य है, फिर भी इसमे सप्रेषण पक्ष के महत्त्व मे लेशमात्र भी न्यूनता नही आती। कृति को सपूर्णता प्रदान करने की प्रक्रिया मे ही सप्रेषण की अनत सभावनाए अतर्भुक्त हैं।"[६]

स्रष्टा अपनी कृति को ऐसी पूर्णता एकमात्र बिंबो के सहारे ही प्रदान करता है—कहना न होगा कि साधारणीकरण बिंबो के बिना सभव ही नही। सी० डी० लेविस लिखते है—"यदि कविता का अर्थ किसी सजीव की अभिव्यक्ति है—सजीव जो कवि-हृदय से नि सृत और पाठक के मानस तक सप्रेषित हुआ है तो वह सत्य की गरिमा से उद्भूत जीवित बिंबो के द्वारा ही सभव है।"[७]

बिंबो के इस वैशिष्ट्य का मूलाधार उनके अतराल मे पायी जाने वाली समस्वरता है। 'On the Sublime' के लेखक के अनुसार—"सौंदर्य एव माधुर्य के शवलित शब्दो, आशयों, पदार्थों को अनुप्राणित करनेवाली, हमारे शरीर एव रक्त के कण-कण को झकृत करनेवाली समस्वरता अपने स्वरो को अनेकानेक लयो से सवद्ध एव निबद्ध कर सामाजिक के

हृदय मे भी वक्ता के समानुरूप भावो का उन्मेष करती है और इस प्रकार श्रोता के तादात्म्य की भूमिका का निर्माण करती है।"[८]

स्पष्ट है कि बिंब काव्य के साधारणीकरण का एक अभिन्न अग है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का आवरण भग होता है और वह अपने को व्यापक समष्टिगत मानस के सम्मुख पाता है। बिंब कवि और पाठक के मध्य एक चिन्मय सेतु है जो कवि के अनुभूत सत्यो को रागात्मकता प्रदान कर सर्वजन सवेद्य बनाता है, लोकमानस को तरगित करता है।

काव्य का तृतीय पक्ष है—भावक या समीक्षक। समीक्षक का कार्य है काव्य-सृष्टि मे अतर्निहित सौदर्य को उद्घाटित करना। बिंबो के द्वारा समीक्षक स्रष्टा के समस्त व्यक्तित्व को समझ सकता है। बिंब कविमानस के चेतन-अचेतन स्तरो पर चलनेवाले चिंतन-प्रवाह या रागोद्वेलन को बाह्य जगत के जटिल एव सकुल अनुभवो के बीच उभारता है। कवि की सर्जनात्मक कल्पना से उद्भूत इन बिंबो के द्वारा ही समीक्षक कवि-प्रतिभा का, उसकी मौलिकता का, उसके जीवन-मूल्यो का, उसके महत् उद्देश्यो का, उसकी क्रातदर्शिता का आकलन करता है। कवि की शक्ति के साथ उसकी व्युत्पत्ति भी बिंबो के द्वारा प्रकट होती है—कवि की चतुर्दिक् व्यापिनी दृष्टि एव अनुभूति पुराण-इतिहास से, सस्कृति से, दर्शन से, प्रकृति के अनत असीम प्रसार से, बदलते जीवन के नये आयामो एव सदर्भों से नित्य नये बिंबो का रूपायन करती है—ये बिंब कवि के ज्ञान और अनुभव-विस्तार को दिखाते है।

आलोचक बिंबो के द्वारा यह समझता है कि कवि ने किस प्रकार काल के क्षणो को अमरत्व प्रदान किया है—जीवन के अछूते क्षितिजो मे प्रवश किया है। समीक्षक काव्य-बिंब को ही काव्य का निकष स्वीकार कर उसके प्रति पूर्ण न्याय कर सकता है, क्योकि रस काव्य का आत्मधर्म है, अलकार, रीति आदि काव्य के बाह्य पक्ष हैं, ध्वनि प्रतीयमान अर्थ का उद्घाटन करती है, वक्रोक्ति वैदग्ध्य प्रसूत भगिमा है, 'कला कला के लिए' निरुद्देश्य सर्जना का प्रलाप हो सकती है, 'कला जीवन के लिए' मात्र उपदेशात्मकता से ग्रस्त हो सकता है—इन सभी निकषो मे एकपक्षीय आग्रह होने के कारण काव्यालोचन के सम्यक् मान के रूप मे इन्हे स्वीकार नही किया जा सकता। बिंब ही वह निकष है जिससे समीक्षक काव्य को उसकी सपूर्णता मे व्याख्यायित कर सकता है।

बिंब का महत्त्व काव्य के तीनो पक्षो की दृष्टि से सर्वोपरि है। वह कवि की सर्जना है, पाठक का रागात्मक साधारणीकरण है, समीक्षक का सर्वाधिक समर्थ काव्य-निकष है—केवल सामयिक और युगीन साहित्य का ही नही, सनातन साहित्य का भी एकमात्र निकष यही काव्य-बिंब है अत काव्य मूलत बिंबात्मक सृष्टि है।

## पाद-टिप्पणियां

१ 'काव्यात्मक बिंब', पृ० २०२।

2. "If images appear in place of simple words, of verbal thoughts or pure thoughts, it is never the result of a chance association—it is always an inclusive and generise attitude which has a meaning and a use —'Psychology of Imagination,' p 156.

3 "The images in a poem are like a series of mirrors set at different angles, so that as the theme moves on, it is reflected in a number of

different aspects But they are magic mirrors, they do not merely reflect the theme, they give it life and form, it is in their power to make a spirit visible' —'The Poetic Image', p. 80.

4 ". . imagery pleases the simpler side of us ....and again it is a relief and assurance to descend from the clouds of the abstract to the solid world of things tangible, visible and audible. Concepts are enlivened and illumined by percepts —'The Style', p 165.

5 The pleasure which the mind derives from the perception of similitudes in dissimilitudes.. .. is the greates spring ot activity of our minds and their chief feeder.

—Wordsworth 'Literature and Criticism', p 69.

6 'Principles of Literary Criticism', p. 25-27

7 "If a poem is to express something living in the mind from which it comes and the minds to which it goes, it must do so by virtue of its truth as a living image "—'The Poetic Image', p 99

8. ".. ...a harmony which stirs up a variegated host of words, notions, things—of beauty, of melody—all things innate in us and of our blood—and which by commingling and setting in varied motions the notes which are its own, introduces the passion in the speaker in to the soul of those, who stand near him, marking who so ever hears take part there in "—'On the Sublime', p 141

इलियट के शब्दों मे—

"Permanent literature is always a presentation—either a presentation of thought, a presentation of feeling by a statement of events in human action or objects inexternal words"

—'The Sacred Wood'

# द्वितीय खंड

# उपोद्घात

हिंदी साहित्य की एक सहस्राब्द व्यापी अनवच्छिन्न परपरा मे भक्त महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के बाद 'प्रसाद' ही ऐसे सिद्ध सरस्वतीक कृती कलाकार हुए है जिनके पास आकर सुधी समीक्षक, भावुक भावक और काव्यानुशीलनाभ्यासवशात् विशदीभूत मनोमुकुर वाले तन्मयीभवन योग्यता-सपन्न सहृदय जन विमुग्ध ही नही हुए हैं अपितु उन्होने अनुभव किया है कि साहित्य समीक्षण के सभी मानदड यहा अधूरे काव्य के निकष अपूर्ण एव सिद्धात खडित-से हैं।

महाकवि तुलसी की कृतियो का अवगाहन करने वाले भावको ने 'भावभेद रसभेद अपारा' के रहस्य की मार्मिक अनुभूति की है। समीक्षको ने उच्छ्वसित हो अपनी समीक्षा-शास्त्र विषयक परिनिष्ठित उदात्त पदावली को कवि के लिए सादर समर्पित कर अपने को कृतार्थ अनुभव किया है। पर, फिर भी ऐसा लगता रहा कि प्रशसापरक विशिष्ट शब्दावली कवि की विराट् चेतना, उसकी उदात्त रसभूमि, महती मगल कामना एव युग-युग-व्यापी प्रभविष्णुता को उसकी समग्रता मे अभिव्यक्त नही कर सकी।

कुछ इसी तरह का अनुभव प्रसाद काव्य के सम्यक् मूल्याकन मे विद्वानो ने किया है। समीक्षक कभी मुग्ध होता है तो कभी क्षुब्ध, कभी स्पृहणीय सफलता को देखकर प्रशसा मुखर है तो कभी स्खलनो को देखकर तिक्त। पर प्रसाद की कृतियो मे कुछ ऐसा अप्रतिम रस-माधुर्य है, ऐसा अनूठा कलात्मक सौष्ठव एव विच्छित्तिमयी उदात्तता है कि अधीत, प्रशसा-कृपण—यहा तक कि आग्रही समीक्षक भी चाहे-अनचाहे उच्छ्वसित हो गये हैं। प्रसाद-काव्य के समीक्षण मे समीक्षाशास्त्र के सभी क्षेत्रो, निकायो और सप्रदायो का आश्रय किया गया, फिर भी आज का समीक्षक यह अनुभव करता है कि प्रसाद-काव्य के सम्यक् बोध के लिए, उसके सौंदर्योद्घाटन के लिए अभिनव दृष्टि, नूतन परिप्रेक्ष्य एव विशिष्ट जीवन-सदर्भ की आवश्यकता है।

खडी बोली की सपूर्ण काव्य-परपरा मे प्रसाद-काव्य की सर्वाधिक चर्चा-परिचर्चा होती रही है—और उनकी 'कामायनी' तो परस्पर विरोधी सम्मतियो, विपरीत वक्तव्यो, प्रतिगामी आलोचनाओ एव विविध दृष्टियो से सम्मानित-असम्मानित होती रही। आज तो

'कामायनी' इस युग का सर्वाधिक विवादास्पद महाकाव्य हो गया है। कवि पंत की दृष्टि मे 'कामायनी' मे अनेक स्खलन हैं, फिर भी•••"किंतु यह सब होने पर भी 'कामायनी' इस युग की एक अपूर्व, अद्वितीय महान काव्य-कृति है, इसमे मुझे संदेह नही। वह हमारे युग-प्रवर्तक प्रसाद का शुभ्र, शात सौंदर्य का पवित्र यश काय है, जिसे हिंदी-साहित्य मे और संभवत विश्व-साहित्य मे जरामरण का भय नही है।"[1]

कामायनी को एक विशाल फैंटेसी बताने वाले व 'श्रद्धावाद को ह्रासग्रस्त पूंजीवाद का, बरगलाने वाला एक जबर्दस्त साधन'[2] मानने वाले श्री गजानन माधव मुक्तिबोध को भी यह कहना पडा—"इस बात का श्रेय तो प्रसाद को देना ही पडेगा कि उन्होंने आधुनिक वास्तविकता के जीवन-तथ्य को उभारा और उन्हे इतने सशक्त रूप से प्रस्तुत किया कि वे बरबस हमारा ध्यान उन सचाइयो की ओर खीच लेते है जो हमारे समाज की दारुण वर्तमान वास्तविकता है।"[3]

कामायनी के काव्यात्मक सौंदर्य एव समन्वयात्मक जीवन दर्शन से अभिभूत महादेवी ने कामायनी को 'बुद्धि के आधिक्य से पीडित हमारे युग को प्रसाद का सबसे महत्त्वपूर्ण दान' माना है।[4]

'मिथक और स्वप्न' के रूप मे कामायनी की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने वाले डा० रमेश कुंतलमेघ लिखते हैं—"एक कृति के रूप मे कामायनी मे महान असफलताओ तथा महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठताओ और महत्तम संभावनाओ का संयोग हुआ है।"[5]

कामायनी के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक एव साहित्यिक महत्त्व को उसकी सर्वोपरि श्रेष्ठता का कारण मानने वाले डा० वेदज्ञ आर्य के अनुसार—"व्यक्ति चेतना के माध्यम से विश्व चेतना का भावसौंदर्य प्रतिष्ठित करना तथा रूपक के माध्यम से मानव-मन का विश्लेपण प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। यह प्राय, सर्वस्वीकृत मत है कि हिंदी मे तुलसी के 'रामचरितमानस' के पश्चात् कामायनी को ही सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है।"[6]

सुधाकर पाडेय प्रसाद को युग-प्रवर्तक कलाकार और उनकी कृतियो को मंगल-दीप मानते हैं—"प्रसाद जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के महानतम कवि, विचारक एव अनुपम साहित्य-स्रष्टा के रूप मे हमारे सम्मुख उपस्थित है जिनकी कृतिया अपने गुणधर्म के कारण संकल्पनात्मक रस-सिद्धि की धारा से लोक के शुष्क कूलो को हरा-भरा करने का प्रयत्न करती दीखती है। जैसे युग-प्रवर्तक कलाकार सैकडो वर्ष मे एकाध हुआ करते हैं जिनकी कृतियो के अक्षर मंगल दीप बनकर युग-युग तक जन-जन के मानस को तिमिर मे प्रभा की किरणो के स्पर्श से ज्योतिदान करते हैं।"[7]

डा० शम्भूनाथ सिंह के अनुसार "कामायनी मे सामंती पौराणिक मान्यताओ का सर्वथा परित्याग कर दार्शनिक और वैज्ञानिक आधार पर शाश्वत जीवन-मूल्यो की स्थापना की गयी है।"[8] तथा "यही विश्व संस्कृति की महती कल्पना कामायनी की सशक्त प्राणवत्ता है जो युग-युग तक मानव का अमर प्रकाश-स्तंभ बनाये रखेगी।"[9] श्री रामनाथ सुमन ने प्रसाद मे सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा का उन्मेष देखा—"प्रसाद जी निस्संदेह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थे।"[10] अपनी बौद्धिक महानता मे एक नयी सृष्टि करना यह उनका क्रम था।[11] डा० रामविलास शर्मा ने प्रसाद को वर्गहीन साम्य-युक्त समाज-व्यवस्था का समर्थक माना है।[12] श्री नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद को नये युग का निर्माता, नव्य दर्शन का उद्भावक सजग द्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ शक्तिवादी और आनंदवादी कवि माना है। उनके अनुसार "प्रसाद जी कोरी भावुकता मे डूबने वाले कवि नहीं थे, वे एक सजग द्रष्टा लक्ष्य और उपाय निरूपक

स्मृतिकार भी थे।···प्रसाद जी एक नये साहित्य युग के निर्माता ही नही, एक नयी शैली और नव्य दर्शन के उद्भावक भी हैं। उनमे युग की प्रगतिशीलता प्रचुर मात्रा मे पायी जाती है।[13] ·· मैं प्रसाद जी को हिन्दी का सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठ शक्तिवादी और आनदवादी कवि मानता हू।"[14] डा० प्रेमशकर ने प्रसाद को विश्व के शीर्ष कवियो मे स्थान देते हुए लिखा है—"प्रसाद का बहुमुखी व्यक्तित्व एक दार्शनिक एव कवि के सयोग से निर्मित है। प्रसाद के सपूर्ण कृतित्व पर एक विहगम दृष्टि डालने के पश्चात् उन्हे विश्व के शीर्ष कवियो के निकट स्थान देना पडता है।"[15] कामायनी को 'दोष-रहित, दूषण-सहित' मानने वाले कविवर दिनकर प्रसाद के रूप-चित्रण व नारी भावना पर मुग्ध है—"श्रद्धा का रूप-वर्णन अत्यत ऊचे धरातल की कविता है और उसे हम केवल कामायनी का ही नही प्रत्युत समग्र विश्व के काव्य का उज्ज्वल अश कह सकते हैं।·· समस्त विश्व साहित्य मे नारी को लक्ष्य करके इतनी आकुल पक्तिया कही लिखी गयी हैं या नही, मैं नही जानता।"[16] डा० इंद्रनाथ मदान ने 'कामायनी' की असफलता को एक असाधारण असफलता माना है।[17]

इन सब विद्वानो की समीक्षाओ को पढने के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्रसाद काव्य की वह कौन-सी अतर्व्याप्त आभा है जिसकी प्रखरता एव उदात्तता काव्यात्मक त्रुटियो एव विचारात्मक अपूर्णताओ को ग्राह्य हा नही, स्पृहणीय बना देती है ? वह कौन-सा वैशिष्ट्य है जिसने प्रसाद की कृतियो को आतरबाह्य गरिमा प्रदान की है। डॉ० नगेन्द्र ने भी अपनी रचना मे इस प्रश्न को उठाया है—

"पत और दिनकर जैसे काव्य मनीषियो के लेख पढने के बाद हिन्दी का प्रबुद्ध विद्यार्थी प्रश्न करता है कि इन दोषो के रहते हुए भी 'कामायनी' आधुनिक काव्य की सर्वोच्च उपलब्धि क्यो है ?"[18] यही प्रश्न डा० श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भी उठाया है—"लेकिन इतनी बडी आलोचना के बाद फिर कौन-सी विवशता है जिससे 'कामायनी' को आधुनिक काव्य की एक श्रेष्ठ और स्पृहणीय कृति के रूप मे माना जाता है।"[19]

इस प्रश्न का उत्तर प्रसाद मे मधुचर्या का अतिरेक देखनेवाले आचार्य श्री रामचद्र शुक्ल मे हमे साकेतिक रूप मे मिल जाता है—"श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा इत्यादि को अलग-अलग लें तो हमारे सामने बडी ही रमणीय, चित्रमयी कल्पना, अभिव्यजना की अत्यत मनोरम पद्धति आती है।·· स्थान-स्थान पर मधुर, भव्य और आकर्षक विभूतियो की योजना का तो कहना ही क्या।"[20] डा० नगेन्द्र ने कामायना के प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन और वास्तुकौशल के अनेक छिद्रो को देखा है पर साथ ही यह भी माना है कि प्रसाद की समग्र परिकल्पना इतनी उदात्त और उसका आयाम इतना विराट् है कि अपूर्व प्रातिभ ऐश्वर्य के बिना वह सभव ही नही हो सकता था।"[21]

सत्य तो यह है कि अपने प्रातिभ ऐश्वर्य, रागात्मक उन्मेष एव विराट् कल्पना से प्रसाद ने 'कामायनी' मे जिन बिंबो की सृष्टि की है उनसे भावुको को रागात्मक आकर्षण एवं मनीषियो को बौद्धिक आमत्रण मिलता है। बिंब-सृजन की अपूर्व क्षमता ने ही प्रसाद काव्य और विशेषकर 'कामायनी' को "रत्नच्छाया व्यतिकर" बनाया है। डा० नगेन्द्र ने भी कामायनी के बिंब ऐश्वर्य को स्वीकार किया है—"'कामायनी' मे कल्पना का अपूर्व ऐश्वर्य है, फलत. उसमे स्वतत्र बिंब-विधान अन्य महाकाव्यो की अपेक्षा कही अधिक है।'[22]

रामस्वरूप चतुर्वेदी भी 'कामायनी' की स्पृहणीयता का कारण उसके बिंब-विधान को मानते हैं—"इस समस्या का हल प्रसाद के अप्रतिम बिंब-विधान मे पाया जाता है। वर्णन की भाषा काव्य-भाषा का प्राथमिक स्तर है और बिंब-गठन भाषा का अधिकतम

सर्जनात्मक स्तर है।"[२३]

स्पष्ट है कि प्रसाद काव्य की सुषमा, रमणीयता, मुग्धकारिणी ऊर्जा एव उसकी पदलालित्यमयी रसपेशल व्यंजकता का अधिकाश श्रेय उनकी बिंब-सर्जना की असाधारण क्षमता को है। प्रसाद के बिंबो मे भावो का स्फुरित वेग है, नवीन भगी है, मौलिकता है, गठनात्मक सामजस्य है, औचित्य है और प्रेषणीयता की अपूर्व शक्ति है। 'कामायनी' मे बिंबो की यह अप्रतिम आभा अगना के अवयवो के सौंदर्य से भिन्न लावण्य की भांति सर्वत्र प्रकाशित है—महाकाव्य आद्यत इसी लावण्य से मडित है।

## पाद-टिप्पणियां

१ 'युग-प्रवर्तक जयशकर प्रसाद' पुस्तक मे 'यदि मैं कामायनी लिखता' शीर्षक निबंध, पृ० ६६।
(सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार)
२ गजानन माधव मुक्तिबोध 'कामायनी एक पुनर्विचार', पृ० १२ (हिमाशु प्रकाशन, जबलपुर)।
३ वही, पृ० १३५।
४ सपादिका, निर्मल तालवर 'प्रसाद', पृ० ३८ (साहित्य प्रतिष्ठान, आगरा)।
५ डा० रमेश कुतलमेघ 'मिथक और स्वप्न कामायनी—की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका', 'आमुख' से, पृ० ४ प्रथम्, रामबाग, कानपुर)।
६ डा० वेदश आर्य 'कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली', प्रस्तावना से, पृ० १० (इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद)।
७ सुधाकर पाडेय 'प्रसाद की कविताए', पृ० ३६३ (हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी)।
८. डा० शम्भूनाथ सिंह 'हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास', पृ० ५६४ (हिंदी प्रचारक, पुस्तकालय, वाराणसी)।
९ वही, पृ० ६६६।
१० रामनाथ सुमन 'कवि प्रसाद की काव्य साधना', पृ० ५७१ (छात्र हितकारी पुस्तकालय, दारागज, प्रयाग)।
११ वही, पृ० २७३।
१२ डा० रामविलास शर्मा 'जन भारती' (कलकत्ता), प्रसाद-अक, भाग २, पृ० ६६।
१३ नददुलारे वाजपेयी 'जयशकर प्रसाद', भूमिका से, पृ० २ (भारती भडार, इलाहाबाद)।
१४ वही, पृ० १८।
१५ डा० प्रेमशकर 'प्रसाद का काव्य', पृ० ५१८ (भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद)।
१६ दिनकर 'पत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ० ६८ (उदयाचल प्रकाशन, पटना)।
१७ स० डा० इद्रनाथ मदान 'कामायनी मूल्याकन और मूल्यांकन', पृ० २०८ (नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद)।
१८ 'कामायनी के अध्ययन की समस्याए', पृ० ७ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली)।
१९ 'कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन', पृ० १६६।
२० 'रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (नागरी प्रचारिणी सभा)।
२१ डा० नगेन्द्र 'कामायनी के अध्ययन की समस्याए', पृ० ११।
२२ वही, पृ० ७।
२३ 'कामायनी मूल्यांकन और मूल्याकन', पृ० १६६।

# १
# प्रसाद-काव्य के बिंब

## मूल संवेदना

महाकवि प्रसाद की सिसृक्षा का मूल उत्स क्या है ? कौन-सी वह मूल सवेदना है जिसने उनके सपूर्ण सृजन को—उनकी उत्कृष्ट बिबधायक दृष्टि-सरणि को प्रभावित ही नही, उन्मेषित किया है ।

प्रसाद-काव्य की मूल सवेदना को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रसाद के काव्य सबधी चिंतन को उसकी सपूर्ण गहराई के साथ समझें।

प्रसाद के लिए काव्य सर्जनात्मक विलास नही—उनका सपूर्ण जीवन-दर्शन है। अपने प्रारभिक कवि जीवन मे उन्होने अनुभव किया—"शृगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तिया शिथिल तथा अकुला गयी हैं—इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओ की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय सगीतमयी वृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भग करने वाली, आनद बरसाने वाली, धीर-गंभीर पदविशेषकारिणी, शातिमयी कविता की ओर हम लोगो को अग्रसर होना चाहिए।"[1]

मानव-मात्र मे आनद की प्रतिष्ठा, मानव-जीवन को समुन्नत प्रौढ-सुडौल व प्रगतिशील बनाना, कलासुलभ आनद प्रदान करके मानव हृदय को सस्कृत एव परिष्कृत बनाना—इन्ही को प्रसाद ने अपना कविधर्म माना और चिंतन की प्रौढता तथा जीवनानुभव की व्यापकता के साथ-साथ काव्य का यही स्वरूप आगे चलकर गभीर, उदात्त और व्यापक हो गया ।

'काव्य' आत्मा की सकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका सवध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नही है । वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है । विश्लेषात्मक तर्कों और विकल्प के मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय के रूप मे अभिव्यक्त होती है, वह नि सदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण श्रेय और प्रेय दोनो से परिपूर्ण होती है।[2] आत्मा की मननशक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य मे सकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है। •
यह असाधारण अवस्था युगो की समष्टि अनुभूतियो मे अतर्निहित रहती है क्योकि सत्य अथवा

ध्येय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह शाश्वत चेतना है या चिन्मयी ज्ञानधारा है जो व्यक्तिगत स्थानीय केंद्रों के नष्ट होने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है।[३]

प्रसाद की काव्य-संबंधी यह धारणा उदात्त एवं असाधारण दार्शनिक पीठिका, लोक मंगल की विराट् भूमि, देश व काल-निरपेक्ष मूल्यों के व्यापक क्षेत्र में स्थित है—जो उनके अध्ययन-प्रिय, मननशील स्वभाव में एवं मानव मात्र के प्रति व्यापक सहानुभूति की भावना से निरंतर सुदृढ एवं संस्कारित होती रही। यही भवभूति की 'अमृता कला' और गीता का 'वाङ्मय का तप' है।[४]

प्रसाद रसवादी, आनंदवादी एवं आभ्यंतरिक वस्तु के विश्वासी थे। उन्होंने बुद्धिवादियों की वाङ्मयी धारा का, शैली व शिल्प की व्यावहारिकता का, सूक्ति, अलंकारवादिता, वाग्विकल्प और वक्रोक्ति आदि का बराबर प्रत्याख्यान किया—"आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति, जो मानव-ज्ञान की अकृत्रिम धारा थी, प्रवाहित रही। काव्य की धारा लोकपक्ष से मिलकर अपनी आनंद साधना में लगी रही। ''इधर विवेक या बुद्धिवादियों की वाङ्मयी धारा, दर्शनों और कार्यपद्धतियों तथा धर्मशास्त्रों का प्रचार करके भी जनता के समीप न हो रही थी।' 'इन लोगों के पास रस जैसी आभ्यंतर वस्तु नहीं थी। आलंकारिकों के काव्य शरीर या बाह्य वस्तु से साहित्यिक आलोचना पूर्ण नहीं हो सकती थी।"[५]

प्रसाद जी पूर्णतः रसवादी थे और उनकी रस-दृष्टि अत्यंत उदात्त थी। डा० रामेश्वर खंडेलवाल ने उनकी एकांत रसवादी दृष्टि की चर्चा की है—"शैव मत में सुख-दुःख दोनों को सम मानकर द्वंद्वात्मक जीवन के बीच आनंद में मग्न रहने की जो साधना है, वह प्रसादजी के लिए अत्यंत आकर्षक है और उनकी दृष्टि में इसी साधना की व्यापक भूमि पर ही सच्चे साहित्यिक आनंद या रस की सृष्टि संभव है। कल्पना, रस, आनंद, सौंदर्य आदि उपकरणों का प्रसाद-साहित्य में जो प्राचुर्य है उसका रहस्य इसी मूल दृष्टि से समझा जा सकता है।"[६]

प्रसाद की रसविषयक दृष्टि आनंदवर्धन की अपेक्षा अभिनवगुप्त के अधिक समीप है, जहां रसवाद अपने प्रकृत पथ से किंचित् मात्र भी नहीं हटता—दूसरे बुद्धिवादी संप्रदायों से समझौते का स्वर उसमें बिलकुल भी नहीं रहता। अभिनवगुप्त ने आनंदवर्धन की व्याख्या करते हुए अभेदमय आनंद-पथ वाले शैवाद्वैतवाद के अनुसार साहित्य में रस की जो व्याख्या की है, उसे ही प्रसाद ने अपना काव्यधर्म एवं कविकर्म स्वीकार किया।

प्रसाद के संपूर्ण काव्य-सृजन में रमणीयता है, उसके पीछे एक जिज्ञासा का भाव है। वस्तुतः इस जिज्ञासा के कारण ही कवि की शृंगारी भावनाएं इतनी परिष्कृत रह सकी हैं। जीवन एवं साहित्य को एक श्रेष्ठ प्रज्ञात्मक भित्ति प्रदान करना ही "प्रसादजी की एक बड़ी भारी विशेषता है।"[७]

प्रज्ञात्मक भित्ति, भावात्मक उन्मेष, व्यक्तित्व की निरंतर परिष्कृति, जिज्ञासा, दार्शनिक चिंतना, करुणा व आनंदवादी भावना, मानवता में अडिग आस्था—ये ही वे तत्त्व हैं जिनके ऊपर प्रसाद-काव्य टिका है। इन्हीं के कारण वे काव्य में मानव-जीवन के कालस्पर्धी चित्र दे पाये हैं।

प्रसाद के लिए काव्य भावोच्छ्वास नहीं, 'दुःखदग्ध जगती' को आनंदपूर्ण स्वर्गिक जीवन में रूपांतरित करने का एक सतत, सायास प्रयास है। मानव-मात्र के आनंद एवं मंगल की आकांक्षा से प्रसाद का सारा साहित्य अनुप्राणित है। "प्रेम, करुणा का प्रथम चरण अंत में मानवता के शृंगार में लग जाता है।"[८]

प्रसाद सकल्पात्मक मौलिक अनुभूति की तीव्रता को ही सम्यक् अभिव्यक्ति का एकमात्र प्रेरक मानते हैं[९] और प्रसाद की बिंब योजना की मूल सवेदना इमी सकल्पात्मक मौलिक अनुभूति से उन्मेपित है। "प्रसाद की कवि-चेतना वैराग्य-विषाद और अनुराग आह्लाद की एक अजीब रगस्थली-सी है। उसका वैराग्य अधिक मूलभूत है (यद्यपि इतनी विलासी ऐश्वर्यमयी कल्पना छायावादी कवियो मे किसी को प्राप्त नही)—जिसमे नीलगगन की भाति अनुराग के फूल खिलते और विलीन हो जाते है। प्रसाद का विराग व्यक्तिगत अनुभूति और सास्कृतिक अनुभव का अविच्छेद्य यौगिक है—यही उसके अनुराग क्षणो को, विलास-वृत्ति को भी सौंदर्य-अर्थ और एक पवित्र प्रभावमयी गरिमा देता है।"[१०]

## बिंबो का क्रमिक अध्ययन

प्रसाद-काव्य चित्रो से समृद्ध है। 'लहर' और 'कामायनी' मे काव्य-बिंबो का जो ऐश्वर्य और सपदा है, स्वानुभूतिक विवृत्ति की जो अपूर्व व्यजकता है—उनमे भावावेश की आकुल, व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, भाषा की रसात्मक वक्रता, सूक्ष्म ध्वन्यात्मकता, रमणीय प्रतीकात्मकता, कोमल पद-विन्यास आदि का जो अपूर्व वैभव है—उसका प्रारभ कवि की आरभिक रचनाओ के अस्पष्ट, धूमिल, भावबोझिल एव असफल बिंबो से होता है।

प्रसाद की आरभिक रचनाओ मे परपरागत इतिवृत्तात्मकता है, अलकारप्रियता है, प्राचीन के प्रति स्पष्ट मोह है—पर यहा भी कवि अपनी मूल सवेदना के प्रति सजग है, व्यक्तित्व के विकास का मार्ग खोज रहा है, चयन की व्याकुलता उसमे है। कवि प्रेम व सौंदर्य से सिक्त होता है, कालिदास की रमणीयता एव लालित्य-विधान पर मुग्ध होता है, जीवन के गहन विषाद मे डूबता है, भक्ति की भावनाए उसे आमत्रित करती है, पर साथ ही चारो ओर का परिवेश मूर्त यथार्थ बनकर कविमानस को झकझोरता है। इन सबके भीतर उसका व्यक्तित्व व काव्य प्रभातकालीन सूर्य के समान धीरे-धीरे विकसित होता है। डा० प्रेमशकर के शब्दो मे—"प्रसाद ने यद्यपि जीवन मे उत्थान-पतन देखे थे किन्तु वे शात प्रकृति के व्यक्ति थे। उनका जीवन गेटे अथवा निराला की भाति क्रातिकारी व विद्रोही नही था। यही कारण है कि अपनी आरभिक रचनाओ की प्रेरणा उन्होने परपरा और युग से प्राप्त की थी। प्रसाद उस प्रभातकालीन सूर्य के समान थे जो धीरे-धीरे विकसित होकर ससार को प्रकाश प्रदान करता है। उनके प्रत्येक चरण मे एक नवीनता और प्रौढता रहती है।"[११]

प्रसाद के इस विकास का परिचय 'इन्दु', 'जागरण', 'हम' आदि मे प्रकाशित उनकी रचनाओ से ही होता है। आरभिक, परपरागत, धार्मिक भक्ति की कविताए वस्तुत उनको आगे ले जाने का सोपान हैं। उनके व्यक्तिवाद का विकास क्रमश सार्वभौमिक स्तर पर हो जाता है जहा वह जड़-चेतन सबमे अपनी भावना को आरोपित करने मे सक्षम होता है। अध्ययन और जीवनानुभव के द्वारा प्रसाद अपने काव्य-विकास के प्रौढतम सोपान पर पहुचते है—"अध्ययन के द्वारा कवि को दर्शन का ज्ञान होता है। अनुभव के द्वारा वह एक नवीन जीवन दर्शन का निर्माण करता है और यही प्रसाद का प्रौढतम चरण है। जातीयता, भक्ति, राष्ट्रीयता सभी कुछ पीछे छूट जाता है—वह आदर्श रचना मे उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार एक महान् कलाकार की भाति वे अपनी ही भूमि मे अपना बीज डालते है। सभी धर्म मे कवि धर्म तिरोहित हो जाते है। प्रेम, करुणा का प्रथम चरण अंत मे मानवता के शृगार मे लग जाता है।"[१२]

प्रसाद-काव्य मे उनके विकास की दो स्पष्ट भूमिकाए हैं—'व्यक्ति' प्रसाद का चिंतन

और अनुभव शैव दर्शन मे सुंदर, मधुर और सामरस्य के तत्त्व पाकर आनंद की ओर मुड़ा है।"[13] 'आसू' मे भी जहा कवि ने व्यक्तिगत पीडा से आक्रात हो आसुओ की सृष्टि की है वही उसका परिहार होने पर वह व्यक्ति से ऊपर उठकर मगल सृष्टि की रचना का भाव उद्योग करता है—सब पर आनद-वर्षा करने के लिए सजग प्रयत्न करता है। इसी की पूर्णाहुति आगे चलकर कामायनी के रूप मे होती है।

दूसरी ओर कवि प्रसाद का चिंतन और अनुभव अपनी नव्यतर मानवता को खोजता हुआ एक ऐसे सपूर्ण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करता है जो जीवन के बीच सघर्षों एव द्वद्वो से जूझता हुआ उनके समाधान का मार्ग निकालने मे समर्थ होता है। यही कारण है कि प्रसाद मे कालिदास की उज्ज्वल शृगार दृष्टि एव भवभूति की अनुभूति-सान्द्रता हमे मिलती है।

प्रसाद-काव्य के बिंबो का विकासात्मक अध्ययन उनके भावात्मक एव कलात्मक उत्कर्ष का ही अध्ययन है, अत यह समीचीन होगा कि हम प्रसाद-काव्य के विकास-क्रम को समझें। 'प्रेम पथिक' मे प्रसाद ने प्रेम की एक आदर्शात्मक परिभाषा प्रस्तुत की है और उसे एक सार्वभौमिक स्वर प्रदान किया है। 'प्रेम पथिक' का यही आदर्श प्रेम 'कामायनी' के आनंदवाद मे परिणत होकर समस्त प्रसाद-साहित्य की आत्मा बन जाता है। डा० प्रेमशकर ने प्रसाद के विकास को स्पष्ट किया है—" 'प्रेम पथिक' मे प्रेम और 'करुणालय' मे करुणा के प्रतिपादन ने कवि दर्शन पर प्रकाश डाला। 'झरना' मे प्रथम बार प्रसाद का व्यक्तित्व मुखर हुआ। चित्राधार का कवि केवल प्रकृति को ही जिज्ञासा की दृष्टि मे देखता था। झरना मे यही जिज्ञासा मानव तक चली आती है। 'झरना' का कवि अधिक गहराई मे उतरता दिखाई देता है। वह चिंतन के द्वारा जीवन के कुछ सत्य जान लेता है जिनका प्रयोग मगलमय हो सकता है। रूप के बाह्य आकर्षण की सुषमा तक जाने का प्रयत्न 'झरना' मे चल रहा था उसका पूर्ण विकास 'आसू' मे मिलता है। 'आसू' के चित्रो का सृजन अधिक विस्तृत आधार पर हुआ है। अतर का बाह्य जगत के साथ सामजस्य स्थापित हो जाता है। 'लहर' का कवि यौवन का झझावात और जीवन की विषमता देख चुका था। वह व्यक्तिगत सुख-दुःख मे डूब जाने का अधिकार छोड देता है। वह अब भी प्रेम करना नही छोडता—किंतु किसी व्यक्ति को स्नेह देने वाला प्रणयी ससार-भर के प्राणियो पर रीझ उठा है।"[14]

वाजपेयी जी प्रसाद के विकास-क्रम को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"आरभिक पद्यो मे अतीत की सुखद स्मृतियो की हल्के विषाद मे भरी प्रतिक्रिया दिखाई देती है; साथ ही उनमे यौवन और शृगार की अतृप्त अतिशयता भी लगी हुई है। 'चित्राधार' और 'काननकुसुम' के छाया संकेतो मे इन्ही दबी भावनाओ का विकास मिलता है और 'झरना' की 'छोडो मत यह सुख का कण है, आदि पक्तियो मे इसी की गूंज है। 'आसू' के कवि का यह वैयक्तिक पक्ष भी पूरी तरह उभर आया है, परतु इसके साथ कवि की एक अभिनव दार्शनिकता उतनी ही प्रभावशालिता के साथ काव्य का अग बन गयी है। उद्दाम शृगारिक स्मृतियो के साथ सपूर्ण समाधानकारक दार्शनिकता 'आसू' की विशेषता है। यह दर्शन शासित प्रेम-गीति नयी कल्पना तथा नये काव्यारण का योग पाकर युग की एक प्रतिनिधि कृति हो गयी है। 'लहर' मे अधिक परिष्कृत सौंदर्य-चित्रण और सयमित भावना-धारा है।"[15]

'प्रेम पथिक' के सौंदर्य-प्रेमनिधि से 'कामायनी' के आनद-अबुनिधि की तुलना प्रसाद के विकास को स्पष्ट करती है।[16] यद्यपि 'आसू' तक इसके स्पष्ट सकेत नहीं परतु 'लहर' मे मानस की लघु लहरों के रूप मे वह दुःखमय बाह्य जगत का आनदमय अतर्जगत से मेल कराती है। 'कामायनी' मे यही 'लघु लोक लहर' आनद अबुनिधि मे विराट् प्रतीकत्व पा

जाती है। 'लहर' का यह मानव-प्रेम उनके आत्मपरक व्यक्तित्व को विराट मानव सत्ता के शुभचिंतक के रूप मे प्रस्फुटित करती है।

अस्तु, 'लहर' तक आते-आते प्रसाद की कविता मे क्रांतिपूर्ण परिवर्तन हुआ। अनुभूति की प्रौढता, विचारो की गभीरता और कल्पना की व्यजना ने उनके बिंबो को श्रेष्ठता प्रदान की। अनुभूति की गहन विशालता, जीवन के व्यापक अनुभव, अध्ययन की शक्ति, परिस्थितियो की चुनौती, गभीर चिंतन, रसाभिनेशी दृष्टि—इन सबके भीतर से प्रसाद-काव्य के बिंब अधिक से अधिकतर उभरते गये है, स्पष्ट एव सुष्ठु होते गये हैं—चित्रो मे क्रमश दीप्ति, सुगठन, सामजस्य एव औचित्य आता गया है। आरभ के अस्पष्ट धूमिल एव गतिहीन जड चित्रो का प्रनिफलन उदात्त व श्रेष्ठ बिंबो मे होता है—'लहर' और 'कामायनी' मे आकर तो प्रसाद ने बिंब-सर्जना के अभ्रभेदी शिखरो का स्पर्श किया है। प्रसाद की इस यात्रा पर हम विस्मय-विमुग्ध होते है—कहा प्रारभ के चित्र-मात्र शब्दग्रथन, फिर अस्पष्ट अनुभूतियो को मुखरित करने की आकुलता और अत मे अनेक वर्णी चित्रो का प्राण वेग से भरा रससिक्त ऐश्वर्यवान रूप। शैली और शिल्प के अभिनव शिखरो का यह आरोहण प्रसाद का अपना वैशिष्ट्य है।

प्रसाद के बिंब-सृजन के इस विकास का अध्ययन हम यद्यपि कृतियो के आधार पर स्पष्टतया नही कर सकते क्योकि अनेक बार प्रारभिक कृतियो मे भी उत्कृष्ट बिंब मिल जाते हैं, फिर भी साधारणतया हम इन्हे तीन वर्गों मे विभाजित कर सकते है

(क) आरभिक रचनाओ मे बिंब 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्त्व' तथा 'प्रेम पथिक'।

(ख) मध्यवर्ती रचनाओ मे बिंब 'झरना' तथा 'आसू'।

(ग) अतिम रचनाओ मे बिंब 'लहर' और 'कामायनी'।

## (क) आरभिक रचनाओ मे बिंब

यह प्रसाद की अभिव्यक्ति का प्रथम चरण है और यहा पर प्रसाद पारपरिक इतिवृत्तात्मकता एवं अभिधात्मकता से आगे नही बढ सके हैं। इन चित्रो मे प्रसाद की मौलिक कल्पना एव कारयित्री प्रतिभा के दर्शन कम मिलते हैं। भावात्मक उत्कर्ष भी नही है। सारा का सारा आरभिक काव्य गद्यवत् इतिवृत्तात्मक कथन मात्र लगता है—शैली व शिल्प मे कही कोई नवीनता नही लगती। छायावाद की व्यजकता, लाक्षणिकता एव रमणीयता का यहा अभी प्रस्फुटन नही—भाषा मे अभिधा के स्तर से आगे बढने की शक्ति नही। चित्रात्मकता का तो सर्वत्र अभाव ही दिखाई देता है, ऐसा लगता है कि काव्यबिंब के सही अर्थों मे केवल कुछ विरल पक्तियो को ही ग्रहण किया जा सकता है। जैसे—

बैठे-बैठे वन शोभा थे देखते—<br>
अपनी लीलाभूमि, सुगौरव कुज की।<br>
सालुम्वापति आये, अभिवादन किया।<br>
आर्यनाथ ने कहा—'कहो सर्दारजी,<br>
समाचार है कैसा अब मेवाड का।'

(महाराणा का महत्त्व)

प्रारभ से अत तक सीधा गद्यवत् कथन है। राणा प्रताप बैठे हुए शोभा देखते हैं और सालुम्वापति आकर अभिवादन करते है। द्विवेदी-युग की विशेपता से भी रहित केवल कोरा

कथन मात्र ही लगता है—मानो कविता ही नही बनी ।

नीरव नील निशीथिनी
नोखी नारि निहारि ।
विपति विदारी वीरवर
बोले वचन विचारि ।

(चित्राधार, अयोध्या का उद्धार)

चित्राधार मे 'अयोध्या उद्धार' मे उद्धृत ये पक्तिया मिथ्या अनुप्रास के आडबर से बोझिल हैं—सारा जडवत् निष्प्राण है । भावो की ऊर्जा का स्पर्श नही, केवल स्फीति मात्र है ।

दिनकर अपनी किरण-स्वर्ण से रजित करके
पहुँचे प्रमुदित हुए प्रतीची पास सँवर के
प्रिय सगम से सुखी हुई आनद मनाती
अरुण-राग-रजित कपोल से शोभा पाती ।

चित्र नही बना है पर कवि मे कुछ कहने की अकुलाहट है । ऐसा लगता है कि सध्या के चित्र से कवि मुग्ध है और उसकी लालिमा मे उसे गालो पर लज्जा की लाली का आभास हुआ है । दिनकर का प्रतीची के पास स्वर्ण किरण से रजित होकर पहुचने मे सध्या समय नायक का नायिका के पास पहुचना ध्वनित है । 'किरण स्पर्श से रजित' मे सवरने की बात सौष्ठव से आई है । अरुण रागरजित कपोल की लज्जारुणिमा सूक्ष्म झकृति के साथ व्यजित हुई है । 'लाली बन सरल कपोलो की' की मानो यह भूमिका है ।

प्राय लोग कहा करते है—
रात भयानक होती है ।
घोर कर्म भीमा रजनी के
आश्रय मे सब होते है ।
किंतु नही, दुर्जन का मन
उससे भी तममय होता है ।
जहाँ सरल के लिए
अनेक अनिष्ट विचारे जाते हैं ।

(प्रेम पथिक)

यहा प्रसाद, अधेरी रात मे होने वाले दुष्कृत्यो और मनुष्य की मानसिक कुरूपताओ को एक-साथ रखकर व्यतिरेक के द्वारा मनुष्य के भीतर चलने वाले कुचक्र का नग्न चित्र खीचना चाहते हैं—पर, यह काव्य विरहित, भावशून्य, जड उपदेशात्मकता मात्र लगती है । गद्यवत् कथन के कारण काव्य का स्वरूप उभर ही नही पाया है—न तो यहा कातासम्मित उपदेश है, न सृजनात्मक कल्पना और न ही अभिव्यक्ति लाघव ।

स्पष्ट है कि प्रसाद की प्रारभिक रचनाओ मे अभिव्यक्ति की वक्रता, बिंबो की चारुता, शब्दो का सौष्ठव व अनुभूति की गहनता का एक अभाव-सा है । पर फिर भी इन्ही रचनाओ मे कुछ पक्तिया ऐसी है जिनमे हमे प्रसाद के आनेवाले कवि रूप की पदचाप सुनाई पडती है । इन विरल पक्तियों मे भावना की वह विकल गभीरता है जहा हम हठात् रुक जाते हैं, मुग्ध होते हैं, सोचते हैं—उन्हे पढते हैं, फिर पढते हैं और उनमे डूबकर रसमग्न होते हैं ।

'प्रेम पथिक' खड काव्य मे प्रसाद ने प्रेम की उदात्त, उत्सर्गशील प्रकृति का आदर्शात्मक निरूपण किया है। जीवन का उद्दाम वेग वहा नही है, सौदर्य व प्रेम का मुग्धकारी चित्र भी नही—सीधे-सादे शब्दो मे प्रसाद प्रेम की प्लेटोनिक व्याख्या करते चलते है। पर, उसी काव्य की कुछ पक्तिया इतनी मार्मिक बन पडी हैं कि वहा आकर हम शब्द स्फीति, कुतूहल वर्धक उपमाए, नीरस कथन, कल्पना का अभाव—सब कुछ जैसे भूल जाते है। यहा पर जीवन की गहन, सान्द्र अनुभूति वक्रता एव चित्रात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुई है—

इस पथ का उद्देश्य नही है
श्रान्तभवन मे टिक रहना।
किंतु पहुँचना उस सीमा तक
जिसके आगे राह नहीं।
(प्रेम पथिक)

प्रसाद के सपूर्ण जीवन-दर्शन का अतिम लक्ष्य इसमे है—एक पथिक की अतहीन यात्रा जहा विश्राम के स्थल नही। अनत पथ का अविश्रात यात्री जो कही भी बीच मे रुकना नही चाहता। अपने लक्ष्य की ओर अनन्य अव्यभिचरित भाव से बढते जाने वाला एक पथिक। मनुष्य की यही जययात्रा प्रसाद-काव्य का प्राण है जिसकी परिणति वे कामायनी के मनु मे कर सके हैं। 'उस सीमा तक'—मानो पुरुष के चरम पुरुषार्थ की व्यजना है। 'जिसके आगे राह नही'—कवि का गतव्य एक ऐसा स्थान है, परिपूर्ण मानव की एक ऐसी भूमिका है जहा से आगे कोई मानवीय पुरुषार्थ न जा सके। अतहीन महत्त्वाकाक्षा की चरम व्यजना प्रसाद ने दो पक्तियो की इस सरल शब्द योजना मे की है।

## (ख) मध्यवर्ती रचनाओ मे बिंब

इस शीर्षक के अतर्गत हम 'झरना' व 'आसू' के बिंबो को लेंगे। झरना कवि के आरभिक यौवन की रचना है। यहा निराशा मे आशा है, पीडा मे एक मादक आनद है। ये प्रेम के परिचय के गीत हैं जहा उनका व्यक्तिवादी स्वरूप सामने आता है। प्रेम पथिक के आदर्शवादी प्रेम ने यहा जीवन के कठोर धरातल पर पैर रखा है—वह अधिक स्वाभाविक, सजीव और मासल है। झरना के गीतो मे भावनाए अनेक रूपो मे बिखरी है। कवि अपने अतस्थल की प्रेरणा से कविता का स्रोत बहा रहा है। भावना की गहराई व सौदर्य प्रेम की गहन अनुभूति के अतराल मे विषाद की धारा प्रवाहित है। शिल्प के क्षेत्र मे प्रसाद की कल्पनाशीलता यहा समृद्ध हुई है। लाक्षणिक प्रयोग, चित्रयोजना, प्रतीक-विधान, मधुर पदावली का सूत्रपात 'झरना' मे होता है। चित्र भी कुछ स्पष्ट होते चलते हैं। झरना मे कवि ने शिल्प व शैलीगत प्रयोग किये हैं जिनमे उनके कलाकार की नयी सूझो और उनकी भाषा की नवीन भगिमाओ का परिचय मिलता है। झरना मे मानो माधुर्य की चित्रमयी सृष्टि ही उनका लक्ष्य है।

'आसू' प्रसाद जी की पूर्व रचनाओ से बहुत आगे है—"उसमे चित्राधार की हल्की चमत्कार चचल दृष्टि नही, न 'प्रेम पथिक' का-सा रोमाटिक प्रेमादर्श का निरूपण। कवि नि संकोच भाव से विलास जीवन का वैभव दिखाता है···विलास मे जो मद और विराट आकर्षण है उसे कवि उतने ही विराट रूपको एव उपमानो से प्रकट करता है।"[१७] 'आसू' मे छायावादी पद्धति पर भावो की अभिव्यजना हुई है। उसमे प्रेमाभिव्यक्ति प्रकृति प्रतीको मे लक्षणा-प्रधान शैली द्वारा की गयी है। प्रतीको की मौलिकता एव सप्राणता ने बिंबो के निर्माण

मे योग दिया है। प्रसाद ने प्रतीको के द्वारा विप्रलभ शृगार की चित्रमय, ध्वनिमय, रसमय अभिव्यक्ति की है। रूप-वर्णन मे कवि यहा अधिक सफल हो सका है। 'आसू' मे कवि ने रूप की सुदर दशाओ का सवाक् चित्र भी उपस्थित किया है—ये चित्र ऐसे हैं "जो मधुस्नात यौवन को प्रणय के स्नेह-सूत्र मे आलिगन करने के लिए भावामत्रण देते हैं। काजल की रेखाओ से लेकर शरीर सौदर्य की समवेत प्रभा के कण-कण को जितना मधुमय एव यौवनोचित रूप मे कवि ने खडा कर दिया है उतना मदभरा चित्र हिन्दी के किसी एक मुक्तक मे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"[१८] 'आसू' सत्य ही प्रसाद की घनीभूत पीडा की रसमयी अभिव्यक्ति है जहा "तत्त्व-चितन के आलोक में वेदना वैयक्तिक बधनो से मुक्त होकर एक दिव्य आभा धारण करती है और कवि सौदर्य के एक मानसिक आनद मे मग्न होकर एक उपेक्षामय शाति प्राप्त करता है।"[१९]

'आसू' के अभिव्यजना कौशल पर प्रकाश डालते हुए विनयमोहन शर्मा लिखते हैं—"यद्यपि बिहारी के दोहो मे गागर में सागर लहर चुका था, पर प्रसाद ने सागर को इतना प्रच्छन्न रखा है कि वह हर पात्र में समाकर भी अपनी असीमता कायम रखता है।"[२०]

'आसू' के रागात्मक एव कलात्मक उत्कर्ष को हम आ० शुक्ल के शब्दो में आक सकते है—"अभिव्यजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम वेदना की दिव्य विभूति का, विश्व के मगलमय प्रभाव का, सुख और दुःख दोनो को अपनाने की उनकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौदर्य और मगल के सगम का भी आभास पाया जाता है।"[२१]

'झरना' और 'आसू' में प्रसाद की बिंब-सर्जना में एक स्पष्ट विकास लक्षित होता है। यहा भी यद्यपि 'लहर' और 'कामायनी' के उदात्त भव्य चित्र नही, फिर भी अनुभूति की सान्द्रता और कल्पना की रमणीयता तथा मौलिकता ने प्रभावशाली बिंबो का निर्माण किया है। यहा हम 'झरना' के बिंबो का अनुशीलन पहले करेंगे।

**'झरना' के बिंब—**

रहे रजनी में कहाँ मलिन्द ?<br>
सरोवर बीच खिला अरविंद।<br>
कौन परिचय था ? क्या सबध ?<br>
मधुर मधुमय मोहन मकरद।

(झरना परिचय से)

चित्र प्रश्न की जिज्ञासा से आरभ होता है और अतिम पक्ति में कवि स्वय उत्तर मधुर, मोहक प्रेम सबध के रूप में ही देता है। कुछ यही भावना 'लहर' में अधिक व्यापक रूप मे आयी है—

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?<br>
इसमें क्या है धरा, सुना।

(लहर, पृ० १०)

इसमें कमल और भ्रमर के प्रेम माधुर्य का दिग्दर्शन है—इस प्रेम के लिए किसी अन्य सबध माध्यम की आवश्यकता नही। दो प्रेमी हृदय ही इस प्रेम को सार्थक बनाने के लिए पर्याप्त है—वहा किसी वस्तु-सापेक्षता के लिए अवकाश नही, किसी अन्य सबध या परिचय की गुजाइश नही, बस यही सब कुछ है कि वे प्रेमी हैं। इस कमल-भ्रमर प्रेम की एक विशेष जिज्ञासा द्वारा कवि इस आतरिक मानव भाव की प्रतिष्ठा करते हैं। इसके लिए वे न पुराने ढग की अन्योक्ति उपस्थित करते हैं और न ही रहस्यवादियो के ढग का आत्मा-परमात्मा का रूपक

बाधते हैं। वे भावनी प्रेम का सूक्ष्म निदर्शन चित्रात्मक पद्धति में करते हैं। चित्र में ध्वनि काव्य की विशेषताए हैं।

बात कुछ छिपी हुई है गहरी।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी॥
कल्पनातीत काल की घटना।
हृदय को लगी अचानक रटना।

(झरना, पृ० १५)

'झरना' के मधुर स्रोत के भीतर कवि किसी गहन भाव को देखता है। 'झरना' के मधुर स्रोत, मुग्धकारी ध्वनि और बाह्य हलचल के भीतर कवि को जीवन की किसी गभीर बात का स्वर सुनाई पडता है। प्राणो के भीतर कोई गहन, मौन, गभीर बात है जहा हमारी पहुच नही पर कवि उसे सुन पा रहा है। 'कल्पनातीत काल की घटना' में जीवन की रहस्यगर्भी अतलातता एवं अज्ञेय आरंभ को व्यजित किया है। इस गहनता को कवि अत्यत निर्व्याज व ऋजु शब्दो में नयी आभा के साथ व्यक्त कर देता है। चित्र की इस गहनता, रहस्यमयता एव कुछ जान लेने की आकुलता मे मधुर स्रोत, रस ध्वनि, कलकल शब्द सब विलीन हो जाता है और मानस पर यह सीधी निराविल पक्ति छा जाती है—

बात कुछ छिपी हुई है गहरी
जब करता हूँ कभी प्रार्थना,
कर सकलित विचार।
तभी कामना के नूपुर की,
हो जाती झनकार।

(झरना, पृ० १८)

कवि की विदग्धता, मौलिकता एव सूक्ष्म कल्पनाशीलता इस बिंब में है। विचारो को बटोरकर, समेटकर प्रार्थना करना अव्यवस्थित मानस का एकाग्र होकर शाति पाने का सायास प्रयास है। ठीक जब वह कुछ सयत होने चला था तभी अचानक कामना के नूपुर की झनकार होती है—सारा प्रयत्न असफल। हमारी अपनी ही आसक्तियो और कामनाओ के बीच हम अपने को घिरा हुआ पाते हैं और चिंतन के द्वारा उनकी क्षणभगुरता का विचार कर उनसे हटने का प्रयत्न करते हैं, पर क्या हम सफल होते हैं? कामना को नूपुर बताना अमूर्त में मूर्त की उपमा का रसमय प्रयोग है, साथ ही यह भी ध्वनित है कि कामना कितनी सगीतमयी, रसमयी और मोहक लगती है। कामना मानो कोई कामिनी हो जो नर्तकी की तरह नाच उठी हो और अपनी मोहकता से हृदय के सारे भावो को रससिक्त कर सयम का बाध तोड दिया हो। चित्र में दृश्यता व ध्वनि के साथ नाटकीय भगिमा है। कामना और नूपुर में यद्यपि कोई रूपाकार का साम्य नही। मधुर झनकार और कामना के आकर्षण का साम्य सूक्ष्म और अनुभूतिमय है।

मनोवृत्तियां खगकुल सी थी सो रही।
अत करण नवीन मनोहर नीड में।
नील गगन सा शात हृदय था हो रहा।
बाह्य आतरिक प्रकृति सभी सोती रही।

(झरना, पृ० १९)

प्रभात की शात व्यापकता में आतरिक शाति का विशद रूपक है। नील आकाश जैसे कोई शात हृदय हो—उसमें अंत करण का मनोहर नीड हो और उस नीड मे मनोवृत्तिया रूपी विहगावली। कवि ने अत प्रकृति एव वाह्य प्रकृति की बिंब-प्रतिबिंब योजना की है। निस्तब्ध नील गगन का शात हृदय को उपमा देना हृदय की प्रशान्ति के साथ उसके व्यापकत्व का बोध कराता है। एक ऐसा शात, विशाल अत करण जहा मनोवृत्तियो की चंचलता व उद्विग्नता नही। मनोवृत्तियो को प्रभाव-साम्य के द्वारा खगकुल बताया गया है।

> बलात तारकागण की मद्यप मडली,
> नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती।
> रिक्त चपक-सा चद्र लुढक कर है गिरा,
> रजनी के आपानक का अब अत है।
>
> (झरना, पृ० २५)

प्रभात का चित्र यहा कवि ने मयखाने के बिंब द्वारा प्रस्तुत किया है। रात-भर मदिरा पान के कारण जिस प्रकार लोग बेहोश होकर लुढक जाते हैं उसी प्रकार तारे भी अब टिमटिमा रहे हैं। शराबी जिस प्रकार बेहोशी को हटाने के लिए बार-बार आखो को खोलता, बन्द करता है उसी प्रकार तारो के अस्त होने के समय उनकी टिमटिमाहट रहती है। चाद रूपी मदिरा-पात्र खाली एक जगह पर लुढका पडा है। रजनी की मदिरा-पान-गोष्ठी अब उठ रही है। सारा चित्र मादक है और प्रभात का अलस भाव भी उसमे है।

> धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
> मधुर मुरली सी फिर भी मौन
> किसी अज्ञात विश्व की विकल
> वेदना-दूती-सी तुम कौन ?
>
> (झरना, पृ० २८)

छायावाद की रहस्यात्मक जिज्ञासा इसमे है—कल्पना की उन्मुक्त उडान के द्वारा स्वर्ण और धरती को मिलाने का प्रयत्न। 'किरण' प्रसाद-काव्य के प्रारभिक विकास का बहुत आगे का कदम है। किरण का मानवीकरण करके कवि ने उसे विविध रूपो मे दिखाया है। वह अनुराग के रग मे रगी है, प्रार्थना के समान झुकी है—अमूर्त प्रार्थना उपमान बनकर किरण को सजीव बना देती है। प्रार्थना के सदृश झुकना—यह अनाघ्रात उपमा है। प्रार्थना के साथ ही झुकने का या विनम्रता प्रकट करने का विश्वव्यापी सवेदन एकसाथ प्रकट होता है—यह उपमा विश्वजनीन है। मधुर मुरली सी मौन बताकर उसकी गभीरता की ओर सकेत किया गया है। प्रार्थना के सदृश किरण का गभीर, मधुर तथा मौन होना स्वाभाविक है। मधुर होकर मौन होना—इसमे विरोध का चमत्कार भी है। 'विश्व वेदना-दूती-सी तुम कौन ?'—इसमे जिज्ञासा व प्रश्नाकुल भावना है। यह किरण मानो दूती है जो स्वर्ग का धरती पर सदेश लायी है और उन्हे एक कर देने के लिए विकल है—अधीर है। किरण एक ऐसी दूती है जो अज्ञात विश्व से आयी है और अपनी जानी-पहचानी इस धरती को वहा के स्वर्गिक सदेश देने के लिए व्याकुल है।

पूरी की पूरी कविता कविमानस की अकुलाहट, जिज्ञासा, मगल कामना से परिपूर्ण एक श्रेष्ठ बिंब है। जिज्ञासा, रहस्य, सजीवता, नवीन उपमा, अछूती कल्पना, शब्द-चयन

की अभिनव दिशा, हर दृष्टि में यह कविता प्रसाद के भावी विकास की सुदृढ पीठिका है।

निर्झर कौन बहुत बल खाकर
बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा मे,
अपने ही चरणो मे गिरता।
... . ...
किसी हृदय का यह विषाद है,
छेडो मत यह सुख का कण है।
(झरना, पृ० ३१)

निर्झर के रूप मे प्रेमाकुल व्यथित व्यक्ति का यह चित्र है। यहा विषाद ही अमृत है, वही सुख का कण है। वस्तुत इसी विषाद को सुख का कण बनाने मे प्रसाद ने अपनी सारी प्रतिभा को, अपने सारे चिंतन को समर्पित किया। यह विषाद ही 'आसू' के वेदना दर्शन से होकर 'कामायनी' के आनद तक की यात्रा सफलता से करता है। झरना पहाड से गिरता है, इधर-उधर बिलखता, ठोकर खाता है। कवि के हृदय मे एक रहस्यमय जिज्ञासा है कि यह इतना व्याकुल कौन है ? मानो एक व्याकुल व व्यथित प्रणयी अपने लिए स्थान ढूढ रहा है और कही भी स्थान न पाकर अपने ही भीतर सिमट जाता है। 'अपने ही चरणो मे गिरता'—इसमे उसकी अतर्मुखता एव आत्मनिष्ठा ध्वनित है।

आंसू के बिंब—

बुलबुले सिंधु के छूटे
नक्षत्र - मालिका छूटी
नभ-मुक्त-कुतला धरणी
दिखलाई देती लूटी।
(आसू, पृ० १०)

प्रलय का यह चित्र है। इसके द्वारा कवि एक व्याकुल प्रेमी का बिंब प्रस्तुत करता है। विरह-व्यथा की यह व्याकुलता इतनी व्यापक है कि इसने पृथ्वी, आकाश सबको छू लिया है। जायसी के नागमती-विरह के समान यह सर्वत्र व्याप्त है। प्रेमी की विवशावस्था का एक प्रलयकर चित्र है। जब पृथ्वी प्रलय से निकलती है तब आकाश से उल्कापात होता है, तारे टूटते हैं, समुद्र मे तरगो का उत्थान-पतन होता है—सारी पृथ्वी अस्त-व्यस्त हो उठती है। वह लुटी-सी दिखाई देती है। यह एक ऐसे व्यक्ति का बिंब है जिसका अत करण उद्विग्न है, उसे अपने शरीर की सुधि नही, उसके केश बिखरे हैं। शरीर की अस्तव्यस्तता मन की अत्यत तीव्र आकुलता प्रकट करती है। आखो से आसू झरना मानो हृदय-समुद्र मे बुलबुलो का फूटना है। व्यक्ति-वेदना को प्रसाद ने समष्टि तक व्यापक बनाया है।

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।
(आसू, पृ० १५)

सारे छद का सौंदर्य 'सुमन नोचते सुनते' से मुखरित हो उठा है—यह सुनने की मुद्रा सचमुच हृदय-विदारक है। सुमन का तोडना नही, चयन नही—नोचना। 'नोचने' से प्रेमी के हृदय की कठोरता, निर्दयता व्यजित है। वह व्यक्ति जो फूल जैसी कोमल, मोहक वस्तु को नोच सकता है, भला किसी की करुण कहानी क्यो सुनने चला। एक तरफ तो करुण, दर्दभरी कहानी है—रो-रोकर ही नही सिसक-सिसककर कहने की बात है और दूसरी तरफ इतनी निष्ठुर उपेक्षा—सहानुभूतिपूर्ण शब्द भी नही—यहा तक कि स्नेहमयी दृष्टि भी नही। कोमल पुष्प को नोचने मे अत करण को विदीर्ण करने का भी स्वर है। वीप्सा अलकार के द्वारा कवि ने इस बिंब को खूब उभारा है।

अभिलाषाओ की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलको का लगना।
(आसू, पृ० ११)

कवि ने केवल क्रियाओ के प्रयोग से बिंब को उत्कर्ष प्रदान किया है। सौंदर्य का सारा श्रेय क्रियाओ मे है। चार क्रियाए चार पूर्ण बिंब प्रस्तुत करती हैं। अलग-अलग पक्ति मे एक-एक बिंब है और सबका समवेत प्रभाव एक ऐसे बिंब के रूप मे होता है जिसमे मानवीय प्रवृत्तियो का एक पूरा चित्र आता है। करवट लेना, जागना, पलको का लगना—यह अभिलाषा, व्यथा और पीडित अवस्था को मूर्तित करता है।

तुम सत्य रहे चिर सुदर
मेरे रस मिथ्या जग के।
(आसू, पृ० १६)

'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' के दार्शनिक प्रतीक से प्रेम की चिर सत्यता का चित्र खीचा है। इस असत्य ससार मे ब्रह्म नही, तुम एकमात्र सत्य थे। दार्शनिको का ब्रह्म सत्, चित्, आनद है; पर कवि का सत्य उससे कही अधिक चिर सुदर भी है। प्रेम की अत्यत गहनता व सान्द्रता मे उसका रूप नित्य नूतन, क्षणे-क्षणे नवीनता से उपेत रहता है। यही कारण है कि उसे चिर सुदर कहा है। 'मिथ्या जग' के एक प्राणी को ही सत्य बताकर मानो कवि ने अपने प्रेम व विश्वास की पराकाष्ठा को सूचित किया है।

शशि-मुख पर घूंघट डाले
अचल मे दीप छिपाये
जीवन की गोधूली मे
कौतूहल से तुम आये।
(आंसू, पृ० १६)

जीवन के अतिम प्रहर मे प्रिय का आना, और वह भी यो ही चले आना नही, चद्रमा के समान कातिमय उज्ज्वल मुख पर घूघट डालकर और आचल मे दीप सजोकर आना। गोधूली वेला मे आचल की ओट मे दीप ले जाना हमारा एक सास्कृतिक बिंब है। इस सास्कृतिक बिंब के द्वारा जीवन की सध्या मे प्रिय को पाने का यह चित्र है। शशि-मुख पर घूघट डालकर

दीपक की लौ के प्रकाश मे सारा सौंदर्य और भी उद्भासित हो गया है। प्रतीक्षा करते-करते जब निराश हो गया तब तुम अचानक जीवन की सध्या मे आयी! कौतूहल हुआ मुझे कि अब तुम आयी हो, जब सारा जीवन वीत चुका। कौतूहल से आना कवि की मौलिक कल्पना है, अछूती उपमा है। सौंदर्यमय, विषाद-भरा, निराश चित्र जिसके पीछे भारतीय सास्कृतिक, धार्मिक भावना की आभा है।

तिर रही अतृप्ति जलधि मे
नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला सी
है अजन रेखा काली।
(आसू, पृ० २२)

इन पक्तियो मे कजरारी आखो का प्रभाव 'काला पानी वेला' की उपमा से निखर गया है। काजल की वह रेखा जो गहन विशाल नीली आखो को और भी अधिक आकर्षक बना रही है—उस वेला के समान है जहा से आजन्म कैद की सजा पाया व्यक्ति फिर वापस नही आता। आखो की पुतली, नीलम की निराली नाव जो अतृप्ति-जल मे तैर रही है। आखें रूपरस की प्यासी थी, नीलम की नाव से उन आखो की नीलिमा तो व्यजित है ही, साथ ही समुद्र की तरह उनकी गहराई भी ध्वनित है। 'तैरने' मे उनकी चपलता है। काजलकारी आखो को काले पानी की वेला वताना प्रसाद का नव्य प्रयोग है—यह ध्वनि है कि जो इन आखो मे एक बार पैठ जाता है वह वहा का चिर निवासी बन जाता है, उसकी काजल-रेखा को लाघकर वह और कही नही जा सकता। आखो का तीव्र आकर्षण इसमे है। 'श्वेत श्याम रतनार' से चक्कर मे पडनेवाला 'जियत मरत-झुक-झुक परत' तक ही रह जाता है, पर यहा तो जन्मकैद की नौवत आ जाती है।

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जल-बिंदु सदृश ठहरे कव
उन कानो मे दुख किनके?
(आसू, पृ० २३)

कानो को कमलपत्र की उपमा देकर प्रेमिका के निर्दय रूप को कवि ने अनूठे ढग से व्यजित किया है। जैसे कमलपत्र पर पानी की बूदें नही टिकती उसी प्रकार कोई दुख उसे द्रवित नही करता। कहनेवाला कहता ही रह जाता है और वह वीतराग की भाति तटस्थ रह जाती है। दुख को जलबिंदु कहना भावपूर्ण है। दुख ही अश्रु के रूप मे वाहर प्रकट होता है।

नखशिख-वर्णन मे प्रेयसी के कानो के वर्णन की परपरा नहीं मिलती। यह प्रसाद की मौलिक सूझ है जो कमलपत्र के उपमान से अधिक प्रभावशाली हो उठी है।

जव शात मिलन सध्या को
हम हेम जाल पहनाते

काली चादर के स्तर का
खुलना न देख पाते।
(आसू, पृ० ३७)

अधिक सुख की अनुभूति मे, उसके मादक प्रभाव मे मनुष्य यह भूल जाता है कि दु ख भी किसी कोने मे बैठा है और सुख के भीतर से वह किसी भी समय प्रकट हो सकता है। 'हेम जाल पहनाते'—मिलन की साध्य वेला मे जब राग का माधुर्य चारो ओर छा जाता था तब हम विरह की रात्रि की कल्पना भी नही कर पाते थे। 'शात मिलन' मे राग की अत्यत गहनता है। कोई भी भावना जब अधिक घनी व माद्र हो उठती है तब वहा मौन छा जाता है। 'हेम जाल' मे प्रेम की अरुणाई व माधुर्य तथा 'काली चादर' मे विरह की वेदना है। 'काली चादर के स्तर का खुलना'—यहा स्तर का खुलना एक अनूठा प्रयोग है। जब चादर बिछाई जाती है तब उसकी परतें एक के बाद खुलती जाती हैं, ऐसा ही प्रभाव विरह का है जो एक बार आरभ होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है।

है चद्र हृदय मे बैठा
उस शीतल किरण सहारे
सौंदर्य सुधा बलिहारी
चुगता चकोर अगारे।
(आसू, पृ० ४३)

अपरूप सौंदर्य के अमृतमय प्रभाव का वर्णन है। जिस प्रकार किसी परम चरम की उपलब्धि एक बार हो जाने से फिर अच्छी-बुरी सभी बातो को सहज रूप मे स्वीकार करने की क्षमता आ जाती है उसी प्रकार रूप के उस अमृत का पान एक बार कर लेने से विरह की घडियो का प्रभाव हृदय के रस को शुष्क नही बना सकता। चकोर और चद्रमा की उपमा से कवि ने इसी भाव को स्पष्ट किया है। चाद की शीतल जीवनदायिनी किरणो का पान करने के बाद चकोर जलते हुए अगारो को भी चुन लेता है। ठीक ऐसा ही प्रभाव अपूर्व रूप के अमृत-पान का है।

लिपटे सोते थे मन मे
सुख-दुख दोनो ही ऐसे
चद्रिका अँधेरी मिलती
मालती कुज मे जैसे।
(आसू, पृ० ४८)

सुख और दु ख जीवन मे दोनो आते हैं। महाकवि कालिदास ने 'नीचैर्गच्छत्युपरि न दशा चक्रनेमिक्रमेण' कहकर सुख-दु ख के अविराम घूर्णन को मूर्त किया है। प्रसाद का 'सुख दुख का लिपटना' उससे कुछ वैशिष्ट्य रखता है। कालिदास का सुख-दु खात्मक चक्र सुख और दु ख दोनो की भ्रमित निराविल प्रतीति कराता है, पर प्रसाद मे दोनो का सहअस्तित्व है—वे लिपटे सोते हैं, प्रगाढ भाव मे एक-दूसरे से परिरभबद्ध हैं, वे अनन्य भाव से सपृक्त हैं, उन्हे अलग नही किया जा सकता। इस आलिगनबद्ध रूप के लिए एक सजीव बिंब प्रस्तुत किया गया है—चादनी रात है, सुधावर्णी किरणें चारो ओर छिटक रही हैं, मालती का कुंज

है और चाद की किरणें छन-छनकर धरती पर गिर रही है। कुज मे प्रकाश और छाया का अद्भुत मेल है—कभी प्रकाश की जगह छाया और कभी छाया के स्थान पर प्रकाश। हवा के झोको से छाया-प्रकाश का एक जाल-सा बन जाता है। यही दशा जीवन मे सुख-दु ख की है। जीवन के गतिशील परिवेश के बीच (हवा) वे प्रकाश-छाया के समान मिले-जुले रूप मे विद्यमान रहते हैं। प्रसाद ने मन को मालती कुज की मधुर मादक उपमा दी है। वह जीवन का कवि है, सतो के समान मन की भर्त्सना नही कर सका।

जब तुम्हे भूल जाता हूँ
कुड्मल किसलय के छल मे
तब कूक हूक सी बन तुम
आ जाती रगस्थल मे।
(आसू, पृ० ७६)

हम अपने जीवन मे अनेक बार वाह्य आकर्षणो, रूपछलनाओ व हिरण्मय आवरणो के भीतर छिपे जीवन के चिर सत्य को भूल जाते हैं। यही 'कुड्मल किसलय के छल' मे भूलना है। उस समय जब बसत के इस मधुर मोहक वातावरण मे भी कोकिला कुहू के मिस हूक भरती है तब जीवन का यथार्थ सुख-दु ख के मिथ्या आवरणो के भीतर से चारो ओर गूजता-सा परिव्याप्त हो जाता है। कवि अपनी इस वेदना को ही जीवन का चरम सत्य मानता है, यही वेदना जब आसू बनती है तब जीवन के दोनो कूल उससे सिंचकर हरे हो जाते हैं। 'रगस्थल मे आ जाती' एक नाटकीय भगिमा है। विस्मृति के भीतर से जीवन के सत्य का अचानक प्रकट हो जाना जैसे रगमच पर सहसा नया दृश्य आ गया हो।

सबका निचोड लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन मे
बरसो प्रभात हिमकन सा
आँसू इस विश्व सदन मे।
(आसू, पृ० ७९)

यह कविता के अत मे प्रसाद की व्यथा की मागलिक परिणति है। यही 'आसू' का चरम साध्य है। यहा आसू मगलमय प्रभात का हिमकण है जो सूखे जीवन को सरस बनाता है। चारो ओर की सूखी धरती पर पुलिन के विरस अधरो पर ओस की बूंदें बरस रही हैं—उसे सरस रससिक्त बनाकर आनदित कर रही हैं। कही दु ख नही, दैन्य नही, ताप नही, शाप नही, विश्व सदन तुषार-बिन्दुओ से शृगारित हो गया है।

यहा कवि चाहता है कि समस्त विश्व का दु ख आत्मसात् कर ले और फिर विश्व के लिए आनद की वर्षा कर दे जिससे यह नीरस पृथ्वी फिर से सरस हो जाय। यही मगल-मय परिणति आसू का प्रकर्ष है। जीवन का उत्कर्षमय मगल गान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'आसू' के बिंबो मे आत्मरस से परिप्लुत तरल काति-मयता है, उनमे वेदना के साथ चेतना, रूप के साथ सौंदर्य, विरह के साथ करुणा तथा सुख के साथ दु ख का मधुर मिलन है, और फिर इस मिलन महोत्सव के बाद पक मे से खिलता जीवन का शतदल है—आसू के भीतर से खिलती स्मित की तरल उजली रेखा है। 'आसू' के बिंबो मे मानसिक सताप की जो यह भूमिका है जो घनीभूत पीड़ा है, जो गहन वेदना,

असीम हाहाकार, विराट उदासी है, नील गगन सी धुंधली अंतहीन पर जाग्रत निराशा है, अदम्य पुरुषार्थ है, वही आगे चलकर आनंद के शक्ति तरंगायित महासागर में परिणत होता है। आत्मसृष्टिमूलक गीतों की यह सृष्टि प्रसाद की निजी व निकटतम कृति है—यह कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं, प्रसाद की मानवतावादी दृष्टि है जो जीवन की समग्र स्वीकृति के भीतर से उन्मेषित-उन्मीलित है। प्रेय की श्रेय में यह परिणति प्रसाद के बिंबों का अपना वैशिष्ट्य है। 'आंसू' के चित्र वेदना की विवृत्ति, आतरस्पर्श की पुलक, अनुभूति की वक्रता, प्रतीक विधान के सौष्ठव और उत्कृष्ट गीतिमयता में मंडित हैं।

## (ग) अंतिम रचनाओं में बिंब

इस शीर्षक के अंतर्गत 'लहर' और 'कामायनी' के बिंबों को स्थान दिया जा सकता है। 'कामायनी' के बिंबों का विवेचन ही हमारा प्रतिपाद्य है, अतः उनका विशद अनुशीलन हम आगे के अध्यायों में करेंगे। यहां हम 'लहर' के बिंबों को लेंगे।

'लहर' प्रसाद की गीति सृष्टि का प्रौढ़तम चरण है—गीतों में मेघाच्छन्न आकाश के बाद आनेवाली शरद-प्रसन्न-छवि है। व्यक्तिगत अनुभूति व्यापक जीवन दर्शन की ओर उन्मुख होती है। 'आंसू' में कवि व्यक्तिगत दुःख की पूर्ण निवृत्ति कर चुका था, 'लहर' में उसे आनंद व मंगल का विधेयात्मक रूप प्रदान करता है। 'लहर' कवि की अंतरतम आत्मा का प्रतीक है। 'आंसू' यदि प्रसाद के जीवन की हलचल है तो 'लहर' उसकी शांति। यहां कवि अपने काव्य में स्पष्ट रूप से नाता-रिश्ता जोड़ता है और अपने आत्मपरक गीतों में डूबा कवि विश्व के सुख-दुःख में अपने हृदय का संबंध स्थापित करने के लिए आतुर है। मानव के इस प्रेम ने 'लहर' के कवि को विराट मानव सत्ता के शुभचिंतक के रूप में प्रस्फुटित किया है। रूप-चित्रण में अद्वितीय सफलता के साथ चित्रित प्रणय गीतों और चारों ओर बिखरी हुई वेदना को समेटने के प्रयत्न के अतिरिक्त उच्च कोटि के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक चित्र भी हैं। एक ओर 'सब्ब दुक्खं दुक्खं' की करुण पुकार तो दूसरी ओर शिव की निरंतर प्राप्ति का पुरुषार्थ। 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर' के करुण मृदुल एवं व्यापक प्रेम के गीति चित्रों से आरंभ होकर लहर के बिंब कवि का अनुराग नभ के अभिनव कलरव में फैलते हुए उसके मानस की अतल गहराइयों का स्पर्श करते हैं और अंत में 'प्रलय की छाया' के विराट, उदात्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और गहन विषाद के आमद वातावरण में डूब जाते हैं।

'लहर' प्रथम रचना है। लहर से कवि का अभिप्राय उस आनंद की लहर से है जो मनुष्य के मानस में उठा करती है और उसके जीवन को सरस करती रहती है। 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर'—एक आत्मीयता से भरी पुकार। 'करुणा की नव अंगड़ाई सी' में करुणा का जागकर उठना ध्वनित है। इतने दिनों तक हृदय में सुप्त करुणा व प्रेम के उन्मेष के लिए यह कवि का आह्वान है। लहर के उठने को 'करुणा की अंगड़ाई' तथा 'मलयानिल की परछाईं' कहना सर्वथा नवीन उपमाएं हैं। 'मलयानिल' शब्द के प्रयोग में करुणा व प्रेम के साथ शीतलता व प्रशांति का योग है। 'छिटक-छहर' जैसे तट से टकराकर लहरें बूंद-बूंद में बिखरकर चारों ओर फैल जाती हैं और सूखे तट को सरस बनाती हैं, उसी प्रकार कवि अपनी हृदय की कोमल, मधुर भावना को व्यापकता प्रदान कर सारे विश्व को उस रस से सींचने की कामना करता है। 'सिकता की रेखाएं उभार'—शुष्क व नीरस जीवन को प्रगाढ़ भाव से रससिक्त करना, माधुर्य की अमिट छाप छोड़ जाना।

इस लघु गीत में लहरों की चपलता, चंचलता, ऊर्मिलता, कलकल ध्वनि का समावेश

है। पूरा का पूरा चित्र सामने आता है। शब्द-चयन मे अत्यंत कोमलता, आर्द्रता एवं माधुर्य है। चित्र सजीव व मनोहर है।

मानस जलधि रहे चिर चुंबित—
मेरे क्षितिज ! उदार बनो।
(लहर, पृ० १०)

क्षितिज सबोधन मे ही बिंब का सारा सौंदर्य निहित है। इसमे असीम व्यापकता के साथ रहस्य का भी समावेश हो गया है। कवि के भावोत्कर्ष के क्षणो मे सर्जित यह बिंब कल्पना-प्रसूत मूर्त चित्र के द्वारा जीवन-तथ्य को उभारता है। ध्वनि है कि तुम्हारे हृदय की विशालता क्षितिज की भाति अनत व सर्वत्र व्याप्त हो जाय जिससे 'मानस जलधि' का आनद-रस कभी न सूखे—वह सदा ही रस से प्लावित होता रहे।

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड कर देखोगे क्यो मेरी कन्था की ?
(लहर, पृ० ११)

प्रसाद का जीवन-सबल है प्रेम-भरी स्मृति। प्रसाद के गभीर मौन व्यक्तित्व की आभा इसमे है। पर कवि ने अपने इस मौन मे ही मानो जीवन की सभी बातो को मुखरित कर दिया। 'कन्था' शब्द का प्रयोग ही कवि के जीवन के अनेक दु खद प्रसगो को स्पष्ट कर देता है। शालीनता, सयम और भद्रता का आवरण भी 'कन्था' शब्द मे छिपी वेदना व टूटे हुए जीवन की करुण कथा को न छिपा सका, यही प्रसाद का काव्य-सौंदर्य है। एक ही शब्द मे सारे चित्र को मूर्तित करने की अपूर्व क्षमता उनमे है।

हे सागर सगम अरुण नील !
अतलात महा गभीर जलधि—
तजकर अपनी यह नियत अवधि
(लहर, पृ० १५)

हिंदी साहित्य मे समुद्र का वर्णन विरल है। प्रसाद का यह चित्र उनके प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित है। सागर सगम के दृश्य को यहा मूर्तित किया गया है। नदिया व्याकुल होकर सागर की ओर दौडती हैं—समुद्र स्वय भी अपनी मर्यादा भग कर उच्छ्वसित होकर आगे बढता है। उन्मद मिलन का यह वातावरण अरुण नील रगो से दीप्त हो उठा है। सागर की गहन नीलिमा, अरुण राग-रजित सांध्य वेला की अरुणाभा से मिलकर एक अद्भुत रग-सृष्टि करती है। सागर का सगम अरुण नील की आभा से कातिमय हो उठा है। 'लहरो के भीषण हास' मे प्रेम की उन्मत्तता व्यजित है। साधरणतया प्रेम के मधुर मिलन मे मधुर हास व मादक उच्छ्वास रहता है, पर समुद्र के प्रसग मे कवि ने 'भीषण हास' व 'खारे उच्छ्वास' का प्रयोग यहा किया है। इससे चित्र मे एक अभिनव भगिमा के साथ ध्वनिगर्भत्व और उदारता भी आ गयी है। समुद्र का अपनी मर्यादा छोड देना प्रेम के एक ऐसे प्रभाव का वर्णन है जहा सतुलन नही रह जाता। चित्र मे रग है, गति है, ध्वनि है, मादकता है और उच्छ्वसित राग है। रंग,

ध्वनि, गति से युक्त यह चाक्षुष बिंब प्रसाद के बिंबो मे अनोखा है ।

बीती विभावरी जाग री !
अंबर पनघट मे डुबो रही—
तारा घट ऊषा नागरी ।
(लहर, पृ० १६)

यह जागरण गीत है जो प्रसादजी के संपूर्ण काव्य-प्रयास के साथ उनकी युग-चेतना का परिचायक प्रतिनिधि गीत है । वह जीवन के प्रभात को पुकारता है—जागरण लाने के लिए उद्‌बोधन गीत गाता है ।

प्रभात का इतना स्वच्छ, शात और सजीव वर्णन छायावाद मे ही नही, संपूर्ण हिंदी साहित्य मे अपने ढंग का अकेला है । उषा के पनिहारिन रूप को एक पूरे सांग रूपक के द्वारा मूर्तित किया गया है । नीले अंबर की विशालता ही उस पनिहारिन के लिए स्वच्छ सरोवर है । तारा घट है जिसे ऊषा नागरी डुबा रही है । यह चित्र बहुत हृदयावर्जक, नयनाभिराम व विराट् है । प्रात काल की प्रशांति, पक्षियो का कलरव, तारो की टिमटिमाहट, मानसिक उल्लास, हृदय का प्रसरण सबको यह चित्र समेटे है । प्रभात के साथ जागरण का यह चित्र विराट् उदात्त और भव्य है । रूप-साम्य और व्यापार-साम्य पर आधारित यह सांस्कृतिक बिंब अपने मे मुखर है। गत्यात्मक बिंब विकास का भी यह श्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है ।

आह रे, वह अधीर यौवन !
मत्त मारुत पर चढ उद्‌भ्रात
(लहर, पृ० २१)

विगत यौवन की मादक स्मृतियो को कवि ने एक व्यथा के साथ याद किया है, उन्मत्त स्मृतियो का यह चित्र यौवनावस्था को मानसिक स्थिति के अनेक भावो से पूर्ण है । 'अधीर यौवन' विशेषण-विपर्यय के द्वारा कवि यौवन की मानसिक अधीरता के चित्र को अधिक प्रभविष्णुता देता है । 'अखिल किरणो को ढक चली'—संपूर्ण चेतना को ही मानो यौवन का उद्दाम वेग आच्छादित कर लेता है, ठीक उसी प्रकार जैसे घने बादलो मे सूर्य की किरणो का प्रकाश ढक जाता है । 'भावना के निस्सीम गगन' मे घने बादलो की धूमिल आभा व्याप्त हो जाती है । यौवन के तीव्र आवेग, उन्मद उत्साह, उद्दाम अभिलाषाओ का चित्र है जहा व्यक्ति केवल हृदय की ही सुनता है । बुद्धि का शासन, विवेक का अंकुश, संयम की मर्यादा—सब कुछ यहा चंचल चपला के क्षणिक प्रकाश की भाति तिरोहित हो जाता है । 'बुद्धि चपला का क्षण नर्तन' विवेक-शून्यता के लिए शक्तिशाली प्रयोग है । 'ठहर, भर आखो देख नयी भूमिका अपनी रंगमयी'—इसमे यौवनकाल मे प्रेम के नूतन विकास के साथ-साथ अंत करण की उदारता, व्यापकता चित्रित है । 'भर आखो देख'—मुहावरे के इस प्रयोग ने हृदय के राग को पूरी तरह पहचानने की ललक को चित्रित किया है । यह नयी भूमिका राग की है, विभुता की है अपने भीतर सारे संसार को, अखिल विश्व को समेट लेने की आकुल उमंग रहती है, अधीर उत्साह रहता है । यह अणु मे महत् के सात्मीकरण की भूमिका है जहा सब कुछ उदात्त है, व्यापक है वहा लघुता के लिए, संकीर्णता के लिए, सीमितता के लिए कोई स्थान नहीं रहता ।

मेरी आँखो की पुतली मे
तू बनकर प्रान समा जा रे।
(लहर, पृ० २८)

मन की आकुल पुकार है—'बनकर प्रान समा जा'। जीवन मे प्रेमी नही प्राण बनकर आ और 'समा जाने' मे आत्मसात् हो जाने का भाव है। द्वैत का परिहार इसमे व्यजित है यह पूर्ण एकत्व का चित्र है। सबोधन मे आत्मीयता के साथ मनुहार और दैन्य का भाव है। 'प्राण' मे 'ण' के स्थान पर न का प्रयोग कवि के इस अनुनय को अधिक मधुर और कोमल बना देता है।

वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यत तिरस्कृत अर्थ सदृश
छवि कपित करता बार-बार
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।
(लहर, पृ० ३४)

.. .... ...... . .

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही है सब
(लहर, पृ० ३५)

सीमाहीन वैभव और अनत कल्लोल के इस ससार मे प्यार के एक कण के लिए तरसने वाले अकिंचन आतुर हृदय का एक निरीह चित्र। ऐसे अकिंचन के लिए 'अत्यत तिरस्कृत अर्थ' का प्रयोग एक अद्भुत अनूठी व्यजना है। काव्यशास्त्र के इस शब्द ने चित्र को नयी भगिमा दी है। 'छवि कपित करता बार-बार' मे अस्फुट फरियाद का स्वर है। अकिंचन विवश व्यक्ति केवल गिडगिड़ा सकता है, केवल अस्पष्ट शब्दो मे अपनी बात कह सकता है—उसमे अधिकार-पूर्वक अपनी बात कहने का साहस कहा? 'धीरे से पुकार उठना' स्वय एक कविता है, मानो अपने अत करण की समस्त शक्ति को बटोरकर, हृदय की सपूर्ण ताकत के साथ वह अपना अधिकार मांगने का उपक्रम करता है पर ओठो तक आकर शब्द मौन हो जाते है, शक्ति शिथिल हो जाती है। याचक का निरीह बेबस व करुण चित्र है। उसकी इस माग का उत्तर प्रसाद स्वय देते हैं—'पागल रे! वह मिलता है कब, उसको तो देते ही हैं सब'। कवि प्रसाद का यह उत्तर जीवन का शाश्वत उत्तर है, चिन्तन समाधान है। 'पागल रे!' सबोधन मे कवि ने अपने हृदय का सारा ममत्व उडेल दिया है। साथ ही यह भी कह दिया है कि तुम केवल प्यार करते जाओ, बस एकमात्र यही पथ है प्रेम के मार्ग का। निष्काम भाव से प्यार करना।

ओ री मानस की गहराई!
तू सुप्त, शात कितनी शीतल,
निर्वात मेघ ज्यो पूरित जल—
नव मुकुर नीलमणि फलक अमल
ओ पारदर्शिका! चिर चचल—
यह विश्व बना है परछाई!
(लहर, पृ० ४३)

गीत सत मानस का चित्र है—प्रसाद के आनदवादी दर्शन की झाकी इसमे है। कवि ने मानस

को उसके अतलस्पर्शी गाभीर्य, ज्ञानदीप्ति, निर्मलता, व्यापक शाति और परिपूर्णता के साथ चित्रित किया है। स्वस्थ मानस का इतना पूर्ण चित्र हिंदी साहित्य मे विरल है। 'मानस की गहराई' के द्वारा ऐसा लगता है जैसे किसी स्थितप्रज्ञ का, किसी निष्काम कर्मयोगी का, किसी ज्ञानी का अतल गभीर निष्कलुप और स्वच्छ मानस प्रत्यक्ष हो उठा है। 'सुप्त शात और शीतल' प्रशातता, नीरवता एव मृदुता के साथ-साथ प्रेम व कारुण्य से परिप्लुत हृदय हमारे सामने आता है। जल से भरे, सान्द्र व गहन मेघ की तरह आत्मतृप्त, अचचल, करुणापूरित गभीर व्यक्तित्व। 'निर्वात' शब्द से एकदम शात वातावरण—जहा वायु की चचलता नही—मूर्तित है। ऐसी ही प्रशात भूमिका मे उसका चित्त समाहित रहता है। वह पारदर्शी, स्वच्छ दर्पण है—नीलमणि का फलक, जिसके आर-पार सब दिखाई दे। वह जैसा बाहर है वैसा ही भीतर—सीधा, सरल, ऋजु व्यक्तित्व। ऐसे त्रिकालज्ञ मानस मे यह विश्व परछाई, की तरह प्रतिभासित हो उठता है। उस अचचल शात मानस मे यह चचल जगत आर-पार दिखाई पडता है। सारे विश्व के रहस्य उसमे स्वत प्रकट हैं। 'परछाई' शब्द के प्रयोग मे ससार की क्षणभगुरता, अस्थायित्व का बोध है। यह ससार विवर्त है—यह ध्वनि है। यह 'आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठ' की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जिसे कल्पना से सवेदनशील दिव्यता प्रदान की गयी है।

अरुण करुण बिंब !
वह निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिंड ?
विकल विवर्तनो से
विरल प्रवर्तनो मे
श्रमित नमित सा—
पश्चिम के व्योम मे है आज निरवलब-सा

(लहर पृ० ५६—पेशोला की प्रतिध्वनि से)

'पेशोला की प्रतिध्वनि' आद्यत करुण ऊर्जस्वित चित्रो से भरी है। चित्र पर चित्र एक के बाद एक उभरते चलते हैं—कवि का मानो हृदय अपना सर्वस्व खोल रहा है। डूबते हुए सूर्य का चित्र कवि अकित करता है—दो-चार शब्दो मे ही भारत की करुण, दीन और व्यापक शैथिल्य की अवस्था का चित्र अपनी सपूर्ण गरिमा के साथ उभरता है। चित्र महाराणा प्रताप के आह्वान की गूज-अनुगूज से प्रतिध्वनित हो रहा है। चित्र मे श्रवण-बिंबो के वैशिष्ट्य का समावेश प्रसाद ने कौशल के साथ किया है। कौन लेगा भार यह ? जीवित है कौन ? इन्ही शब्दो की गूज कविता मे सर्वत्र व्याप्त है। 'विकल विवर्तनो से, विरल प्रवर्तनो मे'—हजारो वर्षो के आक्रमण पर आक्रमण का इतिहास उभर आता है। यह एक ऐसे देश की अमर गाथा है जो अनवरत आक्रमणकारियो को झेलता रहा, जिसे विकास के अवसर कम मिले। यह एक देश की कहानी है जो अपनी सर्वस्विता मे अमर है, शौर्य, तेज, दीप्ति, वीरता मे अजेय है। यह भारत के ऊर्जस्वित गौरव की पतनोन्मुख करुण विपण्ण झाकी है। डूबते हुए सूर्य के व्याज से कवि ने सपूर्ण भारतीय जीवन के उत्थान-पतन को व्यजित किया है। 'आहुतिया विश्व की अजस्र ले लुटाता रहा'—यह भारत के लोक-मगलकारी, तपस्वी व उत्सर्गशील स्वरूप की अनुभूति कराता है। विश्व कल्याण के लिए निरतर प्रयत्नशील रहनेवाले भारत का सास्कृतिक गौरव व्यजित है। यह भारत देश ऐसा है कि इसका डूबता हुआ सूर्य भी 'अरुण' है—तेज और तप का एकत्र रूप। 'वही शब्द घूमता-सा गूजता विकल है किंतु वह ध्वनि कहा ?'—कवि हृदय का सारा विषाद, सपूर्ण व्यथा घुलकर इन पक्तियो मे बही है। प्रसाद के देशप्रेम का यह चित्र उसके अतीत गौरव से ऊर्जित है, वर्तमान दयनीयता

से विषण्ण। वह अपने पतन मे भी गौरवमय है, प्रकाशमय है—'निर्धूम भस्म रहित ज्वाल-पिंड' के समान निष्कलुष, अनघ, भास्वर पर क्षात्र तेज से दीप्त है। हिंदी साहित्य के इतिहास मे यह शिल्प लाघव, यह महत् गभीर अभिव्यजना, यह ध्वनिगर्भी नैपुण्य, गौरवमय अतीत का यश.गान दुर्लभ है।

**प्रलय की छाया—**

इतिहास का खडहर, अनुभूति की गहनता, नारी के अतरतम का सूक्ष्म विश्लेषण, कथा का भावात्मक तरगन, नाटकीय भगिमा, छायावाद की शैलीगत कवि-प्रतिभोत्थित वक्रता, वैभव विलास भरे महत्त्वाकाक्षा के चित्र, भाषा का सगीत-प्रधान स्वर, रूप-दर्प, अतर्द्वंद्व से स्पदित गहन पश्चात्ताप व आत्म-विगर्हणा और इन सबका एक त्रासदीय अत, गहन से गहनतर विषण्ण स्वर, चतुर्दिक व्याप्त ध्वस और ध्वात का धूमिल वातावरण, आदि अनेक विरोधी उपादानो ने 'प्रलय की छाया' के बिंबो को एक ऐसा अद्‌भुत और अनूठा सौंदर्यात्मक उत्कर्ष प्रदान किया है जो हिंदी साहित्य के इतिहास मे अन्यत्र नही मिलता। छायावाद-युग की यह श्रेष्ठ उपलब्धि है जो मधुचर्या से ऊपर उठकर एक ओर नारी जीवन की मनोवैज्ञानिक गहनता को प्रकट करती है तो दूसरी ओर महाकाव्योचित औदात्य और अवदात का स्पर्श करती हुई त्रासदीय पर्यवसान से हमारे मानस पर घने कुहासे की तरह छा जाती है। यह कथात्मक प्रलब कविता मूलत गीतिप्रवण है जिसके मध्य वर्णन व विवरण के कारण औपन्यासिक सौंदर्य तथा गठन मे अतर्द्वंद्व की प्रधानता से नाटकीयता आ गयी है। सारा वर्णन काल की सरल रेखा मे नही स्मृति के विपर्यस्त पटलो मे उभरा है। सारी कहानी साझ के धूमिल वातावरण मे यो टूटती है कि सहृदय पाठक अभिभूत-सा हो जाता है। आगे-पीछे विफलता, पश्चात्ताप, व्यर्थता की आक्षितिज-व्यापी टकरानेवाली प्रतिध्वनिया हैं जो समाप्ति के बाद भी दूर तक फैली अनुगूज के समान सुनाई देती हैं।

'प्रलय की छाया' मे जिस प्रकार की बिंब योजना हुई है वह प्रसाद-साहित्य मे ही नही, सपूर्ण हिंदी साहित्य के लिए अस्पर्श्य है। अनेक भव्य, विराट, उदात्त, विकल व विषण्ण चित्र ऐसी उत्कृष्टता से अकित हैं जो किसी समाधि वेला मे ही—विरल, गहन, अनुभूतियो के भास्वर क्षणो मे ही सभव है।

> थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
> सध्या है आज भी लो धूसर क्षितिज मे

काव्य के आरभ का चित्र—यह प्रथम पक्ति है। शाम के इस धूमिल वातावरण मे कमलावती के जीवन की असफलता मुखरित हो उठी है। कवि के एक-एक शब्द में अतर की व्यथा घुली है। 'थके हुए दिन'—विशेषण विपर्यय के द्वारा एक थके, भटके दिशाहीन, गतव्यच्युत पथिक का चित्र जो जीवन की यात्रा मे भटक गया। वर्तमान की इस दयनीय दशा के साथ कमलावती को वह सध्या भी याद आती है जब यौवन, सौंदर्य, ऐश्वर्य, वैभव, रूप-दर्प, गर्व, प्रभुत्व सभी कुछ था। तीव्र वैषम्य ने इस उदास चित्र को और भी गहन वेदना, असीम निराशा से भर दिया है। एक बार हम रूप की छटा से मुग्ध होते हैं, फिर बार-बार उदास होते है। इतने सुदर व्यक्तित्व का पतन बिंब को गहन से गहनतर विषाद मे डुबा देता है। आगे की पक्तियो मे कवि ने कमलावती का सौंदर्य-चित्रण किया है। 'यौवन के मालती मुकुल मे किरणो का रध्र खोजना—उसे उकसाने को' हसाने को'—मुग्धा के सुगठित अगो

की रूपराशि को और भी अधिक निखारने, कांति व दीप्ति प्रदान करने का प्रयत्न जो काल के हाथो सतत हो रहा था, यही यहा सकेतात्मक ढग से चित्रित है। प्रसाद के रूप-वर्णन की यह मर्यादा, यह सयम ही उनके स्थूल शरीरी चित्रो को भी एक सूक्ष्मता व अपरूपता प्रदान कर देता है।

नूपुरो की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण-अलक्तक की लाली से
जैसे अतरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगत व्यापी सध्या-सगीत को।

अलक्तक रजित चरणो की अरुणिमा मे नूपुरो का कोमल रुनझुन सगीतमय स्वर घुलमिलकर एक हो गया है, जैसे अतरिक्ष की अरुणिमा मे सध्या का सगीत डूब गया हो। चरणो की अरुणिमा इतनी मोहक व सुदर थी कि उनकी ही आभा चतुर्दिक छिटक रही थी—सब और व्याप्त इस अपूर्व सौदर्य मे सभी निमज्जित हो रहे थे, नूपुरो की रुनझुन स्वय को उसमे डुबो-कर धन्य हो रही थी। उन चरणो के न्यास मे एक सहज सगीत था। 'दिगत व्यापी सध्या सगीत को पीना'—यहा 'पीने' का प्रयोग अरुणिमा के अनिवर्तनकारी प्रभाव का सूचक है। उसमे एक ऐसा सभ्रमात्मक आकर्षक है कि सब उसमे तिरोहित हो जाते है। बिंब मे एक अपूर्व झनकार है जो उस सपूर्ण वातावरण को सजीव और मूर्त बना रहा है। रग और ध्वनि के सामरस्य ने बिंब को एक नयी विच्छित्ति दी है।

कमलावती के इस रूप चित्रण के बाद एक नाटकीय भगिमा से दृश्य बदल जाता है—'आखें खुली'। यौवन के मदहोश, बेखबर दिनो के बीत जाने पर चेतना लौटी और कमला-वती ने अपने-आपको अपार वैभव के बीच पाया। 'प्रणत थे वही गुर्जर महीप भी।' 'आख खुली' मे पल-भर मे क्या से क्या हो जाना ध्वनित है। कमलावती को मानो कुछ पता ही नही चला। बाद की पक्तियो मे नवविवाहिता रानी के विलास चित्र हैं। इस सोहाग और अनुराग की अपूर्वता के बीच अचानक फिर दृश्य बदलता है—

पावक-सरोवर मे अवभृथ स्नान था
आत्मसम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति थी।

पद्मिनी के जौहर का यह चित्र है जिसने आत्मसम्मान के लिए जौहर की चिता सुलगाई थी। आगे की पक्तियो मे रूपगर्विता कमलावती की पद्मिनी के गौरव गान से स्पर्द्धा के चित्र हैं, गुर्जर नरेश की पराजय के बाद बदिनी कमलावती का पद्मिनी के मार्ग पर चलने का व्यर्थ उपक्रम—

आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—
"अनुकरण कर मेरा"
समझ सकी न मैं।

यहा पर कवि ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यौवन को लेकर उठनेवाली आकाक्षा तथा क्षण-क्षण मे परिवर्तित होनेवाली भावनाए यहा सजीव हो उठी है। किस प्रकार प्राणो के मोह को सिद्धात रूप मे स्वीकार कर कमलावती अपनी आतरिक दुर्बलताओ का औचित्य स्थापित करती है, यह चित्र प्रसाद ने अत्यत मार्मि-कता एव सूक्ष्मता से उभारा है—

उसी क्षण बचकर मृत्यु महागर्त्त से सोचने लगी थी मैं—
जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है ।
...... जीवन अनन्त है,
इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है ?
· ···कितनी मधुर भीख माँगते हैं सब ही—
अपना दल अचल पसार कर वन-राजी,
माँगती है जीवन का बिन्दु-बिन्दु ओस-सा
क्रदन करता-सा जलनिधि भी
माँगता है नित्य मानो जरठ भिखारी-सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओ से ।

प्रसाद के इस चित्र मे जिजीविषा की दुर्निवार प्रचड लालसा 'जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है' से प्रारभ होकर बन-राजी और जलनिधि के चित्रो मे पूर्ण होती है । सपूर्ण बन-राजि अपने पत्रो के अचल फैलाकर जीवन (पानी) की एक-एक बूद या बल के लिए भीख माग रही है। दूसरा चित्र अधिक विराट है। पृथ्वी के पास सागर सबमे पुराना, सबसे अपना है । वही चिर-परिचित सागर मानो एक बूढे भिखारी की भाति अपना आचल फैलाकर भीख के लिए याचना करता है—याचना ही नही क्रदन करता है, धरती से जीवन की, जल की भीख मागता है । जीवन के प्रत्येक पल के लिए, प्रत्येक क्षण के लिए वृद्ध से वृद्ध मनुष्य भी प्रगाढ भाव से आसक्त रहता है । नदियो से वह जीवन की मीठी मधुर स्नेहल धारा मागता है । 'क्रदन करता सा' गर्जन के व्याज मे रोता हुआ, चीखता हुआ जीवन की भीख माग रहा है । 'जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है' का यही स्वर कमलावती के प्राणो मे वेग के साथ ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा है। जब सारी प्रकृति ही जीवन की भीख माग रही है तब कमला ही क्यो अपने प्राणो का उत्सर्ग करे ? कमला 'भारत की नारियो का मरना ही टेक भार है' के विरुद्ध निर्णय करती है कि वह जीवित रहेगी और जीवित रहकर ही सुल्तान पर शासन करेगी । 'टेक भार है'—गीत के ध्रुवक की भाति जो भारतीय नारियो के जीवन मे बार-बार पुनरावृत्य होता रहा है । उन्हे मानो उसे पुन -पुन गाने मे, कर गुजरने मे एक प्रकार का स्वर्गिक आनद आता हो । वदिनी कमलावती के अचेतन मे कितनी ही लालसाए, कितनी ही वासनाए घुट-घुटकर दमित होती रही और इन्ही दमिता वासनाओ के विस्फोट को वह न सम्हाल सकी । आखिर प्रभुत्व की कामना ने, ऐश्वर्य की लालसा ने, अह की तुष्टि ने उसे सुल्तान की बेगम बना ही दिया—

बिखरे प्रलोभनो को मानती-सी सत्य मैं
शासन की कामना मे झूमी मतवाली हो ।

पर सुल्तान की मृत्यु के बाद सब समाप्त हो गया । अपनी कामनाओ से हार जाने वाली कमला जीवन मे भी हार गयी । कमला के इन शब्दो मे प्रसाद ने उसके गहन विषाद को, जीवन की नितात व्यर्थता एव तुच्छता को, वैभव-विलास की क्षणिकता को, असहाय निरवलविता को सजीव किया है । पूरा चित्र समृद्ध एव सूक्ष्म ध्वनि रेखाओ से रजित है—

कृष्णा गुरुवर्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान मे
एक धूम-रेखा मात्र शेष थी,

उस निस्पद रग मदिर के व्योम मे
क्षीण-गध निरवलम्ब ।

एक विशाल राजमहल, चारो ओर वैभव विलास का वातावरण, रखा हुआ एक स्वर्ण पात्र और उसमे कृष्णा गुरुवर्तिका जो जलकर अपनी सुरभि को चारो ओर फैला रही है, जिसे अपने स्वर्ण पात्र का (अपने रूप का, यौवन का, लावण्य का, वैभव का, सपदा का अशेष गर्व है) लेकिन आज वह स्वर्ण पात्र के झूठे अभिमान मे जल चुकी है । अब कुछ शेप नही, केवल बुझती हुई वर्तिका की अतिम धूम-रेखा—वह भी क्षीण गध । एक ऐसी रेखा जो स्वर्ण पात्र से अपना सवध खो चुकी है—एक असहाय रेखा जो ऊपर उठकर इधर-उधर कापती-भटकती है और क्षीण से क्षीणतर होती हुई समाप्त हो जाती है । वहा केवल एक सर्वग्रासी मौन रह जाता है । 'निस्पद रगमदिर के व्योम मे' विशाल राजमहल मे जहा पहले सब कुछ उसका था, वह सम्राज्ञी थी पर अब कही भी जीवन का स्वर नही । वह एकाकी है—जीवन की व्यर्थता को अपने भीतर चुपचाप समेटे हुए, एक विपाद-भरी कहानी के समान । चित्र मे वैभव की व्यर्थता, जीवन की निस्सारता, गहन पीडा, अतहीन निराशा मानो एक-एक शब्द मे रूपायित है । सारा वातावरण गहन मौन की उदासी में डूबा है—चित्र मे प्रभविष्णुता है, साधारणीकरण की अपूर्व क्षमता है । दु खिनी कमलावती के प्रति करुण गहन भावना है ।

एक माया स्तूप सा
हो रहा है कोप इन आंखो के सामने ।

आदि से लेकर—

अतक शरभ के
काले काले पख ढकते हैं अध तम से
पुण्य ज्योतिहीन कलुपित सौदर्य का—
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा-सा
असफल सृष्टि सोती—
प्रलय की छाया मे ।

इन पक्तियो मे पश्चात्ताप, आत्मविगर्हणा, गहन विषाद का वातावरण है । जिस प्रकार यूनानी नाटको के अत मे एक विध्वस्त, विनाशकारी, टूटा सगीत, गहन ध्वान्त, अनत पीडा, तीव्र दशन चारो ओर मृत्यु का भयकर त्रास फैल जाता है । ठीक वैसा ही वातावरण, 'प्रलय की छाया' की इन अतिम पक्तियो मे मूर्तित है—'रूप व यौवन की, महत्त्वाकाक्षा की, दर्प व अभिमान की यह विपाक्त परिणति है ।' यह चित्र गहन है, व्यापक है, जिसकी सीमा मे आकाश-धरती सभी समा गये हैं—भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे महाकाल की सघन छाया ।

'देख कमलावती !'—इस सबोधन ने चित्र मे तिक्तता भरी है । अपने आपको नाम से सबोधित करना—मन की भारी ग्लानिमयी भर्त्सना मुखरित है, आज कमला का प्रवुद्ध रूप उसके विगत हीन रूप की भर्त्सना कर रहा है । सारा साम्राज्य, रूप का अपार वैभव यो ढह गया जैसे माया का स्तूप हो । यहा 'ढहना' से एक ऐसे स्तभ का चित्र सामने आता है जो भीतर से एकदम खोखला, सारहीन हो और जिस पर केवल एक बाहरी आवरण चढा हो । एकसाथ न गिरकर—ढहने मे धीरे-धीरे बिखरने का चित्र है । कमला के जीवन का भी इसी प्रकार विनाश हुआ है—एक के बाद एक, सब समाप्त होता गया । सारा सौंदर्य ओस की बूदो के

समान ढुलक गया । सौंदर्य का चचल, चपल, मोहक रूप समाप्त हो गया है । ढहना, ढुलकना आदि क्रियाओ के प्रयोग से कवि ने चित्र मे मृत्यु की तीव्र वेगात्मकता के स्थान पर एक श्लथ उदास वातावरण की सृष्टि की है जो मृत्यु के अवसाद को अधिक तरल बना देती है । 'हँसती है वासना की छलना पिशाची-सी' एक अकेले असहाय व्यक्ति को चारो ओर से पिशाचिनियो ने घेर लिया है, सभी व्यग्य कर रहे है । जिस सौंदर्य और वासना की अपार राशि पर उसे गर्व था वही सौंदर्य, वही वासना भयकर-प्रलयकर बाढ के समान उमडी और उस बाढ़ के तीव्र वेग मे वह बहती चली गयी—किसी गहन, अतहीन पतन की तरफ । और अब चारो ओर से उस पर व्यग्य-विद्रूप की वर्षा हो रही है । 'छिपकर चारो ओर व्रीडा की अगुलिया करती सकेत हैं'—यहा 'व्रीडा की अगुलिया'—एक अछूता प्रयोग है । जैसे लाछित अभियुक्त पर सब छिप-छिपकर सकेत से इशारा करते हैं । आज कमला की यही दशा है—रूप, यौवन, मद, विलास, गर्व, वैभव सभी उस पर व्यग्य-विद्रूप कर रहे है—चारो ओर से उनकी अगुलिया कमलावती की तरफ आ रही हैं । 'अतक शरभ के काले-काले पख ढकते हैं अध तम से'—ऊपर जैसे श्मशान मे गिद्ध पर गिद्ध अपने विशालकाय पखो को फैलाकर मडरा रहे हैं । उन हिंस्र, क्रूर व बीभत्स पखो मे सभी सिमटे जा रहे हैं—पुण्य ज्योति से हीन सौंदर्य का नक्षत्र—कलुषित नक्षत्र धीरे-धीरे नीचे कालिमा मे डूब रहा है । कमला का सौंदर्य पूर्ण ज्योतिहीन है क्योकि उसमे त्याग की, तप की, निष्कलुषता की छाया भी नही पडी । वह सौंदर्य जो केवल भोगलिप्सा मे ही जीवन व्यतीत करना अपना व्यक्तिगत धर्म समझता था—उसे कलुषित पुण्य ज्योतिहीन कहना ठीक है । सब कुछ अधकार मे निमज्जित हो गया है । सब ओर असफलता ही असफलता, व्यर्थता ही व्यर्थता—केवल प्रलय की छाया, गहन काली छाया ही व्याप्त है । सारी सृष्टि प्रलय की विषाक्त छाया मे, मृत्यु के विषण्ण परिवेश मे डूब गयी है । 'असफल सृष्टि सोती है'—कमला ने अपने जीवन मे जिस सृष्टि का निर्माण उल्लास, उमग, मधुरिमा, मादकता के साथ किया था वह आज ध्वस्त हो मृत्यु की गोद मे सो रही है—कमला का वह ससार चरितार्थ न हो सका । 'सोती है' मे जीवन की आनदपूर्ण हलचलो का एकदम शात हो जाना, एकबारगी समाप्त हो जाना व्यजित है । कविता का यह त्रासदीय अत आनदवादी प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है ।

## छायावादी काव्य के बिंब-विधान में प्रसाद की बिंब योजना का वैशिष्ट्य

कविता अपनी दीर्घ यात्रा मे बहुत कुछ छोडती चलती है—विचारो का निर्मोक उतरता रहता है, जीवन दर्शन ज्ञान के अभिनव आलोक और जीवनानुभवो के आलोक मे रूपातरित हो जाता है, शिल्प तत्र, भाषा, शैली, अप्रस्तुत विधान की प्रभूत सामग्री नित नूतन परिवर्तनो के वात्याचक्र मे जीर्ण हो जाती है और कवि प्रत्यग्रता, प्रभाव व सप्रेषण के लिए नयी दिशाओ व अभिनव लक्ष्यो की ओर अभियान करता चलता है । पर, परिवर्तनो के इस परिवेश मे कविता जिस एक अपरिवर्तनीय सत्य को साथ लेकर चलती रही है वह है—बिंब । वस्तुत बिंब ही काव्य है—वह एक ऐसा बिंदु है जहा एक ओर भावावेग सम्मूर्तन प्राप्त करता है और दूसरी ओर सप्रेषण के लिए नयी विधिया उपस्थित होती रहती हैं । दिनकर के शब्दो मे 'प्रत्येक सुदर कविता चित्रो का अलबम अथवा स्वय एक पूर्ण चित्र होती है । चित्र कविता का एकमात्र शाश्वत गुण है जो उससे कभी नही छूटता ।···कविता और चाहे कुछ करे या न करे किंतु चित्रो की रचना यह अवश्य करती है और जिस कविता के चित्र जितने

ही स्वच्छ यानी विभिन्न इंद्रियो से स्पष्ट अनुभूत होने के योग्य होते है वह कविता उतनी ही सफल और सुदर होती है ।[२२]

छायावादी काव्य बिंब की दृष्टि से अत्यत समृद्ध है । वह गीति-प्रधान अतर्मुख काव्य है जिसमे वैयक्तिक अनुभूतिया एव रागात्मक सवेग प्रकृति के माध्यम से अपने को मूर्त कर सके हैं । "यह अतरंग दृष्टि ही छायावाद की विचित्र प्रकाशन रीति का मूल है · काव्य मे चित्रकारी और सगीत का अपूर्व एकीकरण उसका आदर्श है ।"[२३] "छायावादी कवियो ने 'विशेषोगुणात्मा और रीतिरात्मा काव्यस्य' के साप्रदायिक अर्थ मे रीति को कभी ग्रहण नही किया ।"[२४] उनका काव्य कल्पनाप्रवण ध्वनिगर्भित काव्य है । उनके काव्य मे कल्पना का बडा प्रसार है—कल्पना के सहारे आतरिक अनुभूतियो, सवेदनो, मानस प्रत्यक्षो एव भावनाओ का नवविधान तो करते ही हैं, भावो के अनुकूल छंद, लय एव शब्द-चयन मे भी वे कल्पना से पर्याप्त प्रेरित हैं । हिंदी साहित्य की काव्यधारा ने मानो छायावाद मे आकर एकदम नया मोड लिया—उसे नयी भगिमा और नयी विच्छित्ति मिली । छायावादी काव्य अपने पूर्ववर्ती सभी काव्यो से असपृक्त लगता है । अपनी मानवतावादी दृष्टि के अनुकूल विषयो का चयन कर उसे व्यक्तिगत चितना और अनुभूति के रग मे रंगकर अत्यत रमणीय 'मैं शैली' मे व्यक्त करना छायावादी काव्य का मूल स्वर है । डा० हजारीप्रसाद के शब्दो मे "इसमे मानवीय आचारो, क्रियाओ, चेष्टाओ और विश्वासो के बदले हुए और बदलते हुए मूल्यो को अगीकार करने की प्रवृत्ति थी जिसमे छद, अलकार, रस, तुक आदि सभी विषयो मे गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न था और जिसमे शास्त्रीय रूढियो के प्रति कोई आस्था नही दिखाई गयी थी ।"[२५] छायावाद की 'मैं शैली' वस्तुत उनके आत्मप्रसाद की आकाक्षा थी । नामवर सिंह के शब्दो मे—

"छायावादी कवियो ने जो आत्माभिव्यक्ति की आकाक्षा प्रकट की वह वस्तुत आत्म-प्रसार की आकाक्षा थी । · उसका हृदय हर तरह की सकीर्णता का विरोधी था । उसकी इच्छा थी कि 'एक कर दे पृथ्वी आकाश' · · महादेवी का असीम भी आत्मविस्तार का द्योतक है । ·विराट के उपासक निराला मे यह भावना कही विराट प्रतीको मे व्यक्त होती है तो कही शक्तिरूपिणी मा के प्रतीक से · प्रसाद जी के यहा आत्मविस्तार प्राय एक अतीद्रिय आनदानुभूति के रूप मे अभिव्यक्ति पाता है । व्यक्ति को अपनी विराटता का बोध—यही छायावाद का व्यक्तिवाद है ।[२६] इस आत्मप्रसार के लिए जिस कल्पना का पथ अपनाया गया वह अप्रस्तुत विधायिनी सामान्य कल्पना नही है । 'छायावादी कल्पना केवल अलकारो और प्रतीको की योजना करनेवाली सामान्य प्रवृत्ति नही है, वह सत्यान्वेषी अतर्दृष्टि है और ऐसी कल्पना का अभ्युदय भावावेग मे ही होता है । तीव्र भावावेग मे ही उदात्त कल्पना का जन्म होता है ।"[२७]

छायावादी काव्य मे अभिव्यजना की मनोरम पद्धति है, चित्रमयी भाषा है और विविधवर्णी बिंब योजना है । चाक्षुष बिंब कही स्पर्श से पुलकित हैं, कही गध से सुवासित और कही कोमल गहन रग-चेतना से स्फुरित । भाव बिंब, अलकृत बिंब, सांद्र बिंब, गत्वर बिंब, समानुभूतिक बिंब, विराट उदात्त बिंब, दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक-सास्कृतिक बिंब की शोभा से छायावादी काव्य मडित है । छायावादी कवियो ने अपनी अनुभूतियो के अनुरूप रूप विधि का निर्माण करते समय रूप की सगति और सार्थकता के साथ-साथ उसके अतिरिक्त सकेत की ओर भी ध्यान रखा अत सूक्ष्म से सूक्ष्म भावव्यजक चित्रो के साथ-साथ छायावाद

की प्रतीक योजना भी समृद्ध है। छायावादी काव्य अतर्मुखी, व्यक्तिपरक काव्य होने के कारण उसके बिंबो मे भावना की गहराई और सान्द्र आत्मीयता तो है पर जीवन का वैविध्य उसमे कम है। पर, यह आत्मीयता भक्तो के आत्मनिवेदन से आगे की बात है जिसमे उसे धर्म के आवरण की आवश्यकता नही।

यह सत्य है कि अनुभूतियो को ऐहिक वैयक्तिकता की क्षुद्रता से बचाने के लिए छायावादी कवि को सूक्ष्मता का एक रहस्यात्मक आवरण देना पडा जिससे चित्रो मे एक वायवीय धूमिलता तथा अस्पष्टता आ गयी और एक विशेष मानसिक सहृदयता की माग ने उनके सप्रेषण पक्ष को निर्बल बना दिया, फिर भी बिंब की दृष्टि से छायावादी काव्य की ही उपलब्धि सपूर्ण हिंदी काव्यधारा मे सर्वोपरि है। इस अस्पष्टता एव सूक्ष्मता के कारण छायावादी काव्य रहस्यात्मक हो उठा है किंतु छायावाद रहस्यवाद की भाति परोक्षानुभूति का काव्य नही, वह वास्तविक प्रत्यक्षानुभूति का काव्य है। छायावाद की इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कमलाकात पाठक लिखते हैं—"सूक्ष्म कल्पनाशीलता और अतीन्द्रिय सौंदर्य सृष्टि के कारण छायावाद मे परोक्षानुभूति का आभास दिखाई पडता है, पर वह मूलत हृदय पर पडे व्यापक सौंदर्य के प्रभावो की अभिव्यजना ही है। यह कल्पनाशील मनोवृत्तियो एव प्रबुद्ध सवेदनाओ का काव्य है जिसकी भूमि राग की है, विराग की नही।"[२८] वस्तुत बिंबो की इस अस्पष्टता का कारण छायावादी काव्य मे अतर्मुखीन भावुकता का आतिशय्य है। महादेवी का यह कथन समीचीन है—"छायावाद ने हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौंदर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था—इसी से उसे यथार्थ मे ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।"[२९]

छायावाद के बिंबो की सीमा, उनकी शक्ति का आकलन कैलास वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिंदी कविता मे शिल्प' मे किया है—

"चित्रात्मकता मे छायावाद सगीत तथा सबद्धता के प्रति अधिक जागरूक नही—उसके चित्र अधिकतर बिखरे हुए हैं, उनमे क्रमबद्धता है। किंतु, रसानुभूति जैसी तन्मयता मे असमर्थ होने के बावजूद छायावाद की यह चित्रात्मकता सवेदना को स्पर्श करती है और एक विलक्षण रोचकता तथा प्रभाव उपस्थित करती है। सौंदर्य, प्रेम और शृगार की दृष्टि से छायावाद चेतना के उच्चतम धरातल को छू सका है।"[३०] जो हो, छायावाद ने जीवन के चिरतन मूल्यो को लेकर बिंब-सर्जना की। पत का प्रकृति-प्रेम, निराला का सौंदर्यानुराग, प्रसाद का आनदवाद तथा महादेवी की रहस्य-कल्पना के मूल मे जीवन की शाश्वत सवेदनाए हैं। पत के शब्दो मे—

"छायावाद भावबोध की दृष्टि से जहा विगत वस्तुबोध की भूमिका छोडकर एक ओर नवीन चैतन्य के शिखरो की ओर बढा वहा कलाबोध की दृष्टि से काव्यशास्त्रीय जड, अलकार युग की सौंदर्य धारणा से अपने को मुक्त कर, सीधा प्रकृति के मुक्त पख-प्रसारो मे विचरण कर नये सौंदर्य-उपादानो की खोज मे निकल गया। ··उसने अपनी मूर्ति विधायिनी कल्पना से प्रकृति का मानवीकरण कर मनुष्य की कला-रुचि का परिष्कार करने के लिए नवीन सौंदर्य-प्रतिभा का निर्माण किया इस प्रकार छायावाद ने अपना सौंदर्यबोध विगत युगो के सचय स्वरूप जीर्ण खलिहानो एव भडारो से उधार न लेकर उसे स्वय नये रूप से प्रकृति के उर्वर आगन मे उगाया। शब्दो से नये अर्थ, अर्थो से नयी चेतना, चेतना से नया कलाबोध और कलाबोध से नयी सौंदर्य भगिमा हृदय का स्पर्श कर नये रस का सचार करने

लगी। ' रूप सौंदर्य से अधिक भाव सौंदर्य को अभिव्यक्ति देने के कारण उसमे नये प्रतीको, बिंबो, अप्रस्तुत विधानो का प्राधान्य है।"[31]

छायावादी काव्य के बिंब विधान का सम्यक् आकलन—दूसरे शब्दो मे कवि चतुष्टय के काव्य-बिंबो का अनुशीलन ही है क्योकि इनके बाहर छायावाद का सजीव स्वरूप नही के बराबर है।

प्रसाद के बिंबो मे सागर की गहराई है, आतरिक उद्वेलन है, अतर्द्वंद्व की गहन व्यथा है, अमूर्त भावनाओ को मूर्त करने का अदम्य पुरुषार्थ है, करुणा की विकलता है, अपार सौंदर्य की शोभा है, उदात्त मागलिक स्वर है। ये भाव बिंब रागात्मक तीव्रता से अधिक साद्र है, उनमे बाह्य व्यापार व जीवन वैविध्य कम है। उनमे चक्षु गोचरता से अधिक मानस गोचरता है। निराला के चित्रो की बाह्य रेखाए पुष्ट व स्पष्ट हैं, उनमे आनुभूतिक गहनता के साथ-साथ व्यापक प्रसार व विराटता है, द्यावा-पृथिवी उनमे सिमट जाती है। चित्रो मे तीव्र वेग है। गतिशील चित्रो का वह अमर चितेरा है, वस्तु बिंब व गत्वर बिंब मे वह अप्रतिम है। निराला मे सूक्ष्मता व पृथुलता दोनो एकसाथ हैं और सबसे बडी बात है कि निराला के चित्रो मे एक दार्शनिक की असगतता है। पत के राशि-राशि चित्रो मे सौकुमार्य है, सुषमा की चारुता है, कलात्मक निखार है, मधुर ध्वनि के चित्रो मे पत अप्रतिद्वद्वी है। उनमे भावो की उष्णता व तीव्र सवेग कम, कलात्मक निखार अधिक है। अलकृत बिंबो मे पत का वैशिष्ट्य है। महादेवी मे बरसाती साझ की आर्द्रता है, सयमित पीडा व वेदना के चित्र है—असीम के साथ अटूट सबध है, वेदना की इस साधिका मे अपूर्व सयम है, चित्रो मे उज्ज्वलता एव शुभ्रता है। निराला के गीतो मे यदि निर्झर का आवेग है तो प्रसाद मे सागर की गहराई। पत मे सरिता की गति है तो महादेवी मे उमडने-घुमडनेवाली मेघराशि की सी उदासी। डा० प्रेमशकर छायावाद के इन कवियो का आकलन करते हुए लिखते हैं—"भावना का प्रवाह निराला के काव्य का प्रमुख लक्षण है और यही उनके व्यक्तित्व को छायावाद युग के अन्य कवियो से भिन्नता प्रदान करता है। स्वय प्रसाद एक सजग कलाकार हैं। उनकी तूलिका केवल रेखाचित्रो से ही निराला की भाति कार्य नही करती वरन् धीरे-धीरे सजग होकर कार्य करती है। प्रसाद का बुद्धि पक्ष उनकी भावनाओ का उदात्तीकरण अवश्य कर लेता है, किंतु प्रगीतो के स्वच्छद प्रवाह को मथर कर देता है। निराला की कविता का क्षेत्र अधिक व्यापक है, उनकी सौंदर्य भावना निस्सदेह अधिक विस्तृत है। निराला प्रसाद की बौद्धिकता, दार्शनिकता को अपनी स्वच्छदता व प्रवाहमयता से सतुलित कर लेते हैं। उनकी भावनाए आरभ से ही इतनी उदात्त रही कि उन्हे भाषा एव प्रतीक के आवरण मे नही रखना पडता और न उन पर दर्शन को आरोपित करने की आवश्यकता हुई। प्रसाद को शृगार का परिष्कार तथा भावना का उदात्तीकरण करना पडा। प्रकृति और सौदर्य के प्रति तादात्म्य की भावना मे नि सदेह पत प्रसाद से आगे हैं। पत का सवेदनशील व्यक्तित्व नयी दिशाए ग्रहण करता रहा, किंतु प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व को विकसित किया। ' महादेवी का पक्ष छायावादी कवियो मे अधिक वैयक्तिक और ऐकातिक है। वैयक्तिक अग के उदात्तीकरण के लिए उन्होने प्रतीक योजना, रहस्य भावना का अवलब ग्रहण किया। ''महादेवी ने व्यक्तिगत पक्ष को आत्मा-परमात्मा के प्रतीको मे बाधकर रहस्यवाद की साधना भूमि पर पहुचा दिया।"[32] "महादेवी की छुई-मुई जैसी प्रणयिनी सशक्त सपर्क की सभावना से घबराती है, वह तपोवन की साधिका है जो अपने एकात को लालसा और विलास की उन्मत्त क्रीडा से

सुरक्षित रखना चाहती है। प्रियतम से उसका छाया संबध अँधेरे के स्मित-विभासित रहस्य मे घटित होता है। इसके विपरीत प्रसाद जी का प्रणयी चित्त निसर्गत उद्दाम और विलासी है।···इसे हम सुदर से भिन्न उदात्त व विराट की चेतना भी कह सकते हैं। निराला की उदात्त चेतना प्रसाद की तुलना मे अधिक गत्यात्मक है; वह शक्तिपूर्ण क्रिया या व्यापार मे अधिक गत्यात्मक और स्वभावत विद्रोही अर्थात् शक्तिपूर्ण है।"[33]

इन कवियो मे शब्द-प्रयोग की भी एक निजी विशिष्टता पायी जाती है—"पत मे अर्थ सामान्य मनोभूमि का होता है जिसे वे कल्पना, इच्छित चिंतन व शब्द शिल्प से फैला देते हैं, प्रसाद अपने बोध मे छने हुए अर्थ को और भी अधिक छानकर गाढा कर देते हैं। पत मे शब्द ही वस्तुए हैं—प्रसाद मे शब्द केवल इगित। पत मे शब्द ठोस है, निराला मे द्रवित और प्रसाद मे तो एकदम उद्वाष्पन। पत मे शब्द अलग-अलग पच्चीकारी के टुकडो से दीखते हैं, निराला मे हिले-मिले बहते से, प्रसाद मे वे अलोप से हो जाते हैं।"[34]

सक्षेप मे, प्रसाद मे एक दीर्घ अनुशासित भाव साधना मे छनकर कविता निकलती है—उनके बिंबो मे व्यवस्था है, अतर्द्वंद्व की समस्त मार्मिकता है, रूप वर्णन के दुर्लभ शिखर हैं, वाणी के मार्दव व लाक्षणिक दीप्ति से उनके बिंब अलौकिक है। निराला मे कविता भाव सवेगो की मौलिक तीव्रता और प्राण शक्ति की दुर्दमनीय विह्वलता से नि सृत है। यही कारण है कि उनके बिंबो मे एकसूत्रता नही। निराला के बिंबो मे एक महान दार्शनिक तटस्थता है, औदार्य का अप्रतिम उत्कर्ष है, रूपात्मक छवियो की कलना है, भाषा मे अबाध गति है, सर्वत्र एक प्रसन्न स्वस्थ और उदात्त भावलोक है जिसमे सामाजिक क्राति का स्वर है—एक क्लासिकल पूर्णता है। पत का भावजगत सक्षिप्त व सीमित है, अत कविता मे शिल्पतत्र को अतिरिक्त महत्त्व मिला है। बिंबो मे कोमलता, माधुर्य, मसृणता है, शब्द योजना अत्यत मधुर है, प्रकृति के साथ अभिन्न तादात्म्य है, ध्वनि बिंबो का अपूर्व वैभव है, भाषा चित्रात्मक है। महादेवी के सजल गीत भावजगत की सूक्ष्मता एव रहस्यात्मक जिज्ञासा से प्रेरित हैं। बिंबो मे घुमड़नेवाली व्यथा है, विरहिनी आत्मा की सयमित मर्यादित पुकार है, शुभ्रता-उज्ज्वलता है, स्वप्न मिलन की ललक है, दु ख से अभिन्न नाता है, पीडा की गहनता-तरलता है, असीम से ससीम का निविड सबध है।

छायावाद के बिंब वैशिष्ट्य की चर्चा हम निराला से आरभ करेंगे। छायावाद के बिंबो का आकलन करते हुए डा० सुरेन्द्र माथुर ने निराला की रचनाओ के बिंब विधान पर प्रकाश डाला है—

"छायावाद के सुकुमार कलेवर मे आगिक स्फूर्ति आतरिक शक्ति और निज का अभिज्ञान देकर निराला ने उसमे अपने निराले व्यक्तित्व की छाप लगा दी। 'अनामिका' मे कविताओ की धारा मानवीयता और आध्यात्मिकता के कगारो के बीच बही, परिमल मे छोटे चित्रो द्वारा अतर का आकुल अभिव्यजन। शेफालिका, जूही की कली मे मूर्तिमत्ता से ऊपर उठकर चित्रो मे सवेदनात्मकता के साथ चेतना का आरोप कर कवि ने इन्हे सजीव बनाया है। गीतिका के गीतो मे कलात्मकता और अनुभूति की प्रधानता लक्षित हुई है। 'अर्चना' के गीत विविध का प्रतिनिधित्व करते हैं। नाद प्रधान बिंबो के सहारे उदात्त की सृष्टि मिलती है। · निराला मे बुद्धि सवेग की अतिशयता मिलती है।"[35] निराला के कुछ चित्र—

मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।

कण-कण कर कंकण, प्रिय,
किण्-किण् रव किंकिणी
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।

(अनामिका, पृ० १५३)

अभिसारिका के इस चित्र मे लघु-लघु शब्दो को तराशा गया है। ध्वनियो का अश्रुत रणन-क्वणन है—झणत्कार से सारा गीत ध्वनित है। यह जैसे मुग्धा है, अपनी ही ध्वनियो से बेखबर। 'उर लाज' वह क्या करे? क्या लौट जाय—कुछ रुककर, धीरे-धीरे संभाल कर चले, रुकती भी है पर ज्यो ही चलने का उपक्रम करती है सभी कंकण बज उठते हैं, कभी किंकिणी, कभी नूपुर और कभी पायल—सभी तो मुखर हैं—हृदय का उल्लास प्रत्येक अंग से, एक-एक चरण से प्रकट हो रहा है। 'मौन रहा हार'—भला इस मधुर उल्लास की ध्वनि मे हार विचारा करे भी क्या? यहा अर्थ का सौष्ठव संगीत के स्वर मे ध्वनित है। श्रावणिक बिंबो के साथ संगीत माधुर्य का यह संयोग आधुनिक काव्य मे विरल है।

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण
श्लथ धनु-गुण है···
उतरा ज्यो दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यो हो कही पार।

(अनामिका—'राम की शक्ति पूजा', पृ० १४९)

'राम की शक्ति पूजा' निराला के विराट उदात्त बिंबो मे श्रेष्ठ है। महाकाव्योचित औदात्य, भाषा का शक्ति नाद, भावो का उद्दाम वेग, मनोभावो का सूक्ष्म अंकन, नाटकीय भंगिमा से चित्र पर चित्र उभरते जाते है और उन सबकी एकात्म संहति ने कविता को अशेष गौरव प्रदान किया है। शक्ति के कवि निराला के तेजस्वी रघुनायक का यह चित्र है—पर यहा सब कुछ बदल गया है। राम की उदासी सारे वातावरण को डुबा रही है। विषण्ण व्यक्ति का उदासी भरा एक गहन मर्मन्तुद चित्र। एक-एक शब्द मे उदासी, गहन निराशा शैथिल्य-भग्न रेखाओ से उभारी गयी है। 'नवनीत चरण राम'—राम के चरणो की—योद्धा राम के चरणो की दुर्दम गति यहा नही—यहा सब कुछ शिथिल, अवसाद मे डूबा है। अनुगुण श्लथ, कटिबंध स्रस्त, दृढ जटाओ का वह मुकुट आज विपर्यस्त होकर—लट प्रति लट खुलकर बिखर रहा है। सभी क्रियाएं एक निराश व्यक्ति की मन स्थिति को मूर्त करती हैं। अप्रस्तुत विधान ने इस चित्र को अधिक भास्वर व प्रभविष्णु तो बनाया ही है, साथ ही उसे अधिक गहन भी किया है। 'दुर्गम पर्वत' मानो राम का दुर्लंघ्य पौरुष-दृप्त व्यक्तित्व है—ऐसे अगम पर्वत पर भी नैशान्धकार उतर पडा है—यही चित्र का सौंदर्य है। राम, योद्धा राम, क्षत्री राम, महान तेजस्वी राम आज उदास हैं। इतने विराट, महान, भव्य व्यक्तित्व की यह तरल उदासी, गहन निराशा हृदय को एकदम छूती है—एक पल के लिए मानो उसकी गति ही रुक गयी हो। दूसरी ही पंक्ति मे इस घनघोर निराशा, घटाटोप अंधकार के भीतर से ज्योति फूटती है। दो तारे दूर कही चमक रहे हैं—राम की आखें, दृढ संकल्प, ज्ञानदीप्त व मर्मभेदिनी हैं।

'कही पार'—जो भविष्य की गहराई मे कही दूर देख रही हैं। यह त्रिकालज्ञ राम की स्थिर आखें हैं।

उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार
..................... ... ... ... ..
शत घूर्णावर्त तरग-भग उठते पहाड
जल-राशि राशि-जल पर चढता खाता पछाड़।
(अनामिका)

अशांत, तरग सकुल उद्वेलित सागर की प्रचडता का यह चित्र ध्वन्यात्मक घूर्णावर्त तरगो के टकराने से और भी भीषणतर हो गया है। सागर गर्जन का तुमुल नाद-स्फीत वक्ष और उनके पीछे बज्राग हनुमान का शक्ति सागर का विस्फूर्जन इस गति चित्र मे क्षिप्रता, उद्दाम वेग, ऊर्जा का विस्फोट, कर्णभेदी निनाद है। हनुमान की शक्ति का यह गर्जनकारी वेगोद्भेदक चित्र है।

निराला के इसी गीत मे एक अत्यत कोमल, मधुर मिलन प्रसग (जो सपूर्ण कविता का अनोखा रमणीय स्थल है) जनक की वाटिका मे राम-जानकी का प्रथम मिलन है—लता के अतराल मे प्रथम साक्षात्कार। राम को विदेह का वह उपवन याद आता है—

याद आया उपवन
प्रथम कपन तुरीय।
(अनामिका, )

नयनो का गोपन सभाषण, एक-दूसरे को अभिभूत होकर निहारना—बस केवल देखना और हृदय की समस्त कोमल भावनाओ का आखो से उभरना—आखो की भाषा का निराला ने अद्भुत सम्मूर्तन किया है। प्रेम की इस दशा मे निराला के राम को सपूर्ण प्रकृति प्रेमोन्मत्त दिखाई देती है—किसलय काप रहे हैं, फूलो से पराग झर रहे हैं, खग नवजीवन के परिचय गीत गा रहे है, तरु मलय पवन से वलयित हो उठे है। लगता है कि स्वर्गीय ज्योति का निर्झर झर रहा है। इन सबके ऊपर है 'प्रथम कपन तुरीय'। जानकी के कमनीय नयनो की यह तुरीयावस्था—जानकी के जीवन का यह प्रथम अनुभव किसी साधक की तुरीयावस्था के ऐकातिक आनद की अवस्था से कम नही।

रूखी री यह डाल, वसन वासती लेगी।
देख खडी करती तप अपलक
हीर-कसी समीर माला जप
शैल सुता अपर्ण अशना
पल्लव वसना बनेगी।
(गीतिका, पृ० १४)

आशा का स्वर—पतझड के बाद वसत का, नवजीवन का सचार मुखर है। पतझड की रूखी डाल मे तप निरता पार्वती की, अपर्णा पार्वती की छवि अकित है। यह पतझड वनस्पति-शास्त्र की साधारण प्रक्रिया नही, जीवन की साधना है, तप है, त्याग है। 'री!' सबोधन मे कवि की गहन आत्मीयता है, यह दुलार-भरा ऐकातिक सबोधन है। यही निराला की विशेषता

है। पल्लव वसना भावी नववधू पार्वती की ओर इंगित करता है। तप के दिव्य परिणाम का यह संकेत चित्र है।

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी जूही की कली
दृग बंद किये शिथिल पत्राक मे।
(परिमल)

'जूही की कली' प्रियतम की प्रतीक्षा मे रत, पर एकदम आश्वस्त कि वह उसी का है। नयनाभिराम, मोहक व सजीव चित्र है। 'कोमल तनु तरुणी' नवयौवना कली-तरुणी होकर भी कोमल। 'दृग बंद किये' मे प्रियतम का प्रगाढ विश्वास, अनुगात रग से रगी एक आत्मीयता। 'स्नेहमग्न', स्वय अपने ही स्नेह मे डूबी एकदम बेखबर। 'स्नेह' शब्द का प्रयोग 'प्रेम' की उद्दाम विलासिता के स्थान पर एक कोमल मधुरता का चित्र खीचता है। कोमल तरुणी के चित्र को और भी अधिक तरल कोमल कातिमयता मिलती है।

बंद कंचुकी के खोल दिये प्यार से
यौवन उभार के
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे लाल सी कपोलो के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर ये चुम्बन गगन के।
(परिमल)

जीवन के प्रति कुंठा-विहीन मुक्त दृष्टि—असग निराला की यह निराली दृष्टि है। छायावाद मे दुर्लभ। शेफालिका प्रथम यौवन का अनुभव करती है। कली की पखुडिया स्वत रस से भीग उठी है। वे खुल गयी हैं अपने भीतर के विकास से ही। यहा कंचुकी के बंद खोलने के लिए नायक की आवश्यकता नही, यौवन स्वय ही नायक है। यौवन के विकास की पराकाष्ठा के लिए वक्षो की स्फीतता के लिए अत्यत सुष्ठु प्रयोग—कंचुकी का स्वय खुल जाना 'लाल-सी कपोलो' शब्दो मे अर्थ की एक विराटता है। कपोलो को लाल सी बताकर निराला ने हृदय की अदम्य लालसा, यौवन की आकाक्षा, वासना की उद्दाम तरलता को एकसाथ उभार दिया है। हृदय की यह तरल लालसा इतनी अधिक है कि वहा समा नही पा रही है—बह-कर गालो मे सिमट गयी है। यहा प्रणय-निवेदन का एक शब्द नही, केवल मूक आह्वान है। कपोलो ने सब कुछ कह दिया है—शब्दो की निरर्थकता का यह चित्र है। प्रेम की गहन सान्द्रता मे वाणी मौन हो जाती है, यही निराला यहा कहना चाहते हैं। ऐसा ही प्रयोग है 'व्याकुल विकास'—विकास के अधिकाधिक होने की तडप, चरम शिखर पर पहुचने की छट-पटाहट। यह प्रवर्धमान छवि रूप की काति को और भी बढा रही है। भीतर का विकास, बंदी विकास मानो मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील है। मिलन के लिए आतुर, प्रेम के आनद-लोक मे जाने के लिए व्याकुल शेफालिका पर आकाश मे नेह-वर्षा हो रही है। शेफाली का यह चित्र पूर्ण मिलन का चित्र है जिसका एक पल ही एक संपूर्ण जीवन को उजागर करने

के लिए पर्याप्त है—उस तृप्ति के बाद उस परम ग्रानद के बाद जीवन का कोई अर्थ नही। ग्रतः शेफाली सुबह झर जाती है—'सुवह को ग्राली ! शेफाली झर जाती'। परिपूर्ण तृप्ति का यह चित्र वासना की मादकता से ग्रारभ होकर प्रशाति मे, ग्रात्मतृप्ति मे पर्यवसित होता है। भौतिक मिलन की पूर्णता ही मानो ग्राध्यात्मिक तृप्ति है।

दिवसावमान का समय
मेघमय ग्रासमान से उतर रही है
वह सध्या सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।

(ग्रपरा—'सध्या सुदरी', पृ० १३-१४)

निराला प्रकृति के भीम भयकर व कोमल मधुर रूप के युगपत् चित्र ग्रकित करते हैं। प्रकृति के विराट, गतिशील व व्यापक चित्रो की बहुलता उनके काव्य मे है पर यहा वरसाती साझ की नीरवता का एक गरिमामय चित्र ग्रकित है। वह शाम सागर से लेकर गिरि सानु प्रदेश तक फैली हुई है। यह किसी विशेष स्थान की सध्या नही, सपूर्ण प्रकृति की विविधता के ऊपर समान रूप से ग्रायी हुई सध्या है। यह सध्या सुदरी है—केवल सुदरी ही नही, गरिमामयी सुदरी है जो सम्राज्ञी की तरह सपूर्ण महिमा ग्रौर गौरव के साथ, एक शालीन ग्राभिजात्य के साथ धीरे-धीरे पग उठाती हुई ग्रा रही है। उसके भव्य चेहरे पर स्मित हास्य की मधुरिमा का एक झीना ग्रावरण है जो उसके गभीर व्यक्तित्व को माधुर्य से भर रहा है। वह हास-विलास मे समय व्यतीत करनेवाली साधारण रमणी नही, सपूर्ण प्रकृति के ग्रतरतम हृदय की रानी है, जिसके ग्रागमन की सूचना से सव उसके सम्मान मे चुपचाप खडे है। प्रकृति के इस शात-गभीर परिवेश मे कही चपलता नही, कही उच्छृखलता नही। चारो ग्रोर 'सिर्फ एक ग्रव्यक्त शब्द' है—चुप-चुप-चुप, मानो ग्रधरो पर उगली धरे चुप रहने का सकेत, गभीर सकेत कोई कर रहा है। सारा वातावरण मौन, निर्वाक् निस्तब्ध ग्रौर शात है। ग्राभिजात्य के गभीर पदचाप से पुलकित-स्पदित एक विराट चित्र। ऐसे शात मौन वातावरण मे हसने का, चमकने का, चपलता का ग्रधिकार केवल उसके बालो मे गुथे हुए तारे को है—'तारा एक'। एक विशेष व्यक्ति का ग्रधिकार है यह, क्योकि यह सम्राज्ञी ग्रौर कोई नही, उसके हृदय की रानी ही तो है। सध्या सुदरी की मथर गति मे ग्रपूर्व ढंग की साध्य शाति, नीरवता ग्रौर शिथिलता की ग्रनुभूति होती है। साथ ही उस नवोदित तारे का प्रकाश एक ग्रकेला प्रकाश ग्रौर उल्लास का स्थल है। सध्या सुदरी की गति जिस छंद मे वध उठी है, उसका रूप जिन सूक्ष्म रेखाग्रो ग्रौर छायाग्रो मे ग्राभासित हुग्रा है वह ग्रभूतपूर्व है।

वह इष्ट देव के मदिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शात भाव मे लीन
.... . .... . .. .... ....
दलित भारत की ही विधवा है।

(परिमल)

भारत की दीन तप पूत विधवा का एक करुण उज्ज्वल चित्र। 'दीपशिखा-सी शात'— जो निष्कप भाव से जल रही है, सबको प्रकाशित कर रही है। भीतर मे ग्रनत दाह पर वाहर से वही

शात-सौम्य रूप, भीतर गहन भावो का उद्वेग पर बाहर से शात। मदिर की दीपशिखा—ऊपर से नीचे तक पवित्रता की मूर्ति मानो ईश्वर के चरणो पर समर्पित दीप हो। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नही, वह समर्पित है त्याग को, तप को, सेवा को। 'क्रूर काल ताडव की स्मृति रेखा'—काल के निष्ठुर हाथो ने जिसका सर्वस्व लूट लिया हो। स्मृति रेखा मे 'रेखा' शब्द का प्रयोग उसकी कृश काया का सूचक है जिसे देखकर उस दुर्दिन की याद आ जाती है जब काल ने उसके साथ क्रूर खेल खेला था। वह टूटे वृक्ष की भ्रष्ट लता-सी दीन है। एक तो टूटा हुआ तरु यो भी दीन होता है क्योकि धरती मे उसका सबध नही रहता, फिर उसकी भी छुटी लता—दीनता की पराकाष्ठा। क्यो न हो, वह है भी तो दलित—पराधीन भारत की एक विधवा। विधवा की करुण असहाय छवि स्वय मे भीतरी विद्रोह के स्वर को समेटे है।

बता, कहाँ वह वशीवट ?
कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल चरणो का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृदा धाम ?

(परिमल—'यमुना के प्रति')

साधारण वार्तालाप के इस छद का सारा सौंदर्य 'चल चरणो का व्याकुल पनघट' मे सिमट गया है। कृष्णलीला की सारी मुग्धकारी स्मृतिया इसमे मूर्तित हैं। अधीर, प्रेमाकुल, चचल, मर्यादा को तोड देनेवाली ब्रज वनिताए लक्षित है। वे केवल 'चल चरण' मात्र थीं—कृष्ण मिलन के लिए अधीर, आतुर, अवसर पाकर जो दौड पडती थी, बेसुध-बेखबर। 'व्याकुल पनघट' मे पानी भरने का बहाना है, साथ ही पनघट पर होनेवाली अधीर प्रेमलीला का समग्र चित्र भी। अमूर्त चित्रकला की गत्यात्मकता इसमे है जहा एक ही भाव का प्रभावशाली चित्र उभारा जाता है और वही सब कुछ कह देता है। धार्मिक वातावरण से मुखरित इस चित्र मे गति है, क्रीडा है, हास-विलास है, प्रेम के अनेक कौतुक हैं। 'बता, कहाँ वह वशीवट'—प्रश्न के रूप मे सर्वत्र एक विषाद का धूमिल पट।

'तुलसीदास' निराला का अंतर्द्वंद्व-व्यजक मनोविश्लेषणात्मक काव्य है। जिसका आरभ भारतीय सास्कृतिक सूर्य के अस्त होने की काली विशद भूमिका से होता है। चतुर्दिक व्याप्त गहन अधकार के रूप मे घनघोर नैराश्य, मुस्लिम आक्रमण की काली घटाओ का घिरना, उन्मत्त पठानो के प्लावन से दिग्भ्रमित राष्ट्र का एक सपूर्ण साग चित्र कवि ने सूक्ष्मता से उभारा है। शिल्प-नैपुण्य, शब्द-चयन उदात्त शैली की इस रचना मे बिंबो का अपार वैभव है—

भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाया सास्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मडल।

(तुलसीदास)

सपूर्ण भारत ही विशाल नभ है, सस्कृति सूर्य है अत 'शीतलच्छाया' विशेषण उचित है। यहा विरोध का चमत्कार है—यह ध्वनि भी है कि भारत का सास्कृतिक सूर्य तापित नही करता। यहा की सस्कृति विरोधमूलक खडनात्मक प्रवृत्ति नही, उसमे समन्वय की शीतलता है, सबको

अपनाने की अपार क्षमता है। ऐसे सूर्य का अस्त—चारो दिशाए अधकार से भर गयी हैं। 'रे' गहन व्यथा से उद्भूत है और 'रे' के बाद एक लबा विराम है मानो कवि एक लबी आह भरकर उस वेदना को अधिक गहन बना रहा है। 'है उर्मिल जल'—उपर से सब कुछ वैसा ही शात, स्वच्छ, शीतल पर 'निश्चलप्राण शतदल'। उसके प्राणो का शतदल निश्चल है, मृत-प्राय है। भीतर से सारा देश खोखला हो गया है, मृतप्राय हो गया है—इसे ही एक अभिनव भंगिमा से कहा गया है। उसी प्रकार—

शत शत अब्दो का साध्यकाल
यह आकुचित भ्रू कुटिल भाल
छाया अम्बर पर जलद जाल ज्यो दुस्तर।
(तुलसीदास)

शत-शत अब्दो तक प्रलयकर युद्ध होते रहे, उसका सजीव चित्र है—साध्यकाल हो और चारो ओर से बकिम भ्रू मेघपटल, उनकी विशाल दुस्तर वाहिनी। भारत की सास्कृतिक सध्या की वेला, उस पर चारो ओर से भयकर आक्रमण।

नि शेष सुरभि कुरबक समान
सलग्न वृत पर चित्य प्राण
बीता उत्सव ज्यो, चिह्न म्लान, छाया श्लथ।
(तुलसीदास)

व्यापक शैथिल्य का वातावरण। सारा देश एक म्लानता से, शिथिलता से परिपूर्ण है मानो उत्सव बीत गया हो। दशा उस पुष्प की तरह है जो वृ त पर लगा तो है पर जो झड जाने वाला है—उसमे सुरभि नही, ताजगी नही। उत्सव और पुष्प के चित्रो द्वारा निराला ने भारत की देशव्यापी निराशा, घनघोर शतमुखी पतन का विनाशोन्मुख चित्र खीचा है। विषाद के इस चित्र मे भी मापा का दैन्य नही, हृदय का कार्पण्य नही, शक्ति है, नाद है, गभीर गर्जन है मानो तद्रा भग करने के लिए यह जागरण-गान हो।

हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न,
छुट-छुट कर दल से भिन्न-भिन्न
...... . . .
लहरा भव-पादप मर्षण-मन मोडेगी।
(तुलसीदास)

देश खिन्न था, आपसी फूट सर्वत्र व्याप्त थी—तुलसी की 'अकल कला' ने, समन्वयकारी विराट चेष्टा ने युगातरकारी कार्य किया। तुलसी के इस कार्य की महत्ता व गुरुता को अप्र-स्तुत विधान से मूर्तता मिली है। जीवन की बूद-बूद बिखरकर चारो ओर पडी है, सूर्य आता है, अपनी किरणो से सबको सचित करता है फिर उनको वाष्पीभूत कर मेघ मे बदल देता है। बादल बरसते हैं—पेड लहलहा उठते है। तुलसीदास ऐसे ही चिन्मय सूर्य की तरह आते हैं। बिखरे हुए राष्ट्र को निष्ठात्मक ऐक्य प्रदान करते हैं। तुलसी की प्रतिभा विश्व-प्रतिभा है। वे सपूर्ण मानव जाति के क्रात द्रष्टा कलाकार है, अत ससार वृक्ष का लहलहा उठना

स्वाभाविक है। मन की अत प्रवृत्तिया ऊर्ध्वगामी हुई, यही मर्षण मन का मुडना है अर्थात् तुलसी ने दृढ आधार पर लोक-सग्रह का स्वरूप खडा किया। यहा हृदय के उदात्तीकरण की बात है।

तुलसी का महान व्यक्तित्व, उनका सपूर्ण कृतित्व और लोकसग्रही दृष्टि अपनी पूरी महत्ता के साथ चित्रित है।

निराला के इन सभी चित्रो का सही मूल्याकन 'प्रसाद' के इन शब्दो मे किया जा सकता है—

"उनके चित्रो की रेखाए पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। उनका दार्शनिक पक्ष गभीर और व्यजना मूर्तिमान है। निराला मे नृम्ण और ओज, सौंदर्य-भावना और कोमल कल्पना का जो माधुर्यमय सकलन हुआ है वह उनकी कविता मे शक्ति-साधना का उज्ज्वल परिचायक है।"[३६]

## पंत के काव्य-बिंबो का अध्ययन

कविवर पत भाषा को 'ससार का नादमय चित्र व ध्वनिमय स्वरूप' मानते है। उनकी दृष्टि मे "यह विश्व की हृत्तत्री की झकार है जिसके स्वर मे वह अभिव्यक्ति पाता है।"[३७] कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पडती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हो, जो अपने भावो को अपनी ही ध्वनि मे आखो के सामने चित्रित कर सकें, जो झकार मे चित्र और चित्र में झकार हों, जिनका भाव-सगीत विद्युत्-धारा की तरह रोम-रोम मे प्रवाहित हो सके, जिनका सौरभ सूघते ही सासो द्वारा अदर पैठकर हृदयाकाश मे समा जाय, जिनका रस मदिरा की फेनराशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारो ओर मोतियो की झालर की तरह झूलने लगे" अर्धनिशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावली अपनी मौन जडता के अधकार को भेदकर अपने ही भावो की ज्योति मे दमक उठे, जिनका प्रत्येक चरण प्रियगु की डाल की तरह अपने ही सौंदर्य के स्पर्श से रोमाचित रहे, जापान की द्वीपमालिका की तरह जिनकी छोटी-छोटी पक्तिया अपने अतस्थल मे सुलगी ज्वालामुखी को न दबा सकने के कारण अनत सोच्छ्वासो के भूकप मे कापती रहे।"[३८]

पत की काव्य सबधी यह धारणा मानो उनकी ही रचनाओ का सरल भाष्य है। पत-काव्य के चित्र ध्वनिमय, कोमल, मसृण हैं। पत ने भाषा को सगीतमय वैभव दिया, उसमे नाद-सौंदर्य की सृष्टि की, आकुल सवेदन व मधुमाधुरी से उसे ओतप्रोत किया। हमारे साहित्य मे प्रकृति प्रथम बार अपनी स्वतत्र निरपेक्ष सत्ता मे सुषमा के साथ पदसचार करती अपनी सुकुमार शोभा का सभार लिये उतरी।

वैचारिक प्रौढता के साथ-साथ उनके प्रारभिक जिज्ञासापरक प्रकृति-प्रेम ने एक प्रौढ सयत व गभीर रूप धारण किया और चितन की प्रगाढता ने उनकी रचनाओ को दुरूह भी बनाया। किशोर कवि पत लक्षणात्मक अभिव्यक्ति रखते हुए भी प्रासादिक थे। प्रौढ कवि पत अभिधामूलक अभिव्यक्ति मे भी अधिक दुरूह हैं। पत के बिंबो का वैशिष्ट्य, प्रकृति से अभिन्न तादात्म्य की भावना मे मुखरित है। नाना भावभूमियो, नाना अनुभूति प्रसगो और नाना युग-कालों को पार करती प्रकृति अनेक रूपो मे है।

पत का सवेदनशील सजग कलाकार जीवन की सभी दिशाओ को अभिव्यक्त करने के लिए तत्पर दीखता है। उनका काव्य छायावादी, काल्पनिक अतर्मुखी सूक्ष्म भूमिका से आरभ होकर प्रगतिवाद , मानववाद, गाधीवाद का स्पर्श करता हुआ अरविंद के अध्यात्म

दर्शन तक की यात्रा करता है। यहा हमारा विवेच्य छायावादी काव्य बिंब है, अत हम पत के उन्ही बिंबो को लेंगे जो छायावादी युग की हैं।

पपीहो की वह पीन पुकार
निर्झरो की भारी झरझर
झीगुरो की झीनी झनकार
घनो की गुरु गंभीर घहर
बिन्दुओ की छनती छनकार,
दादुरो के वे दुहरे स्वर।
(पल्लव, पृ० ६८)

पंत मे ध्वनि-चित्रो की सूक्ष्मता रागात्मक सहृदयता पाकर अद्भुत रणन गुजन पैदा करती है। निर्झर, झीगुर, घन, बिंदु व दादुर की विभिन्न ध्वनियो को नाद के द्वारा पृथक्-पृथक् ध्वनि-व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। यह कवि के भाषा के सूक्ष्म सौदर्य एव अत स्वरूप को आयत्त करने की रागात्मक सवेदनीयता का प्रमाण है।

कहो कौन हो दमयती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हे भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई।
(पल्लव—'छाया', पृ० १०७)

पंत की 'छाया' कविता अनेक उपमानो से बोझिल कविता है। बिंब तो विविध-वर्णी हैं पर वे भाव-सवेग एव प्राण-वेग से ऊर्जित-पुलकित नही। इन पक्तियो मे छाया को पौराणिक संदर्भ देकर अधिक सवेदनशील एव प्रेषणीय बनाया गया है। दमयती की तरह तरु के नीचे सोने मे छाया की असहाय परतत्रता का एक करुण चित्र है। तरु के नीचे यदि छाया न सोये तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय। छाया के वस्तु-सापेक्ष अस्तित्व को एक व्यथा के साथ उभारा गया है।

अहे ! निष्ठुर परिवर्तन !
..... .......... . ......
अहे वासुकी सहस्र फन !
लक्ष्य अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरतर
छोड रहे है जग के विक्षत वक्षस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दत, कचुक कल्पातर
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुडल
दिङ्मडल।
(पल्लव—'परिवर्तन', पृ० १५०)

अहे! दुर्जेय विश्वजित !
... . . ... ... ..

तुम नृशस नृप से जगती पर चढ अनियत्रित;
करते हो ससृति को उत्पीडित, पदमर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिरसचित
आधि-व्याधि बहु वृष्टि, वात उत्पात अमगल,
वह्नि, बाढ, भूकप—तुम्हारे विपुल सैन्यदल
अहे निरकुश! पदाघात से जिनके विह्वल!
हिल-हिल उठता है टलमल
पद दलित धरातल।

(पल्लव—'परिवर्तन', पृ० १५१)

कोमल भावो के सुकुमार कवि पत के जीवन मे ऐसे क्षण विरल हैं जब जीवन के कठोर वास्तविक धरातल पर उनके काव्य ने परिवर्तन के शाश्वत एव क्रूर पजो का अनुभव एक व्याकुल आकुलता के साथ किया। उसी विरल क्षण के आकुल आवेग ने 'परिवर्तन' कविता का सृजन किया जो पत के सपूर्ण काव्य-सृजन मे एक अकेला, अनुपम है। 'परिवर्तन' कविता मे निरतर चलते रहने वाले एक अनादि चक्र का चित्र है जहा सब कुछ आमूल बदल जाता है। यह परिवर्तन का कोमल सौम्य चित्र नही—वह अपनी सपूर्ण विकरालता और सर्वोपरि शक्ति के रूप मे उतरा है। आग्ल कवि टेनिसन ने जिसे 'नेचर इन ब्लड एड क्लाज़' (Nature in blood and claws) कहा था, वही रूप पत की इस कविता मे है। प्रकृति के इस सर्वग्रासी चित्र मे कवि का हृदय-मथन है। यह उनके बौद्धिक सघर्ष का विशाल दर्पण है। इस चित्र बहुल दीर्घ कविता मे भाषा का स्फीत फुकार है—भावनाओ का विस्फूर्जन है, विचारो की तीक्ष्णता है। उपर्युक्त उदाहरणो मे महाकाल के रूप को दो साग रूपको के द्वारा उसकी समस्त विकरालता एवं सपूर्ण वैभव के साथ मूर्तित किया गया है। एक है वासुकि का पूरा चित्र जो सपूर्ण दिग्मडल मे कुडली मारे बैठा है, उसके फुकार से जो अगार झड रहे हैं वही तारो के रूप मे आकाश मे दीख पडते हैं। सारा आकाश घूम रहा है जैसे असहनीय उथल-पुथल मे किसी का सर चकरा गया हो। इस परिवर्तन रूपी वासुकि का विषदत ही मृत्यु है और पूर्ण परिपाक के बाद का कल्पातर मानो कचुक है।

दूसरा चित्र एक विश्व विजेता का क्रूर भयकर चित्र है, जिसका विजय-रथ रौंदता हुआ, नगरो को उजाडता, ध्वस्त-विध्वस्त करता चला जा रहा है। वह्नि, बाढ, भूकप से प्रकपित जगत का एक लोमहर्षक भयकर चित्र आखो के सामने घूम गया है। परिवर्तन ही चिर सत्य है। इस ब्रह्माण्ड मे सब कुछ समाप्त हो जाता है, यहा कुछ स्थायी नही, यदि कुछ सत्य है तो एकमात्र परिवर्तन। वह अनियत्रित है, निरकुश है, स्वेच्छाचारी है, विकराल काल की तरह प्रचड है। पंत की यह कविता अत्यत पुष्ट है, दार्शनिक चिंतन से सवलित है। सौंदर्य से प्राप्त वेदना की सगति खोजने का यह फल है। नश्वरता के प्रश्न मे जीवन और समाज के सारे प्रश्नो को समेटकर कवि ने एक विराट बिंब की योजना की है।

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदुउर पुलकित गात,

सशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जडित पद, नमित पलक, दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता मे सी भरी अजान
लाज की छुई-मुई सी म्लान
प्रिये, प्राणो की प्राण।

(गुजन—'भावी पत्नी के प्रति', पृ० ४३)

रीतिकालीन शृगारिकता और द्विवेदीयुगीन पवित्रतावादी नैतिकता से भिन्न छायावाद ने प्रेम, शृगार, रूप को चित्रित किया है—कही अमूर्त बनाकर, कही प्रकृति के भीने आवरण मे छिपाकर और कही अस्फुट अतर्ध्वनियो से ईषत् झलकाकर अपने मन की प्यास को छितरा दिया है। 'भावी पत्नी के प्रति' पत का एक लज्जा-विजडित मधु सभार का चित्र है। अज्ञात प्रथम मिलन की कल्पना यहा साकार है। मृदु उर—प्रेम के माधुर्य ने जिसे कोमल बनाया है, पुलकित गात—मिलन की कल्पना से सारे शरीर मे एक आनदमयी सिहरन है, ज्योत्स्ना के समान चुपचाप, चारो ओर सशक दृष्टि से देखती हुई, कि कही कोई देख तो नही रहा है, रुक-रुककर लज्जायुक्त नमित दृष्टि से मुग्धा का जाना। वह मधुरता से भरी है, ऊपर से लेकर नीचे तक, अतर्बाह्य सब कुछ एक अनजानी मधुरता से व्याप्त हो रहा है। इस माधुर्य मे एक सकोच है—नववधू का सकोच। छुई-मुई सी म्लान—जो स्पर्श से ही सकुचित हो जाती है, सिमट जाती है।

यह शृगार के अनुभावो का सजीव, मधुर एव कोमल चित्र है।

शात स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल।
अपलक अनत नीरव भूतल।
सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल, तन्वगी गगा, ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रात क्लात निश्चल!
.. ................ .........
मृदु मद-मद मथर-मथर लघु तरणि हसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालो के पर।

(गुजन—'नौका विहार', पृ० १०१)

प्रकृति-सुषमा के राशि-राशि सभार से अवनत यह कविता हिंदी की श्रेष्ठ उपलब्धि है। धरती से आसमान तक एक नीरव चित्र। मौन, निर्वाक वातावरण और गगा के रूप मे एक तन्वगी तापस बाला की शात छवि। 'श्रात क्लात निश्चल'—तप कृश ग्रीष्म की रात—पर साथ ही दुग्ध धवल शैया पर लेटी यह गगा तापसी है, तट रूपी मृदु कोमल करतल चद्र से दीपित है, चद्रमा का प्रतिबिंब उसे एक नयी दीप्ति व काति प्रदान कर रहा है, उसके शुभ्र अगो पर तारो की तरल सुदरता झिलमिला रही है—ऐसे वातावरण मे नौका विहार का समारभ। वातावरण का सौम्य माधुर्य यहा चित्रित है। तरणि का, हसिनी सी सुदर तरणि का मृदु मद-मद मथर गति से तिरना—तरल कोमलता, मृदुलता और शात स्निग्धता का अपूर्व मिलन। 'तिर रही' प्रयोग उसे और भी अधिक तरल बना रहा है। इस पक्ति मे परपरागत अनुप्रास की छटा को सानुनासिक स्वरो के प्रयोग ने एक अभिनव मंथरता और कोमल सगीत मे मडित

किया है, वातावरण भ्रमर के गुजार से मुखरित है। दशमी के चाद का तिर्यक-मुख लहरो के घूघट से झुक-झुककर झाक रहा है। मुग्धा नायिका की अवगुठन से झाकती यह मुद्रा एक मादक प्रभाव उत्पन्न करती है। यद्यपि पुल्लिग चाद को नायिका बताना आग्ल प्रभाव है, पर चित्र निस्सदेह सुदर है। 'इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम, शाश्वत है गति, शाश्वत सगम, दार्शनिक चितन की दिव्य आभा से चित्र ज्योतित है—ठीक उस नदी की धारा के समान जो निकल भी रही है, वह भी रही है और मिल भी रही है। जीवन का शाश्वत क्रम चलता है। पत की रचनाओ मे यह विशिष्ट है जो प्रकृति के सौंदर्य को चारु शब्द-चयन, ध्वननशील गति और दार्शनिक चितन की अभिनव भगिमा के साथ रूपायित करता है। कवि का उल्लास एक दिव्य अनुभूति से आलोकित होकर चतुर्दिक व्याप्त है। 'शाश्वत' शब्द की अनेकश आवृत्ति चित्र के राग पक्ष को क्षीण कर रही है। इसके अभाव मे चित्र अधिक चारु व काव्यात्मक होता।

नीरव सध्या मे प्रशात
    डूवा है सारा ग्राम प्रात।
पत्रो के आनत अधरो पर
    सो गया निखिल वन का मर्मर,
    ज्यो वीणा के तारो मे स्वर।
    ...... .... . ........
तरु शिखरो से वह स्वर्ण विहग उड गया,
    खोल निज पख सुभग,
    किस गुहा नीड मे रे किस मग।

(गुजन—'एक तारा', पृ० ८४-८५)

'एक तारा' पंत की सर्वोत्तम रचनाओ मे से है। यहा पत का कविर्मनीषी रूप उभरा है, कल्पना का इद्रधनुषी वितान यहा चितन से दीप्त है। ग्राम का यह सवाक् स्पदित चित्र है जो अपने गभीर मौन मे भी मुखर है। 'डूवा है सारा ग्राम प्रात' मे 'डूवा' प्रयोग ने उसकी गहन शाति को और भी साद्र बनाया है। पत्रो के आनत अधरो पर निर्वात वातावरण मे निखिल वन का मर्मर सो गया है। इस निश्शब्द सध्या को सुकुमार उपमा के द्वारा सगीतमय बनाया है। यह शाति किसी श्मशान की शाति नही, जड व भयावह नही—वीणा के तारो मे बसे हुए सगीत की शाति है, उल्लास व आतरिक झकार से परिपूर्ण। इस शात वातावरण मे सब मौन हैं—रक्तोत्पल अपने मृदु दल को मूद चुका है, तरु शिखरो पर से स्वर्ण-विहग अपने पखो को खोलकर न जाने किस अनजान नीड की ओर उड चला है। पत की रहस्य-मय जिज्ञासा का एक चित्र। सब ही न जाने किस अज्ञात की खोज मे चल पडे है, न जाने कौन-सी रहस्यमयी प्रेरणा ने उन्हे अज्ञात की खोज के लिए उल्लसित किया है। कवि का दर्प, पुलक, विस्मय, जिज्ञासा का एक मौन मुखर स्पदित चित्र।

सरकाती पट
    खिसकाती लट—
    शरमाती झट,

वह नमित दृष्टि से देख उरोजो के युग घट
हँसती खल खल
अबला चचल
ज्यो फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनो से अधरो के तट।

(ग्राम्या—'ग्राम-युवती', पृ० १७)

यह सरल अभिधात्मक शब्दो मे सभ्यता की कृत्रिमता से दूर, एक सीधी-सरल ग्राम-युवती का उन्मुक्त पुष्ट चित्र है। ग्राम-युवती की मुक्तता उसके चलने मे, उसकी वाणी मे, उसके हास्य मे मुखर है। पट सरकाने की, लट खिसकाने की, शरमाकर वक्ष को देखने की मुद्रा मोहक है। छोटे-छोटे पदो मे ग्रामीणा की स्वच्छदता का गतिशील चित्र उभरा है। चित्र मे भगिमा है, लाघव है और सहज स्वाभाविक मुक्तता है।

पत चित्रो मे सूर का माधुर्य है, शैली की इद्रधनुषी कल्पना है। चित्रो मे फूल-सी सुकुमारता है, लघु वीचियो की सिहरन है, भाषा की सगीतात्मकता है, रेशमी मार्दव है, मधू का माधुर्य है, प्रकृति का अनंत वैभव है।

## महादेवी के बिंब

कविवर पत ने महादेवी को 'छायावाद के बसत वन की सबसे मधुर, भाव-मुखर पिकी'[३९] कहकर उनके गीतात्मक भाव-सवेदन को रेखाकित किया है। उनके अनुसार "वह प्रगीत-प्रधान युग रहा जिसकी सुनहली परिणति, कलाबोध, भाव-व्यजना तथा रस-मूल्य की दृष्टि से निश्चय ही महादेवी के गीतो मे हुई है·· उनकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित एव भाव सस्कारजनित सूक्ष्मता का द्योतक होने के कारण उसमे अत सलिला की धारा का-सा प्रच्छन्न प्रवेग तथा भावना की निगूढ गहराइया मिलती हैं।"[४०]·· उनका भावजगत प्रसाद का-सा हिम-विद्ध समस्त श्रृग या निराला का-सा महाप्राणता से उद्वेलित सागर नही है। वह अतर्मुखी भाव-साधना से पवित्र, अश्रुओ से धौत, तप पूत स्फटिक शुभ्र चेतना का रश्मि-कलश मदिर है जो स्वय उनके हृदय के भीतर का उनका सूक्ष्म रस हृदय है।[४१]

महादेवी का पक्ष छायावादी कवियो मे सबसे अधिक वैयक्तिक व ऐकातिक है। वैयक्तिक अश के उदात्तीकरण के लिए उन्होने प्रतीक योजना व रहस्य भावना का आश्रय ग्रहण किया। इसके लिए उन्होने पराविद्या से अपार्थिवता ली, वेदात से अद्वैत की छाया ग्रहण की, लौकिक प्रेम की तीव्रता को सयमित कर उन्हे कबीर के साकेतिक भावसूत्रो मे पिरोया। यह सत्य है कि महादेवी की दार्शनिक भावनाए अनुभूत विचार-सत्य न बन सकी पर उनमे एकात (cutt of solitude) निष्ठा है यह तो मानना ही होगा। जो हो, महादेवी के गीत बरसात से सजल, प्रात से करुण और रात से मधुर है—ये गीत अपार्थिव चेतना के, आध्यात्मिक वेदना के सतत प्रवाहित रूप हैं। महादेवी के इन गीतो मे वेदना और करुणा ही मानो अनेक रूपो मे वह निकली है—यह स्वप्न मिलन के पश्चात् विरह से सभूत है जिसमे वैष्णवी 'पराई पीर' और बोधिसत्वो के महाकारुण्य की छाया है। ये गीत अतर्व्यथा और आत्मचेतना के उल्लास हैं जिनमे ऐकातिक क्षणो की रागात्मक व्यजना है। शब्द-चयन श्रुतिमधुर, छद भावावेगमय, अनुस्वारी वर्णों की कोमलता है। परिसर और वर्ण्य की सीमितता के बावजूद भी मुक्तक शिल्प के रोचक रजन भाव ने गीतो को प्रभावपूर्ण बनाया है। बिंबो मे निरीक्षण

की व्यापकता, अनुभूति की विचारात्मकता, शब्द-सौष्ठव, काल्पनिक चित्र-विधान के अतिरिक्त आत्मनिवेदन और आत्मविस्मृति के भाव हैं।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी !
तारकमय नव वेणीबधन
शीश-फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
(यामा, पृ० १३०)

वसत रजनी का यह चित्र पूर्ण शृगारित सुदरी के रूप मे है। साग रूपक के द्वारा उस शृगार को, उसकी छवि को अधिक उज्ज्वल व शुभ्र बनाया गया है। तारकजटित आकाश, मोतियो से मडित वेणी-बधन है, चद्रमा उसका शीश-फूल है, ज्योत्स्ना से प्रोद्भासित घनखड उस सुदरी के मुख पर पडा झीना अचल जिससे उसकी रूप-विभा झाक रही है। वह अपनी कोमल, मधुर चितवन से मोतियो की वर्षा करती है—मानो स्निग्ध ओसकण उसकी चितवन आभा है। शृगार के लिए ज्योत्स्ना, तारे, शशि आदि सभी प्रकाशित व उज्ज्वल शुभ्र उपकरणो का उपमान जुटाया गया है। महाश्वेता महादेवी की मानस शुभ्रता का यह परिचायक है। वसत रजनी के शृगार मे कही मादकता नही, विह्वलता नही, वासना नही—सब कही एक सौम्य शीतलता है।

शृगार कर ले री सजनि !
नव नीर निधि की ऊर्मियो से
रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियो का
पहिन अवगुठन अवनि।
. . . .... ...... ..
तू स्वप्न सुमनो से सजा तन,
विरह का उपहार ले
अगणित युगो की प्यास का
अब नयन अजन सार ले !
(यामा, पृ० १३४)

विरहिणी का आतरिक शृगार इस गीत मे व्यजित है। महादेवी का यह अपना क्षेत्र है, जहा वह अकेली हैं। यह प्रिय-मिलन का शृगार है—धरती का शृगार है जो रश्मियो के अवगुठन मे सिहर उठी है, पुलकित हो उठी है। यह शृगार सागर की नव लघु वीचियो से लेकर आकाश के सित मेघ तक सभी उपकरणो को समेट लेने के लिए व्याकुल है। यह साधारण नायिका

का शृंगार नही, चिर विरहिणी का शृगार है। यह भावात्मक सज्जा है। मन की अनत मधुर कल्पना ही शृगार सुमन है। प्रिय-दर्शन की प्यास आखो मे है—यह प्यास अगणित युगो से चली आ रही है; उस प्यास को ही इस शृगार मे आखो का अजन बनाया गया है। मिलन का मधुर गीत ही नूपुरो की मदिर ध्वनि है। और उपहार क्या ले जाय ? विरह का उपहार—उसे दे ही देना है इस विरह को जिससे चिर मिलन का समारभ हो सके। इस अतर्मुख विलीनता, इस निषेधात्मक आत्म-निमज्जन एव मौन पीडा के उल्लास से भरे गीत मे सौम्य आभा है। व्यथा का सयमित मर्यादित रूप है—प्राणो की आकुल ऊष्मा या उद्वेग नही। सब कुछ यहा सूक्ष्म, अतीद्रिय है।

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नही!
तुमने धोया नभ पथ
सुवासित हिमजल से;
सूने आँगन मे दीप
जला दिए झिलमिल से,
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित जानी नही
मैं प्रिय पहचानी नही।
......... ..... .... .....
नव इद्र धनुष सा चीर महावर अजन ले,
अलि गुजित मीलित पकज—
नूपुर रुनझुन ले,
फिर आई मनाने साँझ
मैं वेसुध मानी नही।
मैं प्रिय पहचानी नही।
(यामा, पृ० १४८)

इस गीत मे मधुर झकार है। यह प्रतीक्षातुर नायिका का चित्र है। वह अपनी ही प्रतीक्षा मे इतनी खोई थी, इतनी डूबी थी कि कुछ भी समझ नही पायी। मिलन के लिए विशाल रगभवन सजाया गया, पर वह बावली कुछ भी समझ नही पायी—प्रिय के ध्यान में आपाद-मस्तक डूवी अनजान ही बनी रही। सारा नभ-पथ सुवासित ओसकणो से धोया गया, उसके स्वागत के लिए आकाश में अनत दीप जलाये गये, फिर न जाने कौन अपरिचित आकर उन्हे बुझा गया। मैं तो समझने का उपक्रम ही करती रही, पर इतने में सब समाप्त हो गया—मिलन वेला वीत गयी, साज-सज्जा समाप्त हो गयी। मेरे पास प्रिय की एक दूती सध्या भी आयी; पर मैं मानिनी मानी ही नही। प्रिय ने नव इद्रधनुप का चीर भेजा, महावर और अजन भेजा मेरे शृगार को। भ्रमर-गुजार से गुजरित कमल-पक्ति का रुणझुण नूपुर भी आया, पर मैं वेसुध कुछ समझ ही नही पायी।

सारा रूपक सुदर और पूर्ण है, गीत में भाव-स्पदन व सगीत मुखरण है। मुग्धा मानिनी नायिका का यह चित्र सुदर है, व्यापक है।

अलि कहाँ सदेश भेजूं ?
मैं किसे सदेश भेजूं ?
उड रहे यह पृष्ठ पलकें
अक मिटते श्वास चलके
किस तरह लिख सजल करुणा की कथा सविशेष भेजूं ?
(दीपशिखा, पृ० १०४)

प्रिय को सदेश भेजना है—पर कहा भेजे, कैसे भेजे, किसे भेजें ? लिखने वाली की कहानी इतनी करुण व साद्र है कि उसे शब्दो मे व्यक्त न कर पाने की विवशता का यह चित्र है। लिखने बैठने पर अनुभव हुआ कि पृष्ठ के पृष्ठ उड चले हैं और कुछ भी नही लिखा गया है —जो लिखा भी गया था वह मिट रहा है। भला यह करुण सजल कथा कैसे लिखी जाये।

जीवन के भागते हुए गत्वर क्षणो को उडते हुए पृष्ठ की उपमा दी गयी है—यह जीवन ऐसा परिवर्तनशील है, काल की गति इतनी तेज़ है कि वह एक पल भी नही रुक सकता, उसे कोई क्षणभर भी बाधकर नही रख सकता। इस जीवन-यात्रा मे उच्छ्वसित सासो का अक निरतर मिटता रहता है। सासो का यह आना-जाना भला कभी ठहर सकता है। अब किस तरह सजल अश्रु-भीगी कहानी लिखकर प्रिय तक भेजी जाय ! प्रिय तो 'नयन-पथ' से स्वप्न मे मिलकर, महादेवी की साध मे घुल गया है—अपने मे ही खोये हुए प्रियतम के पास भला दूत कैसे भेजा जाय। महादेवी के इस प्रिय मिलन मे सदेश के लिए अवकाश नही। कबीर की पक्तिया यहाँ साकार हैं—

प्रियतम कूं पतियाँ लिखूं जो कोई होय बिदेस
तन मे मन मे नैन मे वाकी कहाँ सँदेश।

महादेवी की भावभूमि का आधार मुख्यत आध्यात्मिक रहस्यवाद का मिलन-विरह-परक सवध है जिसमे विरह, करुणा, वेदना, पीडा, दुःख आदि के राशि-राशि बिंबो का समाहार है। विषय की इस सीमितता एव नितात ऐकातिकता के कारण यद्यपि बिंबो मे आनुभूतिक व वैचारिक गहराई आयी है, पर उनमे एकस्वरता व एकतानता भी आ गयी है। महादेवी के बिंबो मे जीवन-वैविध्य के अभाव का अनुभव विद्वानो ने किया है। डा० नगेन्द्र लिखते हैं—"महादेवी के गीतो मे प्रयुक्त चित्र सामग्री अत्यत परिमित है इसलिए 'नीरजा' के बाद से ही महादेवी के आलोचक को उनसे पुनरावृत्ति की शिकायत है, और यह शिकायत जितनी उचित है, उतनी सकारण भी।"[४२]

डा० सुरेन्द्र माथुर के अनुसार, "उनके बिंब अभिजात वर्ग से सबधित हैं।"[४३]

डा० भ्रमर के शब्दो में, "महादेवी की रचनाओ को देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि पत जैसा रूप और रग-वैचित्र्य महादेवी मे नही है, महादेवी का कल्पना-विस्तार भी उतना नही है।"[४४]

पत ने छायावाद का पुनर्मूल्याकन करते हुए महादेवी की 'सकेतात्मक एवं निवृत्ति-मूलक निषेधात्मक अभिव्यक्ति'[४५] की ओर सकेत किया है।

महादेवी के बिंबो की भावभूमि सबधी इन विचारो को स्वीकार करने पर भी यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि महादेवी ने इस सीमित सामग्री से ही अनेक ऐसे चित्रो की सर्जना की है जो काव्य-बिंब के उत्कृष्ट उदाहरण माने जा सकते हैं। पत ने इसे स्पष्ट भी किया

है—"जहा प्रसाद के रूप में छायावाद ने भारतीय सस्कृति का अमृत-घट इस युग को दिया, निराला ने समस्त देह-प्राण-मन तथा जागतिक द्वदो से ऊपर आत्मज्योति का निराकार स्पर्श दिया वहा महादेवी ने इस युग के लिए इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उस राग-मूल्य की प्रच्छन्न, गूढ अत सत्ता की ओर इगित किया, जिसके बिना आने वाले युग का यथार्थ का अस्थिपजर प्राण-रस-सौंदर्य तथा मानव-हृदय के प्रेम-स्पदन से वचित रहकर केवल एक भीमाकार दानव-सा ही नवीन युग की पीठिका पर अट्टहास करता रहता।"[४६]

सत्य तो यह है कि अनुभूति वेदना का तीखापन महादेवी की कविता की प्राणपीठिका है और यही सहजात वेदना उनकी समस्त काव्य-वृत्तियो को अतर्मुखी बना देती है। इस सूक्ष्म अतर्गूढता के अचल मे अनेक बार हृदय की विकल विदग्धता, अतहीन अधीरता, निष्कप साधना एव मौन स्थैर्य के हृदयग्राही चित्र अकित होते गये हैं जिनके भीतर आतर की समीकृत सयमित पीडा उद्वेलित हो उठी है—

> कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
> हो उठी हैं चचु छूकर
> तीलियाँ भी वेणु सस्वर।
> आज जडता मे इसी की बोल दो।
> .......... ....... ...........
>
> क्या तिमिर कैसी निशा है,
> आज विदिशा ही दिशा है
> ........... ...........
>
> दूर खग आ निकटता के
> अमर बधन मे बसा है।
> प्रलय घन मे आज राका घोल दो।
>
> (सधिनी, पृ० ८१)

बधनो को छिन्न-भिन्न करने का यह आकुल उद्वेग है। कीर आज अपनी ही चोच के निरतर प्रहार से लौह-तीलियो को भी तोड देना चाहता है। आज लौह-शृखला भी आतरिक आवेश के सामने तुच्छ है। यह भीतर का राग, हृदय का स्पदन सगीतमय है जिसने लौह-शलाकाओ को भी सगीत-मुखर किया है। वह अतिम छोर तक, काल के मूल उत्स-पर्यंत लबी उड़ान भरने के लिए अपने पखो मे समस्त सपनो को सजोकर तैयार है। आज तक की जडता मे अमर स्वर घोलने का, मौन को मुखर करने का वह प्रार्थी है। यदि तुम कहते हो कि रात के अधेरे मे कैसे खोलू, तो आज अधेरे का, रात का कोई अर्थ नही। आज तो हृदय की उमग व उल्लास मे विदिशा भी दिशा है। अत करण के अतीव उद्वेग ने, आत्मा की आकुल पुकार ने, प्राणो की असीम ऊर्जा ने आज असभव को भी सभव बनाया है। आज तो प्रलयकर मेघो मे पूर्णिमा की ज्योत्स्ना को व्याप्त करने का मनुहार है। इस प्रकार की अधीर ललकार मे ससीम काप उठा है और असीम के प्रति इस लोल उद्वेल ने गीत को मार्मिकता, शैली को सगीत व भावो को वक्रता प्रदान की है। चित्र सस्वर, ऊर्जित एव स्पदित है। ऐसी ही एक चुनौती का चित्र महादेवी के इस गीत मे है—

> तोड दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ—
> उस ओर क्या है?

जा रहे जिस पथ से युग-कल्प
उसका छोर क्या है ?
क्यो मुझे प्राचीर बनकर
आज मेरे श्वास घेरे ?

(सधिनी, पृ० ७८)

सारी सीमा को—परिच्छिन्नता को छिन्न कर असीम की ओर झाकने की मानवीय आकुल अधीरता इसमे अकित है। सीमा के इस क्षितिज को अतिक्रात कर असीम के क्षेत्र को जानने की यह तेजस्वी पुकार है। महादेवी की करुणा-वेदना के बीच यह चित्र अपने ऐश्वर्य और ऊर्जित वैभव मे अकेला है। यह मानवीय साहस की अभिव्यक्ति है, आत्मनिष्ठा की चुनौती है जो इस लोक की सीमा को तोडने के लिए आतुर है। आज उसकी इस असीम यात्रा मे अपने ही श्वासो का बधन प्राचीर लग रहा है जिसमे मुक्तता के लिए छटपटाती आत्मा बदिनी है। पथ के छोर को मापने की यह ललक, यह उत्साह महादेवी मे कम ही मिलता है।

दीपक महादेवी का प्रिय व अभिन्न प्रतीक है जो कभी जीवन की नश्वरता का द्योतक है, कभी विरहिणी आत्मा का, कभी साधक का और कभी प्रेमी का। एकात साधक के प्रतीक रूप दीपक का यह चित्र अपनी अडिग आस्था व मौन निष्ठा मे अत्यत प्रभविष्णु है—

यह मदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।
.. ........ . . .......... .. .
अब मदिर मे इष्ट अकेला
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।
... ....... .......................
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित
तन मे सब होगे अतर्हित,
सबकी अर्चित कथा इसी लौ मैं पलने दो।

(सधिनी, पृ० १००)

पूजा-वेला के पश्चात् मुखर वातावरण के मौन उदासी मे पर्यवसान का यह चित्र है जिसमे केवल एक दीप चुपचाप नीरव भाव से जल रहा है। यह मदिर का दीप है, अत निष्ठावान साधक की भाति तप मे निरत होना ही उचित है। अधेरे मे धीमी-धीमी दीपशिखा जल रही है —अब शख, घडियाल, वाद्ययत्र, आरती सब समाप्त हैं। चारो तरफ मदिर के प्रागण मे एक व्यापक शून्यता का वातावरण। आरती-वेला के मुखरण का वैषम्य इस मौन निस्पदता को अधिक घनीभूत कर रहा है। इस नीरवता को गलाने के लिए मदिर के इस दीप का गलना आवश्यक है। किसी के अवसाद को दूर करने के लिए अपने व्यक्तित्व को निरतर समर्पित करना ही पडता है। मदिर दीपक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है—वह उसकी साधना की, तप की पवित्र भूमि है। उसे मुखरित करने के लिए, गुजरित करने के लिए साधक का गलना ही उचित है। यह साधना मे रत तपस्वी के अस्तित्व का विलयन है। फूलो का बिखरना, पूजा की सारी सामग्री का तम मे विलीन हो जाना, भक्तो के चदन-चर्चित ललाट के अको से अकित मदिर की देहरी का तम मे डूब जाना—यह सारी कहानी दीपक की लौ मे पल रही

है। अब केवल वही एकमात्र साक्षी है। 'लौ मे पलना' एक सुदर सार्थक प्रयोग है—लौ के प्रकाश मे ही सब दिखाई पडेगा।

चित्र मदिर के पूरे वातावरण को चाक्षुष प्रत्यक्षता प्रदान कर देता है। गीत मे आरती की ध्वनि व पूजा द्रव्य की सुवास घुल-मिल गयी है। मौन धूमिल वातावरण, और दीपक के प्रकाश मे ईषत् स्पष्ट स्तभ, अलिद सब मूर्तित है।

'मैं नीर भरी दुख की बदली' शीर्षक गीत मे महादेवी की करुण वेदना साकार है। यह गीत महादेवी के प्राणो के निकट है और उनके सपूर्ण भावजगत का प्रतिनिधित्व करता है। 'नीर भरी बदली' ने महादेवी के अतर्मुख, तरल, सान्द्र व्यक्तित्व की गहनता को साकार किया है। विशाल नभ की असीमता का कोई भी कोना अपना नही। जीवन का इतिहास, उसका परिचय भी कुछ शब्दो की कहानी है—

उमडी कल थी मिट आज चली।

(सधिनी, पृ० ७७)

वह बदली जो उमडी तो थी अपने सपूर्ण वैभव एव रागात्मक ऐश्वर्य के साथ लेकिन जो बरसने के पहले ही मिट गयी। महादेवी के इस गीत मे उनकी चिर सगिनी व्यथा का अत्यत तरल, सरल रूप है।

महादेवी ने रागतत्त्व की विश्वजनीन प्रभविष्णुता के साथ जिस गीति काव्य की सृष्टि की है उसके बिंबो मे वैविध्य-वैचित्र्य भले ही न हो पर गिने-चुने शब्दो मे सयम के साथ भावो का सहज स्फूर्त प्रवाह है। मूलत प्रेम के पक्षो पर अनवरत लिखनेवाली इस नारी मे उच्छृखलता का नितात अभाव, अनुभूति की इतनी सघनता व तरलता, प्रेम की व्याकुलता, सयम व मर्यादा का शुद्ध स्वरूप आश्चर्यजनक है। आज के इस वैज्ञानिक तर्कफेनिल युग के तट पर खडा सहृदय पाठक पूछता है—'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गयी परदेशनी री!'

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी काव्य के बिंबो मे अनेक सामान्य विशेषताओ का रूप है—अनुभूति, शैली, शिल्प, व्यजना, भगिमा व प्रेषणीयता के सभी स्तरो पर साम्य के अनेक सूत्र हैं। लेकिन छायावादी काव्य मूलत व्यष्टिनिष्ठ व अतर्मुखी काव्य है और एकात वैयक्तिक स्वरूप के कारण वैशिष्ट्य के अनेक स्तर भेदो को स्पष्टत देखा जा सकता है। यही कारण है कि छायावाद के प्रमुख कवियो मे बिंब-सृजन की मूकभूति अनुभूति, दृष्टि-भगी व जीवन दर्शन मे गहरा अतराल है।

केदारनाथ सिंह के अनुसार—"प्रसाद के चित्रो मे अतीत के गाढे रगो का उभार स्पष्ट है। उन्होने प्राय प्राचीन सस्कृत कवियो के परपरागत बिंबो को एक नया रूप देकर आधुनिक साचे मे ढाल दिया है। इससे उनके बिंबो मे एक प्रकार का गहन क्लासिकल रग आ गया है। निराला के चित्रो मे भावावेग एव वासना का एक उद्धत प्रवाह मिलता है जो कभी-कभी बडी लबी सबध योजना के कारण दुरूह और अस्पष्ट हो जाता है। निराला ने प्रकृति के भी प्राय वे ही चित्र सकलित किये हैं जो सान्द्र तथा ओजस्वी हैं तथा जिनमे तीव्र भावावेग को जगा सकने की क्षमता है। व्यापकता की दृष्टि से निराला के बिंब आधुनिक जीवन के प्राय प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं ··पत की मर्मच्छवियो का सौंदर्य भावावेग या वासना की प्रेरकता मे नही चित्रण के कौशल मे है। इसीलिए पत की कविताओ मे विशेषणो का सौंदर्य सबसे पहले हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। वैविध्य लाने के लिए उन्होने

दुहरे ऐंद्रिय चित्रो की योजना की है।· महादेवी की कविताओ का सौंदर्य बिंबो के सकलन मे उतना नही जितना प्रतीको की ऐकातिकता और भाव की वैयक्तिक सघनता मे है।"[४७]

इन कवियो की भाषा-शैली सबधी वैविध्य पर प्रकाश डालते हुए डा० नामवर सिंह लिखते हैं—"प्रसाद जी के पद चयन के पीछे विशेष मनोवृत्ति झलकती है।···पत मे वायसी, निराला मे विराट, महादेवी मे चटकीली, प्रसाद मे मधुर पदावली का बाहुल्य मिलेगा।· · प्रतारणा और छलना का जैसा यथार्थवादी चित्र यथार्थवादी चित्र और उससे उत्पन्न होनेवाली जैसी व्यथा प्रसाद के साहित्य मे मिलती है वैसी किसी छायावादी कवि मे नही।·· प्रसाद की अनुभूतिया पत के विपरीत प्रौढ मन की हैं और उनका सबध ऐसे पुरुष से है जिसने खुलकर यौवन के उपादानो का उपभोग किया है। नारी की विविध चेष्टाओ का सूक्ष्म अकन करने मे प्रसादजी ने अद्भुत पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है।"[४८]

जो हो, प्रसाद जी मे नवोन्मेष सबसे कम होते हुए भी छायावाद का पूरा प्रतिनिधित्व वही करते हैं। यदि छायावाद के एक-एक तत्त्व को दृष्टि मे रखकर मूल्याकन करें तो एक-एक करके निराला और पत की उपलब्धि सबसे अधिक मानी जायेगी, फिर वह कौन-सा वैशिष्ट्य है जिससे सपूर्ण प्रभाव की दृष्टि से प्रसाद छायावादी काव्य मे सर्वश्रेष्ठ हो जाते हैं। यहा हम प्रसाद की कुछ विशेषताओ की चर्चा करेंगे जो उन्हे छायावाद की सामान्य भावभूमि पर विशिष्ट करती हैं।

उनकी कविता मे प्रथम बार स्वस्थ और वास्तविक शृगार रस का प्रवेश हुआ। प्रकृति के रमणीय दृश्यो मे किसी प्रेमी की आभा, नारी और पुरुष के नैसर्गिक आकर्षण मे दिव्य सौंदर्य का प्रकाश और विकर्षण मे प्रकृति का उतना ही प्रशस्त क्षोभ—यही वह परिष्कृत शृगार है जिसकी प्रतिष्ठा प्रसाद ने एक ऐसे नीतिवादी युग मे की जब नारी और पुरुष का सौंदर्य एक ओर महाकाव्योचित औदात्य खो चुका था और दूसरी ओर मानवोचित सौष्ठव और सहज प्रवेग भी खोकर जीवन के बाहर की वस्तु बन रहा था।[४९]

प्रसाद के बिंबो का वैशिष्ट्य उनके गभीर प्रौढ चिंतन मे मुखर है। आरभिक रचनाओ मे भी वे कही पर असयमित नही होते—उनकी भाषा की भवें भीषण आवेगावस्था मे भी विकृत नही होती। चचलता और अपलता उनकी भाषा मे नही मिलती। एक मथर गति का आभिजात्य, अतरस्थिरता की जमी हुई जड उनकी रचनाओ मे मिलती है।

प्रसाद के बिंबो मे जो अनुभूति व भावो की सकुलता है वह उनकी सर्वोपरि विशेषता है। प्रसाद के बिंबो मे एक निराविल विचार या सवेग का ऋजु चित्र नही मिलता। विरोधी विचारो एव अनुभूतियो की एक द्वद्वात्मक स्थिति उनमे रहती है। परस्पर विरोधी भावो का एक तनाव उनमे उभरता है और वही उन भावो को अधिक प्रकाश्य तथा गहन बना देता है। उनके बिंबो मे सर्वत्र एक प्रगाढ प्रश्लिष्टता पायी जाती है, वह व्यक्ति के भीतर समष्टि चेतना को, उल्लास के भीतर व्यथा को, दु ख के भीतर सुख को तथा करुणा के भीतर आनद को घुला-मिला देता है। भाव व बुद्धि का सस्पर्श, अनुभूति व व्यजना की परस्पर स्पर्धी प्रतियोगिता प्रसाद के बिंबो मे सर्वत्र मिलती है। यौवन की मादकता के बीच मे प्रसाद की 'आह!' सुनाई पडती रहती है। इसका प्रमुख कारण स्मृति चित्रो की बहुलता है। प्रसाद भोग, ऐश्वर्य, विलास व मिलन का वर्तमान चित्र प्रत्यक्षत अकित नही करते। उन्हे स्मृतियो के धूमिल पट पर बुनते हैं, अत उनके विलास मे उन्माद नही, 'आह रे, वह अधीर यौवन' तथ 'परिरभ कुभ की मदिरा' आदि चित्रो मे भी व्यथा की एक अतर्धारा प्रवाहित है। प्रसाद एकसाथ ही राग के कवि हैं, विराग के कवि हैं, मधुचर्या के मद के बीच

उनमे व्यापक प्रशाति है, करुणा और आनंद के विरोधी चित्रण मे प्रसाद हिंदी के विरले कवि हैं। प्रसाद काव्य को आत्मा की सकल्पनात्मक अनुभूति मानते थे जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे ग्रहण करती है। काव्य के मूल मे प्रसाद रमणीयता को मानने वाले रसवादी थे। चिंतन के ऊर्ध्व सतरण मे भी प्रसाद रमणीय को, चारु को नही छोडते। चिंतन का ऊर्ध्व सतरण निराला मे भी उच्च कोटि का मिलता है पर उनका चिंतक निराला भावस्तर को छोडकर दार्शनिक ऊचाइयो पर पहुच कवि निराला को धूमिल कर देता है— 'प्रिय यामिनी जागी' शीर्षक निराला का गीत प्रेम, सौंदर्य, शृगार और आतरिक अनुराग की रूप छवियो से सपन्न एक अत्यत मधुर, रागात्मक, लयात्मक कविता है पर ज्यो ही निराला उसे वासना से मुक्त कर, त्याग की मुक्ता बना पिरोने लगते हैं—उसका सारा सौंदर्य समाप्त हो जाता है। गीत पर दर्शन हावी हो जाता है। पत मे तो यह बिखराव और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। उनका चिंतन शब्दो का गुंफन मात्र लगता है—न तो उसमे राग की अरुणिमा रहती है और न ही चिंतन की आभा। 'नौका विहार' शीर्षक कविता मे जब 'मृदु मद मद मथर मथर' चाल से तिरनेवाली हसिनी-सी लघु तरणि की परिणति वे 'शाश्वत जीवन नौका विहार'[५०] मे कर देते हैं तो गीत का प्राण ही समाप्त हो जाता है। उसके पहले की पक्तियो मे काव्य का उत्कृष्ट रूप है, पर परिणति ऊपर से लादी गयी चिंता-धारा।

प्रसाद मे यह बिखराव कही नही मिलता—सर्वत्र एक सश्लिष्ट रूप पाया जाता है। 'मुझको न मिला रे कभी प्यार' मे प्रसाद जब अकिंचन की याचना का व्यथित चित्र खीचते हैं तब उन्हे प्रेम का सुचिंतित जीवन दर्शन आकर्षित करता है और वे गीत की परिणति—

पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।
(लहर, पृ० ३५-३६)

मे कर देते हैं। पर कही न तो उपदेशात्मकता है, न नीरसता है और न ही बिखराव व अलगाव है। एक ममत्व-भरे स्वर मे, पीडा को सहलाने का, वेदना को दुलारने का उपक्रम है, साथ मे जीवन का अमर सत्य भी। यही प्रसाद का अपना क्षेत्र है जहा वे अप्रतिद्वद्वी हैं।

वैयक्तिक चेतना के क्षेत्र मे भी प्रसाद सबसे भिन्न हैं। उन्होने अपनी व्यक्ति जीवनी मे परपरा के जीवन को अस्थि-मज्जा तक पचाकर आत्मसात् कर लिया है। उनकी व्यक्तिगत अनुभूति उनका व्यक्तिगत सवेदन इस सास्कृतिक जीवन की ज्ञानात्मक चेतना से टकराकर परावर्तित और प्रतिच्छायित होता है। ' जो व्यक्तिगत है, निजी है, वह इस सस्कारी बोध से छनकर, उससे सघर्षित और अनुकूलित होकर ही बाहर को आता है।[५२] बिंब-सृजन में शब्दो का सीमित प्रयोग भी प्रसाद की अपनी विधि है। पत सबसे अधिक शब्दो का प्रयोग करते हैं, निराला उससे कम और प्रसाद तो एकदम कम। कभी-कभी तो वे एक शब्द कहकर ही मौन हो जाते है, पर उस एक शब्द मे भावाभिव्यक्ति और सप्रेषण की अपूर्व क्षमता रहती है। 'सीवन को उधेडकर देखोगे क्यो मेरी कथा की' मे कथा का प्रयोग—केवल एक शब्द का प्रयोग प्रसाद के सपूर्ण जीवन को, उनकी टूटी कहानी को, व्यथा को साकार कर देता है। अल्प शब्दो मे सब कुछ कह देने की जैसी क्षमता प्रसाद मे है वैसी अन्यत्र नही। सीधे-सादे अभिधात्मक शब्दो की यह व्यजकता, ध्वनिगर्भिता प्रसाद के बिंबो को एक अपूर्व ऐश्वर्य प्रदान करता है।

हम कह सकते हैं कि प्रसाद की भाषा और शिल्प में पंत और निराला जैसा विस्फोटक नयापन नही किंतु परंपरा-प्राप्त भाषा का अपनी वाणी के रूप मे स्पष्ट अनुभव उसमे है। आवेगसर्जित लयकारियो की वैसी समृद्धि नही जैसी निराला मे है, भाषिक सवेदन मे निराला का लचीलापन भी नही। पत मे शब्द-माधुर्य व ध्वनन भी नही, पर उनकी ध्वन्यात्मक सवेदना विशिष्ट है। वे शब्द की ध्वनि का अपने स्वरो की सीमाओ मे विशिष्ट उपयोग करते हैं।

'व्यक्तिगत विषाद का मोक्ष विश्व वेदना की प्रगाढ अनुभूति मे और उस अनुभूति को अपनी सास्कृतिक चेतना एव इतिहास-बोध के द्वारा सर्जनात्मक सार्थकता एवं सतुलन देने की प्रेरणा—यही है कवि के रूप मे प्रसाद की आकाक्षा'[73] और यही है छायावाद मे उनका वैशिष्ट्य।

## पाद-टिप्पणियां

१ इंदु, कला २—किरण १, श्रावण शुक्ल २, १९६७ वि० 'कवि और कविता' शीर्षक लेख 'प्रसाद का काव्य', डा० प्रेमशकर से उद्धृत, पृ० २९-३०।
२ जयशकर प्रसाद 'काव्य कला तथा अन्य निवध', पृ० १७, (भारती भडार इलाहाबाद)।
३ वही, पृ० १८
४ अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसन चैव वाङ्मय तप उच्यते ॥—'श्रीमद्भगवद्गीता', अध्याय १७, श्लोक १५।
५ 'काव्य कला तथा अन्य निवध', पृ० ६३-६७।
६ डा० रामेश्वर खडेलवाल 'जयशकर प्रसाद वस्तु और कला', पृ० ५० (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली)।
७ रामनाथ सुमन 'कवि प्रसाद की काव्य-साधना', पृ० २४-२५।
८ 'प्रसाद का काव्य', पृ० ८२।
९ श्री नददुलारे वाजपेयी ने 'काव्य कला तथा अन्य निवध' के प्राक्कथन मे इस प्रश्न को उठाया है और प्रसाद की मान्यता को स्पष्ट किया है।
१० 'आलोचना' के अप्रैल-जून १९६९ वाले अक मे प्रकाशित 'विश्वविद्यालयो का कवि प्रसाद' शीर्षक लेख से उद्धृत—लेखक रमेशचद्र शाह, पृ० ५३।
११ डा० प्रेमशकर 'प्रसाद का काव्य', पृ० ११४।
१२ वही, पृ० ८२।
१३ डा० रमेश कुतलमेघ 'कामायनी की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका', पृ० ५२।
१४ डा० प्रेमशकर 'प्रसाद का काव्य', पृ० १६२-१९८।
१५ नददुलारे वाजपेयी 'जयशकर प्रसाद', पृ० २३-२४।
१६ डा० रमेश कुतलमेघ 'कामायनी की मनस्सौंदर्यात्मक सामाजिक भूमिका', पृ० ४१।
१७ नददुलारे वाजपेयी - 'जयशकर प्रसाद', पृ० ५५।
१८ सुधाकर पाडेय 'प्रसाद की कविताए', पृ० १७८।
१९ गुलावराय 'प्रसाद की कला', पृ० ३८।
२० 'एक ऐतिहासिक कृति आसू' शीर्षक लेख से, पृ० १८५।
'जयशकर प्रसाद जीवन दर्शन, कला और कृतित्व'—सपादक महावीर अधिकारी।
२१ वही, पृ० १८५।
२२ रामधारी सिंह दिनकर 'चक्रवाल', पृ० ७३ (उदयाचल प्रकाशन, पटना)।
२३ नामवर सिंह - 'छायावाद', पृ० ९-१० मे मुकुटधर पाडेय को उद्धृत किया गया है। (सरस्वती प्रेस,

बनारस) ।

२४ संपादक डा० उदयभानु सिंह 'छायावाद' (लेख—'भाषा संस्कार', श्रीपाल सिंह क्षेम), पृ० १७२ ।

२५ वही, (लेख—'नया मोड', डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी,) पृ० ३१ ।

२६ नामवर सिंह 'छायावाद', पृ० २१-३० ।

२७ वही, पृ० ७७ ।

२८ सं० निर्मल तलवार 'प्रसाद समीक्षात्मक ग्रंथ' (लेख—'छायावाद और झरना', डा० कमलाकांत पाठक), पृ० १३६ (बंगीय हिन्दी परिषद) ।

२९ सं० उदयभानु सिंह 'छायावाद' (लेख—'परंपरा और प्रगति'), पृ० ८०-८१ ।'

३० डा० कैलास वाजपेयी 'आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प विधान', पृ० १३८ (आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली) ।

३१ सं० उदयभानु सिंह 'छायावाद' (लेख—'पुनर्मूल्याकन', पन्त, पृ० १९७ ।

३२ डा० प्रेमशंकर 'प्रसाद का काव्य', पृ० ४४५-४४८ ।

३३ सं० महावीर अधिकारी 'जयशंकर प्रसाद जीवन दर्शन, कला और कृतित्व' (लेख—'प्रसाद जी का कृतित्व', डा० देवराज, पृ० २२८ ।

३४ 'आलोचना' अप्रैल-जून १९६९ ('विश्वविद्यालयो का कवि प्रसाद', रमेशचन्द शाह), पृ० ४५ ।

३५ डा० सुरेन्द्र माथुर 'काव्य-बिंब और छायावाद', पृ० ९९-१०० ।

३६ 'गीतिका' के प्रारंभ में जयशंकर प्रसाद का लेख ।

३७ 'पल्लव का प्रवेश', पृ० २६ ।

३८ वही, पृ० ३०-३१ ।

३९ सुमित्रानंदन पंत 'छायावाद का पुनर्मूल्याकन', पृ० ८३ ।

४०. वही, पृ० ८३ ।

४१ वही, पृ० ८३ ।

४२ डा० नगेन्द्र 'विचार और अनुभूति', पृ० १२८ ।

४३ डा० सुरेन्द्र माथुर 'काव्य-बिंब और छायावाद', पृ० १६२ ।

४४ डा० भ्रमर 'आधुनिक हिंदी कविता मे चित्र-विधान', पृ० २५३ ।

४५. पंत 'छायावाद का पुनर्मूल्याकन', पृ० ८६ ।

४६ वही, पृ० ८६ ।

४७ सं० डा० उदयभानु सिंह 'छायावाद' में केदारनाथ सिंह का 'बिंब विधान' शीर्षक लेख, पृ० १३७ ।

४८. सं० महावीर अधिकारी 'जयशंकर प्रसाद जीवन दर्शन, कला और कृतित्व' (लेख—'भाषा शैली'), पृ० ३७४ ।

४९ नंददुलारे वाजपेयी 'जयशंकर प्रसाद', पृ० २८ ।

५०. 'अपरा', पृ० २४ ।

५१ रश्मिबंध से—'नौका विहार' शीर्षक कविता, पृ० ६६ ।

५२ 'आलोचना', अप्रैल-जून, १९७० के अंक में 'विश्वविद्यालयो का कवि प्रसाद' शीर्षक रमेशचन्द्र शाह का लेख ।

५३ वही, पृ० ४७ ।

# २

# कामायनी की कथा-सृष्टि और बिंब योजना

'कामायनी' की कथा-सघटना मे महाकाव्योचित कर्म-वैविध्य और घटना-विस्तार के अभाव को लक्ष्य कर आ० शुक्ल ने लिखा है कि श्रद्धा के मगलमय योग से किस प्रकार कर्म धर्म मे बदलता है यह भावना कवि से दूर रही। आचार्य के बाद समीक्षको ने 'कामायनी' की घटना-विरलता के बारे मे शका-समाधान किया—बहुत कुछ उसके पक्ष-विपक्ष मे लिखा गया।

यह सत्य है कि जिस प्रकार गीता का धर्मयुद्ध महाभारत का सात्विक क्रोध, मानस का 'भुज उठाइ पन कीन्ह' हमारे सामने लोकमंगल व लोकसग्रह को अपने भीतर आत्मसात् कर एक व्यापक व्यावहारिक धरातल पर उभरता है—उसका कामायनी मे अभाव है। बाह्य रूप मे उसकी कथावस्तु में न घटना प्राचुर्य है, न परिस्थितियो की अनेकरूपता, न विरोधी शक्तियो के घात-प्रतिघात के 'जय-पराजय' की कुतूहलवर्धक दृश्य रंजना, न पात्रो का आधिक्य, न ही क्रियाकलाप की सकुलता। कथा इतनी कम है कि उनके आधार पर महाकाव्य लिखना प्रसाद जैसे कवि मनीषी से ही सभव हो सका। साधारणत महाकाव्य के लिए जीवन, जगत व प्रकृति के बहुस्पर्शी पटल आवश्यक है जिसमे प्रचुर घटनाए, विविध स्तरीय पात्र, घटनाओ के मध्य उभरनेवाले जीवन के अनेक पहलू, ऐंद्रिक, पारिवारिक, सामाजिक संबधो का बृहत् परिवेश, राजनीतिक, सास्कृतिक एव सामाजिक विचारधाराए—सबकी सश्लिष्ट सयोजना अपेक्षित होती है और 'कामायनी' में स्पष्ट ही यह नही है, पर फिर भी भारतीय साहित्य मे ही नही, विश्व महाकाव्यों की विकास-परपरा मे 'कामयानी' ही ऐसा महाकाव्य है जो मनुष्य को इतिहास धर्म परिच्छिन्न देश-काल से हटाकर विज्ञान, मनोविज्ञान और दर्शन की पीठिका पर कलात्मक प्रौढि के साथ अधुनातम जीवन के विराट सघर्षो व उलझनो के बीच उभारता है और इस दृष्टि से उसके कथानक में एक अपूर्व आयाम लक्षित होता है जो सपूर्ण मानवता के विकास की गाथा को अभिव्यक्त करता है।

वस्तुत 'कामायनी' एक लिरिकल महाकाव्य है और इस लिरिकल बोध के अनुरूप ही महाकाव्य के रचना-गठन की अभिनय शैली का अन्वेषण किया है जिसमे स्वभावत. घटना बहुलता कम और ध्वन्यात्मकता तथा बिंबात्मक सांकेतिकता अधिक हो गयी है। प्रसाद ने अल्प पात्रो एवं विरल घटनाओ के माध्यम से जीवन के अतर्बाह्य विराट एव बहुमुखी प्रश्नो

का समाधानकारक चित्र कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है। कवि के रचना-कौशल का सबसे प्रभावशाली अग उसकी विंव योजना है जहा कथा-सृष्टि को प्रसंगानुकूल विराट, लघु, गहन, मधुर, उदात्त, खडित विकीर्ण विंवो से मडित कर उसके लघु परिवेश मे ही उसे 'महतोमहीयान्' बना दिया है।

वाह्य घटनाओ के आधार पर 'कामायनी' की कथावस्तु मात्र यही है जिन्हे प्रसाद ने विंवो के द्वारा एक अपूर्व आयाम प्रदान किया है—

(क) प्रलय के वाद एकाकी मनु—पूर्वदीप्ति शैली मे प्रलय वर्णन।
(ख) श्रद्धा का आगमन—मनु-श्रद्धा का प्रथम परिचय।
(ग) श्रद्धा द्वारा कर्म-प्रेरणा।
(घ) मनु-श्रद्धा-मिलन व परिवार नियोजन।
(ङ) ईर्ष्यालु मनु द्वारा गर्भवती श्रद्धा का प्रत्याख्यान।
(च) इडा-मिलन।
(छ) वैज्ञानिक उन्नति, इडा से प्रणय निवेदन, इडा पर वलात्कार के फलस्वरूप रुद्र-प्रकोप, जन-सघर्ष और मनु का मुमूर्षु होना।
(ज) श्रद्धा व मुमूर्षु मनु का पुर्नमिलन, जीवन रहस्यो से परिचय।
(झ) कैलास पर दपती का आश्रम, इडा-मानव के साथ सारस्वत जनता की तीर्थयात्रा।

इन शीर्षको के अतर्गत हम कथा-सृष्टि के विकास मे विंवो का अध्ययन करेंगे।

## (क) प्रलय के बिंब

'कामायनी' महाकाव्य का प्रारभ प्रलय की घटना के स्मरण से होता है। प्रलयोपरात एकाकी मनु उस विप्लव व ध्वसकारी मृत्युलीला को याद करते हैं—गरजता हुआ महासागर, धसती धरा, ज्वालामुखी का विस्फोट, झझा के झटके, हलाहल वृष्टि, वाडव ज्वालाए, भीषण रव, दिगत की वधिरता आदि के विंवो मे प्रसाद ने धरती-आकाश सवको समेट लिया है—

हाहाकार हुआ क्रदनमय,
कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगत वधिर भीषण रव
बार-वार होता था क्रूर।
दिग्दाहो से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के!
सघन गगन मे भीम प्रकपन,
झंझा के चलते झटके।
(चिंता सर्ग)

यह एक ध्वनि विंव है जिसे प्रसाद ने 'दिगत की वधिरता' के द्वारा और भी अधिक मुखरता प्रदान की है। 'हाहाकार का क्रदनमय होना'—वातावरण का क्रदनमय नही स्वय हाहाकार का ही क्रदन, मानो मृत्यु से भयभीत देवगण नही रो रहे हैं उनके हाहाकार की ध्वनि ही रो रही है। इस प्रयोग से प्रसाद ने मृत्यु की भीषणता, भयकरता, सत्रास को अधिक गहन वनाया है। यह एक ऐसा विंव है जिसके भीषण रव ने सवको वधिर वनाया है—यह क्रदन क्षितिज-

व्यापी है, इसने सबको भयभीत किया है। चित्र मे ध्वनि के साथ-साथ गहन भय, क्रूर, मृत्युलीला, घनघोर निराशा और चीख है। यह चीत्कार किसी साधारण मानव का नही, संपूर्ण देव सृष्टि का है। वे देव जो शक्तिशाली थे, अमर थे। अमरो का यह चीत्कार है जिसकी व्यजना 'दिगत की वधिरता' से प्रसाद ने की है। संपूर्ण देव सृष्टि के नाश से अखिल ब्रह्माण्ड का भयभीत होना ठीक भी है। आगे की पक्तियो मे इस चीत्कार को प्रत्यक्ष गोचरता प्रदान की गयी है। सारा वातावरण प्रलय-वृष्टि से इतना अधिक घनीभूत हो उठा है कि उसमे देवता नही दिखाई पड रहे हैं, उनका चीत्कार ही सुनाई पड रहा है। 'दिग्दाहो से धूम उठना', 'क्षितिज तट के जलधरो' का उठना प्रलय-वृष्टि की संपूर्ण व्यापकता को चित्रित करता है। कोई भी कोना बाकी नही, सारी सृष्टि ही निमज्जित हो रही है।

प्रलय का दूसरा चित्र है—

> धँसती धरा, धधकती ज्वाला,
> ज्वालामुखियो के निश्वास;
> और सकुचित क्रमश उसके
> अवयव का होता था ह्रास।
> (चिंता सर्ग)

यह एक चाक्षुष बिंब है जिसमे पृथ्वी को एक डूबते हुए मनुष्य के रूप मे चित्रित किया गया है। जिस प्रकार डूबता हुआ आदमी अपनी सारी शक्ति को लगाकर भी नही बच पाता और धीरे-धीरे उसके अग पानी मे समा जाते हैं—वही चित्र यहा पर है। धरा डूब नही रही है, धस रही है। 'धसने' शब्द मे एक श्लथ प्रक्रिया है—धीरे-धीरे एक के बाद एक सब कुछ विलीन होता जा रहा है। इसी प्रकार 'सकुचित अवयवो का ह्रास' मे एक के बाद एक सभी अगो का भीषण प्लावन मे तिरोहित हो जाना चित्रित है। प्रसाद ने धरा के मानवीकरण द्वारा बिंब को गोचरता तो दी ही है उसे एक स्वाभाविकता एव सवेद्यता भी प्रदान की है। चित्र मे यद्यपि क्षिप्रता नही फिर भी डूबने की प्रक्रिया मे गति तो है ही।

> बढने लगा विलास वेग-सा
> वह अति भैरव जल सघात;
> तरल तिमिर से प्रलय पवन का
> होता आलिगन प्रतिघात।
> (चिंता सर्ग)

अत्यत भयकर जल प्लावन विलास वेग की तरह बढ रहा था। बढने की इस प्रक्रिया को कवि ने 'विलास वेग' से उपमित कर उसके स्वरूप को एक अद्‌भुत व्यजकता दी है। जिस प्रकार विलास एक गति से बढता ही जाता है—कभी भी उसमे शिथिलता नही आती, सदा ही एक अतृप्ति बनी रहती है उसी प्रकार प्रलयकर जल अतृप्त भाव से निरंतर सबको समेट रहा था। स्वरूप मे वह विलासी की तरह है जो सब कुछ स्वय ही भोगना चाहता है। प्रलय के विध्वसकारी दृश्य को तिमिर व पवन के परस्पर आलिगन से कवि ने एक माधुर्य प्रदान किया है। यह प्रसाद का अपना वैशिष्ट्य है। भीषण से भीषण वातावरण को एक मधुर सकेत देना—यही प्रसाद अकेले हैं। 'तरल तिमिर' अधकार को तरल कहकर उसे चेतना ही नहीं प्रदान की अपितु आलिगन के लिए बढते हुए भुजो को भी साकार किया है। यह एक

मिश्र अनुभूति का चित्र है जिसमे व्यथा, विलास, विनाश सभी एकसाथ रूपायित हैं।

लहरें व्योम चूमती उडती,
चपलायें असंख्य नचती।
गरल जलद की खडी झडी मे
बूंदें निज ससृति रचती।
(चिंता सर्ग)

भयंकर वर्षा के एक जल-जगत का यह चित्र है जिसमे आकाश और पृथ्वी सभी जलमय हो गये हैं। लहरो का व्योम चूमना उनकी अपरिमित ऊचाई का द्योतक है और वे व्योम चूमने के लिए उठती नही हैं, उडती हैं। चित्र मे एक क्षिप्रता है, तीव्रता है। गरल जलद की झडी—झडी ही नही खडी झडी। मूसलाधार वर्षा की अनवरतता है। प्रलय सागर का सजीव चित्र है। लहरो के आकाश चूमने व चपलाओ के नाचने मे मानवीकरण है जो चित्र को एक सजीव साकार रूप देता है। मिलन की तीव्र आकाक्षा व भीषण नृत्य का आभास भी इस बिंब मे है। आकाश चूमने के लिए उड़ना मानो हृदय की आतुरता ही है। प्रलय का यह चित्र वैभवपूर्ण है।

घनीभूत हो उठे पवन, फिर
श्वासो की गति होती रुद्ध;
और चेतना थी बिलखाती
दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध।
(चिंता सर्ग)

प्रलय के बिंबो मे यह सर्वाधिक सुदर बिंब है जहा पर चाक्षुषता, श्रावणिकता, स्पर्शिता सभी सवेदन सज्ञाशून्य हो गये हैं, केवल एक खीज व वितृष्णा की अनुभूति भर बची है। चित्र मे एकदम घुटन (Suffocation) का वातावरण है। जिस प्रकार वायु के भर जाने से जी घुटने लगता है, सभी सवेदन लुप्त होने लगते हैं, आखो के सामने अधकार छा जाता है—उसी प्रकार प्रलय जल की अतिशयता ने वातावरण मे एक अजीब प्रकार की घुटन का निर्माण किया है। यह एक प्रकार का भाव-बिंब है जहा ऐंद्रियता समाप्त हो जाती है, केवल एक सवेदन रहता है। यहा जो सवेदन है वह गतिशील नही, एक उमडने-घुमडनेवाला घुटन-भरा सवेदन है जिससे क्रियाशीलता, चिंतन शक्ति सभी समाप्त हो जाते है।

## (ख) मनु-श्रद्धा का प्रथम परिचय

प्रलय की पूर्वपीठिका के बाद 'कामायनी' महाकाव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है श्रद्धा का आगमन। यह आदि व आदिम नर तथा आद्या नारी का मिलन है। नये युग का, मानव सृष्टि का समारभ है। इस बाह्य घटना के पूर्व कवि मनु की एक व्यापक मन स्थिति तैयार करता है जिसमे जिजीविषा, आशा, सृजनात्मक प्रेरणा से मनु का मानस आप्लावित हो उठता है। मन की मधुर, मादक, उल्लसित, उत्साहित, क्रियाशील स्थिति मे श्रद्धा का प्रश्न एक मधुर गुजार व सगीतमय वरदान के समान आता है। यहा मनु-श्रद्धा के प्रथम परिचय के कुछ बिंबो का अनुशीलन करेंगे—

कौन तुम ? ससृति-जलनिधि तीर
तरगो से फेंकी मणि एक,

कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक ?
..............................
मधुर विश्रांत और एकांत
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुंदर मौन
और चंचल मन का आलस्य !
(श्रद्धा सर्ग)

तरंगो से फेंकी हुई मणि के द्वारा प्रभा की धारा से निर्जन का चुपचाप अभिषेक करना रस बिंब की एक पूर्णता है। यह एक संवेदनशील भाव-बिंब है जिसमे हृदय की सारी मुग्धता, अपार विस्मय, विकार-रहित अनुराग, मानस की प्रासादिकता सभी एकसाथ रूपायित है। मनु की प्रभामय कांति से सारा प्रदेश अभिषिक्त है, श्रद्धा का मानस भी। परिचय पूछना तो एक साधारण प्रश्न है, वस्तुत काव्य का विषय ही नही, पर प्रसाद ने इसका एक आकर्षक बिंब प्रस्तुत किया है। समुद्र की लहरो द्वारा फेंकी हुई मणि की तुलना से कवि ने मनु के एकाकी जीवन की निराशापूर्ण स्थिति का चित्र खीचा है। देव जाति का यह ध्वंसावशेष मणि है—श्रेष्ठता का द्योतक यह शब्द मनु के श्रेष्ठ मानव होने की सूचना देता है। एक तरफ वह फेंका हुआ है, ध्वंसावशेष है, पर दूसरी तरफ मणि है, आगामी मानव जाति का प्रकाश-स्तंभ—मानव सभ्यता का आदि पुरुष। मनु सुलझा हुआ रहस्य है, करुणामय सुंदर मौन है, चंचल मन का आलस्य है। इन तीन वाक्यो के द्वारा कवि ने मनु के जीवन-संघर्ष की भयानक स्थिति, उनकी गहन निराशा और अकर्मण्यता का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कांतिमय व्यक्ति का यह उदास, निराश एवं मौन गंभीर चित्र है।

एक झिटका सा लगा सहर्ष,
निरखने लगे लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मौन।
(श्रद्धा सर्ग)

मनु के संभ्रम व आनंद की व्यंजना इस बिंब मे है—'झिटका सा लगा', मानो किसी विचार और ध्यानमग्न योगी को अचानक ही साक्षात् दिव्य दर्शन मिला हो और शरीर तथा मन की सारी चेतना झंकृत हो उठी हो। लुटे से निरखने लगे—उस रूप मे न जाने कौन-सा विश्वासदायक प्रभाव है कि मनु विश्रब्ध भाव से देखने लगते हैं। इस शब्द मे सौंदर्य का प्रभाव तथा अंत सत्ता की तदाकार परिणति को रूपायित किया गया है। यह एक आश्चर्य-चकित व्यक्ति का एक अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्र है। 'कुतूहल रह न सका फिर मौन'—विशेषण विपर्यय ने इस बिंब को अधिक प्रखर बनाया है। मनु मौन न रह सके यह बात नही—कुतूहल मौन न रह सका। 'करुणामय सुंदर मौन' रूप वाले मनु के हृदय मे कुतूहल का संचार सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। इसी अतिक्रांतता की स्थिति का यह बिंब है। साथ ही वैभव, विलास और ऐश्वर्य के एकाकी अवशेष के समस्त व्यक्तित्व को झंकृत कर देनेवाली तथा उसके जीवन को एक नया मोड़ देनेवाली घटना का बोध भी यहा पर होता है।

कहा मनु ने, नभ धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का सा जलता भ्रात,
शून्य मे फिरता हूँ असहाय।
(श्रद्धा सर्ग)

घोर निराशा, गहन वेदना, भविष्य की अनिश्चितता की अभिव्यक्ति प्रतीको के द्वारा की गयी है। जिस प्रकार अतरिक्ष मे पथभ्रष्ट असहाय उल्का भटकता है, वही स्थिति आज मनु की है। किसी प्रकार के आकर्षण से आज वह बधा नही है, उसके जीवन का आज कोई लक्ष्य नही है। वह केवल भ्रात, कक्षाच्युत पथिक है जो केवल जलता ही रहता है। केवल जलता है, पर प्रकाश किसी को नही देता। एक ऐसे दिग्मूढ व्यक्ति का बिंब है जिसे स्वय यह भी नही मालूम कि उसके जीवन का प्रयोजन क्या है। उसे अपना ही जीवन एक अजनबी लगता है। भीषण सत्रास की स्थिति मे इस प्रकार का अजनबीपन एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। असहाय शब्द के प्रयोग मे यह भी ध्वनि है कि 'तुम मुझे सहायता दो'। बिंब मनु की चेतना की असहाय अवस्था को उसके समस्त दैन्य के साथ सप्रेपित करता है। यह विषाद का एक सश्लिष्ट चित्र है।

एक विस्मृति का स्तूप अचेत,
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिम्ब,
और जडता की जीवन राशि
सफलता का सकलित विलम्ब।
(श्रद्धा सर्ग)

मनु अपना परिचय श्रद्धा को देते है। प्रसाद ने यहा पर एक चाक्षुक बिंब की योजना की है जिसमे मनु की अभावपूर्ण, चेतनाहीन अनिश्चित तथा निष्प्राण स्थिति को अकित किया है। उपचार वक्रता के द्वारा मनु की दयनीय दशा के चित्रण मे उत्कृष्ट सादृश्य योजना की गयी है। विस्मृति का स्तूप—जिसमे हजारो स्मृतिया दबकर विलीन हो गयी हैं और केवल उनका निर्जीव निष्प्राण ढेर मात्र रह गया है। यह ढेर आकार मे तो बडा है पर उसमे चेतना का लेश भी नही। प्रकाश के एक धुधले प्रतिबिंब के समान बताकर मनु के जीवन मे आनद, उल्लास एव आशा के अभाव के साथ भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कामना का अभाव भी व्यजित है। 'जडता की जीवन राशि' मे एक अद्भुत बिंबात्मक सौदर्य है—जीवन की जडता नही जडता की जीवन राशि। मानो जीवन नही केवल जडता का ही अस्तित्व रह गया है जिसके पुनर्जीवित होने की कोई सभावना नही। जीवन मे यदि जडता होती तो वह दूर भी की जा सकती थी पर यहा तो जडता ही जीवन धारण कर लेती है। इसी प्रकार 'सफलता का सकलित विलब' मनु के जीवन की उसी घोर निराशा, वेदना, असफलता, निरर्थकता एव अकर्मण्यता की ओर सकेत करता है। चित्र मे प्रसाद ने एक ऐसे व्यक्ति को उभारा है जिसका मानस निविड निराशा, घनघोर विरक्ति, आत्मग्लानि, अत शून्यता, निरर्थकता के बोध से एकदम चेतना-शून्य हो रहा है।

कौन हो तुम वसत के दूत,
विरस पतझड़ मे अति सुकुमार!

घन तिमिर मे चपला की रेख,
तपन मे शीतल मद वयार।
(श्रद्धा सर्ग)

मनु के परिचय के विपण्ण, उदास, निराश, टूटे हुए बिंवो के वाद श्रद्धा के प्रति इस प्रकार के मधुर-कोमल, आशापूर्ण शब्दो की व्यजना घटना की बोझिलता, जडता को दूर करती है। यह मनु का प्रश्न है कि तुम वसत के दूत के समान, पतझड में रस का सचार करने वाली, घनघोर अधकार मे विद्युत् की कौंध के समान और ग्रीष्म की तपन मे शीतल वयार की पुलक देनेवाली कौन हो ? प्रश्न मे नाटकीयता है जिसमे घटना को एक नया मोड प्रदान किया है। कवि ने रूपकातिशयोक्ति अलकार द्वारा उपचार से श्रद्धा के शुभागमन से मनु को प्राप्त होनेवाले आनद का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। चित्र मे कोमल स्पर्श की अनुभूति है, प्रतीकात्मकता है, लाक्षणिकता है। सारा का सारा सवेदन सकेत से कहा गया है। वातावरण Suggestive हो उठा है।

## (ग) श्रद्धा द्वारा कर्म-प्रेरणा

वाह्य घटना की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण पर महाकाव्य की सपूर्ण घटनाओ का मूल स्वर इन विंबो मे प्रखरता के साथ उद्भासित है।

काम मगल से मडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम;
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
वनाते हो असफल भवधाम।
(श्रद्धा सर्ग)

विश्व के मगलमय स्वरूप के इस विंव को विचार विंवो मे लिया जा सकता है। यह अनुभूति उतनी नही जगाता जितना कि हमारे चिंतन को जाग्रत करता है। कवि की मगलोन्मुखी दृष्टि श्रद्धा के शब्दो मे मुखरित है, साथ ही जीवन के प्रति, सृजन के प्रति अदम्य विश्वास, अटूट आस्था का स्वर है। प्रवृत्ति मूलक इस कथन ने कामायनी के नायक की मान्यताओ को ही वदल दिया है। जीवन मे प्रवृत्ति का, कर्म का, सृजन का तिरस्कार कर एक काल्पनिक ससार का निर्माण जीवन का सत्य नही।

तप नही केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;
तरल आकाक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।
(श्रद्धा सर्ग)

यह विचार विंव प्रेरक है, उत्साहवर्धक है साथ ही स्फूर्तिदायक है। 'करुण यह क्षणिक दीन अवसाद' ने इस विचार विंव को काव्यात्मकता से मडित किया है। एक मृतप्राय दीन व्यक्ति का चित्र साक्षात् हो उठता है जिसका अस्तित्व क्षण-भर मे समाप्त हो जायेगा। अवसाद को करुण कहकर प्रसाद ने अवसाद-ग्रसित व्यक्ति के दैन्य असहायमय रूप को खीचा है पर साथ ही उसे क्षणिक व दीन वताकर उसकी क्षुद्रता-अर्थहीनता को भी रूपायित किया है। इस ऊपरी सतह के भीतर आकाक्षा का, आशा का, आह्लाद का ससार है जिसे पहचानने की

आवश्यकता है, तरल आकांक्षा मे प्रवृत्तिमूलक जीवन सत्य को ध्वनित किया गया है। इसी प्रकार 'आशा का आह्लाद' आशामय जीवन के उल्लास का द्योतक है क्योंकि आशावादी मनुष्य कभी भी अवसाद से नही घिरा रह सकता।

उन्हे चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रही खडी सानद;
आज से मानवता की कीर्त्ति
अनिल, भू, जल मे रहे न वद।
.................... . ..... ......
किन्तु वह खडी रहे दृढ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
............ ................. .
विजयिनी मानवता हो जाय !
(श्रद्धा सर्ग)

एक विश्व विजेता सम्राट का, मानवता के कीर्त्ति स्तभ का यह बिंब हिंदी साहित्य मे अपूर्व है। मानव की शक्ति, उसके अदम्य पुरुषार्थ, उसकी विराट आकांक्षा, उसकी महत् सृजनाकांक्षा, उसके अदमनीय शौर्य की कहानी ओजस्वी प्रखरता के साथ विकीर्ण हो जाती है। बिंब मे एक शाश्वतता है, चिर मानव सत्य का इतिहास है। कथा का यह विकास कामायनी को युग से हटाकर शाश्वतता प्रदान करता है। महाकाव्य का लघु परिवेश उखड जाता है—उसकी सीमा भूत, वर्तमान व भविष्य तक व्याप्त हो जाती है।

## (घ) मनु-श्रद्धा-मिलन व परिवार नियोजन

'कामायनी' महाकाव्य की घटनाओ मे सबसे महत्त्वपूर्ण अश यह है। मानव सृष्टि के विकास का यह सूत्रपात है—आदि पुरुष व आद्या नारी का मिलन प्रसग है। इस प्रसग मे मिलन की अनिश्चित मुग्ध अवस्था से लेकर पूर्ण मिलन तक के चित्र तथा गर्भवती श्रद्धा द्वारा परिवार नियोजन का रूप बिंबो द्वारा प्रसाद ने व्यक्त किया है—

एक जीवन सिंधु था तो वह लहर लघु लोल,
एक नवल प्रभात, तो वह स्वर्ण किरण अमोल।
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम,
दूसरा रजित किरण से श्री कलित घनश्याम !
(वासना सर्ग)

नारी और पुरुष दोनो पूरक हैं। दोनो का जीवन के लिए महत्त्व है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। इसको कवि ने कई अप्रस्तुतो के द्वारा रूपायित किया है। मिलन के पूर्व इस भूमिका की आवश्यकता भी है। चित्र मे यद्यपि एक-दूसरे की पूरकता है पर अभिन्नता नही। यहा मिलन की मानसिक तैयारी नही।

नदी तट के क्षितिज मे नव जलद, सायकाल,
खेलता दो बिजलियो से मधुरिमा जाल।

लड रहे अविरत युगल थे चेतना के पाश ;
एक सकता था न कोई दूसरे को फाँस।
(वासना सर्ग)

मनु-श्रद्धा के मिलन की अनिश्चित अवस्था को दृष्टात अलकार द्वारा इस बिंब मे प्रत्यक्ष किया गया है। 'नव जलद' अच्छी व्यजना है जो हृदयाकाश मे उठते हुए मनोभावो की ओर सकेत करता है—ये ऐसे भाव हैं जो अभी पूर्ण परिपक्व नही हुए हैं पर उनका उदय हो गया है। वासना के उदय का यह चित्र अत्यत सयमित है। मधुरिमा जाल मे वातावरण का माधुर्य एव मादकता स्पष्ट है। पर चेतना का पाश अभी शिथिल नही—अतर्मुखी चेतना अज्ञात स्तर पर तो मिलने के लिए आकुल-व्याकुल है पर ज्ञात स्तर पर अभी उसका समर्थन नही हो पा रहा है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। चित्र मे भावशवलता है।

मधु बरसती विधु किरण हैं काँपती सुकुमार,
पवन मे है पुलक मथर, चल रहा मृदु भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यो है प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?
(वासना सर्ग)

वासना से अभिभूत मनु का यह प्रश्न मिलसन प्रसग को आगे बढाता है। शुभ्र ज्योत्स्ना के वातावरण मे, प्रकृति के सभी पदार्थ ज्योत्स्ना के सागर मे स्नान कर रहे हैं। पवन भी माद-इकता के भार से, वासना की तरलता से श्लथ हो रहा है। तुम इतने समीप हो फिर भी अधीरता की यह नयी अनुभूति आज क्यो हो रही है ? परस्पर हृदय-समर्पण का यह चित्र स्वेद, कप, अधीरता, माधुर्य से परिपूर्ण है। मनु के प्रश्न ने आतरिक उद्वेगो को सारी प्रकृति पर फैला दिया है। स्पर्श, घ्राण व चाक्षुष गोचरता के साथ एक शुभ्रता, तरलता व मोहकता भी इसमे है।

खुले मसृण भुज-मूलो से
वह आमत्रण था मिलता;
उन्नत वक्षो मे आलिगन
सुख लहरो-सा तिरता।
(कर्म सर्ग)

वासना के अतिरेक के बाद श्रद्धा की इस रूपछवि ने मिलन की भूमिका को और भी परिपक्व किया है। यह एक रूप-बिंब है जो मिलन की घटना को प्रेरित करता है। श्रद्धा की उन्मुक्त कोमल बाहे आलिगन का निमत्रण देती हैं और वक्षोजो का उतार-चढाव मनु के हृदय मे मिलन की अभिलाषा को तीव्र बनाता है। यह श्रद्धा के सौंदर्य की अपरूपता के साथ मनु की वासनाभिभूत मनोदशा का चित्र है।

दो काठो की सधि बीच उस
निभृत गुफा मे अपने,
अग्नि शिखा बुझ गयी, जागने
पर जैसे सुख सपने।
(कर्म सर्ग)

मनु-श्रद्धा का यह मिलन बिंब है। सभोग शृंगार को इतने मर्यादित ढग से व्यक्त करना प्रसाद का ही कवि कौशल है। 'दो काठो की आग' से वासना की तुलना एव उनके बुझने मे सभोग की परिसमाप्ति का अत्यत मार्मिक चित्र है। इन पक्तियो को ध्वनि काव्य का रूप प्रदान कर प्रसाद ने प्रसग की अश्लीलता को समाप्त कर उसे ग्राह्य एव प्रेषणीय बना दिया है। रूपकातिशयोक्ति अलकार के द्वारा चित्र और भी सजीव हो गया है।

## (ङ) ईर्ष्यालु मनु द्वारा गर्भवती श्रद्धा का प्रत्याख्यान

मनु-श्रद्धा के इस मिलन के पश्चात् अधिकार लिप्सु, आखेट प्रेमी और ईर्ष्यालु मनु का मन श्रद्धा के सरल, निरीह, सात्त्विक एव शुद्ध प्रेम मे नही रम पाता। वह नूतनता का प्रेमी है—आगामी शिशु के प्रति ईर्ष्या से वह भर उठता है। श्रद्धा के मातृत्व के प्रति उसे कोई सहानुभूति नही। मृगया, हिंसा और सोम-पान के अतिरिक्त उसे कुछ रुचिकर नही, उसका सपूर्ण व्यक्तित्व इन्ही के बीच घिर जाता है। चलदल की तरह क्षणिक सुख को भोगना मनु का कर्तव्य-कर्म बन जाता है। और अत मे श्रद्धा को त्यागकर मनु नये जीवन की खोज मे निकल पडते हैं। इन सारी घटनाओ को कवि ने ईर्ष्या सर्ग मे नियोजित किया है पर काव्य-बिंब की दृष्टि से यहा कोई महत्त्वपूर्ण चित्र नही रूपायित हो सका जो घटना को प्रखर व गतिशील बना सके। सारा प्रसग अभिधा के धरातल पर चलता है। केवल अतिम छद मे भावप्रवणता लक्षित होती है जो नारी की विकल वेदना को एक करुण स्वर देता है।

लो चला आज मैं छोड यही
        सचित सवेदन भार पुज;
मुझको काँटे ही मिलें धन्य !
        हो सफल तुम्हे ही कुसुम कुज।'

कह, ज्वलन शील अतर लेकर
        मनु चले गये, था शून्य प्रात,
'रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही !'
        वह कहती रही अधीर श्रात !

(ईर्ष्या सर्ग)

मनु के हृदय की ईर्ष्या, घृणा, अपमान, अनादर, उग्रता आदि का यह बिंब मनु के चचल व्यक्तित्व को ध्वनित करता है। 'सचित सवेदन भार पुज' मे एक ऐसे व्यक्ति का रूप है जो आज तक के सभी मधुर सवेदनो को केवल भार समझता है। वह एक बोझ है, केवल उसमे सिर्फ जडता है, अनुभूति, चेतना व हृदय का स्पर्श नही। अतिम पक्तियो मे आसन्नगर्भा श्रद्धा का विह्वल और शिथिल होकर पुकारना शोकाकुल परिवार का सजीव चित्र है। 'रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही' मे व्यथा, टीस और अतर्दाह का गहरा स्वर है जिससे ग्लानि, दैन्य, मोह, आवेग, विषाद, व्याधि आदि सचारियो की अभिव्यक्ति होती है।

## (च) इडा-मिलन

श्रद्धा प्रत्याख्यान की इस घटना के बाद कामायनी महाकाव्य की एक महत्त्वपूर्ण घटना नियोजित है—इडा-मनु का मिलन। यह मिलन प्रसग मोहक, रमणीय, ज्योतिर्मय व उल्लसित है। यही से कथानक मे एक नया मोड आता है—मनु की बुद्धिवादी यात्रा का सूत्रपात

होता है। एकाकी मनु का पश्चात्ताप करते-करते भटकना, विध्वस्त सारस्वत प्रदेश मे सारस्वत नदी के पास अचेतन हो जाना, चेतना लौटने पर इडा से साक्षात्कार—प्रभात वेला मे रम्य फलक पर अम्लान उल्लसित पुष्प की तरह नेत्र महोत्सव इडा का आना। मनु पुन अपने खोये जीवन की आशा व उत्साह को इडा के रूप मे पाकर कर्म-क्षेत्र मे उतर पडते हैं।

प्राची मे फैला मधुर राग
जिसके मडल मे एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोक-रश्मि से बुने उषा अचल मे आदोलन अमद
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरद
उस रम्य फलक पर नवल चित्र-सी प्रकट हुई सुन्दर बाला
वह नयन महोत्सव की प्रतीक अम्लान नलिन की नवमाला
सुषमा का मडल सुस्मित-सा बिखराता ससृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग।
(इड़ा सर्ग)

प्रभातकालीन अनुपम छटा के साथ नवयुवती इडा का यह बिंब अद्भुत है। दृश्य एव रूप दोनो की नियोजना एकत्र हुई है। बिंब मे स्फूर्ति, दीप्ति, आभा, उल्लास, प्रकाश, ध्वनि, रग, रूप, स्पर्श सभी हैं। सूर्य को कमल तथा उसके आलोक और किरणो को क्रमश प्राण और परिमल कहकर एक अभूतपूर्व कल्पना की है। 'परिमल से व्याकुल होना' अनूठी व्यजना है—प्रभात वेला मे सूर्य की प्रथम किरण के साथ पक्षियो का कलरव एकदम आरभ होता है मानो किसी के आह्वान से वे सब व्याकुल हो उठे हैं—अब उनके लिए नि स्वर रहना दुष्कर है। 'श्यामल कलरव' के विशेषण विपर्यय द्वारा वातावरण के हरेपन को द्योतित किया गया है। 'उषा अचल मे आदोलन अमद'—उषा एक मानवी है और सर्वत्र फैला हुआ सुनहला आलोक उसका अचल जिसमे शीतल पवन की मद गति रूप मे आदोलन हो रहा है। ऐसे रमणीय फलक पर एक नवीन चित्र के समान इडा का प्रादुर्भाव, नाटकीयता के साथ अभिनव विच्छित्ति मे चित्रित है। 'नवीन चित्र' उसके नवयौवना होने को सकेतित करता है। 'नयन महोत्सव की प्रतीक', 'अम्लान नलिन की नव माला' के प्रयोग से इडा के अद्वितीय सौंदर्य की साकेतिक अशरीरी अभिव्यक्ति है। 'नयन महोत्सव' मे सौंदर्य को देखकर भी एक प्रकार की अतृप्ति का बोध होता है। ऐसी स्फूर्तिदायक प्रेरणास्पद कातिमयी इडा को देखकर मनु के जीवन का तम विराग सो जाता है—समाप्त हो जाता है।

आलोकमयी स्मिति चेतनता इडा की हेमवती छाया से तद्रा के स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं—वह मनु को कर्म करने की प्रेरणा देती है, स्वावलबी बनने का पाठ पढाती है, अपनी ही बुद्धि की शरण जाने को उत्साहित करती है। मनु के जीवन का अधकार समाप्त हो जाता है—

जीवन निशीथ का अधकार
भग रहा क्षितिज के अचल मे मुख आवृत कर तुमको निहार
....... .... .. ...... ..... ...... ...............
अवलब छोडकर औरो का जब बुद्धिवाद को अपनाया
मैं बढा सहज, तो स्वय बुद्धि को मानो आज यहाँ पाया

मेरे विकल्प सकल्प बनें, जीवन हो कर्मों की पुकार
सुख साधन का हो खुला द्वार।
(इडा सर्ग)

## (छ) वैज्ञानिक उन्नति, इड़ा के प्रति प्रणय निवेदन, इडा पर बलात्कार के फलस्वरूप रुद्र-प्रकोप, जन-सघर्ष और मनु का मुमूर्षु होना

कथा सघटना के इस अश मे सारस्वत प्रदेश बसा, यान्त्रिक उन्नति हुई, विज्ञान के नये क्षेत्र खुले, भौतिक विकास हुआ, व्यवसाय-ज्ञान बढा, प्रासाद-प्राचीर निर्मित हुए, मानव का अशेष अभ्युदय हुआ, इडा के प्रति मनु अनुरक्त-आसक्त हुए, प्रणय निवेदन किया, यही पर इडा बलात्कार का प्रसग आया, रुद्र का प्रकोप हुआ, प्रजा मे विप्लव-सघर्ष व युद्ध हुआ, मनु घायल हुए—सभी घटनाए क्षिप्र गति से घटित हो गयी पर बिंब-निर्माण का शिल्प यहा कथा विन्यास मे अपना कौशल नही दिखा सका। सभवत अत वृत्तियो एव मानस उद्वेलनो के कवि प्रसाद की कल्पना इन भौतिक विकासो के बाह्य स्वरूप मे नही रम सकी। केवल कुछ बिंब इस प्रसग मे उल्लेखनीय हैं, पर वे भी श्रेष्ठ बिंबो की कोटि मे नही रखे जा सकते—

**वैज्ञानिक उन्नति मे बुद्धि की अनिवार्यता—**

वह सुदर आलोक किरण-सी हृदयभेदिनी दृष्टि लिये
जिधर देखती, खुल जाते है तम ने जो पथ बद किये!
मनु की सतत सफलता की वह उदय विजयिनी तारा थी,
आश्रय की भूखी जनता ने निज श्रम के उपहार दिये।
(स्वप्न सर्ग)

यह एक प्रतीक बिंब है जिसमे इडा को बुद्धि के प्रतीक के रूप मे चित्रित किया गया है। 'आलोक किरण-सी हृदयभेदिनी दृष्टि लिये'—बुद्धि की प्रखरता, तीव्र मेधा से प्रकृति के रहस्यो को उद्घाटित कर किस प्रकार उसे मानव-विकास के लिए नियोजित किया जा सकता है। इसी प्रकार 'विजयिनी तारा' बुद्धि के प्रेरक रूप का चित्र है।

**इड़ा के प्रति प्रणय निवेदन—**

सुदर मुख, आखो की आशा, किन्तु हुए ये किसके हैं,
एक बांकपन प्रतिपद शशि का, भरे भाव कुछ रिस के हैं,
कुछ अनुरोध मान-मोचन का करता आँखो मे सकेत,
बोल अरी मेरी चेतनते! तू किसकी, ये किसके हैं?'
.......................... . ........ ........
मैं अतृप्त आलोक भिखारी ओ प्रकाश बालिके! बता,
कब डूबेगी प्यास हमारी इन मधु अधरो के रस मे?
(स्वप्न सर्ग)

प्रणय निवेदन के रस-चित्र मे हृदय की आतुरता, सौंदर्य की मुग्धता, मनुहार, नर्म वचन व्यक्त हैं। सब कुछ शब्दो तक ही सीमित लगता है—ऐसा प्रतीत होता है कि हृदय का स्पर्श एव अनुभूति की तरलता इसमे नही है। मनु भोगतृप्ति के लिए इतने लालायित प्रतीत होते हैं कि उनकी आतुरता मे हृदय के सूक्ष्म सवेगो एव भावात्मक सवेदनाओ का रूप नही उभर

पाया। रूप वर्णन मे भी मुग्धता कम व नर्ममय उपचार अधिक ध्वनित होता है। केवल 'अरी बोल मेरी चेतनते'—ही भीतर से नि सृत जान पडता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से अवश्य यह उचित जान पडता है क्योंकि वासना की अधीरता एव उद्दामता मे बुद्धिवादी मनुष्य का हृदय कही डूब जाता है—वह तरगायित नही हो पाता। आधुनिक युग की बुद्धिवादी, भौतिक दृष्टि-सपन्न मानव पीढी का यह यथार्थ चित्र है, जहा सब कुछ केवल एक व्यवसाय के रूप मे स्वीकार किया जाता है। चित्र मे Matter of factsness है।

इडा पर बलात्कार तथा रुद्र-प्रकोप—

आलिगन ! फिर भय का क्रंदन ! वसुधा जैसे कॉप उठी !
वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी !
अतरिक्ष मे हुआ रुद्र हुकार भयानक हलचल थी,
अरे आत्मजा प्रजा ! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।
. . . .. .. .. .......... ... . .

प्रकृति त्रस्त थी भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद अपना,
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना !

(स्वप्न सर्ग)

बलात्कार की विभीषिका, गर्हित रूप, नारी का क्रदन तथा स्वत्व को बचाने की असफल चेष्टा, पाप के फलस्वरूप प्राकृतिक कोप सभी इस चित्र मे रूपायित है। 'आलिगन' शब्द का पद के आरभ मे प्रयोग बलात्कार को और भी कुत्सित व वीभत्स बनाता है, साथ ही वासनाभिभूत असतुलित आवेग को प्रत्यक्ष करता है। 'भय का क्रदन' बिंब को ध्वनि सवलित करता है। चीत्कार का आर्तनाद मुखरित है। 'परित्राण पथ नाप उठी' के द्वारा लक्षण लक्षणा के प्रयोग से कवि ने सकेतित किया है कि इडा अपनी सुरक्षा के लिए इधर-उधर मार्ग खोजने लगी। 'पाप की परिभाषा बन शाप उठी'—इस अनुचित कार्य को पाप ही कहना उचित है और इसी पाप के कारण शाप के रूप मे अतरिक्ष मे रुद्र की हुकार गूजने लगी तथा सारी पृथ्वी मे हलचल मच गयी। भूतनाथ के ताडव रूप को देखकर, सहारक मूर्ति से भयभीत सृष्टि का यह चित्र है। 'भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना'—ताडव नृत्य के समय जिधर शिव के चरण बढते है वही सपूर्ण चराचर जगत का विनाश हो जाता है। धार्मिक एव मिथकीय मान्यताओ को प्रसाद ने इस बिंब मे मुखर किया है जिससे चित्र मे अलौकिक एव अतिमानवीय तत्त्वो का समावेश हो गया है। आज के बौद्धिक युग के सदर्भ मे इस पर प्रश्न चिह्न लग सकता है।

जन-सघर्ष व मनु का घायल होना—

मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम मे,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम मे।
. . . ... .... ... ..... . .....

रक्तोन्मद मनु का न हाथ अब भी रुकता था,
प्रजा पक्ष का भी न किंतु साहस झुकता था।

(सघर्ष सर्ग)

यह दृश्य-बिंब है, युद्ध करते हुए मनु का सजीव चित्र। युद्धरत मनु को 'अलात चक्र' से उपमित कर उनके निर्मम ध्वसकारी हाथो के तीव्र आवेग एव क्षिप्र अस्त्र प्रहार को मूर्तित किया गया

है। 'रक्तिम उन्माद' विशेषण विपर्यय के द्वारा मनु के खून के प्यासे पागलपन-भरे स्वरूप को द्योतित करता है। जिस प्रकार एक निर्मम हत्यारे की संपूर्ण चेतना एक रक्तोन्माद से परिपूर्ण रहती है उसी की यहां अभिव्यक्ति है। उन्माद को रक्तिम कहने में उसकी आत्यंतिकता भी ध्वनित है—मानो वहां मनु नहीं साक्षात् उन्माद ही मानव शरीर धारण कर रक्तपात कर रहा है। युद्ध में जिस तरह सामूहिक विनाश की लीला होती है वही यहां रूपायित है। प्रजा का भी अत्यंत उग्र, विद्रोही एवं साहसी रूप उभरा है।

मनु का मुमूर्षु होना—

..........................................

सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।

और गिरे मनु पर मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर ;
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।

(संघर्ष सर्ग)

युद्ध वर्णन सजीव नहीं जान पड़ता—शस्त्रों की भीषण धारों में वेग भर जाना, मनु पर सामूहिक प्रहार, रक्त प्रवाह—सब कुछ है पर उसका आघात गहन नहीं हो पाता। युद्ध की विकरालता, मार्मिकता एवं मृत्यु का दंश चित्र में नहीं उभर सका है।

(ज) श्रद्धा व मुमूर्षु मनु का पुनर्मिलन, जीवन-रहस्यों से परिचय

मनु के घायल होने के बाद की कथा योजना में अलौकिक पुट अधिक है। यहां पर कथा का स्वाभाविक विकास लक्षित नहीं होता। श्रद्धा पुनः मनु के जीवन में लौट आती है पर वह अब विश्वमंगला कल्याणी है, जीवन की आस्था, विश्वासमयी आस्तिक भावना तथा शुभ संकल्प की साक्षात् मूर्ति है। वह मनु को जीवन के रहस्यों से परिचित कराती है। कुछ बिंब—

मनु-श्रद्धा का पुनर्मिलन—

इड़ा चकित श्रद्धा आ बैठी
वह थी मनु को सहलाती,
अनुलेपन-सा मधुर स्पर्श था
व्यथा भला क्यों रह जाती ?

(निर्वेद सर्ग)

पुनर्मिलन के इस चित्र में [illegible] है। [illegible] तरल-मधुर एवं [illegible] है। [illegible] अधिक लगती है। [illegible] स्पर्श में विशुद्ध स्नेह का [illegible] है। [illegible] अवधि के पश्चात् मिलन में [illegible] नहीं—ठीक भी है [illegible] है।

प्रकृति की ओर [illegible]—

[illegible]
[illegible]

मुक्त नील नभ के नीचे या
कही गुहा मे रह लेंगे।
(निर्वेद सर्ग)

यान्त्रिक युग की अति बौद्धिकता से पीडित मनुष्य की भीत स्थिति का यह चित्र है। यद्यपि इस बिंब मे काव्यात्मक सौंदर्य अधिक नही, पर अभिधात्मक शब्दो मे ही प्रसाद ने सत्रास से मुक्त होने की आतुरता को स्पष्ट किया है। इस विकास व विज्ञान मे पिसते रहने से तो गुफा मे रहना, या फिर यो ही प्रकृति की गोद मे रहना कही श्रेष्ठ है। 'छाया' शब्द का प्रयोग मनु की अत्यधिक ऊब व आतुरता को प्रकट करता है। सारस्वत प्रदेश मे रहना तो दूर, वह उसकी छाया मे भी नही रहना चाहता।

आत्मग्लानि श्रद्धा से पुन अलग होना—

..... ...... ..... ............

भाग अरे मनु! इद्रजाल से
कितनी व्यथा न झेली है?

.................... ...........

यह प्रभात की स्वर्ण किरण सी
झिलमिल चचल सी छाया,
श्रद्धा को दिखलाऊँ कैसे
यह मुख या कलुपित काया।
(निर्वेद सर्ग)

आत्मग्लानि से परिपूर्ण एक सवेदनात्मक बिंब है। मनु के पश्चात्ताप के साथ-साथ उनके मानस की अस्वस्थता एव निर्बलता भी ध्वनित है। इद्रजाल से भागने में मनु की विरक्ति है पर यह विरक्ति किसी स्वस्थ चितन का परिणाम नही। वह कर्मक्षेत्र को इद्रजाल समझता है—इसमे पलायन की प्रवृत्ति स्पष्ट है। वह कर्म करने के श्रेष्ठ मार्ग को न अपनाकर कर्मक्षेत्र से ही पलायन करना चाहता है—यह भी आज के हताश अकृतार्थ व्यक्ति का यथार्थ चित्रण है। श्रद्धा को 'प्रभात की स्वर्ण किरण' कहकर कवि ने उसके उज्ज्वल प्रकाशमय व्यक्तित्व को वाणी दी है। उज्ज्वल किरण के साथ मे प्रभात का विशेषण श्रद्धा के व्यक्तित्व को एक सौम्य शीतलता भी प्रदान करता है—भला प्रकाश के समक्ष अधकार टिक भी कैसे सकता है। मनु स्वय को पापी, अपराधी समझकर श्रद्धा से दूर भाग जाना चाहते हैं। इस बिंब मे श्रद्धा व मनु के व्यक्तित्व को वैपम्य के द्वारा अधिक प्रखर बनाया गया है।

मानव को इडा को सौंपना मनु की खोज मे श्रद्धा का जाना—

विच्छेद बाह्य, था आलिगन—
वह हृदयो का, अति मधुर मिलन,
मिलते आहत होकर जलकन,
लहरो का यह परिणत जीवन।
(दर्शन सर्ग)

इस वात्सल्यपरक वियोग बिंब मे भावो की अनूठी शबलता है। एक ओर शारीरिक वियोग है तो दूसरी ओर हृदयो का सयोग। 'आलिगन वह हृदयो का' मे केवल आतरिक मिलन ही नहीं, अत करण की, मानस की अभिन्नता द्योतित है। जिस प्रकार आलिगन मे एक प्रकार के तादात्म्य

की भावना रहती है उसी प्रकार यहा पर अतःकरण की अभिन्नता प्रत्यक्ष है साथ ही वह मधुर है—उसमे एक प्रकार का आनद है। इस भाव को कवि ने दृष्टान्त अलंकार के द्वारा चाक्षुष गोचरता प्रदान की है—नदी या सरोवर मे जिस प्रकार जलकण ऊपर उछलते है, कुछ क्षणो के लिए धारा से पृथक् हो जाते है फिर तत्काल ही नीचे गिरकर उसी धारा मे एकरस हो जाते हैं उसी प्रकार यह विच्छेद केवल वाह्य था, सतही था। 'आहत' और 'परिणत' शब्दो का प्रयोग जीवन की विपम परिस्थितियो के कारण विघटित जीवन तथा उसके पुन सस्कारित हो जाने की ओर सकेत करता है।

**श्रद्धा द्वारा मनु को पाना—**

थे चमक रहे दो खुले नयन,
ज्यो शिलालग्न अनगढे रतन;
यह क्या तम मे करता सनसन ?
धारा का ही क्या यह निस्वन।
ना, गुहा लतावृत एक पास,
कोई जीवित ले रहा सांस।
(दर्शन सर्ग)

बिंब मे चाक्षुषता, ध्वन्यात्मकता तथा नीरवता है। 'शिलालग्न अनगढे रतन' मनु के नेत्रो की स्थिरता तथा शून्यता को व्यजित करता है। मानो कोई व्यक्ति निढाल होकर क्लात-श्रात भाव से निश्चेष्ट पडा हो। शारीरिक स्पदन यहा नही है। इस प्रयोग ने बिंब को एक जडता प्रदान की है। केवल श्वासो की ध्वनि ही सुनाई दे रही है। शारीरिक जडता को आगे की पक्ति ने अधिक प्रखर बनाया है—'धारा का ही क्या निस्वन' मनु का शरीर निर्जीव-सा पडा है, यही कारण है कि श्रद्धा को सास के स्वरो मे सरस्वती की धारा का नाद सुनाई पड रहा है। वातावरण का निविड अधकार भी यहा पर स्पष्ट है।

**मनु द्वारा प्रकाश पुरुष का दर्शन, जीवन में आनंद की अनुभूति, सृष्टि के उल्लसित रूप से परिचय—**

सत्ता का स्पदन चला डोल,
आवरण पटल की ग्रथि खोल
..........................
वह रजत गौर उज्ज्वल जीवन
आलोक पुरुष ! मगल चेतन।
केवल प्रकाश का था कलोल
मधुर किरनो की थी लहर लोल।
........ .......... . ....
उस शक्ति शरीरी का प्रकाश,
सब शाप पाप का कर विनाश
नर्तन मे निरत प्रकृति गलकर,
उस काति सिंधु मे घुल मिलकर,
अपना स्वरूप धरती सुदर
कमनीय बना था भीषणतर,

हीरक गिरि पर विद्युत विलास
उल्लसित महा हिम धवल हास।
(दर्शन सर्ग)

शिव ताडव के पौराणिक प्रतीक द्वारा इस बिंब मे प्रकाश, मगल, चैतन्य, आनद की एकसाथ नियोजना की है। श्रद्धा के स्नेह सबल से मनु अपने चारो ओर फैले अधकार के भीतर से सत्य के प्रकाश का अनुभव करते है। 'सत्ता का स्पदन चला डोल'—भीतर की चेतना, सत्य की प्रतीति जो दब गयी थी, धूमिल हो गयी थी, पुन स्पदित हो उठी। 'आवरण पटल की ग्रथि खोल'—असत्य का आवरण, मिथ्या चिंतन की परतें सब को चीरकर सत्य मानो उद्भासित हो गया है। इस प्रकार अचानक ही श्रेयस्कर जीवन-दृष्टि की प्राप्ति से बिंब मे अलौकिक व असाधारणत्व का समावेश हो गया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी शुद्ध अह का सस्कार इस प्रकार पल भर मे नही हो सकता। प्रतीक की दृष्टि से देखें तो यह ठीक जान पडता है कि मनु ने जीवन के सत्य को अपने ही जीवनानुभव से प्राप्त किया। चित्र मे रूप है, रग है, प्रभाव है, मगल है, आनद है, उल्लास है, गति है, ध्वनि है। अगली पक्तियो मे अपने भीतर अनत शक्तियो का बोध, अपने सच्चे स्वरूप का परिचय, समत्व की स्थिति, सत् चित् रमणीय का प्रकाश व्यजित है। 'शक्ति शरीरी' मे शिव के अनत शक्तिशाली स्वरूप के व्याज से मनुष्य की आतरिक शक्तियो को भी स्पष्ट किया गया है। 'नर्तन मे निरत' चारो ओर आनद-उल्लास की भूमिका है जो ठीक है क्योकि सत्य का उदय एक इसी प्रकार की अनुभूति है—दिव्य, अलौकिक एव आनदपूर्ण। 'कमनीय बना था भीषणतर'—विरोधाभास के द्वारा यही प्रतिपादित किया गया है कि सत्य के प्रकाश मे भीषण भी रमणीय बन जाता है।

**जीवन-रहस्यो से मनु का परिचय —**

मनु के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना और कामायनी की कथा-सृष्टि का अतिम अग है—नायक मनु का सश्लिष्ट व्यक्तित्व प्राप्त करना। इच्छा, क्रिया, ज्ञान—तीन मानवीय वृत्तियो का विश्लिष्ट रूप ही सब सघर्षो, अशातियो का कारण है। इनका जब उचित सामजस्य जीवन मे हो जाता है तब मनुष्य किसी भी उलझन मे नही फसता। प्रसाद ने इन तीनो वृत्तियो का पृथक्-पृथक् अस्तित्व दिखाकर उनका समन्वय श्रद्धा की मुस्कान, जीवन की श्रद्धावृत्ति से, आत्मनिष्ठा से कराया है। इन वृत्तियो को अलग-अलग सृष्टि के रूप मे प्रसाद ने बिंबो द्वारा चित्रित किया है—

**भाव लोक—**

भावचक्र यह चला रही है
इच्छा की रथ नाभि घूमती,
नव रस भरी अराएँ अविरल
चक्रवाल को चकित चूमती।
(रहस्य सर्ग)

शैव दर्शन के रथ, नाभि और अराओ के अप्रस्तुत (यस्मिन्नृच साम यजूपि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभाविवारा) द्वारा प्रसाद ने भावलोक, हमारे भीतर की वासनाओ व इच्छाओ को सजीव किया है। यह सवेदनात्मक दृश्य बिंब है जिसमे मन की निरतर गतिशील प्रवृत्ति ने एक लयात्मकता दी है। चित्र मे सगीतात्मक स्पदन व माधुर्य है। नव रस को भावलोक मे इच्छा की अराएं बताकर कवि ने रूपक के द्वारा यह भी व्यक्त किया है कि रति, हास, शोक, उत्साह,

क्रोध आदि सभी भाव हमारे ही अंत करण की उपज हैं—केंद्र हमारा ही हृदय है। इस अंत-सृष्टि मे शब्द रूप रस का सृजन स्वाभाविक रूपेण होता रहता है। 'चकित चूमती' मे विस्मय और आनंद दोनो का भाव है। चक्रवाल को चकित होकर चूमना—बाह्य अभिव्यक्ति से विस्मित होकर आनदविभोर हो जाना। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि भीतर की वासना अपनी अभिव्यक्ति मे मनुष्य को विस्मय व उल्लास से भर देती है।

**कर्मलोक—**

मनु यह श्यामल कर्मलोक है
धुंधला कुछ कुछ अंधकार सा;
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धूमधार सा।
(रहस्य सर्ग)

यह गति बिंब है जिसमे वर्णों का भी अद्भुत मिश्रण है। मनुष्य के जीवन मे कर्म-कोलाहल को यह मूर्तित करता है। आज के इस यांत्रिक युग मे मनुष्य भी बिना जाने-समझे जिस प्रकार निरतर क्रियाशील रहता है—उसी का यह चित्र है। 'श्यामल कर्मलोक'—मे कर्म की अतिशय हलचल है। श्यामल शब्द का प्रयोग तामस घनता का सूचक है। धुधला और अधकार—मनुष्य की निरर्थक भाग-दौड करने की प्रवृत्ति है। 'सघन हो रहा अविज्ञात' मे कर्म की गहनता और उसके स्वरूप की अस्पष्टता है।

**ज्ञानलोक—**

उत्तमता इनका निजस्व है
अम्बुज वाले सर सा देखो
जीवन-मधु एकत्र कर रही
उन ममाखियो सा बस लेखो।
(रहस्य सर्ग)

सरोवर व मधुमक्खियो के अप्रस्तुत द्वारा ज्ञानी पुरुषो का चित्र खीचा है। विचार बिंब मे रग, रस व नि सगता उभरी है। उत्तमता को निजस्व कहकर यह व्यक्त किया है कि ज्ञान की उपलब्धि मे लीन मनुष्य के लिए श्रेय ही सर्वस्व है। यहा पर प्रसाद ने कोरे ज्ञान को रूपायित किया है जहा केवल बुद्धि ही बुद्धि है, हृदय का स्पर्श नही, अनुभूति नही। बिंब मे विचार-घनता होने के कारण भावोद्रेक नही आया है। सभव है ज्ञानलोक के बिंब के लिए प्रसाद को यही अभीष्ट रहा हो।

तीनो के एकागी, विश्लिष्ट स्वरूप को मूर्तित कर प्रसाद ने उनका सामजस्य श्रद्धा की मुस्कान द्वारा कराया है। मनु के व्यक्तिगत जीवन के सदर्भ में इसे सघटित व्यक्तित्व का निर्माण (Integration of Personality) कहा जा सकता है।

महा ज्योति रेखा सी
श्रद्धा की स्मिति दौडी उनमे,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमे।
(रहस्य सर्ग)

त्रिपुर दाह के पौराणिक प्रतीक को अधिक वास्तविक व मनोवैज्ञानिक बनाकर प्रसाद ने बिंबायित किया है। बुद्धि निर्णीत पूज्य गुणो के प्रति आस्था ही जीवन का प्रकाश स्तभ बन सकता है—महाज्योति कहकर कवि ने इसे ही स्पष्ट किया है। श्रद्धा के द्वारा इनका सश्लेषण कराना अधिक व्यावहारिक एव ग्राह्य है। श्रद्धा यहा अपना ही सस्कारित अहम् है।

## (झ) कैलास पर दपती का आश्रम, इडा-मानव के साथ सारस्वत जनता की तीर्थयात्रा

महाकाव्य की कथा का अतिम अश है जहा पर इडा-मानव सहित सारस्वत निवासी तीर्थयात्रा पर जाते हैं। मनु-श्रद्धा के सिद्ध रूप को देखकर जीवन को सार्थक करते हैं।

चल रही इडा भी वृष के
दूसरे पार्श्व मे नीरव,
गैरिक वसना सध्या सी
जिसके चुप थे सब कलरव।
(आनद सर्ग)

त्रिशूल एव वृष की रज्जु लेकर तेजस्वी मानव के साथ तीर्थयात्रा पर जाती साधिका इडा का यह बिंब है। नीरव शब्द मे उसके शात, मौन व गभीर व्यक्तित्व की झलक है। गैरिक वसना मे उसका साधिका का रूप उभरा है। अरुण सध्या से इडा की समानता करके योगिनी बाला का एक सजीव चित्र प्रसाद ने प्रत्यक्ष किया है। 'जिसके चुप थे सब कलरव'—नि शब्द गभीर व्यक्तित्व के साथ-साथ यह भी ध्वनित है कि इडा की सभी मनोकामनाए शमित हो गयी है।

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरगायित था
आनद अबु निधि शोभन।
(दर्शन सर्ग)

दार्शनिक बिंब की इस योजना का यद्यपि बाह्य घटना-सृष्टि से कोई प्रत्यक्ष संबध नही पर मनु की कहानी की यह चरम परिणति है—कथा की यह कार्यावस्था है। यहा सौंदर्य, चैतन्य व आनद सभी एकाकार हैं। साख्य के प्रकृति, पुरुष के भेदमय रूप को शैव दर्शन मे ऐक्य प्रदान किया गया। शैव दर्शन के इसी प्रकृति पुरुष के तादात्म्य को प्रसाद ने काव्यात्मक विच्छित्ति ही नही दी, एक चितनात्मक उत्कर्ष भी प्रदान किया है। भौतिक ज्ञान एव वैज्ञानिक उन्नति मे ही मानव चेतना के विकास की अतिम परिणति माननेवाले बुद्धिवादी मनुष्य के लिए प्रसाद का यह शाश्वत सदेश है कि बाह्य उपलब्धियो को अतिक्रांत कर आतरिक ऊर्जा व आनद की प्राप्ति जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है—'आनद अबु निधि शोभन' इसी की ओर सकेत करता है। प्रतीक के सदर्भ मे यह आतरिक पूर्णता की स्थिति है, मनोविज्ञान के शब्दो मे इसे व्यक्तित्व का रूपातरण कह सकते हैं।

'कामायनी' की कथा-सृष्टि की अतिम परिणति का एक अनोखा वैशिष्ट्य है—नायक के साथ फल की प्राप्ति सपूर्ण मानवता को होती है। सारस्वत प्रदेश के यात्री भी उसी अभेद की अनुभूति करते हैं जिसकी कि नायक को होती है। यहा नायक के साथ सपूर्ण सारस्वत

जनता को स्वरूपपोलब्धि होती है—

प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम ज्योति विमला से
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से।
(आनद सर्ग)

इस प्रकार प्रसाद ने कामायनी महाकाव्य की विरल घटनाओ को ही अपनी बिंबाधायक कल्पना के द्वारा तीनो कालो तक प्रसारित किया। यह कथा मनुष्य के गुप्तवासी जीवन से आरभ होकर भविष्य के आनदवादी स्वप्न मे समाप्त होती है। बिंबो की सर्जना मे कवि ने जीवन, प्रकृति, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान, पुराण की विशाल सामग्री का उपयोग कर रुकती हुई कथा को आगे बढाया है—उसे खडित-विशृखलित होने से बचाया है, उसकी चितन व विचार बोझिलता को दूर किया है। काव्यात्मक, सवेदनशील रमणीय बिंबो ने कामायनी की कथा को एक ओर मनोवैज्ञानिक ट्रीटाइज़ होने से बचाया है तो दूसरी ओर दार्शनिक शास्त्र होने से। इतना ही नही, एक व्यक्ति के विकास को सपूर्ण मानवता के विकास से गौरवान्वित कर साधारणीकृत कर दिया। महाकाव्यो की कथा सघटना के इतिहास मे यह एक नया प्रयोग है—अद्‌भुत उपलब्धि भी।

३

# कामायनी की चरित्र-सृष्टि और बिंब योजना

महाकाव्यो की परपरा मे 'कामायनी' अभिनव प्रयास है और सिद्धि भी नूतन प्रयोग है और निष्पत्ति भी। इसमे कथानक विरल है—पात्र और भी कम, पर सपूर्ण महाकाव्य मे विरल घटनाओ के भीतर ही ये पात्र अपनी अल्पता मे अतीत, वर्तमान एव भविष्य के व्यापक एव विस्तृत आयाम को लेकर चलते हैं।

'कामायनी' के पात्र-परिचय मे मनु, श्रद्धा और इडा प्रमुख हैं। पात्र और भी हैं पर उनकी पात्रता, उनका व्यक्तित्व महाकाव्य के कुछ शब्दो व प्रसगो तक ही सीमित है। मानव का व्यक्तित्व अर्धस्फुट है, काम अदृश्य प्रेतात्मा है, लज्जा मानस भाव का मूर्तिकरण—आत्मछाया मात्र, 'प्रजा' का एक बना-बनाया समिष्टगत व्यक्तित्व है—उसमे न वर्ग है और न विचार भेद, श्रद्धा का निरीह पशु शावक तथा धर्म का प्रतीक वृषभ, 'महिलाओ की एक भीड'[1] और 'सव'[2] केवल जड मात्र हैं।

'कामायनी' की चरित्र-सृष्टि को हम तीन वर्गों मे विवेचित कर सकते हैं .

(क) प्रधान चरित्र—मनु, श्रद्धा व इडा।

(ख) गौण चरित्र—मानव, आकुलि किलात।

(ग) अमूर्त पात्र—काम, लज्जा।

## प्रधान चरित्र

**मनु :** कथा का नायक मनु विकासमान चरित्र है, वह तथाकथित महाकाव्योचित औदात्य एव बधे-बधाये वैशिष्ट्यो से रहित है। नायक मनु के चरित्र को कवि सहज मानवीय उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष, आशा-निराशा, सफलता-विफलता आदि जीवन परिस्थितियो एव भावात्मक सवेदनाओ से सवलित कर इन सबमे ऊपर उठाता है और उसकी पात्रता को भूत, वर्तमान व भविष्य के फलक पर प्रसारित करता है। यह ठीक भी है, क्योंकि महाकाव्यो के आकर्षण का केंद्र न घटना है, न घटनाओ का घात-प्रतिघात, न परिस्थितियो का वैषम्य, न सघर्ष, न परिवेश की व्यापकता और न भावो-विचारो का चित्रण। महाकाव्यो का केंद्र तो

महासत्व व्यक्ति है, जिससे घटनाए उत्पन्न होती हैं, जो कथा के स्रष्टा, वाहक और भोक्ता हैं, जिनके अतराल से उद्भूत विचार व भाव चारो ओर फैलकर युग को आगे ढकेलते हैं।

यहा हम नायक मनु के रूपगत एव चरित्रगत वैशिष्ट्यो को बिंबो के सदर्भ मे विश्लेषित करेंगे। पहले हम रूप-चित्रण को लें—

हिमगिरि के उत्तुग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनो से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
.................. ..........

तरुण तपस्वी सा बैठा वह
साधन करता सुर-श्मशान
उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खडे
............ ..............

अवयव की दृढ मास-पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमे सचार,
चिताकातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमे ओतप्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का,
बहता भीतर मधुमय स्रोत।

(चिता सर्ग)

यह आकृति-बिंब है जो स्पष्ट सुदृढ रेखाओ से अकित है। यह एक अत्यत विराट् फलक पर महाकाव्य के नायक का ऊर्जस्वित, दुर्दम व उदात्त चित्र है। हिमालय के उत्तुग शिखर पर बैठना और सामने प्रलय का प्रवाह—इस भूमिका मे एक पुरुष का सबोधन एक दुर्दमनीय महान व्यक्तित्व का रूप है।

'भीगे नयनो' से उदास, व्यथित पर सयमित चेहरा उभरता है। आसू छलछला गये हैं पर वे आखो की सीमा मे ही हैं। 'तरुण तपस्वी' मे युवावस्था के साथ-साथ गभीर आकृति का स्वरूप है, मानो सपूर्ण देव-सृष्टि की विनाश भूमि पर तपस्या करने वाला कोई श्मशान-वासी शिव हो। देवदारु से उपमित कर प्रसाद ने मनु की लबी उन्मुक्त काया को मूर्तित किया है। बाद की पक्तियो मे मनु के शारीरिक गठन व मानसिक स्थिति का चित्र है—पौरुष से ओत-प्रोत, वीर्यवान, तेजस्वी और शक्तिशाली व्यक्ति का चित्र है जिसने अपनी संपूर्ण जाति के विनाश को देखा है, जो अकेला बच रहा है—एकाकी व उपेक्षित-सा अनुभव कर रहा है। 'उपेक्षामय यौवन' मे एक वीतरागत्व है—मनु अपने यौवन के प्रति सजग नही। मन मे एक प्रकार की वितृष्णा व उपेक्षा की भावना है। चित्र मे स्वस्थ एव हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के पुरुषार्थ के साथ उसका एकाकीपन व सूनापन स्पष्ट है। प्रकृति के सार्वभौम आधार पर एक पुरुष के रूप मे मनु की यह प्रतिष्ठा विराट कल्पना की ओर सकेत

करती है। 'पुरुष सूक्त' की पंक्तियों की उदात्तता यहां मिलती है।

> कौन तुम संसृति जलनिधि तीर
> तरंगों से फेंकी मणि एक।
> (श्रद्धा सर्ग)

यहां पर भी मनु की आकृति एवं गुणात्मक उत्कर्ष का चित्र आता है। आकृति की रेखाएं उतनी स्पष्ट व प्रखर नहीं जितनी कि पहले के बिंब में थी, फिर भी एक रूप हमारे सामने उभरता है—सागर के किनारे एकाकी ध्यानमग्न बैठे हुए मनुष्य का कांतिमय रूप। यहां मनु तरुण तपस्वी नहीं जो श्मशान में तपनिरत है, यहां वह सागर तट पर बैठा एक श्रेष्ठ व्यक्ति है जिसे प्रसाद ने मणि के रूपक द्वारा मूर्तित किया है। चित्र यह भी पूरे वातावरण में व्याप्त है पर उदात्तता यहां नहीं—पवित्रता, शुचिता एवं शीतलता है जिसे 'प्रभा की धारा' से व्यंजित किया गया है।

> मृग डाल दिया, फिर धनु को भी
> मनु बैठ गए शिथलित शरीर
> बिखरे थे सब उपकरण वहीं
> आयुध प्रत्यंचा शृंग तीर।
> (ईर्ष्या सर्ग)

आखेटप्रिय सोमपायी विलासी मनु का यह चित्र हमारे सामने उनके विपर्यस्त व अस्त-व्यस्त रूप को साक्षात्कृत करता है। यहां पर मनु का न तो एक पुरुष वाला विराट रूप है और न ही प्रभामय मणि वाला कांतिमय रूप। यहां एक थके-हारे क्लांत व्यक्ति का चेहरा आंखों के सामने घूम जाता है। दिनभर के परिश्रम के बाद एक श्रांत-उदास व्यक्ति का वापस घर आना, आते ही अपना बोझा इधर-उधर फेंक देना और निढाल होकर बैठ जाना सभी यहां नियोजित है। शिकारी मनु के इस सजीव चित्र में अंतर्द्वंद्व भी संकेतित है। वे श्रद्धा के समीप गुफा में न जाकर द्वार पर ही बैठ जाते हैं। मानव जाति एवं मानवीय सभ्यता के आदि पुरुष का यह उदास, निराश, विपर्यस्त रूप-चित्र है।

> और सामने देखा उसने निज दृढ़ कर में चषक लिये,
> मनु, वह क्रतुमय पुरुष! वही मुख संध्या की लालिमा पिये।
> मादक भाव सामने, सुंदर एक चित्र-सा कौन यहां,
> जिसे देखने को यह जीवन मर-मर कर सौ बार जिये?
> (स्वप्न सर्ग)

यज्ञ पुरुष मनु का यह प्रजापति रूप है—सारस्वत नगर का अभ्युदय करने वाले एक तेजस्वी, दृढ़, धर्मशील शासक का आकृति-चित्र है। 'दृढ़ कर में चषक लिये' एक दृढ़ हाथों की दृढ़ता के लिए आया हुआ एक सामान्य विशेषण मात्र नहीं, मनु के प्रचंड पुरुषार्थी व्यक्तित्व को व्यंजित करता है। 'मुख संध्या की लालिमा पिये' इसमें स्वस्थ, सबल, तेजस्वी रूप स्पष्ट है। संध्या की लालिमा को पीने में प्रसाद की कल्पना शक्ति का चरम स्वरूप है। स्वाभाविक गौरवर्ण की दीप्ति व्यंजित है, साथ ही 'पीने' शब्द के प्रयोग ने एक नशीली मादकता का आरोपण मनु के मुख में कर दिया है। 'एक चित्र सा सुंदर' में श्रद्धा की

मुग्धता के साथ मनु का सौंदर्य भी व्यजित है। अतिम पक्ति 'जीवन के मर-मर कर सौ बार जीने' मे भी एक नया प्रयोग है। श्रद्धा का सौ बार जीना नही—सपूर्ण जीवन की ही सार्थकता इसी मे है कि वह मनु की रूपछवि को देखने के लिए बार-बार जीये और मरे। आकृति-चित्र मे चाक्षुष गोचरता है, सध्या की अरुणाई है, रेखाए स्पष्ट व प्रखर है।

थे चमक रहे दो खुले नयन
ज्यो शिलालग्न अनगढे रतन
यह क्या तम मे करता सन सन ?
धारा का ही यह क्या निस्वन
ना, गुहा लतावृत एक पास,
कोई जीवित ले रहा साँस।

(दर्शन सर्ग)

इस बिंब मे केवल दो आखो का प्रकाश उद्भासित है। यहा मनु का दृढ अवयव नही, यज्ञपुरुष का पुरुषार्थी रूप नही, प्रजापति का उद्यमी स्वरूप नही, चित्र का केंद्र केवल स्थिर-अचचल, विषादमय आखें हैं। सामने एक चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है—एक विशाल कैनवास पर काली पृष्ठभूमि मे चमकती हुई केवल दो आखें, जो अपनी शून्यता मे ही आकर्षक हैं। खुले नयनो को 'शिला लग्न अनगढे रतन' से उपमित कर प्रसाद ने मनु की शारीरिक जडता और आखो की ज्योति को एकसाथ मूर्तित किया है। बिंब मे तीव्र चाक्षुषता है।

मनु बैठे ध्यान निरत थे
उस निर्मल मानस तट मे
सुमनो की अजलि भर कर
श्रद्धा थी खडी निकट मे।

(आनद सर्ग)

'एक पुरुष' का यह ध्यानस्थ चित्र है। मानसरोवर के प्रशात, स्वच्छ, पवित्र तट पर ध्यान करते हुए एक योगी का चित्र प्रत्यक्ष है। श्रद्धा का निकट खडे होना चित्र को पूर्णता प्रदान करता है—मानो साक्षात् शिव और शक्ति मूर्त हैं।

'कामायनी' मे नायक मनु की चारित्रिक विशेषताओ को भी प्रसाद ने बिंबो के माध्यम से उभारा है। मनु एक विकासमान चरित्र होने के नाते और आदिम तथा आधुनिक मानव का प्रतीक होने के नाते उसके चरित्र मे अहकार, स्वार्थ, इद्रिय लिप्सा, भोग-विलास, अनुशासनहीनता, अस्थिरता आदि अनगढ मानव चेतना की हीनतर प्रवृत्तियो का समावेश है, जिन्हे प्रसाद ने बिंबो के माध्यम से प्रकट किया है। सबसे पहले मनु देव जाति के ध्वंसावशेष के रूप मे अनास्थावादी, निराश, हतवीर्य पुरुष के रूप मे बिंबित हैं—

अरे अमरता के चमकीले
पुतलो! तेरे वे जयनाद,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि
बन कर मानो दीन विषाद।

(चिंता सर्ग)

एक व्यापक वितृष्णा एव तुच्छता का भाव इसबिंब मे रूपायित है। मनु देव जाति के

जयनाद की एक क्षीण प्रतिध्वनि के रूप मे जीवित है। पहली पक्ति में 'अमरता के चमकीले पुतलो।' सबोधन में मनु के मन की सारी व्यथा घनीभूत है। जयनाद का प्रतिध्वनि बन-कर कापना उसके किसी भी पल समाप्त हो जाने की व्यजना है। 'दीन विषाद' मे एक चित्र सामने आता है जिसमे कोई दु खी, दरिद्र प्राणी थर-थर काप रहा है और किसी भी क्षण गिर-कर समाप्त हो सकता है। यह चाक्षुष बिंब ध्वनि की गूज से मुखरित है। जयनाद का दीन विषाद की तरह लडखडाना बिंब को और भी प्रखर बनाता है।

आज अमरता का जीवित हूँ
मैं वह भीषण जर्जर दभ,
आह सर्ग के प्रथम अक का
अधम पात्र मय सा विष्कभ।

(चिंता सर्ग)

क्षोभ एव तुच्छता का एक गहन बिंब, जो मनु की मन स्थिति को एकदम प्रत्यक्ष करता है। यह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो अपना सर्वस्व खोकर जीवन को निस्सार व विफल समझता है। मनु दभ का प्रतिनिधि है, अत अपने को जर्जर दभ कहता है। दभ के जर्जर होने मे उसके मृतप्राय खोखले अस्तित्व की ध्वनि है। जर्जर के साथ 'भीषण' का प्रयोग मनु के मन की गहन व्यथा एव निविड निराशा तथा तुच्छता के बोध को व्यजित करता है। जीवन के रगमच पर उसकी कोई सजीव एव सक्रिय पात्रता नही, वह केवल सूच्य सामग्री है, एक जड साधन मात्र जो यत्र की तरह घटनाओ को सूचित करता है। 'सर्ग के प्रथम अक का विष्कभ'—देव-सृष्टि की समाप्ति के बाद घटनाओ की सूचना देने के लिए बचा हुआ मनु। विष्कभ शब्द के प्रयोग ने बिंब को नाटक की चाक्षुषता एव नाटकीयता प्रदान की है।

एक उल्का सा जलता भ्रात,
शून्य मे फिरता हूँ असहाय।
............ ..   .. .........
क्या कहूँ, क्या हूँ, मैं उद्भ्रात ?
विवर मे नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरग
शून्यता का उजडा सा राज।
एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुंधला सा प्रतिबिम्ब
और जडता की जीवन राशि
सफलता का सकलित विलम्ब।

(श्रद्धा सर्ग)

श्रद्धा के प्रश्न के उत्तर मे यह मनु का आत्म-परिचय है जो उसकी मानसिक स्थिति को स्पष्ट रूप से मूर्तित करता है। परिचय क्या है, उदास उजडे एव विषण्ण बिंबो की एक शृखला है। घोर निराशा, गहन वेदना, भविष्य की अनिश्चितता, आत्म-ग्लानि, कुठा, अनास्था सबको मुखर करने वाले ये बिंब पृथ्वी-आकाश को अपने भीतर समेटे हैं। 'जलता

हुआ भ्रात उल्का'—निरुद्देश्य जीवन जो व्याकुलता से जल रहा है। शून्य मे असहाय फिरना—कक्षाच्युत, पथभ्रष्ट एकाकी जीवन जिसका आगे-पीछे कोई नही। 'क्या कहू'—हृदय की सारी वेदना इन दो शब्दो मे सिमट गयी है। इस विशाल व्यापक धरती मे एकाकी मनु उसी प्रकार भटक रहे हैं जिस प्रकार नील गगन के विराट विवर मे वायु की एक पतली क्षीण लहर हो। 'शून्यता का उजडा राज' मे अत.करण की नितांत शून्यता एव उसका विघटन प्रत्यक्ष है। विस्मृति का स्तूप अचेत मे ध्वस्त, जड मन स्थिति की गहन वेदना ध्वनित है। ज्योति का धुधला प्रतिबिब—केवल प्रतिबिब नही, अस्पष्ट प्रतिबिब—व्यर्थता-बोध की चरम सीमा है। न ज्योति, न उसका प्रतिबिब ही—केवल एक अस्पष्ट धुधली छाया मात्र, मानो मनु जीवित नही, एक ककाल मात्र हो। जडता की जीवन राशि—शारीरिक एव मानसिक जडता, अंतर्बाह्य शून्यता का व्यापक रूप। सफलता का सकलित विलब—सुदूर भविष्य मे भी सफलता मानो केवल मृगतृष्णा है। 'सकलित विलब' मे अच्छी व्यजना है, मानो देर को ही इकट्ठा कर दिया गया हो। ये शब्द केवल आकाश, पृथ्वी, वायु, जल से सकलित ही नही किये गये हैं अपितु मनु के विघटित चरित्र की पूरी कथा कहते हैं जिसे निरुपाय, भ्रात, जलता, उजडा, असहाय, हतभाग्य आदि शब्दो ने अधिक गहरा और विषण्ण बनाया है। बिंबो मे एक ऐसा व्यक्ति प्रत्यक्ष है जो शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सभी स्तरो पर टूट चुका है—A total break down इन बिंबो मे चाक्षुष गोचरता है, गति है, ध्वनि है, रग है, विषाद है, अवसाद है, ग्लानि है, वितृष्णा है, पलायन है, कुठा है, अनास्था है और जीवन के प्रति एक पूर्ण विराग की स्थिति है।

मनु देव सृष्टि का ध्वस है, उसे देवताओ के विलास के प्रति क्षोभ है, स्वय अपने कर्मों के प्रति ग्लानि है। आत्म-ग्लानि और पश्चात्ताप के बिंब 'कामायनी' के कई सर्गों मे मिलते हैं। मनु एक यथार्थ मानव के रूप मे चित्रित है जो गलती करता है, भयकर अपराध करता है फिर चेतना आने पर पश्चात्ताप भी करता है, आत्म-भर्त्सना भी करता है। कुछ चित्र प्रस्तुत है—

सुख, केवल सुख का वह संग्रह केंद्रीभूत हुआ इतना,
छायापथ मे नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।
(चिंता सर्ग)

देव-सृष्टि के आनद-विलास की अतिशयता और उसकी स्मृति आज मनु के लिए ग्लानि के अतिरिक्त कुछ भी नही। 'सुख का सग्रह'—सुख के उपादानो का सग्रह नही, सुख का ही सग्रह, मानो वही एकमात्र जीवन था। प्रसाद ने इसे आकाशगगा के चाक्षुष बिंब द्वारा प्रेषित किया है। जिस प्रकार आकाशगगा मे असख्य तारे मिलकर धूमिल हो जाते है उसी प्रकार सुख की अतिशयता मे स्वरूप अस्पष्ट हो गया था—अनुभूति ही समाप्त हो गयी थी। देव सृष्टि के यात्रिक भोगो के कारण ही 'कडी आपदाओ की वृष्टि' हुई। बिंब मे छायापथ की धूमिलता के बाद भी चाक्षुपता एव दृश्यता है।

अपनी ज्वाला से कर प्रकाश
जब छोड चला आया सुदर आरभिक जीवन का निवास
.. . ... ....... . ............... .. . . ..
पागल मैं किस पर सदय रहा ? क्या मैंने ममता ली न तोड
..... ... .. ... ..................... ...........

लू सा झुलसाता दौड रहा कब मुझसे कोई फूल खिला ।
(इडा सर्ग)

श्रद्धा-परित्याग के बाद वन, गुहा, कुज, मरु अचल मे भटकते मनु का पश्चात्ताप का स्वर वातावरण को ध्वनित किये हुए है । बिंब यहा काव्यात्मक सौष्ठव नही पा सका, केवल कुछ शब्दो मे प्रखरता आयी है । 'ज्वाला से प्रकाश करना'—वासना की ज्वाला को ही जीवन का प्रकाश-स्तभ समझना । 'लू सा झुलसाता'—जिसका भी स्पर्श हो जाय वही तप्त हो जाय । एक ऐसा व्यक्ति जो केवल दु ख ही बाटता फिरता हो ।

उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशात
इस 'नियति' नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता मे प्रतिपद असफलता अधिक कुलाँच रही
पावस रजनी मे जुगनू गण को दौड पकडता मैं निराश
उन ज्योति-कणो का कर विनाश ।
(इडा सर्ग)

एक निर्वासित, अज्ञात, असफल भाग्यवादी व्यक्ति का चित्र जिस पर दुष्कृत्यो की काली छाया पडी है । पर्वत की ऊची-ऊची स्वतत्र मुक्त चोटिया व्यग्य करती हुई हस रही है—मानवीकरण के द्वारा मनु के लाछित किये जाने को स्पष्ट किया गया है । मनु स्वय श्रद्धा को छोड आये हैं, अत निर्वासित शब्द मे आत्म-निर्वासन की व्यजना है । मनु के रोने और शिखरो के हसने के वैपम्य ने स्थिति को अधिक दयनीय बनाया है । 'इस नियति नटी'—भाग्यवादी मनु का यह चिंतन जीवन के उज्ज्वल पक्षो मे अपनी आस्था खो बैठा है । 'भीषण अभिनय की छाया' मे भविष्य के प्रति आस्थाहीन मनु का स्वरूप है । 'शून्यता को खोखली' कहकर उसके अति भीषण रूप को स्पष्ट किया गया है । 'असफलता का कुलाच लगाना'—मानो विशाल वन मे मृग आनद उल्लास से कूद रहा है । मनु का जीवन इसी प्रकार एक व्यापक शून्य स्थान है जहा पर असफलता प्रसन्न होकर नृत्य कर रही है । अतिम पक्ति मे आत्म-ग्लानि का रूप अधिक स्पष्ट है । सच्चे सुख को त्यागकर सतही बातो मे आत्म-छलना करना । 'ज्योति-कणो का कर विनाश'—अपने ही हाथो अपने सुख का, अपनी शाति का गला घोंट देना । मनु की भाग्यवादी, निराश, आत्मग्लानीपरक मनोवृत्ति के चित्रण मे प्रसाद ने पर्वत-शिखरो, पावस रजनी, जुगनू आदि के प्रतीको को जुटाया है और एक ध्वनि, गीत, प्रकाश सवलित चाक्षुप बिंब की सर्जना की है ।

मेरा सब कुछ क्रोध मोह के
उपादान से गठित हुआ,
ऐसा ही अनुभव होता है
किरनो ने अब तक न छुआ ।
(निर्वेद सर्ग)

मनु को यह प्रतीत हो रहा है कि उसमे केवल तामसी वृत्तिया प्रवल रही हैं । 'क्रोध मोह के उपादान से गठित'—यह पश्चात्ताप की चरम सीमा है और 'किरनो ने अब तक न छुआ' उसे अधिक सवेदनीय बना रहा है । 'किरन' के प्रयोग से प्रेम, उदारता, दया आदि सात्त्विक

भावो को स्पष्ट किया गया है। बिंब विचार-प्रधान होने के कारण काव्यात्मकता क्षरित है।

हाँ भावचक्र मे पिस पिसकर,
चलता ही आया हूँ बढ कर,
इनके विकार सा ही बनकर,
मैं शून्य बना सत्ता खोकर,
लघुता मत देखो, वक्ष चीर,
जिस मे अनुशय बन घुसा तीर।

(दर्शन सर्ग)

लघुता-बोध का यह बिंब मनु की आत्म-ग्लानि को मुखर कर रहा है। यह एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो हृदय-प्रधान भोग वृत्ति के वशीभूत होकर जीवन मे अनेकानेक दुःख उठाता है। 'भावचक्र मे पिस पिस कर' अर्थात् भावो के सकल्प-विकल्पात्मक दुश्चक्र मे जीवन को नष्ट कर देना और अंत मे विकार से ग्रस्त होकर स्वहीन हो जाना। 'इनके विकार सा ही बनकर' एक अनूठी व्यजना है, जिस प्रकार हृदय मे स्थायी भाव के साथ-साथ अनेक छोटी-छोटी भावनाओ का सचार पल-भर के लिए होता है उसी प्रकार मैं भी भोग-विलास एव स्वार्थ-केंद्रित मनोभाव के समस्त विकारो से ग्रसित आज अपनी ही सत्ता खो बैठा हू। 'लघुता मत देखो वक्ष चीर' मे भीतर ही भीतर अपने आपको क्षुद्र-तुच्छ समझने की व्यजना है। अतिम पक्ति मे घायल व्यक्ति का आहत स्वर ध्वनित है जिसके हृदय मे एक नुकीला जहरीला तीर चुभ गया हो।

नायक मनु 'कामायनी' महाकाव्य का सबसे यथार्थ चरित्र है और मानवीय दुर्बलताओ का उसमे स्वाभाविक रूप मिलता है। कही-कही तो वह चारित्रिक दुर्बलताओ एव अबाध विलास से ग्रस्त एक कमजोर चरित्र के रूप मे आता है—विलासिता, आत्ममोह, ममत्व, स्वार्थपरायणता, अहभावना, आसक्ति, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता, ईर्ष्याग्रस्त, दभी, सोमपायी, आखेटप्रियता, निर्ममता आदि अनेक निम्नगामी प्रवृत्तिया उसके चरित्र मे मिलती हैं। प्रसाद ने इन सभी वैशिष्ट्यो को बिंबो के द्वारा काव्यात्मक स्तर प्रदान किया है—

**ईर्ष्यालु मनु—**

अरी नीच कृतघ्नते! पिच्छल शिला सलग्न,
मलिन काई सी करेगी हृदय कितने भग्न ?
हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध
दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध !

(वासना सर्ग)

वासना-दृप्त ईर्ष्यालु मनु का यह चित्र है जिसमे भोगलिप्सा एव स्वार्थ केंद्रित अहकार को मूर्त किया गया है। पुरुष के मन का भयकर, विक्षुब्ध, दर्शित रूप यहा प्रत्यक्ष है। 'अरी नीच कृतघ्नते!'—इस सबोधन मे ही श्रद्धा और पशु के प्रति तीव्र घृणा व आक्रोश की व्यंजना है। श्रद्धा मानो यहा पर मानवी नही साकार कृतघ्नता है जो अपने स्वरूप मे नीच होती है। 'मलिन काई' मे उसके हृदय की कलुषता का बोध होता है। 'दस्यु' मे हृदय के प्रचड रोष तथा ऐकातिक अधिकार का तीव्र आवेग है। कामोद्दीप्त 'मैं' का भयकर विस्फोट चित्र मे भयानक ध्वनि के साथ मूर्त है।

यह द्वैत, अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बाँटने का प्रकार !
भिक्षुक मैं ? ना, यह कभी नही
मैं लौटा लूंगा निज विचार।
(ईर्ष्या सर्ग)

मनु की ईर्ष्यालु वृत्ति का यह दूसरा बिंब है जहा वह भावी सतान को ही अपना स्पर्द्धी समझता है। 'द्वैत और द्विविधा' मे श्रद्धा के प्रेम मे कमी हो जाने की व्यजना है। ईर्ष्यालु मनु के स्वर मे दोषारोपण की वृत्ति है जिसकी व्यजना 'है प्रेम बाटने का प्रकार' कहकर प्रसाद ने की है। यहा पर बिंब अच्छा नही बन पडा है—केवल ईर्ष्या का बोध भर होता है।

वासना-दृप्त मनु—

तप से सयम का सचित बल
तृषित और व्याकुल था आज,
अट्टहास कर उठा रिक्त का
वह अधीरतम, सूना राज।
(आशा सर्ग)

प्रकृति के रमणीय उल्लसित फलक पर, यज्ञ और तप की शक्ति से संपन्न मनु का यह बिंब वासना के उद्रेक एव साहचर्य की कामना को रूपायित करता है। 'बल के तृषित और व्याकुल' होने मे प्रसाद का काव्य कौशल प्रत्यक्ष है। मनु तृषित नही—सचित बल तृषित है—वीर्यवान पुरुष की कामातुर वृत्ति रूपायित है। शून्य के अधीरतम राज्य का अट्टहास करना—आतरिक शून्यता के हाहाकार एव तडप को मूर्तित करता है। रिक्त का सूना राज्य—सूनेपन की चरम व्यजना है। चित्र मे चाक्षुपता है, आकार है, ध्वनि है और उद्दाम वेग है।

धमनियो मे वेदना सा रक्त का सचार
हृदय मे है कांपती धडकन लिये लघु भार !
चेतना रगीन ज्वाला परिधि मे सानद,
मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छद !
... ................ ...... .. ... ..
छूटती चिनगारिया उत्तेजना उद्भ्रात
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशात।
वातचक्र समान कुछ था बांधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय मे था लेश,
(वासना सर्ग)

धमनियो मे रक्त का सचार वेदना की तरह होना—वासना की अतिशयता मे रक्त-प्रवाह का तीव्र होना और साथ ही मन की व्याकुलता, मिलन की तडप एकसाथ व्यग्य है। यह ज्वाला रगीन है, मादक है, उन्मत्त करने वाली है जिसमे मनु की सपूर्ण चेतना डूब रही है—वासना के उद्रेक मे तीव्र आवेग एव मादक आनद दोनों ही रूपायित हैं। यह ऐसी दिव्य

अनुभूति है जिसमे सपूर्ण अस्तित्व ही झकृत हो उठता है—चेतना मानो आनद के अतिरेक मे कुछ गुनगुना रही है। बाद की पक्तियो मे मनु की सपूर्ण चेतना पर वासना के प्रभाव का चित्र है, एक-एक शब्द एक-एक अनुभावो को बिंबित करता है। अतिम पक्ति मे मिलन के लिए अधीर मनु का चित्र है जो सयम का बाध तोडने के लिए छटपटा रहा है। बिंब मे प्रसाद ने जिन शब्दो को सजोया है वे वासना-अभिभूत मनु के अंत करण की एक-एक ध्वनि को प्रत्यक्ष करते हैं।

**आखेटप्रिय सोमपायी मनु—**

कर्म सूत्र संकेत सदृश थी
सोमलता तब मनु को,
चढ़ी शिंजिनी सी, खींचा फिर
उसने जीवन धनु को।
......................
ललक रही थी ललित लालसा
सोम-पान की प्यासी
जीवन के उस दीन विभव मे
जैसी बनी उदासी।
(कर्म सर्ग)

यहां प्रसाद ने साग रूपक के द्वारा मनु के जीवन-क्रम को बिंबित किया है। सोमलता ही मानो मनु के लिए कर्म प्रेरणा बन गयी थी। मनु का जीवन ही यहा धनुष है, सोम की लता उसकी प्रत्यचा और मनु स्वय तीर की तरह द्रुत गति से जीवन-क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं। यहां धनुष एव सोमलता के द्वारा सोमपान एव मृगया को भी स्पष्ट किया गया है। बाद के बिंब मे देवताओ की सुरापान की मूल प्रवृत्ति का उदय है जो 'ललित लालसा' अर्थात् मोहक इच्छा के रूप मे चित्रित है। 'दीन विभव' मे इच्छा पूर्ण न होने की व्यथा है। बिंब मे सरल शब्दो मे प्रसाद ने मनु की देव-प्रवृत्तियो को रूपायित किया है।

**अहवाद एवं एकाधिकार की भावना से ग्रस्त मनु—**

विश्व मे जो सरल सुदर हो विभूति महान,
सभी मेरी हैं, सभी करती रहें प्रतिदान।
यही तो, मैं ज्वलित वाडव वह्नि नित्य अशात,
सिंधु लहरो सा करें शीतल मुझे सब शात।
(वासना सर्ग)

'सभी मेरी हैं'—अधिकार एव स्वार्थ-तृप्ति का वह सर्वग्रासी रूप जो अपने ससार की समस्त सुदरता को केवल भोग्य समझता है। अतिम पक्ति मे वाडव ज्वाला के पौराणिक प्रतीक द्वारा प्रसाद ने भोग के चिर अशात, चिर अतृप्त रूप एव मानस की व्याकुलता को वाणी दी है। बिंब मे वाडव ज्वाला की भयंकर प्रचडता को लहरो द्वारा शमित किये जाने के प्रयास ने अद्भुत गति प्रदान की है।

काली आंखो की तारा मे
मैं देखूं अपना चित्र धन्य,
मेरा मानस का मुकुर रहे
प्रतिबिंबित तुमसे ही अनन्य।
(ईर्ष्या सर्ग)

'काली आखो की तारा मे'—यह श्रद्धा की आखो का सौंदर्य-निरूपण नही प्रत्युत मनु के मानम का चित्र है जो केवल अपना ही रूप, अपना ही अधिकार उसमे देखना चाहता है। श्रद्धा की आखें मनु के लिए केवल कामातुर नारी की आखो के रूप मे ही महत्त्व रखती हैं—दया, स्नेह, ममता, करुणा आदि भावो का मनु के लिए कोई स्थान नही। इस प्रकार श्रद्धा के मन मे भी, उसके हृदय पर भी वे अपना एकाधिकार चाहते हैं—वहा अपनी ही भावी सतान को भी जगह नही। मुकुर एव प्रतिबिंब ने इसे चाक्षुषता प्रदान की है, साथ ही श्रद्धा की विशाल, निर्मल आखो ने एक आभा।

मैं तो अबाध गति मरुत सदृश, हूँ चाह रहा अपने मन की
..... ... . . . .. . .... ... .
जो चूम चला जाता अगजग प्रतिपग मे कपन की तरग
(इडा सर्ग)

वायु के अप्रस्तुत द्वारा प्रसाद ने मनु की जीवन-दृष्टि को रूपायित किया है। 'अबाध गति मरुत सदृश' मे हवा की तीव्र गति नही तूफान का वेग है जो मार्ग मे सबको समेटता हुआ चलता है। 'चाह रहा अपने मन की'— व्यवस्था, नियम, नैतिक आदर्श का भी अंकुश स्वीकार नही। 'अग जग को चूमने मे'—सभी उपादानो को अपनी ही तुष्टि के लिए समझना व्यजित है। 'प्रति पग मे कपन की तरग' जीवन के प्रत्येक कार्य मे, प्रत्येक क्षेत्र मे, हर पल मे एक गति, एक हलचल का सकेत है। बिंब मे मनु की भोगशील, स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति स्पष्ट है। यह एक गति-बिंब है—इसमे चाक्षुषता कम तथा हलचल अधिक है।

क्रदन का निज अलग एक आकाश बना लूं,
उस रोदन में अट्टहास हो तुम को पा लूं।
(सघर्ष सर्ग)

दु खी जीवन के स्वतत्र लोक मे इडा को अट्टहास के रूप मे पाने की अधीरता, मनु के व्यक्तिपरक स्वतत्र व्यक्तित्व को बिंबित करती है। 'क्रदन का आकाश' बिंब में विराटता है। मनु सपूर्ण सृष्टि को अपने लिए ही समर्पित चाहते हैं और उस शून्य को, उस अभाव को इडा के साहचर्य से भर देना चाहते है। 'अट्टहास' शब्द के प्रयोग मे प्रेम व ममत्व का माधुर्य नही, हृदय के आकुल, आकुर अधिकार की विकराल गूज है। ध्वनि-बिंब को आकाश की व्यापकता ने विराट बनाया है और अट्टहास ने एक तीखी प्रतिध्वनि से पूरित किया है।

अत्याचारी शासक मनु—

मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम मे,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम मे।
. . . . .. .. .. ..
रक्तोन्मद मनु का न हाथ अब भी रुकता था,

प्रजा पक्ष का भी न किन्तु साहस झुकता था।
(संघर्ष सर्ग)

इडा बलात्कार जैसे गुरुतम अपराध के बाद अपनी ही प्रजा से भीषण युद्ध करने वाले अत्याचारी शासक का यह रूप मनु के सबसे निर्बल पक्ष को बिंबित करता है। अलात-चक्र सा घूमना और रक्तिम उन्माद का नाचना—निर्मम, निरकुश हत्यारे का चित्र प्रत्यक्ष करते हैं, मानो किसी पर एक खूनी पागलपन सवार हो गया है और वह अकारण हत्या पर तुला है। इसी प्रकार की व्यजना रक्तोन्मद हाथ के न रुकने मे है। सीधे सरल शब्दो मे एक भयकर दृश्य की बिंब नियोजना है जिसमे मृत्यु की प्रचड गति भी है।

मनु के चरित्र का, उनकी जीवन-दृष्टि का, उसके यथार्थ निर्बल मानव का यह रूप नायक मनु के जीवन का एक ही पक्ष है। उसका एक दूसरा पक्ष भी 'कामायनी' मे है जहा वह एक चिंतक, तपस्वी और साधक के रूप मे प्रस्तुत है। यह एक असस्कारित मानव चेतना के उज्ज्वलतम सस्कार का बिंब है—यही 'कामायनी' के नायक को एक श्रेष्ठता प्रदान करता है। मनु के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष 'कामायनी' महाकाव्य मे स्थान-स्थान पर उभरा है और अंतिम सर्गो मे तो वह पूर्णत्व प्राप्त करता है।

देव न थे हम और न ये हैं,
सब परिवर्तन के पुतले,
हाँ, कि गर्व-रथ मे तुरग सा
जितना जो चाहे जुत ले।
(आशा सर्ग)

चिंतक, जीवन तत्त्व के लिए विचारशील मनु का यह रूप है। आज उसको यह प्रतीति होती है कि देवतापन का, अमरत्व का, सर्वशक्तिमत्ता का, उनका बोध मिथ्या था। देव न तो वह सृष्टि ही थी और न ही ये प्रकृति के शक्तिचिह्न ही देव है। वह सर्वशक्ति-भाव तो और ही कोई है जो सबका सचालन करता है, सबका सूत्रधार है, सबके केंद्र मे स्थित है। हम अपने मिथ्या अहवश स्वय को कर्ता समझते हैं जबकि वस्तुतः हम परिवर्तनशील पुतलो के अतिरिक्त कुछ नही। हमारी अहं भावना को, मिथ्या प्रतीति को प्रसाद ने रथ और तुरग के अप्रस्तुत द्वारा स्पष्ट किया है—घोडा समझता है कि रथ को वही चला रहा है, पर वस्तुत सचालक तो रथाध्यक्ष होता है। घोडा तो केवल एक तुच्छ साधन मात्र है। 'निमित्त मात्र भव सव्यसाचिन्' का यह काव्यात्मक रूप है। बिंब मे विचार-गहनता होने के कारण सवेदनात्मकता अधिक एव गोचरता कम है।

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?
(आशा सर्ग)

विराट जिज्ञासा का यह बिंब चिंतक मनु को प्रत्यक्ष करता है। किस शासक के सकेत पर विश्व का सारा कार्य सपादित हो रहा है? सिर नीचा करके स्वीकार करने मे विरोध

व तर्क-वितर्क के बिना आज्ञापालन करना ध्वनित है। वह परम शासक है जिसकी कोई अवज्ञा नहीं कर सकता—उसकी आज्ञा पर प्रश्न नहीं किया जा सकता। 'मौन हो प्रवचन करना' मे विरोधाभास के द्वारा चुपचाप उसकी महत्ता स्वीकार करना—उसकी सर्वोपरिता को मानकर उसका कार्य करना ध्वनित है। उसका अस्तित्व कहाँ ?—उसके स्वरूप को समझने की, हृदय मे उसकी अनुभूति करने की व्याकुलता है। यह एक विराट, उदात्त बिंब है जिसे चिंतन की ऊर्ध्वगामिता ने शुभ्र आलोक से मंडित किया है।

मनन किया करते वे बैठे
ज्वलित अग्नि के पास वहाँ
एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड मे कर वास रहा।

(आशा सर्ग)

यज्ञ पुरुष तप-निरत मनु का यह बिंब अद्भुत है। 'एक सजीव तपस्या' से उपमित कर कवि ने उसके तप-दग्ध शरीर की व्यंजना तो की ही है, उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को भी मुखर किया है। आज मनु के लिए तपस्या ही जीवन है, यज्ञ और तप का प्रखर रूप यहा स्पष्ट है। 'पतझड मे कर रहा वास'—वातावरण की नीरवता, मानस की गंभीरता, तप का अथाह संयम एकसाथ है और साथ ही यह भी ध्वनित है कि पतझड मे कोई जीवन निवास कर रहा है जो उसे वसंत मे परिणत कर देगा। मनु अपने तप-बल से अवश्य ही इस विनाश को सृजन मे रूपांतरित कर देंगे।

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर
. .... . .... ... .. .. . . .. .. . ..... .. .
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पडा है विषम तीर ?
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर ?

(इडा सर्ग)

जीवन के मूल उद्गम, उसके लक्ष्य, उसकी परिणति के प्रति एक दार्शनिक जिज्ञासा का स्वर बिंबित है। श्रद्धा-परित्याग के बाद मनु भी इस महत् प्रश्न से टकराते हैं। यहा दर्शन काव्य बन गया है। 'गहन गुहा' मे जीवन के मूल उद्गम का अज्ञेय स्वरूप स्पष्ट है और 'अति अधीर' मे उस अज्ञात रहस्यमयता के कर्मशील गत्यात्मक जीवन-क्रम का बोध। 'झंझा प्रवाह' ने जीवन को उपमित कर कोलाहलपूर्ण, परिवर्तन एव गतिशील शक्तिशाली रूप को प्रत्यक्ष किया गया है। 'विक्षुब्ध महा समीर' उस गति को अबंड का वेग एव अशांत हलचल से संवलित कर रहा है। तीर और धनुप के अप्रस्तुत द्वारा प्रसाद उन्ही प्रश्नो को फिर बिंबित करते हैं। प्रश्न इतना रहस्यमय, जटिल, गंभीर एव गुरु है कि प्रसाद ने उसे स्पष्ट करने के लिए दो अप्रस्तुतो की योजना की। झंझा प्रवाह सा विक्षुब्ध समीर और लक्ष्य भेदने के आकुल विषम तीर—यह तीर अस्तित्व रूपी चिरंतन धनु से छूटा है, जो जीवन की अनंतता एव शाश्वतता को मूर्तित करता है। यद्यपि उस उद्गम अज्ञात है फिर भी जीवन का यह क्रम शाश्वत है—यह कोई क्षणिक घटना नहीं। बिंब मे चाक्षुपता है, तीव्र गति है, सनसन करने वाली ध्वनि है। विचार-बिंब मे ऐसी चाक्षपता प्रसाद की कवि-कल्पना का उत्कृष्ट रूप है।

ऊष्मा का अभिनव अनुभव था
ग्रह, तारा, नक्षत्र अस्त थे,
दिवा रात्रि के सधि काल मे
ये सब कोई नही व्यस्त थे।
(रहस्य सर्ग)

साधक की उच्च भूमिका है जहा काल की कल्पना समाप्त हो जाती है, रात-दिन का भेद समाप्त हो जाता है—केवल एक चेतन प्रशातता रहती है। जीवन की द्वद्वात्मक हलचल समाप्त हो जाती है—देश-काल से अपरिच्छिन्न यह भूमा की स्थिति है। इसे प्रसाद ने सध्या और ऊषा काल की प्रशातता, नीरवता, गहनता से व्यक्त किया है। जिस प्रकार दिन और रात्रि के सधिकाल मे सारा वातावरण ठहर जाता है, चाद, सूरज, तारे सभी अस्त हो जाते हैं, उसी प्रकार भावो के शमन की यह स्थिति है। 'ऊष्मा का अनुभव'—यह अत करण मे नूतन अनुभूति की ऊर्जा का रूप है। बिंब मे चाक्षुषता के साथ सधिकाल की धूमिलता एवं स्थिरता भी है। यह एक विराट बिंब है जो पृथ्वी-आकाश सबको आत्मसात् किये हुए है।

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।
(रहस्य सर्ग)

साधक की उच्चतम भूमिका है जहा वह स्वप्न, जागरण एव सुसुप्ति की सीमा को अतिक्रात कर तुरीयावस्था मे स्थित हो जाता है। इस स्थिति मे इच्छा, क्रिया, ज्ञान का विरोध समाप्त हो जाता है—तीनो सपूर्ण सामरस्य की भूमिका मे आ जाते हैं। फिर सपूर्ण आनद का उद्रेक होना स्वाभाविक है। मनु यहा यथार्थ भाव की सभी दुर्बलताओ से मुक्त एक पूर्ण सश्लिष्ट व्यक्तित्व प्राप्त करते हैं। दर्शन के शब्दो मे पाश छिन्न कर शिवत्व की प्राप्ति करते है। 'अनाहत नाद' योगियो की वह साधनावस्था है जहा आतरिक दिव्य सगीत सुनाई पडता है। बिंब मे काव्य क्षरित हुआ है।

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरंगायित था
आनद अबुनिधि शोभन।
(आनद सर्ग)

मनु यहा एक सिद्ध पुरुष है—साक्षात् शिव है जो अपनी सपूर्ण चेतना मे आनद से पुलकित है। शिव और शक्ति के रूप मे मनु और श्रद्धा की यह परिणति जीवन का दिव्य रूपातरण है जहा मनुष्य अपनी सपूर्ण सचेतन सत्ता की क्रियात्मकता मे आनदपूर्ण तादात्म्य करता है। मनु के चरित्र की यह परिणति प्रसाद के आदर्शवादी मानस का बिंब है जहा पर एक परिपूर्ण मानव की कल्पना मनु के इसी स्वरूप मे उभरी थी। पुलकित शक्ति तरगायित

एव आनद अबुनिधि और शोभन जीवन की उल्लासमय, कर्मशील, आनदपूर्ण सौंदर्यमडित कल्पना को साकार करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु के विकासमान चरित्र की समस्त विशेषताओ को—शरीरी अवस्था और यथार्थ मानव के विलासिता, आत्ममोह, ममत्व, स्वार्थपरायणता, अह भावना, आसक्ति, पलायन, विघटन, ईर्ष्या, दभ, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता, प्रतिशोध-भावना आदि वृत्तियो तथा अशरीरी अवस्था और आदर्श मानव के सस्कारित-परिष्कृत चेतन, सश्लिष्ट-सघटित व्यक्तित्व, ऊर्ध्वगामी मनोवृत्ति, आतरिक सामजस्य, दया, अपनत्व आदि विकसित वृत्तियो को प्रसाद ने बिंबो द्वारा प्रत्यक्ष एव साधारणीकृत किया है।

'कामायनी' का नायक मनु एक अद्भुत चरित्र है। महाकाव्य के क्रिया-व्यापार की दृष्टि से उसका चरित्र दुर्बल है, पर अपनी दुर्बलताओ मे भी वह विशिष्ट है। उसके चरित्र मे उदात्तता, सदाशयता तथा जीवनव्यापी आयाम नही, पर यही दुर्बल चरित्र 'कामायनी' महाकाव्य का विशिष्ट केंद्र है—आज के मनुष्य के निकट है। मनु की व्याकुलता की अनत पुकार, असफलता व निराशा के गहन चित्र विकसनशील मानव की शाश्वत वाणी को मूर्त्त करते है। बिंब-सृष्टि की दृष्टि से यह दुर्बल यथार्थ मानव अधिक प्रखर है और शिवत्व को प्राप्त आदर्श मानव न तो विश्वसनीय है, न काव्यात्मक उत्कर्ष ही उसे मिला है।

## श्रद्धा

प्रसाद की यह नारी-सृष्टि सौंदर्यभावना, मृदुलता व रमणीय कल्पना की सुकुमार प्रतिमा है। उसमे निर्मलता, दिव्यता, उत्सर्ग की भावना, प्रेरणा और स्वर्गिक सगीत की माधुरी है। प्रसाद के जीवन की सपूर्ण आस्था व निष्ठा इस नारी मूर्ति मे विग्रहवती होकर आयी है। 'कामायनी' की श्रद्धा एक पूर्ण आदर्श-विकसित पात्र है जिसके पूत पावन चरित्राकन मे प्रसाद तन्मय हो गये हैं—यह कवि-कौशल का परिणाम नही, सौंदर्य की समाधि की कविता है।[3]

प्रतीकार्थ मे यह नारी हृदय की विशुद्ध रागवृत्ति के रूप मे आयी है स्नेह, माया, ममता, अहिंसामयी, लोक कल्याण विधायिनी, मगल प्रेरिका, उत्कट उत्सर्गमयी, सर्वमगला नारी के रूप मे चित्रित है। श्रद्धा एक ऐसी शक्ति के रूप मे आयी है जो व्यक्ति को व्यष्टि एवं समष्टि दोनो स्तरो पर उत्कर्ष की प्रेरणा देती है। "लोक के लिए जहा वह अर्थ एव काम का मार्ग उपस्थित करती है वहीं व्यक्ति के परम आनद के लिए सामरस्य का अलौकिक विधान भी करती है।"[4] श्रद्धा के चरित्राकन मे प्रसाद ने उसे दिव्य गुणो से विभूपित कर अतिमानवी बना दिया है और उनके नारी रूप को, उसकी पात्रता को एक प्रकार से अविश्वसनीय बना दिया है। सपूर्ण महाकाव्य मे वह ऊची अलौकिक दिव्य भूमिका पर स्थित है जिसमे "ऋग्वेद की पवित्रता, गीता की कर्मण्यता, शैवागमो की उच्चता एकत्र नियोजित है।"[5]

'कामायनी' की नायिका की चरित्र-सृष्टि मे प्रसाद ने जिन बिंबो की सर्जना की है वे अपूर्व हैं, अभूतपूर्व है। यह बिंब-शृखला अपरूप सौंदर्य के अकन से आरभ होकर रूप के प्रभाव और श्रद्धा के उदात्त गुणो को मूर्तित करती हुई अत मे 'पूर्णकाम की प्रतिमा' मे समाप्त होती है। श्रद्धा का रूप-वर्णन एक अत्यत ऊचे धरातल की कविता है जहा एक प्रशात स्मित सौंदर्य, मुग्ध-मधुर आकर्षण श्रद्धा के उदात्त और शुभ्र आलोक से मडित है। रूप का यह सभार अनिर्वाच्य रूप-गुण सपदा से विभूपित है। ये रूप-बिंब गति, रग, सुरभि और स्पर्श की

अनुभूति से संश्लिष्ट हैं और उनके प्रभाव से स्पदित—

> और देखा वह सुदर दृश्य
> नयन का इद्रजाल अभिराम,
> कुसुम वैभव मे लता समान
> चद्रिका से लिपटा घनश्याम
> (श्रद्धा सर्ग)

श्रद्धा का काव्य मे आगमन एक स्वच्छ रमणीय वातावरण की प्रशातता मे सगीत का सचार है। प्रसाद ने इस विंव मे मुग्धा के अर्ध-विदित सौंदर्य को साक्षात् किया है। श्रद्धा को एक 'सुदर दृश्य' कहकर कवि ने उसके सौदर्य की अपरूपता को व्वनित किया है। श्रद्धा मानो विराट फलक पर मनोहर दृश्य की भाति चित्रित है। 'दृश्य' शब्द मे आकृति-वैभव अपनी अखड पूर्णता मे मूर्त है। यह आकर्षण आखो के लिए एक ललक है। जैसे सुदर दृश्य का प्रभाव एक जादू की तरह मुग्धकारी होता है उसी प्रकार श्रद्धा की रूपछवि मे मनु की आखें उलझ गयी हैं। 'कुसुम वैभव मे लता' और 'चद्रिका से लिपटा घनश्याम' श्रद्धा के गौरवर्ण, उसकी शारीरिक काति, उसकी कोमलता की व्यजना के साथ अधखुले अगो को भी अभिव्यक्ति करते है। विंव मे अद्भुत चाक्षुषता है। रगो की छटा ने एक पूरे दृश्य की नियोजना की है।

> हृदय की अनुकृति वाह्य उदार
> एक लवी काया उन्मुक्त
> मधुपवन क्रीडित ज्यो शिशु लाल,
> सुशोभित हो सौरभ सयुक्त।
> (श्रद्धा सर्ग)

इस आकृति-विंब मे कोमलागी-तन्वगी श्रद्धा का खुला उन्मुक्त व्यक्तित्व प्रत्यक्ष है। हृदय की विशालता ही मानो वाह्य सौंदर्य की मुक्तता वन गयी है—'हृदय की अनुकृति वाह्य उदार'। 'आतर लावण्य से तरलित यह रूप सभार नील परिधान के भीतर से स्फुट है। अतिम पक्तियो मे 'मधुपवन क्रीडित ज्यो शिशु साल' कहकर कवि ने उसके मधुविजडित पद-सचार को व्यक्त किया है और 'सौरभ-युक्त साल' से उसके पदमगधा नायिका रूप को प्रत्यक्ष। क्रीडित शब्द का प्रयोग उसकी लयात्मक गति के साथ यौवन के मद को भी रूपायित करता है। विंव मे चाक्षुष गोचरता के साथ रग है, गति है, ध्वनि है, सौरभ है और एक व्यापक मादक आकर्षण।

> नील परिधान वीच सुकुमार
> खुल रहा मधुर अधखुला अग,
> खिला हो ज्यो विजली का फूल
> मेघ-वन वीच गुलावी रग।
> (श्रद्धा सर्ग)

नील परिधान के वीच छिटकते हुए सौंदर्य का यह विंव है। 'खुल रहा मधुर अधखुला अग'—अधखुले अगो की शोभा अपने सपूर्ण माधुर्य के साथ विकीर्ण है। अधस्फुट अगो की काति को फूलो की सुकुमारता एव विजली के चौंधिया देने वाले तरल प्रखर प्रकाश से मडित

कर तेजोद्दीप्त किया गया है। श्रद्धा के गौर अरुण अगो की स्पर्धा न बिजली ही कर सकती है और न फूल ही—एक मे सुकुमारता नही, दूसरे मे चौधिया देने वाली काति नही अत 'बिजली का फूल'। इतना ही नही, बिजली के फूल मे तेजस्विता एव सुकुमारता एकत्र नियोजित हैं। रूप का यह चाक्षुप बिंब कोमल स्पर्श, सुकुमारता, मृदुलता, रग-दीप्ति और ज्योति से भास्वर है जिसमे दो अप्रस्तुत विधानो द्वारा वन व घन को सश्लिष्ट कर दो सौदर्यात्मक पृथक् दृश्यो को एकाकार करने मे कवि की अप्रतिम लालित्य योजना साकार है।

> और उस मुख पर वह मुसक्यान!
> रक्त किसलय पर ले विश्राम
> अरुण की एक किरण अम्लान
> अधिक अलसाई हो अभिराम।
>
> (श्रद्धा सर्ग)

श्रद्धा के कोमल अरुण अधरो के ऊपर खेलते मंद स्मित का यह बिंब है। प्रथम पक्ति मे ही उसके विलक्षण स्वरूप की व्यजना है—एक तो मुख ही 'इद्रजाल अभिराम है' और ऊपर से 'वह मुसक्यान'—मुसकान के लिए केवल 'वह' विशेषण अपने भीतर एक ऐसा माधुर्य समेटे है जिसे शब्दो मे व्यक्त करना कठिन है। बाद की पक्तियो मे इसी 'वह' को व्यक्त करने का किचित् प्रयास किया गया है। मानो अरुण कोमल पत्तो पर एक अम्लान किरण ठहर गयी हो। रक्त किसलय मे अधरो की अरुणाई, कोमलता, पल्लायन एकत्र नियोजित हैं।' अरुण की अम्लान किरण की कल्पना ने मुस्कान की कोमलता एव रसमयता को स्पष्ट किया है। एक तो अधर इतने सदर, ऊपर से मुसकान अम्लान और अरुण। उल्लास, उन्माद, आकर्पण ध्वनित स्पष्ट है। विश्राम और 'अधिक अलसाई' मे उसका सहज स्वाभाविक उल्लासपूर्ण व्यक्तित्व है। चेहरे पर एक भी रेखा कठोर व अनाकर्पक नही। मुस्कान उस का स्वाभाविक गुण है—सदा ही वह मुस्कुराती है। 'अधिक अलसाई' उसकी मुस्कान की शाश्वतता है।

> उपा की पहली लेखा कात
> माधुरी से भीगी भर मोद,
> मदभरी जैसे उठे सलज्ज
> भोर की तारक द्युति की गोद।
>
> (श्रद्धा सर्ग)

श्रद्धा की मदभरी, सलज्ज रूपछवि का यह चाक्षुप बिंब प्रात कालीन अरुणिमा से मडित है। जैसे प्रभात वेला मे नायक की गोद से कोई सलज्ज नवोढा मदभरी, रसमयी, मोदमयी होकर उठी हो उसी प्रकार श्रद्धा की मुसकान अपनी सपूर्ण मधुर-मादक रसात्मकता के साथ निरख रही है। बिंब मे प्रसाद ने एक अप्रस्तुत की अद्भुत नियोजना की है—उपा की क्षीण अरुण कातिमय प्रकाश-रेखा, जो ओस की बूदो से तरलित हो रही है और प्रात - कालीन तारो की द्युति से मदभरी सलज्ज विकीर्ण हो रही है। प्रकृति के इस बिंब ने श्रद्धा के अपरूप लावण्य को प्रत्यक्ष किया है। बिंब मे वर्ण की छटा अद्भुत है।

रूप का प्रभाव—

'कामायनी' की श्रद्धा केवल दिव्य सुदरी ही नही, वह मनु की प्रेयसी भी है जो अपनी

मादक छवि से उसे अभिभूत करती है। श्रद्धा के रूप का प्रभाव मनु के हृदय मे कई प्रकार से पड़ता है। आरभ मे वह एक आकस्मिक आकर्षण से अभिभूत है—

एक झिटका सा लगा सहर्ष
निरखने लगे लुटे से ...........
(श्रद्धा सर्ग)

सहर्ष एक झिटका लगना—हठात् किसी ने ध्यान एकदम आर्कषित किया और उससे अनिर्वचनीय आनद की तरग का उठना तथा रहस्यमय जिज्ञासा का मौन न रह सकना।

कौन हो तुम खीचते यो मुझे अपनी ओर,
................ ................ ....

ज्योत्स्ना निर्झर ठहरती ही नही यह आँख
........ ........ ................ ........

कामना की किरन का जिसमे मिला हो ओज !
(वासना सर्ग)

वासना सर्ग मे श्रद्धा का कुछ दूसरा ही रूप चित्रित है जहा वह एक मादक वासना को आमन्त्रित करनेवाली प्रेयसी है। मनु श्रद्धा के इस रूप पर मुग्ध हैं। उनका हृदय यहा तरलित-तरगित है। रूप का आकर्षण मनु को अपनी ओर हठात् ही खीच रहा है। ज्योत्स्ना-निर्झर मे श्रद्धा की काति के साथ सौंदर्य की तरलता भी है जो मनु को अपने भीतर समेट लेने के लिए बढ रही है—यह नित नूतन प्रतिपल बढते हुए सौदर्य समार का चित्र है। इसी प्रकार कामना की किरणो का ओज उसमे समाया है—उस रूप से मनु के अत करण की सपूर्ण कामना उद्दीप्त हो उठी है। श्रद्धा की काति यहा पर पहली बार मादक लगी है। प्रसाद ने श्रद्धा के रूप-चित्रण को जिस ऊचे धरातल पर प्रतिष्ठित किया था वह एकदम विशिष्ट एव अप्राप्य लगता है। वासना सर्ग मे वह एक सामान्य मानवी है जो कामना की शत-शत किरणो से बनी है। बिंब मे चाक्षुषता कम है, सवेगात्मकता अधिक।

श्रद्धा के रूप के प्रभाव का एक सुदर बिंब निर्वेद सर्ग मे भी है जहा मनु अपने अतीत को याद करते है—

स्मिति मधु राका थी, श्वासो से
पारिजात कानन खिलता,
गति मरद मथर मलयज सी
स्वर मे वेणु कहाँ मिलता ?
(निर्वेद सर्ग)

श्रद्धा की मुस्कान वसत रजनी की पूर्णिमा के समान मनु के हृदय को आनद-उल्लास एव माधुर्य से रससिक्त करती थी। उसके प्रेमोच्छ्वास से नदन कानन के पारिजात पुष्प खिल पडते थे—यह मनु के अत करण की असीम ललक व आतरिक तृप्ति की व्यजना है। इसी प्रकार श्रद्धा की मदगति को मकरदपूर्ण दक्षिण वायु कहना तथा उसकी वाणी मे वशी के मधुर सगीत का आरोप हृदय पर पडने वाले व्यापक प्रभाव को प्रत्यक्ष करता है। आनंद के अतिरेक का यह बिंब बसत के रूपक मे अधिक प्रेषणीय हो गया है। बिंब मे चाक्षुपता का, गति, स्पर्श एवं ध्वनि का सश्लिष्ट रूप है।

लज्जित श्रद्धा का चित्र—

पुरुष के नर्ममय उपचार ने रोमांचित, समर्पित श्रद्धा मूल मधुमय अनुभाव के रूप मे लज्जा से भर उठी—

> मधुर व्रीडा मिश्र चिंता साथ ले उल्लास,
> हृदय का आनंद कूजन लगा करने रास।
> गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक,
> भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
> स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
> खिला पुलक कदंब सा था भरा गद्गद बोल।
>
> (वासना सर्ग)

वासना के साथ लज्जा का उद्भव और फिर अनेकानेक भावो का एकसाथ संचार—चिंता और उल्लास की शबलता ने चित्र को एक द्वाभा से मंडित किया है। 'हृदय का आनंद कूजन लगा करने रास'—रास मे जिस प्रकार नायक कई नायिकाओ के साथ नृत्य करता है उसी प्रकार लज्जा के उदय के साथ अनेक संवेगो का मनोरम जाल-सा फैल जाता है। आगे की पंक्तियो मे मुखराग पर लज्जा के प्रभाव का चित्र है—पलको का झुकना, सिर झुकाने से नासिका के अग्रभाग का झुक जाना, आंखो का बांकपन, कपोलो का स्फीत हो जाना, पुलक का सहसा संचार और रोमांच का होना, वाणी का स्खलन, सभी यहां है। रोमांच के लिए पुलक का कदंब-सा खिलना एक अछूती उपमा है। जिस प्रकार कदंब का फूल विकसित होकर कंटको से आच्छादित हो जाता है उसी प्रकार अंतर का उल्लास रोमांच के माध्यम से अपने परिपाक की सूचना देता है। चित्र मे एक प्रखर चाक्षुषता है—एक-एक रेखा स्पष्ट एवं गहरे रंगो मे उभरी है और रास की संगीत ध्वनि ने बिंब को आनंद के कूजन से मुखरित किया है।

वासना-अभिभूत श्रद्धा—

> छूते थे मनु और कंटकित
> होती थी वह बेली
> •• •• •••• •••• •••• ••
> जलदागम मारुत से कंपित
> पल्लव सदृश हथेली
> श्रद्धा की धीरे से मनु ने
> अपने कर मे ले ली।
>
> (लज्जा सर्ग)

श्रद्धा मिलन के उद्दाम क्षणो मे भी संयमित है। वह केवल प्रेयसी या पत्नी नहीं, महाकाव्य के संपूर्ण रागतत्त्व को वहन करनेवाला आदर्श चरित्र है। यहां भी वासना के उद्रेक मे श्रद्धा का यह चित्र संयमित है—हृदय का उद्दाम उच्छ्वास यहां नहीं। प्रसाद ने केवल अनुभावो की योजना के द्वारा वासना के उद्रेक को व्यक्त किया है—कंटकित होने मे रोमांच, जलदागम मे स्वेद, कंपित मे कंप आदि अनुभावो को प्रकृति-चित्र के माध्यम मे व्यक्त किया गया है।

**गर्भवती श्रद्धा का चित्र—**

केतकी गर्भ सा पीला मुँह
आँखो मे आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नयी लजीली थी
कपित लतिका सी लिये देह।
.................... .....
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज,
कोमल काले ऊनो की नव-
पट्टिका बनाती रुचिर साज।
सोने की सिकता मे मानो
कालिदी बहती भर उसास,
स्वर्गंगा मे इदीवर की
या एक पक्ति कर रही हास।
(ईर्ष्या सर्ग)

कवि ने स्निग्ध रगो मे इस चित्र को उभारा है। शात श्लथ मधुर सौदर्य अप्रस्तुतो की चित्रोपमता से भास्वर है। 'केतकी गर्भ-सा पीला मुह' मे उपमा के द्वारा शारीरिक थकान, आलस-भरा स्नेह—शरीर की शिथिलता, साथ ही भावी शिशु के प्रति ममता, लजीली कृशता मे शरीर की दुर्बलता व गर्भावस्था नारी सुलभ सकोच के बिंब हैं। पीन पयोधरो के कोमल काले ऊन की पट्टी से बधे रुचिर रूप को कवि ने दो उत्प्रेक्षाओ के द्वारा चाक्षुष गोचरता दी है—सोने की सिकता मे कालिदी का उसास भरकर बहना, और गौर शरीर की स्वर्णिम आभा, श्यामल पट्टी और पयोधरो का उच्छ्वसित वेग एकसाथ उभरा है। दूसरे अप्रस्तुत मे—'स्वर्गंगा मे इदीवर की एक पक्ति का हास' शरीर की दिव्य आभा, इदीवर की श्यामल नीलिमा के रूप मे ऊन की पट्टी और नीलकमल के हास के रूप मे वक्षस्थल की आभा और उल्लास व्यक्त है। पहली उत्प्रेक्षा मे गर्भावस्था के शारीरिक शैथिल्य की व्यजना है तो दूसरे मे मानसिक उल्लास की। बिंब मे चाक्षुपता, रग, गति, ध्वनि, दीप्ति, शैथिल्य एकसाथ नियोजित है।

**विरहिणी श्रद्धा का चित्र—**

विरह के बिंब सयम से, कर्त्तव्य-सी और नारी की गरिमा से बधकर मौन वेदना मे डूबे हैं—उनमे प्राणो का स्पदन नही, मनु की आकुलता नही, केवल व्यथा की घुटन और पीडा का भीतर ही भीतर उमडने वाला रूप है। विरह विधुरा श्रद्धा की क्षीणता, उदासी, खिन्नता व वैवर्ण्य आदि के बिंब प्रारभ मे हैं—

कामायनी कुसुम वसुधा पर पडी न वह मकरंद रहा,
एक चित्र बस रेखाओ का अब उसमे है रग कहाँ!
वह प्रभात की हीन कला शशि किरन कहाँ चाँदनी रही?
वह सध्या थी रवि शशि तारा ये सब कोई नही जहाँ।
(स्वप्न सर्ग)

विरह मे मकरद-रहित पुष्प, रग-रहित रेखाचित्र, कला-विहीन शशि जिसकी ज्योत्स्ना अब शेष नही। रवि, शशि, तारे आदि प्रकाश-चिह्नो मे रहित सध्या 'कामायनी' की शारीरिक एव मानसिक अवस्था के द्योतक हैं। वर्णदीप्ति यहा फीकी है, उल्लास का सर्वथा अभाव है और प्रभात का शशि कहकर कवि ने श्रद्धा के आभाहीन शुष्क चेहरे की व्यजना की है। इसी प्रकार सध्या के उपमान द्वारा घोर निराशा एव नि सबलता व्यजित है। बिंब मे चाक्षुपता है पर वह भास्वरता नही।

श्रद्धा के अश्रुपूर्ण नेत्रो व ढलते हुए अश्रुबिंदुओ का एक अच्छा चित्र प्रसाद ने खीचा है—

अरुण जलज के शोण कोण थे, नवतुषार के बिंदु भरे।
मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिये बिखरे।
(स्वप्न सर्ग)

लाल कमल रूपी नेत्रो मे—लाल इसलिए कि वे विरह-जन्य जागरण से दग्ध हैं—उनके कोनो से झलकने वाले अश्रुकण मानो प्रभातकालीन तुषार के समान स्वच्छ व निर्मल हैं। ये अश्रुबिंदु गिरकर अतीत की अनेक मधुर व उल्लासपूर्ण स्मृतियो को प्रतिबिंबित कर रहे हैं। मुकुर चूर्ण की कल्पना यहा पर अच्छी है। जिस प्रकार टूटे हुए शीशे के प्रत्येक टुकडे से अनेक छविया विकीर्ण होती हैं, उसी प्रकार ढुलके हुए आसू की प्रत्येक बूद अतीत के स्मृति-चित्रो को प्रत्यक्ष कर रही है। बिंब मे एक चेहरा उभरता है—चुपचाप उदास अश्रु-पूरित व्यक्ति का। चाक्षुपता के साथ वर्ण व मुकुर के टूटने मे ध्वनि भी है।

जागृत सौंदर्य—

खुले मसृण भुजमूलो मे
वह आमत्रण था मिलता
उन्नत वक्षो मे आलिगन
सुख लहरो सा तिरता
• ..... .....
जागृत था सौंदर्य यदपि वह
सोती सी सुकुमारी
रूप चद्रिका मे उज्ज्वल थी
आज निशा सी नारी।
(कर्म सर्ग)

यह एक ऐसा बिंब है जिसमे सुदर नारी तो सोई है पर सौंदर्य जागृत है और उसका एक-एक अग अपनी छवि मे पुरुष को मिलन का आमत्रण देता है। 'खुले मसृण भुजमूलो' मे सोती हुई श्रद्धा की पूरी मुद्रा उभरी है। कोमल मुक्त हाथो को ऊपर करके सोई हुई नारी प्रत्यक्ष है। उन्नत वक्षो के उतार-चढाव मे आलिगन-सुख का तैरना—लहरो के साम्य के आधार पर तैरने की कल्पना कवि ने की है। आलिगन सुख का तैरना—आलिगन की सुखद अनुभूति मानो प्रत्यक्ष है। चद्रिका एव रात्रि के अप्रस्तुत के द्वारा कवि इस उदास नीरवता मे श्रद्धा के सौंदर्य की आभा को प्रकट करता है। रात यो स्वरूप से प्रकाशमय नही पर ज्योत्स्ना चर्चित रजनी उज्ज्वल लगती है। श्रद्धा वेदना से पूर्ण आतरिक उल्लास-रहित भले

ही हो पर उसका सौंदर्य दिव्य है। बिंब मे चाक्षुषता प्रखर है, रेखाए पुष्ट हैं एव स्पष्ट आकृति है।

**अस्त-व्यस्त श्रद्धा का चित्र—**

शिथिल शरीर वसन विश्रृखल
कबरी अधिक अधीर खुली,
छिन्न पत्र मकरंद लुटी-सी
ज्यो मुरझाई हुई कली।
(निर्वेद सर्ग)

मनु की खोज मे भटकती हुई श्रद्धा का यह चित्र है। श्रद्धा की अपूर्व रूप-राशि आज अस्त-व्यस्त है। नीले परिधान बीच खुलनेवाले अधखुले अगो की शोभा नही। शरीर का सहज उल्लास नही—मानसिक चिंता व शारीरिक थकान के कारण वह श्लथ है, परिधान अस्त-व्यस्त है, कबरी खुलकर बिखर गयी है मानो उसके अत करण की अधीरता ही बाहर आ रही है। आज 'श्रद्धा मेघबन बीच गुलाबी फूल' नही, मकरद लुटी मुरझाई कली है। बिंब मे चित्र-कला की दृश्यता है, फीका रग है, पीडा है व उजडा-टूटा वातावरण है।

रूप-वर्णन के इन बिंबो तथा रूप के व्यापक प्रभाव के चित्रो के साथ-साथ कथा-विकास मे श्रद्धा हमारे सामने अपने बहु आयामी व्यक्तित्व की समग्रता एव उदात्तता मे आती है। उसके पावन चरित्र की अपूर्वता को प्रसाद ने बहुवर्णी बिंबो द्वारा रूपायित किया है—

**वाग्मिता—**

श्रद्धा की प्रेरक वाणी वाग्मिता से ओतप्रोत होकर निराशा मे आशा का सचार करती है। उसके शब्दो मे शाश्वत सदेश है, ऊर्जा है, जागरण है—

दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात
.................... .. .....

तप नही केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।
.........................

प्रकृति के यौवन का श्रृगार
करेंगे कभी न बासी फूल।
.............. .............

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड का चेतन आनद।
(श्रद्धा सर्ग)

इन पक्तियो मे प्रेरक स्वर है, कर्म की प्रवृत्ति है, नये जीवन के आरभ का उत्साह है, पर बिंब अच्छा नही बना है। काव्यात्मकता कुछ शब्दो मे ही सिमट गयी है—'करुण यह क्षणिक दीन अवसाद'। निराशा व उदासी की यह स्थिति करुणा करने के लायक है क्योकि इसका अस्तित्व क्षणिक है। जीवन मे उल्लास व उत्साह ही मुख्य हैं। 'जड़ का चेतन

आनद'—शैव दर्शन की उपमा के द्वारा जड-चेतन सभी मे कर्म का आरोप कर उसकी गतिशीलता मे आनद की झाकी देखने की कल्पना है। यह कर्म की सर्वोपरिता का चित्र है।

काम के धर्मविरुद्ध सृजनात्मक रूप की प्रेरिका—

कर रही लीलामय आनद
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
. ... .. ........., .. .

काम मगल से मडित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम।
(श्रद्धा सर्ग)

काम ही मगल से मडित कल्याण है, यह प्रेय ही श्रेय है, और जब सारी सृष्टि सृजन के लिए तत्पर है—महाशक्ति आनदपूर्ण लीला कर उन्मीलन की प्रक्रिया मे रत है। तुम भी इस सृजन मे, विराट यज्ञ मे अपनी भूमिका का निर्वाह करो। विसवादी स्वर मत छेडो। यहा काम मनुष्य की मूलभूत सृजनेच्छा है, सेक्स का शारीरिक सबध मात्र नही। 'लीलामय आनंद' मे नृत्य की गति व सगीत की ध्वनि है।

उद्बोधन के स्वर—

डरो मत अरे अमृत सतान
अग्रसर है मगलमय वृद्धि
... .. ..... ...

उन्हे चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खडी सानद
आज से मानवता की कीर्त्ति
अनिल भू जल मे रहे न बंद।
........ ....... . ....

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप कच्छप डूबें उतरायं,
किन्तु वह खडी रहे दृढ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
(श्रद्धा सर्ग)

विजयिनी मानवता का यह चित्र है, जिसमे केवल एक भूखड के मानव की विजय नही, सपूर्ण मानवता की विजय पताका फहरा रही है। 'अमृत सतान' देवपुत्र से अधिक मनुष्य के श्रेष्ठ महत्तर कार्यों की व्यजना है। 'मगलमय वृद्धि'—ससार का कल्याणमय रूप विकास के लिए तैयार खडा है। यह एक ऐसा महान निर्माण है जिसे कोई नष्ट न कर सके। वह स्वय सब विघ्न-बाधाओ को तुच्छ समझकर उखाड फेंके। 'चिनगारी सदृश' मे बाधाओ की तुच्छता व्यजित है। 'अनिल भू जल मे रहे न बद'—पृथ्वी आकाश को एक कर दे, किसी भी प्रकार से बाधित न हो। कठिन से कठिन भौतिक विप्लव उसे नष्ट न कर सके। श्रद्धा के ये शब्द उद्दाम प्रचड ऊर्जा से ज्योतित हैं जो जीवन की समग्र जडता को भग कर नवसृजन व कर्मण्यता

का मृत्युजय सदेश देते हैं। भारतीय साहित्य का यह अप्रतिम शिखर है—केवल वैखरी वाणी का विलास नही, स्वय परावाक् मुखरित है। बिंबो मे प्रचड शक्ति, ऊर्जा, कर्मण्यता है। जलधि के फूटने, द्वीपो के डूबने-उतराने मे प्रलय का बिंब प्रत्यक्ष है।

**नारी का समर्पण—**

आद्या नारी का यह निश्छल समर्पण श्रद्धा के व्यक्तित्व का गरिमामय अश है। श्रद्धा की यह आतर विभूति मानो शाश्वत नारीत्व के हृदय का विगत विकार समर्पण है—

> समर्पण लो सेवा का सार
> सजल संसृति का यह पतवार
> आज से यह जीवन उत्सर्ग
> इसी पदतल मे विगत विकार।
> दया, माया, ममता लो आज
> मधुरिमा लो अगाध विश्वास
> हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
> तुम्हारे लिए खुला है पास।
>
> (श्रद्धा सर्ग)

यह समर्पण केवल कर्त्तव्य भावना से प्रेरित नैतिक मूल्यो पर आधारित नही—इसमे हृदय के शुद्धि राग की अरुणिमा है। एक अगाध विश्वासमय, अडिग आस्थामय प्रतिश्रुति जिसे दया, माया और ममता ने प्रगाढ बनाया है। यह समर्पण भोग के लिए नही, सेवा के लिए है, एक महत् कार्य के लिए है जिसमे सपूर्ण जीवन को निष्ठा के साथ अर्पित करना होता है। राग को, ममत्व को विशुद्ध बनाना होता है जिससे उसकी व्यक्तिगत वासनाओ का आत्यतिक परिहार हो सके।

यहा यद्यपि बिंब अच्छा नही बना पर विशुद्ध निर्मल रागवृत्ति महिमामय है।

**त्यागमयी नारी—**

> सर्वस्व समर्पण करने की
> विश्वास महातरु छाया मे,
> ......................
> छायापथ मे तारक द्युति सी
> झिलमिल करने की मधु लीला
> ...... .. . . .... ....
> इस अर्पण मे कुछ और नही
> केवल उत्सर्ग छलकता है।
>
> (लज्जा सर्ग)

बिना सकल्प-विकल्प के मौन भाव से समर्पित होने की आकाक्षा, प्रियतम को 'विश्वास महातरु' के रूप मे पाने की इच्छा और अपने व्यक्तित्व को नेपथ्य मे रखकर साथी को उत्कर्ष-मार्ग पर अग्रसर कराने की अभिलाषा यहा एकसाथ व्यजित हैं। 'छायापथ मे तारक द्युति-सी झिलमिल करने की मधुलीला'—जिस प्रकार आकाशगगा मे तारो की प्रखरता नही रहती उसी

प्रकार मनु के जीवन मे प्रकाश तो हो पर मेरी प्रधानता न हो। इसमें भी माधुर्य है। बिंब मे चाक्षुपता कम, विचारात्मकता अधिक है।

श्रद्धा रूपी नारी—

सकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने से सपने।
.... .. ..... . ... .....

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल मे
पीयूप स्रोत सी वहा करो,
जीवन के सुदर समतल मे।
... . . .. . .....

आँसू से भीगे आँचल मे
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सधिपत्र लिखना होगा।

(लज्जा सर्ग)

अश्रुजल के सकल्प से जीवन की समस्त मधुर आकाक्षाओ को दान करने वाली नारी केवल श्रद्धा है, वह स्पर्धामयी नही। विश्वास रूपी पर्वत की उपत्यका मे अमृत-धारा की भाति सब को शीतलता प्रदान करने वाली, सवका कल्याण करने वाली श्रद्धा का यह बिंब है जिसे अपना सर्वस्व समर्पित कर, अपने मधुर शात स्मित से जीवन मे सामरस्य स्थापित करना होगा, उसे विघटित होने से बचाना होगा। प्रसाद का यह चित्र मार्मिक एव सदय है। पहली चार पक्तियो मे बिंब अधिक स्फुट है, एक चित्र है—सकल्प करने के लिए हाथ मे जल और स्वर्ण लेकर खडे हुए मनुष्य का। 'सोने के सपने'—जीवन की सारी मधुर आकाक्षाए। बिंब मे चाक्षुपता के साथ तरलता है, उदात्तता है जो 'रजत नग पग तल' मे स्पष्ट है।

क्षमाशीला नारी—

नील गरल से भरा हुआ
यह चड कपाल लिये हो
इन्ही निमीलित ताराओ मे
कितनी शाति पिये हो।

(कर्म सर्ग)

विषपान करते हुए शिव के अप्रस्तुत द्वारा श्रद्धा के क्षमाशील कल्याणमय रूप को बिंबित किया गया है। चारो ओर व्याप्त दु ख और ध्वस के भीतर भी, अनत वेदना-भरे आकाश मे कोई परम शिव लोक-कल्याण के लिए चड रूपी कपाल मे कटुता के, दु ख के विप को पी रहा है। श्रद्धा को भी विपपान करना होगा—मनु के अपराधो को क्षमा करना होगा जिससे सृष्टि के विकास-क्रम मे, उसकी गति मे बाधा न पहुचे। यह बिंब अद्भुत है—विराट्, उदात्त एव गहन है। सारा वातावरण शात-गभीर है।

आगे के सर्गों मे श्रद्धा के चरित्र का विकास सर्वमगला कल्याणी एव शक्ति के रूप मे होता है। उसे दिव्यता तो मिलती है पर चित्रण मे काव्य-बिंब क्षरित हो जाते हैं—केवल दिव्य शुभ्र व श्रेयस्कर स्वर ही गूजते रहते हैं—

कुछ उन्नत थे वे शैल शिखर
फिर भी ऊँचा श्रद्धा सिर,
वह लोक अग्नि मे तप गलकर
थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर
मनु ने देखा कितना विचित्र
वह मातृ मूर्ति थी विश्व मित्र।

(दर्शन सर्ग)

इसी प्रकार—

वह कामायनी जगत की
मगल कामना अकेली,
थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित
मानस तट की नव वेली।

(आनंद सर्ग)

जो हो, 'कामायनी' महाकाव्य मे श्रद्धा की स्वरूपगत एव चरित्रगत विशेषताओ को प्रत्यक्ष कराने वाले ये बिंब जिस नारी-मूर्ति को रूपायित करते है वह अनवद्या नारी का विग्रह है। कामायनी का यह चरित्र सच ही महाकाव्य मे पीयूष स्रोत-सा प्रवाहित है—यह एक ऐसा स्रोत है जो परिस्थिति के अनुसार जीवन को सवारता है, समरस बनाता है, प्रेरणा देता है, जागरण-सगीत सुनाता है, ममत्व से भरता है, कर्मण्यता की शिक्षा देता है, शक्ति व ऊर्जा प्रदान करता है, जीवन को सयमित अनुशासित करने की तरफ अग्रसर करता है। श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि मे प्रसाद ने इन्हे बिंबो के माध्यम से रूपायित किया है। श्रद्धा के विविध रगो के ये बिंब अत मे महाकाव्य को सामरस्य प्रसूत आनद से सिक्त करते हैं। कामायनी की श्रद्धा उल्लासमय चेतना है, पूर्ण काम की प्रतिमा है जो अपनी महिमा से गौरवान्वित एव आन्तरिक प्रकाश से ज्योतिर्मय है—

वह विश्व चेतना पुलकित
थी पूर्ण काम की प्रतिमा
जैसे गभीर महाह्रद
हो भरा विमल जल महिमा।

(आनंद सर्ग)

श्रद्धा के व्यक्तित्व की चरम परिणति का यह बिंब विश्व चेतना से पुलकित-स्पदित है—यह केवल बोधात्मक चेतना नही, आनद की तरगो से स्पदित है। उसका व्यक्तित्व महाह्रद की तरह विराट-उदात्तऔर विशुद्ध रागवृत्ति से पूरित।

## इड़ा

'कामायनी' महाकाव्य का तीसरा प्रमुख पात्र सारस्वत प्रदेश की रानी इडा है जिसे विद्वानो ने बुद्धिवाद का प्रतीक माना है पर काव्य मे वह विशुद्ध प्रज्ञा के रूप मे चित्रित है। वस्तुत इडा कामायनी का सबसे दृढ, तेजस्वी एव मानवीय पात्र है। उसका व्यक्तित्व अकुठित,

सहज एव स्वाभाविक है। उसने आदर्शवाद का जामा नही पहना है, वह संयमी है पर संयम के बोझ से दबी-लदी नही। श्रद्धा के व्यक्तित्व मे जो एक प्रकार की रहस्यमय अलौकिकता एव दिव्यता है उससे इडा मुक्त है। यही कारण है कि वह एकदम अभिन्न विश्वसनीय जान पड़ती है। उसका अकुठित व्यक्तित्व अपनी उपस्थिति मे ही वातावरण की बोझिलता को दूर करता है। इडा कर्मशील नारी है। उपदेश मे उसे विश्वास नही। वह नीति, मर्यादा, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य-बुद्धि, रागवृत्ति, सहनशीलता, अनुशासनप्रियता की साक्षात् प्रतिमा है। इडा का व्यक्तित्व बहिर्मुखी, सकर्मक व्यक्तित्व है। उसमे अपूर्व बौद्धिक तेजस्विता एव दिग्विजयी आत्मविश्वास है। "इडा Desexualized नारी है जो काम को ज्ञान एव श्रम द्वारा उदात्त बनाती है। यह अतिचारी मनु और उस नारी का सामना है जो नरतर की भुजा का अवलव पाने और अधविश्वास के रजत नग के पैरो तले बहने वाली नही।"[१] इडा के रूप-चित्रण को प्रसाद ने गहरी पुष्ट रेखाओ मे उभारा है। उसके चरित्रगत वैशिष्ट्यो का भी बोध ये बिंब कराते है। कुछ बिंब देखिए—

नयन महोत्सव इडा—

उस रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुदर बाला
वह नयन महोत्सव की प्रतीक अम्लान नलिन की नवमाला
सुषमा का मडल सुस्मित सा बिखराता ससृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग।

(इडा सर्ग)

उषा के रम्य फलक पर एक नवल चित्र की तरह प्रकट इडा मनु के जीवन के सारे अधकार एव वितृष्णा को एकदम समाप्त कर देती है। 'नवल चित्र' मे नवयौवना इडा का स्फूर्तिमय प्रत्यग्र चित्र है। 'नयन महोत्सव की प्रतीक'—नेत्रो के लिए प्रखर अद्भुत आकर्षण उसके मुख पर है। महोत्सव शब्द द्वारा प्रसाद ने एक विराटता उसके तेजस्वी व्यक्तित्व को दी है। 'प्रतीक' शब्द से प्रत्यक्ष है कि इडा को देखकर एक महोत्सव के उल्लास का अनुमान लगाया जा सकता है। अम्लान नलिन और नवमाला के द्वारा उसके जागरूक सचेतन व्यक्तित्व की आभा एव वर्ण-दीप्ति से मडित किया गया है, साथ ही यह भी ध्वनित है कि उसके सपूर्ण व्यक्तित्व पर उदासी व मुरझायेपन का लेश नही। बिंब मे तीव्र आकर्षण है, रेखाए अत्यत पुष्ट व स्पष्ट हैं—चाक्षुषता प्रखर है और वर्णदीप्ति तथा मद मुस्कान ने इस बिंब को विच्छित्ति से मडित किया है।

बिखरी अलकें ज्यो तर्कजाल
वह विश्वमुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्मपलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुजरित मधुप के मुकुल सदृश वह आनन जिसमे भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे ससृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ मे कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारो के नभ को था मधुर अभय अवलब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणो मे गति की भरी ताल।

(इडा सर्ग)

इस विंब मे इडा का नखशिख-वर्णन एक अनूठी व्यजकता के साथ है। इसमे जो नारी-चित्र है वह रीतिकालीन अज्ञातयौवना लज्जारुणा नारी नही और न ही वह छायावाद की अरूप स्वर्गिक अप्सरी है—यह तो आत्मविश्वास से दीप्त उन्मुक्त प्रतिभा-सपन्न सुदर नारी का उदार चित्र है। इडा का यह रूप-वर्णन हिन्दी साहित्य मे अनूठा है। बिखरी अलको को तर्कजाल बताना केवल मूर्त के लिए अमूर्त विधान या वुद्धि प्रसूत मौलिक उपमान मात्र नही, उससे अधिक एक सत्य का उद्घाटन है। जिस प्रकार तर्क मे मनुष्य उलझ जाता है उसी प्रकार इन अलको मे एक बार उलझने के बाद निकलना सभव नही, साथ ही वालो के घुघराले होने की भी व्यजना है। वुद्धि की प्रतीक इडा के अलको को तर्कजाल बताना उचित ही है क्योकि तर्क वुद्धिप्रसूत ही तो होता है। शशिखड के साथ भाल का विश्वमुकुट के समान उज्ज्वलतम होना—इसमे ललाट की प्रशस्तता, आह्लादकता, प्रशातता एव वौद्धिक प्रखरता व्यग्य है। 'पद्म पलाश के चषक से नेत्र' मद-घूर्णित सुकुमार और विशाल नेत्रो की व्यजना है जो देखने वालो को अनुराग-विराग की मदिरा से सिक्त कर देते है। अनुराग-विराग के विरोधाभास द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि केवल उन्ही नेत्रो से अनुरक्ति और अन्य सब से विरक्ति। 'गुजरित मधुप सा आनन' मुख के अकुठित, सगीतमय, वहिर्मुख एव माधुर्य का मूर्त रूप है। वक्षस्थल पर विज्ञान एव ज्ञान की एकत्र स्थिति मे एक ओर वक्षो की घनता रूपायित है तो दूसरी ओर ज्ञान-विज्ञान का चरम विकास। इडा एक हाथ से कर्म-कलश को और दूसरे से विचारो के नभ को 'अभय अवलव' दे रही है। जीवन के कर्ममय गतिशील स्वरूप एव विचारो को निश्चित दिशा प्रदान करना एकत्र नियोजित है। हृदय और वुद्धि के पूर्ण विकसित सश्लेषण का यह चित्र है। त्रिवली का त्रिगुण तरगमयी होना केवल सौदर्याकन ही नही, सभी प्राणियो मे त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति का अनिवार्य रूपेण होना ध्वनित है। 'लिपटा अराल' मे अचल का हवा मे उडना सकेतित है। 'चरणो मे गति की भरी ताल' मे सगीतात्मकता के साथ-साथ व्यवस्थाशीलता एव अनुशासनप्रियता स्पष्ट है। यह विंब अद्भुत है। चाक्षुषता, चित्रमयता, गति, रग, ध्वनि सबका एकत्र नियोजन है।

इसी प्रकार—'आलोकमयी स्मिति चेतनता आई यह हेमवती छाया'—इस एक ही पक्ति मे प्रसाद ने स्वर्णिम काति गौरवर्ण की आलोकमयी दीप्ति आकर्षक व्यक्तित्व एव प्रखर चैतन्य वौद्धिक जागरूकता और सजगता को एकसाथ ध्वनित किया है। 'प्रतिभा प्रसन्न मुख सहज खोल' मुखमडल का प्रतिभा-सपन्न होना तथा एक उल्लसित मुक्त प्रसन्न व्यक्तित्व का चित्र है। इडा एकदम व्यावहारिक है—उसमे कही भी कोई वायवीपन नही। साफ-स्पष्ट शब्दो मे वह मनु को भौतिक उन्नति के लिए प्रेरित करती है—

**प्रेरिका इड़ा—**

> अपनी दुर्वलता-बल सम्हाल गतव्य मार्ग पर पैर धरे
> मत कर पसार निज पैरो चल, चलने की जिसको रहे झोक
> उसको कव कोई सके रोक।
> (इडा सर्ग)

विंव नही वन पाया है पर आत्मविश्वास की प्रचडता स्पष्ट है। इसी प्रकार स्वावलवी वनने

की प्रेरणा भी वह देती है—

हां तुम ही हो अपने सहाय

..........................................

तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कही विषमता या समता
तुम जडता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय।
(इडा सर्ग)

विषमता या समता स्वय अपना ही दायित्व है, जडता को चैतन्य भी अपने ही पुरुषार्थ मे किया जा सकता है। इडा का यह रूप उसके पुरुषार्थी, स्वावलबी, आत्मविश्वासपूर्ण स्वरूप को स्पष्ट करता है।

**कर्मशीला नारी—**

'वह वैश्वानर की ज्वाला सी मच वेदिका पर बैठी
सौमनस्य बिखराती शीतल, जडता का कुछ भास नही।
(स्वप्न सर्ग)

निरतर कर्मशीलता को वैश्वानर की ज्वाला से उपमित कर प्रसाद ने इस बिंब को केवल चाक्षुष गोचरता ही नही प्रदान की अपितु कर्म के दिव्य ज्योतित और अनवरत गतिशील स्वरूप को भी स्पष्ट किया है। 'वैश्वानर की ज्वाला'—अम्लान, अकुठित भाव से कार्य करना। वह केवल स्वय ही नही जलती, अपने प्रकाश से सौमनस्य भी फैलाती है—यह ज्ञान-दीप्त कर्म का स्वरूप है जिससे जीवन की जडता एव कलुषता दूर हो जाती है। यही कारण है कि प्रसाद ने इसे यज्ञ की ज्वाला से उपमित किया है। बिंब को 'मच वेदिका' और 'ज्वाला' ने एक चित्रवत् स्पष्टता प्रदान की है जिसे ज्वाला के प्रकाश ने अधिक उद्भासित किया है।

**लोकनायिका इडा—**

इडा नियम व अनुशासनप्रिय है, उसे व्यवस्था मे विश्वास है, निर्बाधित एकागी अधिकार ग्राह्य नही। अहता को दूर कर व्यक्तिगत स्वार्थों से परे वह अपनी सपूर्ण प्रजा के सामूहिक विकास के पक्ष मे है—

निर्बाधित अधिकार आज तक किसने भोगा
....... .. ..  ... . .. ..  ...... ...

व्यक्ति चेतना इसीलिए परतत्र बनी सी
रागपूर्ण पर द्वेष पक मे सतत सनी सी।
. ... ... .... . .. .  . ... ... ...

ताल ताल पर चलो नही लय छूटे जिसमे
तुम न विवादी स्वर छेडो अनजाने इसमे।
(सघर्ष सर्ग)

बिंब नही बना—केवल इडा के व्यक्तित्व की काव्यात्मक अनुभूति ही होती है।

**हृदय के संवेगों से अभिविकल इड़ा—**

इड़ा केवल व्यावहारिक बुद्धि का प्रखर पुंज मात्र नहीं और न ही बुद्धिवाद का प्रतीक ही है—उसमें दया है, ममता है, सहानुभूति है, लगाव है।

इसे दंड देने बैठी या
मैं करती रखवाली
......................

एक कल्पना है मीठी यह
इससे कुछ सुंदर होगा।

(निर्वेद सर्ग)

अपने प्रति घोर अपराध को भूलकर भी वह मुमूर्षु मनु की रखवाली करती है। हृदय की यह उदारता है—नारीत्व का चिर दयालु रूप है। अंतिम पंक्ति में 'मीठी कल्पना' के प्रयोग ने बिंब को काव्यात्मक उत्कर्ष दिया है। कुछ सुंदर होने की, मंगलमयी परिणति में उसका विश्वास है।

**तीर्थयात्रा पर आध्यात्मिक विकास के लिए अग्रसर इड़ा—**

चल रही इडा भी वृष के
दूसरे पार्श्व में नीरव
गैरिक वसना संध्या सी
जिसके चुप थे सब कलरव।

(आनंद सर्ग)

इडा का यह चित्र तीर्थयात्रा पर जाती एक नारी को उसकी संपूर्ण गंभीरता के साथ प्रत्यक्ष करता है। 'गुंजरित मधुप सा आनन' और 'गतिभरी चाल' से यह बिंब विपरीत है—इडा का एक गंभीर मौन एवं सांद्र व्यक्तित्व प्रत्यक्ष है। उसकी सारी मुखरता, बहिर्मुख सकर्मक व्यक्तित्व मौन में निमज्जित है—'चुप थे सब कलरव' यही ध्वनित करता है। सरल शब्दों में अभिव्यक्त इस बिंब में इडा के रूप की मादकता नहीं पर एक भव्यता है। बिंब में चाक्षुषता तो है ही—रंग, गति का सौम्य धूमिल स्वर भी है।

इस प्रकार कामायनी की इडा का यह चरित्र तर्कजाल और हेमवती छाया से प्रारंभ होकर गैरिक वसन तथा मौन नीरवता में समाप्त होता है। कामायनी महाकाव्य के केवल उत्तरार्ध में ही आने वाला यह नारी पात्र अपने प्रभावपूर्ण सहज मानवीय और विश्वसनीय व्यक्तित्व के कारण अद्भुत है। यह महाकाव्य का एक सशक्त पात्र तो है ही—सामान्य एवं अभिन्न भी है।

## गौण चरित्र

### मानव

कामायनी महाकाव्य में मनु, श्रद्धा एवं इडा पूर्ण व्यक्तित्व हैं—ये जलप्लावन और देव जाति के संहार से बचे हुए देव पात्र हैं। बाद में मानव के रूप में एकमात्र पात्र आता है 'मानव'—जिसे वैदिक आत्मवादी तरुण आर्यों का प्रतिनिधि माना गया।[७] मानव के चरित्र में सामान्य मानवीय आदर्शों का प्रतिफलन मिलता है, पर वह निरीह है। पात्र के रूप में उसका व्यक्तित्व नहीं उभर सका। आरंभ में वह शिशु है और अंत तक शिशु-सा ही रहता है।

प्रथम परिचय मे मानव—

लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बांहे आकर
लिपट गयी।
(स्वप्न सर्ग)

यहा बिंब नही बना—केवल परिचय मात्र। शिशु-सुलभ चचलता नही और न ही क्रीडा-रत चित्र। इसी प्रकार—'मैं रूठूंगा और मना तू कितनी अच्छी बात कही।' आदि में केवल अभिधात्मक कथन है जो बच्चे के मुह से स्वाभाविक तो लगता है, पर बिंब-सर्जना की दृष्टि से महत्त्वहीन है। इस परिचय के बाद मानव के कुछ बिंब ठीक हैं—

नव कोमल अवलब साथ में
वय किशोर उँगली पकडे
चला आ रहा मौन धैर्य सा।
अपनी माता को जकडे।
(निर्वेद सर्ग)

मानव का यह बिंब माता के साथ पिता की खोज में निकले किशोर का चित्र है। 'शिथिल शरीर वसन विशृखल'—माता के साथ कुमार मौन धैर्य-सा चला आ रहा है, मानो अपनी माता को नि शब्द आश्वासन दे रहा हो। 'नव कोमल अवलब '—अब श्रद्धा को केवल इस कोमल अनुभवहीन किशोर का ही अवलब है। 'जकडे' कहकर प्रसाद ने शिशु हृदय की आतुरता को व्यक्त किया है जो अपनी असहाय दु खिनी-विरहिणी माता की रक्षा के लिए उत्सुक है। 'मौन धैर्य' चित्र को गभीरता दे रहा है, साथ ही कुमार की मानसिक प्रौढता व्यजित है—उसमें शिशु-सुलभ चचलता नही, वयस्क की गरिमा व धैर्य है। बिंब में चाक्षुपता, गति एव गाभीर्य है।

तेजस्वी मानव—

मैं मरूँ जिऊँ पर छूटे न प्रन,
वरदान बने मेरा जीवन—
(दर्शन सर्ग)

बिंब नही बना—केवल जीवन को सवारने, लोकमगल मे लगाने, मानस को सस्कारित करने की तत्परता का बोध है।

तीर्थयात्री मानव—

आनद सर्ग में मानव का तीर्थयात्री रूप काव्य के स्तर पर बिंबित है जहा वह गैरिक वसना इडा के साथ चल रहा है—

वृप रज्जु वाम कर मे था
दक्षिण त्रिशूल से शोभित
........ ...... ......
केहरि किशोर से अभिनव
अवयव प्रस्फुटित हुए थे

यौवन गंभीर हुआ था
जिसमे कुछ भाव नए थे।
(आनद सर्ग)

यह आकृति-चित्र मानव के तेजस्वी व्यक्तित्व को उद्भासित करता है। धर्म का प्रतीक वृष है और उसका सूत्र मानव के हाथ मे। प्रसाद ने स्पष्ट किया है कि धर्म की रक्षा मानव ही कर सकता है। एक हाथ मे त्रिशूल—इस बिंब मे शिव का रूप प्रत्यक्ष हो उठता है। केहरि किशोर और अभिनव प्रस्फुटित अवयव—इसमे शौर्य की दीप्ति, तेजस्वी रूप एव शारीरिक सौंदर्य एकसाथ है। यौवन गभीर है—धर्म के रक्षक एव समरसता का प्रचार करने वाला नायक उच्छृंखल कैसे हो सकता है? यौवन का उद्दाम वेग यहा नही, एक गभीरता-गहनता है। आनदवादी तरुण आर्य का रूप है यह।

'किलात-आकुलि' आसुरी वृत्तियो का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रतीक व रूपक के लिए इनका महत्त्व है। काव्य-बिंब के सदर्भ मे इनकी पात्रता नगण्य है। वे आमिष लोलुप रसना वाले, छली व कुटिल हैं—अधिक कुछ नही। उनमे न आसुरी साहस है न आसुरी माया। जनक्राति के समय ये प्रजा का नेतृत्व भी नही कर सके। और पात्रो मे 'प्रजा' केवल एक भीड है, यात्रीदल, मगलगीत गाती हुई महिलाए, वृष आदि का नाम भर लिया जा सकता है—महाकाव्य मे उनकी कोई भूमिका नही। न वे कथा को अग्रसर कराते हैं और न ही घटनाओ को जटिल। काव्य-बिंब कोई भी उल्लेखनीय नही।

## अमूर्त पात्र

### लज्जा

'कामायनी' महाकाव्य के अमूर्त पात्र हैं—काम और लज्जा। काव्य में इनकी भूमिका केवल मानसिक भाव तक ही सीमित नही। कवि ने इनका मानवीकरण करके इन्हे सजीव पात्रता दी है जो कथा को गति प्रदान करते हैं, प्रमुख पात्रो को प्रभावित करते हैं, उनके वैशिष्ट्यो को प्रखरता एव स्पष्टता प्रदान करते हैं। इनके माध्यम से कवि ने अपनी सौंदर्यात्मक चेतना, कलात्मक रजना एव जीवन की भाव-गरिमा को व्यक्त किया है।

पहले हम लज्जा को लें। लज्जा का व्यक्तित्व व मानवीकृत रूप लज्जा सर्ग में आया है—काव्य में प्रथम बार लज्जा का इतना सर्वांगीण, सुष्ठु, मधुर, ललित, कलित रूप सामने आया है। यो लज्जा का अर्थ है, 'स्वच्छद क्रिया सकोच' और काव्य में इसका प्रादुर्भाव नारी की मुग्धावस्था में हुआ है। यह नायिका की मुग्धावस्था का प्रथम सकोच है, नारीत्व का मूल अनुभाव है। यह सचारी या स्थायी भाव नही अपितु सशरीर सवेदन है। लज्जा और श्रद्धा का सलाप एक नाटकीय भगिमा से हुआ है और कथा में एक रसात्मक अनुभूति की अवतारणा करता है। लज्जा के चित्रण में प्रसाद ने जिन बिंबो की अवतारणा की है उन्हे हम चार शीर्षको में विभाजित कर सकते है—

(क) आत्म-परिचय
(ख) स्वरूप और प्रभाव
(ग) किशोर सुदरता की रक्षिका
(घ) उत्सर्ग की प्रेरिका

**आत्म-परिचय—**

मैं देव सृष्टि की रतिरानी
निज पंचबाण से वंचित हो
बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति सी संचित हो
अवशिष्ट रह गयी अनुभव में
अपनी अतीत असफलता सी
लीला विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता सी
मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ।
(लज्जा सर्ग)

बिंब मे अपने प्रिय से बिछुडी नारी की खडित मूर्ति प्रत्यक्ष है। देव-सृष्टि में जो अनादि वासना रति के रूप में जानी गयी वही मानवी मृष्टि मे लज्जा है—'रति की प्रतिकृति' —रति नही मात्र उसकी नकल क्योकि उसका शरीर समाप्त हो गया है, वह केवल एक सवेग मात्र है। एक रेखाचित्र प्रत्यक्ष हैं देव-सृष्टि में मैं अतृप्त रही और अब उनी अतृप्ति के ढेर के समान केवल फेंक देने के योग्य रह गयी हू। मैं केवल रति विलाम के बाद की थकान व भोग के श्रम से दलित एक तुच्छ व्यक्तित्व मात्र रह गयी। 'आवर्जना एव मूर्ति-दीना' के प्रयोग ने परिचय के इन बिंबो को एक व्यथा से पूरित किया है। लज्जा को रति की प्रतिकृति कहना एक मौलिक कल्पना हैं। बिंब में एक नारी की खडित मूर्ति प्रत्यक्ष होती है।

**स्वरूप और प्रभाव—**

लज्जा अपने स्वरूप मे एक सूक्ष्म वृत्ति है जो प्रत्यक्ष को भी स्वप्न बनाती है, रहस्य-मय है और हृदय को परवश करने वाली है। लज्जा के स्वरूप और प्रभाव के अनेक सुदर बिंब कामायनी में हैं—

वैसी ही माया मे लिपटी
अधरो पर उंगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आंखो मे पानी भरे हुए।
(लज्जा सर्ग)

लज्जा रूपी नारी अपने कोमल अरुण अधरो पर उगली रखकर अपने चारो ओर मायावरण की भाति भीना परदा लपेटकर, मदन आगमन के मादक रसमय प्रभाव के समान परिवेश धारण कर आखो मे अत्यधिक सरसता भरकर आयी है। 'सरसता का पानी' मे जिस पानी शब्द का प्रयोग किया गया है उसकी रम्यता को केवल अनुभव ही किया जा सकता है। अधरो पर उगली रखने मे वर्जना की प्रक्रिया है। वासना-प्रेरित नारी के शारीरिक समर्पण पहले अतर की स्वाभाविक लज्जा वृत्ति के कारण सकोच का सचार व्यग्य है। लज्जा अमूर्त

विकार है, अतः उगली से ही वर्जित करना सटीक प्रयोग है। विंब मे एक स्पष्ट आकृति उभरी है। चाक्षुषता के साथ मुद्रा भी रेखाकित है जिसे 'आखो के पानी' ने तरलित एव कातिमय बनाया है।

किन इद्रजाल के फूलो से
लेकर सुहाग कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधुधार ढरे ?
(लज्जा सर्ग)

लज्जा का रहस्यमय रूप जो एक 'लजीली नवोढा' के रूप मे बिंबित है। जिस प्रकार कोई नववधू अपने प्रिय के लिए लजाती हुई पर माधुर्य से भीगी पुष्पमाला गूथ रही हो उसी प्रकार लज्जा ने मानो श्रद्धा के लिए सकोच की माला बनायी हो। 'इद्रजाल के फूल' अनोखी कल्पना है जिसमे लज्जा के रहस्यमय स्वरूप के साथ-साथ जादू का आकर्षण भी है। 'राग भरे सुहाग कण'—पराग-कणो को लेकर नही, ममत्वपूर्ण सुहाग-कणो को लेकर माला गूथना हृदय की रागात्मकता की चरम व्यजना है। यह एक ऐसी माला है जिससे मादक मधुर भावो की अनुभूति होती है। 'ढरे' शब्द मे अनुभूति तरलित हो गयी है। विंब मे चाक्षुषता, रग, रस, गध, स्पर्श सब हैं और साथ ही नायिका की अनूठी भगिमा भी।

तुम कौन ? हृदय की परवशता ?
सारी स्वतत्रता छीन रही,
स्वच्छद सुमन जो खिले रहे
जीवन वन से वह बीन रही !
(लज्जा सर्ग)

लज्जा के सकोचधर्मा स्वरूप का यह बिंब है जिसे परवशता का मानवीकरण कर एक मूर्त रूप दिया गया है। जीवन रूपी वन मे स्वच्छद भाव से खिलने वाले पुष्पो को क्यो बीन रही हो ? सभी स्वतत्र वृत्तियो का सकोच यहा ध्वनित है।

**लज्जा का प्रभाव अगो पर—**

सब अग मोम से बनते है
कोमलता मे बल खाती हूँ
. .... ... ... . ...
स्मित बन जाती तरल हँसी
नयनो मे भरकर बाँकपन
छूने मे हिचक, देखने मे
पलकें आँखो पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें,
अधरो तक सहसा रुकती है
........ ..... . .........
लाली बन सरल कपोलो मे

आंखो मे अंजन सा लगती
कुंचित अलको सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती
(लज्जा सर्ग)

अंगो मे सकोच, कपोलो मे ईषत् अरुणाई, कर्णमूलो का गुलाबीपन, भौंहो की वक्रता, नेत्रो की अर्धोन्मीलित तिर्यक भंगिमा, अधरो मे हसी को पीने का उपक्रम, वाणी की मद ध्वनि, पलको का झुकना, मन की सकोचशीलता—सभी एकसाथ चित्रित हैं। अंगो का मोम-सा बनना—लज्जा मे नारी का सिमट जाना ध्वनित है। कोमलता मे बल खाना—चाल की मद गति प्रत्यक्ष है। चित्र मे अनुभावो का वैभव है और नारी की विभिन्न मुद्राओ ने उसे प्रखर चाक्षुपता प्रदान की है। रेखाए पुष्ट, गहरी हैं, जिससे चित्र को मासलता मिली है।

**मन पर प्रभाव—**

किरनो का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलबन ले चढती
रस के निर्झर से धँसकर मैं
आनद शिखर के प्रति बढती।
(लज्जा सर्ग)

ऊचे पर्वत के नीचे बिखरकर बहने वाले झरने के इस अप्रस्तुत विधान के द्वारा लज्जा से अभिभूत नारी के सकोच का चित्र प्रसाद ने खीचा है। झरने के किनारे खडी हुई युवती जिस प्रकार आनद के शिखर पर पहुचना चाहती है और उसे एक रज्जु का अवलब भी मिल जाता है—ज्यो ही वह चढने का उपक्रम करती है शिखर पर एक अन्य नारी उसे खीच लेती है, ठीक उसी प्रकार समर्पण एव सभोग के चरम आनद को प्राप्त करने जब नायिका बढती है तब हठात् उसके बढते हुए कदमो को कोई रोक लेता है। लज्जा की जडता व सकोच के साथ आनद का चरम उल्लास एव वासना की सपूर्ण मादकता बिंबित है। बिंब मे एक व्यापक और गहन व्यापार रूपायित है।

**किशोर सौंदर्य की रक्षिका—**

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से सहलाती।
........ . .. ... .........
मतवाली सुदरता पग मे
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ
(लज्जा सर्ग)

किशोर सौंदर्य की रक्षिका लज्जा का यह अनूठा बिंब है। किशोरावस्था के उन्माद, वेग, वसत के हिल्लोल, शमित न होने वाली वृत्तिया, उच्छृखलता आदि सवेगो को लज्जा सन्मार्ग पर ले जाने वाली है। वह सौंदर्य की गरिमा, उसकी महिमा का स्वरूप समझती है।

अनुशासन एवं सयम का पाठ पढाती है। ठोकर को धीरे से सहलाना धात्री के ममत्व के साथ लज्जा के कोमल स्वरूप का चित्र है। अंतिम पक्तियो मे प्रसाद ने एक अद्भुत उपमा दी है—नूपुर की तरह पैरो मे लिपटना। सयमित होने की याचना व मनुहार के साथ मुग्धा नायिका की मृदु गभीर पद-सचार की लयात्मक ठुमक भी है। बिंब मे चाक्षुषता, ध्वनि, गति, लय, सगीत सब हैं।

उत्सर्ग की प्रेरिका—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल मे
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल मे
........ .... .......... ... .
आँसू से भीगे अचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सधिपत्र लिखना होगा
(लज्जा सर्ग)

जीवन को शात मधुर बनाने के लिए नारी के उत्सर्ग को यहा लज्जा ने रेखाकित किया है। नारी श्रद्धा है, स्पर्धा नही। पीयूष स्रोत-सा बहना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य है। व्यक्तिगत उमगो का, अपनी इच्छा का उत्सर्ग वैषम्य को समाप्त करने के लिए करना ही नारी की महिमा है। आसू के अचल और स्मित की रेखा के विरोधाभास द्वारा कवि ने नारी के उस दिव्य-भव्य रूप को प्रत्यक्ष किया है जहा वह बडे से बडा त्याग हसकर कर देती है। महत् प्रेरणा के इस बिंब मे विश्वास का अवलब है, जीवन का सामरस्य है, आतरिक प्रशातता है।

'कामायनी' महाकाव्य का यह अमूर्त पात्र नारी सबधी कवि प्रत्यय का जीता-जागता स्वरूप है। लज्जा का यह सजीव-सवाक् चित्र है, मॉडेस्टी या शाइनेस नही। यह सौंदर्य की सहज विदग्धता है जिसे प्रसाद की कल्पना ने मोहक, रमणीय एव रहस्यमय बनाया है। सच ही 'कामायनी' का यह चरित्र अनूठा है

## काम

'कामायनी' महाकाव्य का दूसरा अशरीरी पात्र काम है। काम का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रंथो मे कई प्रकार से किया गया है किंतु प्रसाद ने उसे एक अत्यत व्यापक, गरिमामय, भव्य भूमिका मे प्रतिष्ठित कर केवल साहित्यिक सदर्भ ही नही, एक अभिनव सास्कृतिक संदर्भ भी प्रदान किया।

'कामायनी' का यह पात्र काम-कथा को बराबर नया मोड देता है, रुकती कथा को गति देता है, एकरसता को दूर कर उसे नया स्पदन प्रदान करता है। कथा के कुछ ही प्रसगो मे आकर उसे एक अनुपम नाटकीय भगिमा से मडित करता है। 'कामायनी' महाकाव्य का प्रतिपाद्य एक प्रकार से यह काम ही है। भावो की दृष्टि से परिशोधित काम या श्रद्धा ही 'कामायनी' का प्रतिपाद्य है—यही पुरुष की उद्दाम जिजीविषा का व्यक्त रूप है, यही परम

शिव की आदि शक्ति है और इसी के मंगलमय संदेश से 'कामायनी' महाकाव्य मुखरित है। काम के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए प्रसाद ने जिन बिंबों की अवतारणा की है वे अद्भुत हैं। काम का परिचय, उसका स्वरूप, उसका प्रभाव सभी इन बिंबों में मुखर हैं—

काम का परिचय—

मैं काम रहा उनका सहचर,
उनके विनोद का साधन था,
हँसता था और हँसाता था,
उनका मैं कृतिमय जीवन था।
. .......... .... ......
हम दोनों का अस्तित्व रहा
उस आरंभिक आवर्तन-सा
जिससे संसृति का बनता है
आकार रूप के नर्तन-सा

(काम सर्ग)

देव-सृष्टि में काम एक देवता है, देवताओं का सहचर और उनके विनोद का साधन। 'कृतिमय जीवन' में जीवन के सभी कार्यों में काम की ही प्रधानता और भोग-विलास की अतिशयता ध्वनित है। 'हसता था और हसाता था' काम के आमोद-प्रमोदमय स्वरूप का रूपायन है। सृष्टि के विकास में काम और रति ही मूल प्रेरक शक्ति रहे। आरंभिक आवर्तन-सा अस्तित्व —सृष्टि के उन्मीलन में उन्हीं की प्रमुखता। 'आकार रूप के नर्तन-सा'—उस समय मेरा स्वरूप नृत्य करने वाले सृजन-अणुओं की तरह ही था। हमारे ही आकर्षण से नामरूपात्मक संसार की सृष्टि हुई। बिंब अच्छा नहीं बना है। आरंभिक आवर्तन एवं नर्तन ने इसे गति एवं चाक्षुपता प्रदान की है।

वे अमर रहे न विनोद रहा,
चेतनता रही, अनंग हुआ,
हूँ भटक रहा अस्तित्व लिये
संचित का सरल प्रसंग हुआ।
. . ... . .... . .. .
आरंभिक वात्या उद्गम में
अब प्रगति बन रहा संसृति का
मानव की शीतल छाया में
ऋण शोध करूँगा निज कृति का।

(काम सर्ग)

देव-सृष्टि के विनाश के बाद काम का शरीर समाप्त हो गया और वह एक संवेग-मात्र बन गया। कामदहन के पौराणिक प्रसंग का यहां काव्यात्मक निरूपण है—'चेतनता रही, अनंग हुआ'। मानवी सृष्टि में मैं केवल अनुभूत्यात्मक स्वरूप लिये आया। 'भटक रहा अस्तित्व लिये'—केवल सूक्ष्म संवेग के रूप में अस्तित्व का बोझा ढो रहा हूं। 'संचित का सरल प्रसंग'—पुराने संस्कारों की अभिव्यक्ति का एक सुंदर अवकाश फिर मिला। मानवी सृष्टि का विकास भी मेरे ही कारण होगा। बाद के बिंब में काम के स्वर में पश्चात्ताप एवं

सुधार दोनो का रूप है। प्रारभ का बवडर उन्मादी रूप अब समाप्त है। 'अब प्रगति बन रहा ससृति का' मे ससृति को सस्कारित करने का, प्रगति-पथ पर ले जाने का दायित्व ध्वनित है। मानव की शीतल छाया मे रहने की अभिलाषा एव सत्कर्मों की प्रेरणा व्यग्य है। बिब मे चाक्षुषता कम, सवेगात्मकता अधिक है।

**काम का स्वरूप—**

काम के शुद्ध मगलमय एव रहस्यात्मक स्वरूप के साथ उसके वासनामय अतृप्त रूप के बिंब हैं—

ओ नील आवरण जगती के
दुर्बोध न तू ही है इतना,
अवगुठन होता आंखो का
आलोक रूप बनता जितना।
(काम सर्ग)

यहा काम एक मगलमय श्रेय के रूप मे है। शिव की शक्ति के रूप मे चित्रित है जिसने रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द के बाह्य इद्रिय सवेदनात्मक आवरण मे अपने उज्ज्वल कल्याणप्रद रूप को ढक रखा है। आकाश के नीले रग की दुर्बोधता से काम के स्वरूप को प्रसाद ने उपमित किया है। प्रथम काम का उद्रेक इसी प्रकार रहस्यमय लगता है। 'अवगुठन होता आखो का'—आकाश मे ग्रहो, नक्षत्रो एव तारात्रो की द्युति से उसका सही रूप अधिक दुर्भेद्य बन जाता है। रूप जितना ही अधिक आलोकमय होगा उतना ही आवरण भग करना दुष्कर होगा। काम के इस दुर्बोध स्वरूप मे 'हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्' का प्रत्यक्ष रूप है। बिंब मे चाक्षुषता के साथ प्रखर प्रकाश और रहस्यमयता भी है।

मेरी अक्षय निधि! तुम क्या हो
पहचान सकूंगा क्या न तुम्हे?
उलझन प्राणो के धागो का
सुलझन का समझूं मान तुम्हें।
(काम सर्ग)

काम यहा अक्षय निधि है और उसके तात्त्विक स्वरूप से मनु परिचित होना चाहते है। काम को अक्षय निधि कहकर उसके आलोकमय उज्ज्वल श्रेयस्कर रूप को व्यक्त किया गया है। अतिम पक्तियो मे प्राणो के उलझे हुए धागो को उसके द्वारा सुलझाने का उपक्रम है—'सुलझन का भान', मानो वही एकमात्र निकष है। उसी के सही स्वरूप का जीवन मे विकास ही सुलझे जीवन का सार है।

माधवी निशा की अलसाई
अलको मे लुकते तारा सी,
क्या हो सूने मरु अचल मे
अत सलिला की धारा सी।
(काम सर्ग)

यह एक विराट बिंब है जिसमे निशा और मरु अचल के अप्रस्तुतो द्वारा काम के अस्पष्ट भिन्न-भिन्न करते रूप को बिंबित किया है। वासती रात्रि मे सूर्योदय के पूर्व जिस प्रकार तारो की द्युति धूमिल हो जाती है, जिस प्रकार रेगिस्तान मे जल की अतर्धारा प्रवाहित रहती है, उसी प्रकार काम का स्वरूप भी है। उसकी प्रतीति तो होती है पर स्पष्ट रूप नही दीखता। 'अलसाई अलको मे तारो का लुकना' मे एक सुदरी के वालो मे अर्धस्फुट पुष्प की झाकी तो है ही—यौवन के अलस अनुराग मे काम का उद्रेक भी ध्वनित है। इसी प्रकार 'मरु अचल मे अत सलिला' मे जीवन की शुष्कता मे यौवन की सरसता एव काम का माधुर्य स्पष्ट है। बिंब मे रग, ध्वनि, रस ने चाक्षुप गोचरता को आकर्षक बनाया है।

अपना फेनिल फन पटक रहा,
मणियो का जाल लुटाता सा,
उन्निद्र दिखाई देता हो
उन्मत्त हुआ कुछ गाता सा।
(काम सर्ग)

इस अक्षय निधि ने अपने आवरण के लिए चादनी के महासागर रूपी वासुकी का घूघट लगा लिया है। उसकी छटा अद्भुत है, सगीत उन्मत्त बनाने वाला है। काम के घूंघट के इस चित्र मे चादनी का मधुर सौंदर्य सागर की लहरो की हलचल और वासुकी की तीव्र फुकार का दश है। काम का यह बिंब भव्य और भयकर है। उन्मत्त होकर गाने मे, फन को पटकने मे एक अधीर आकुलता एव तीव्र जिज्ञासा व्यक्त है। 'मणियो का जाल लुटाना'—उसके स्वरूप को जानने के लिए सब कुछ लुटा देना। बिंब मे तीव्र गति है, भयंकर हलचल है, सगीत की मधुरता है, मणियो का प्रकाश है—पूरा का पूरा व्यापार प्रस्तुत है।

काम के वासनात्मक अधोगामी रूप के बिंब भी यहा नियोजित हैं—

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा
सतुष्ट ओघ से मैं न हुआ
आया फिर भी वह चला गया
तृष्णा को तनिक न चैन मिला
(काम सर्ग)

सर्वग्रासी तृष्णा और अतृप्ति का एक ऐसा रूप जो जन्म-जन्मातर तक साथ चलता रहता है। प्रलय से भी न तुष्ट होना देव-सृष्टि के उद्दाम, अनवरत, उच्छृखल अबाध भोग-विलास के बाद भी अतृप्ति को मूर्त करता है। काम-पिपासा का इतना तीव्र, प्रचंड वेग उसके भोगपरक निकृष्ट रूप को प्रत्यक्ष करता है।

मैं तृष्णा था विकसित करता
वह तृप्ति दिखाती थी उनको
(काम सर्ग)

काम और रति का यह व्यापार तृष्णा और तृप्ति के रूप मे चित्रित है। यह दुष्चक्र की भाति चलता रहता है, पर फिर भी तृप्ति नहीं होती। इसका अत नही। सारा जीवन ही विलास मे व्यतीत हो जाता है।

अंतर है दिन और रजनी का
यह साधक कर्म बिखरता है,
(काम सर्ग)

यह काम का भिन्न ही रूप है। देव-सृष्टि वाला विलासी उन्मत्त रूप नही, दिन और रजनी के द्वारा उसके भिन्न स्वरूप को गोचरता मिली है। अब उसका कर्म तृष्णा जाग्रत करना, नही, साधक कर्म का प्रसार है। लोक सग्रही कर्म ही उसका एकमात्र लक्ष्य है।

काम के आत्म-परिचय एव स्वरूप-चित्रण के बाद अब हम उसके प्रभाव को बिंबो के सदर्भ मे देखने का प्रत्यन करेंगे। काम के उद्‌भव एवं विकास के साथ-साथ अतर-बाह्य सभी स्तरो पर एक आह्लादपूर्ण मादक वातावरण का निर्माण हो जाता है। उसका प्रभाव देवताओं और मानवो तक ही सीमित नही—सारी सृष्टि ही उल्लसित, उद्वेलित एव रस-सिक्त हो उठती है।

**देव-सृष्टि पर काम का प्रभाव—**

देवो की सृष्टि विलीन हुई
अनुशीलन मे अनुदिन मेरे
..........................
मेरी उपासना करते वे
मेरा सकेत विधान बना
विस्तृत जो मोह रहा मेरा
वह देव विलास वितान तना।
(काम सर्ग)

यह देवताओ पर काम के आत्यतिक प्रभाव का चित्र है। 'अनुशीलन मे अनुदिन मेरे'—केवल मात्र काम-तृप्ति ही जीवन बन गया था। 'उपासना करना', मानो जीवन का आराध्य वही है, उसी मे रमे रहना, उसकी पूजा करना। उसका सकेत उनके जीवन का नियम बन गया। काम से अभिभूत वे और कुछ सोच ही नही पाते थे। 'देव विलास वितान तना' अच्छी व्यजना है। मोह भी, कामासक्ति भी वितान के समान फैलती गयी और अतत वह वितान ही देवताओ को आत्मसात् कर गया—पूरी देव-सृष्टि ही नष्ट हो गयी।

**मनु पर प्रभाव—**

है स्पर्श मलय के झिलमिल सा
सज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें बद किये
तद्रा को पास बुलाता है।
.. ........ ....... .....
उन नृत्यशिथिल निश्वासो की
कितनी है मोहमयी माया
जिनसे समीर छनता छनता
बनता है प्राणो की छाया।

. . .    . . . . . .    .

आकाश रध्र हैं पूरित से  
यह सृष्टि गहन सी होती है  
आलोक सभी मूर्च्छित होते  
यह आंख थकी सी रोती है।  
(काम सर्ग)

मलय पवन के स्पर्श-सा मादक प्रभाव जिससे सारी चेतना शिथिल पड जाती है। सज्ञा को सुलाना—काम के उद्रेक मे एक विचित्र आकर्षण है जो सपूर्ण चेतना को अभिभूत कर लेता है, आखो को वद कर तद्रिल होना उसी की एक वाह्य अभिव्यक्ति है। सारे शरीर मे शिथिलता व्याप्त हो जाती है। यह मादक-मधुर अनुभूति है।

कामोद्दीप्त नि श्वासो को नृत्य-शिथिल नि श्वास कहकर प्रसाद ने एक चित्र खीच दिया है। जिस प्रकार नर्तकी नृत्य करते-करते उच्छ्वसित हो जाती है उसी प्रकार मनु को आज श्वासो की गति मे तीव्रता का अनुभव हो रहा है। यह अनुभूति मोहक है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक परम सुदरी नर्तकी के उच्छ्वासो का स्पर्श लुभावना होता है। प्राणो के समीर का छनकर आना—इसमे काम से सुवासित, उसके उद्रेक से सिक्त श्वासो की मादकता, विह्वलता व्यजित है। विंब मे नृत्य का एक पूरा दृश्य प्रत्यक्ष है।

'आकाश रध्र हैं पूरित से'—सपूर्ण तृप्ति का यह चित्र है। रध्र नही रहे—सभी स्तरो पर एक अद्भुत तृप्ति। सृष्टि की गहनता भी उसी तृप्ति को रूपायित करती है। आतरिक तृप्ति की शिथिलता अतिम पक्तियो मे व्यक्त है। रात समाप्त होने पर सभी तारो का छिप जाना अर्थात् इद्रिय, मन और चेतना पर एक प्रकार की प्रशातता का अनुभव होना।' 'मूर्च्छित सोना' सुष्ठु प्रयोग है, शैथिल्य की चरम सीमा है। आखो के थकने मे तृप्ति एव रोने मे आनदातिरेक से अश्रु सात्त्विक का निरूपण है। विंब मे विराटता है, गहनता है, साद्रता है और आनद का अतिरेक सपूर्ण तृप्ति के साथ रूपायित है।

**प्रकृति पर प्रभाव—**

जव लीला से तुम सीख रहे  
कोरक कोने मे लुक रहना।  
तव शिथिला सुरभि से धरणी मे  
विछलन न हुई थी सच कहना ?  
(काम सर्ग)

वसत के रूप मे यौवन का आगमन, काम का स्फुरण, उसका प्रभाव विंवित है। वसत मानो प्रकृति का यौवन है। 'लीला से कोरक कोने मे लुक रहना'—आखमिचौली का खेल प्रत्यक्ष है, साथ ही यौवन मे काम के स्फुरण के कारण गोपन की प्रवृत्ति और अतर के उल्लास की व्यजना भी है। अतिम पक्ति में उसके व्यापक प्रभाव की व्यजना है। वासती हवा ने कलियो के मकरद को गिराया और सारी धरती मे फिसलन पैदा हो गयी। यौवन के आगमन से मन की दशा और वृत्तियो का असयमित होना, साथ ही एक मधुमय, लुभावना सुरभिपूर्ण आकर्षण व्यजित है। कोरक, सुरभि, विछलन आदि के प्रतीको ने यौवनावस्था की कामोद्रिक्त मन-स्थिति को साकेतिकता दी है। 'शिथिल सुरभि'—मादक सुगधयुक्त वातावरण। अतिम पक्ति

का प्रश्न केवल प्रश्न मात्र नही प्रेमरस की प्रगाढ पिच्छलता की व्यंजना है। बिंब मे चाक्षुपता को ध्वनि, गध, रस, स्पर्श सभी ने अनूठी विच्छित्ति दी है।

नवनील कुज है झीम रहे<br>
कुसुमो की कथा न बद हुई,<br>
है अतरिक्ष आमोद भरा<br>
हिम कणिका ही मकरद हुई।<br>
(काम सर्ग)

यह एक रस-बिंब है जिसे नील कुज, कुसुम व मकरद ने चाक्षुषता का रंग प्रदान किया है। यह एक विराट बिंब है जिसमे आकाश की कल्पना एक पुष्पित कुज के रूप मे की गयी है। लाक्षणिकता एव उपचार ने बिंब को एक वायवी रहस्यमयता से मडित किया है। काम का प्रभाव धरती-आकाश सब पर प्रत्यक्ष है। नील कुज के रूप मे आकाश का मस्ती से झूमना, कुसुमो के रूप मे तारो का झिलमिलाता रूप मानो एक-दूसरे से स्नेहपूर्ण वार्तालाप मे सलग्न हो, अतरिक्ष का आमोद-उल्लास से पूरित होना, मकरद के रूप मे ओसकणो का चू पडना—सबमे रसात्मकता की चरम व्यजना है।

उस प्रकृति लता के यौवन मे<br>
उस पुष्पवती के माधव का<br>
मधुहास हुआ था वह पहला<br>
दो रूप मधुर जो ढाल सका।<br>
(काम सर्ग)

प्रकृति पुरुष के मिलन का, सपूर्ण सृष्टि मे युग्म के निर्माण का यह बिंब है। 'प्रकृति लता के यौवन में'—लता रूपी प्रकृति जब यौवन मे प्रथम चरण रखती है तब वसत रूपी मदन के सयोग से फूल खिलने लगते हैं, यह सद्य यौवना प्रकृति के प्रसवधर्मा रूप का चित्रण है। 'मधुहास हुआ था वह पहला' मे काम का प्रथम उद्रेक स्पष्ट है और परिणामस्वरूप युग्म का निर्माण। बिंब मे चाक्षुषना है, रस है, रग है, स्पर्श है, मधुर ध्वनि है और इन सबके ऊपर सारी प्रकृति का कामोद्रिक्त, रससिक्त, सयोगपरक रूप है।

भुजलता पडी सरिताओ की<br>
शैलो के गले सनाथ हुए,<br>
जलनिधि का अचल व्यजन बना<br>
धरणी का, दो दो साथ हुए।<br>
(काम सर्ग)

इस बिंब मे विराट् सयोग का चित्र है जहा सरिता अपनी कोमल बाहो से शैलो का आलिंगन कर उस सुख से अभिभूत हैं, जलनिधि का अचल धरणी का व्यजन बना। क्षितिज पर उठने वाली लहरें पृथ्वी को चूम रही हैं, साथ ही रतिश्रात पृथ्वी के श्रम को मिटाने का उपक्रम है। चित्र मे उद्दाम गति है, मादक स्वर है, मिलन की उत्कटता है और प्रखर चाक्षुपता है।

काम के आगमन से मादक आह्लादपूर्ण वातावरण की सृष्टि, उसका व्यापक प्रभाव, मिलन की, सृजन की इच्छा काम सर्ग मे विशद रूप से विवित है। काम का एक दूसरा रूप

भी महाकाव्य मे है जहा वह प्रेतात्मा के रूप मे सारी मानव मृष्टि को शाप देता है। यहा काम न कोमल भावना है, न सृष्टि की प्रेरणा, न रूप-रस-गध आदि विषयो को उत्तेजित करने वाला यहा वह आत्मविश्वासमयी विशुद्ध राग रूप श्रद्धा के परित्याग मे क्षुब्ध, कुपित पिता। है जो अभिशाप से भरी वाणी का विस्फोट करता है—

उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उडा दिया था समझ तूल
यह अभिनव मानव प्रजा मृष्टि
चुंबित हो आँसू जलधर मे अभिलाषाओ के शैल शृग
जीवन नद हाहाकार भरा हो उठती पीडा की तरग
दारिद्र्य दलित बिलखाती हो यह शस्य श्यामला प्रकृति रमा
सारी ससृति ही विरह भरी गाते हो बीते करुण गीत
रोकर बीतें सब वर्तमान क्षण सुन्दर सपना हो अतीत
जीवन सारा बन जाय युद्ध
तुम जरा मरण में चिर अशान्त
(इडा सर्ग)

नाटकीय भगिमा के इस चित्र मे आकाशवाणी के रूप मे एक भयकर यथार्थ रूपायित है। चारो ओर कोलाहल, कलह, स्वार्थ, दु ख, पीडा, कटुता, दैन्य का हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत है। काम का यह अभिशाप-स्वर देर तक कानो मे गूजता रहता है—उसकी प्रतिध्वनि विकट एव भयानक है। महाकाव्य का यह सबसे भयानक चित्र है जहा बौद्धिक मानव की भर्त्सना समस्त कटुता एव घृणा के साथ की गयी है।

प्रसाद के इस पात्र का सबसे गभीर व्यक्तित्व है उसका प्रेरक रूप। प्रसाद ने काव्य के मगल सदेश के लिए न किसी अवतार की कल्पना की न ऋषि का निर्माण, न सत का प्रादुर्भाव है न धीरोदात्त नायक की अवतारणा। यहा महाकाव्य के मूल स्वर का वाहक काम है या कामायनी—

यह नीड मनोहर कृतियो का
यह विश्व कर्म रगस्थल है
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमे जितना बल है
(काम सर्ग)

मनोहर कृतियो का नीड यह विश्व कर्म-मच है। कर्म की प्रेरणा गहन है और मनोहर कृतियो

के रूप मे मगलकारी निर्माण का आग्रह। अंतिम पक्तियो मे मानवीय पुरुषार्थ की एक चुनौती दी गयी है—सतत कर्म करने की।

काम के पात्रत्व की परिणति महाकाव्य मे विशुद्ध चेतना के रूप मे होती है। काम का यहा आध्यात्मिक स्वरूप है—

वह विश्व चेतना पुलकित
थी पूर्ण काम की प्रतिमा।

आनन्द सर्ग मे काम का पर्यवसान आनद मे है—'कामायनी' मानो काम की ही कहानी है। उसका ध्वसकारी रूप देव-जाति है, सर्जक रूप सृष्टि है, प्रेरक रूप प्रेम है, नैतिक रूप श्रद्धा है और पूर्ण रूप आनद है।

इस प्रकार 'कामायनी' महाकाव्य की चरित्र-सृष्टि मे बिंबो का महत्वपूर्ण योग है। बिंबो से पात्रो को केवल स्पष्टता ही नही मिली, पुष्ट रगो और रेखाओ से उनकी रूप-छवि को मात्र उभारा ही नही गया, उनके व्यक्तित्व को केवल उदात्त प्रखरता ही नही मिली—बल्कि इन सबसे अधिक उन्हे सहृदय सवेदना मिली, उनका साधारणीकरण सभव हो सका। अन्यथा घटना विरल अल्प पात्र के इस महाकाव्य मे न तो किसी का चरित्र ही स्फुट हो पाता और न उन्हे प्रभविष्णुता मिलती। बिंबो के कारण ही ये पात्र मूल वर्तमान एव भविष्य के सभार को लेकर चल सके—मानव चेतना के विकास को उसकी अंतिम परिणति तक पहुचा सके।

## पाद-टिप्पणियां

१ 'कामायनी' (आनद सर्ग), पृ० २६१।
२ वही।
३ दिनकर 'प्रसाद पत और निराला', पृ० ६८।
४ सुधाकर पांडेय 'प्रसाद की कविताए', पृ० ३०५।
५ डा० प्रेमशकर 'प्रसाद का काव्य', पृ० ३६६।
६ रमेश कुतल मेघ 'कामायनी की मनस्सौंदर्यात्मक सामाजिक भूमिका', पृ० ११५।
७ डा० भगीरथ मिश्र।

४

# कामायनी की प्रकृति-सृष्टि और विंब योजना

प्रकृति के रम्य विशाल फलक पर 'कामायनी' महाकाव्य चित्रवत् अंकित है। प्रकृति ने कथा के लिए पटभूमिका का काम किया है, चरित्रो की गुत्थियो को स्पष्टता दी है, अमूर्त भावो एव सवेदनाओ को मूर्तित किया है। प्रकृति कही भव्य है, कही भयकर, कही उग्र, कही स्थिर है, कही गतिशील और कही उल्लसित है तो कही उदास-खिन्न। मनोविज्ञान की गहराई और दर्शन की ऊचाई प्रकृति-विंबो के द्वारा ही प्रेषणीय एव सवेदनीय हो सकी है। प्रकृति एक प्रकार से 'कामायनी' का सजीव पात्र है और महाकवि की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम।

'कामायनी' के प्रकृति-विंबो का आकलन इन शीर्षको मे किया जा सकता है—

(१) प्रकृति के प्रचड, उग्र एव उदात्त विंब।
(२) प्रकृति के कोमल, मधुर व करुण विंब।
(३) प्रकृति के स्थिर एव गतिशील विंब।
(४) प्रकृति के आलवन चित्र।
(५) प्रकृति के उद्दीपक चित्र।
(६) प्रकृति की सजीव पात्रता का चित्र।
(७) रात्रि के विविधवर्णी विंब।

## (१) प्रकृति के प्रचंड, उग्र एव उदात्त विंब

'कामायनी' महाकाव्य मे प्रकृति के ध्वसकारी रूप का कोई साक्षी नही। न देवता, न मानव। मनु भी प्रलय के आरभिक व अतिम दृश्यो से परिचित है पर उसका सबसे प्रलयकर रूप अनुमेय ही है। महाकवि की कल्पना एव विंबाधायक शक्ति ने प्रलय-विंबो को हिन्दी-साहित्य की ही नही, विश्व-साहित्य अनुपम निधि बना दिया है। यहा प्रकृति का सर्वध्वसक रूप है। जहा अतरिक्ष मे ग्रह टकरा गये हैं, प्रलयकर मेघ गगन मे घिरे हैं, झझा के भीम प्रकपन मे द्यावा पृथिवी भीत व त्रस्त है। यहा इद्रियो की ग्रहण सीमाए टूट गयी हैं—चेतना विलुप्त है। कुछ चित्र प्रस्तुत हैं।

हाहाकार हुआ क्रदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगत बधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर।
दिग्दाहो से धूम उठे या
जलधर उठे क्षितिज तट से
सघन गगन मे भीम प्रकपन
झझा के चलते झटके।
(चिन्ता सर्ग)

ध्वनि एव चाक्षुष बिब गहरे रगों मे उभरा है। चारो ओर तीव्र गति है। एक-एक विश्लेषण चित्र को गहन से गहनतर एव अधिक उग्र व प्रलयकर बना रहा है। क्रदन के साथ हाहाकार, कुलिश के साथ कठिन, और उसका भी चूर-चूर होना—वातावरण के कर्णभेदी स्वरूप की चरम व्यजना है। 'दिगत का बधिर होना' भयकर उग्र ध्वनि-विस्फोटो का अतिम रूप है। भीषण क्रूर रव का बार-बार होना प्रकृति की इस ध्वसलीला की दीर्घकाल व्याप्ति है।

'दिग्दाह' शब्द से जलती हुई दिशाए और उनकी गगन-ग्रासिनी अनल शिखाओ की भयकरता व्यजित है। 'या' के सदेह अलकार द्वारा घने बादलो का क्षितिज तट से उठना तथा उनकी अनवरतता व्यजित है। गगन का सघन होना, प्रकपन का भीम होना, झझा के झटको का चलना—ये एक ऐसे व्यूह की सृष्टि करते हैं जिसका सैनिक सगठन उत्तरोत्तर घना होकर सबको समाप्त करने की तैयारी कर रहा है। प्रकृति की सर्वग्रासी विकरालता बिबायित हो उठी है।

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालो सी;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालो सी।
(चिंता सर्ग)

'लहरिया' और 'चली आ रही' जैसे स्त्रीवाची शब्दो की कोमलता मे ही प्रसाद ने कुछ अमर्यादित सागर का एक भयकर उद्दाम चित्र खीचा है जो धरित्री को निगल जाने के लिए 'काल के जाल' की तरह—मृत्यु के कठोर शीतल पजो की तरह बढ रहा है। लहरो को कुटिल काल का जाल कहना उनका मारक रूप है। फेन उगलती व्यालो की सादृश्य योजना द्वारा कवि ने वातावरण की विपाक्तता एव रोषदीप्त रूप को और भी अधिक उग्र बनाया है। यह चाक्षुष बिब गति एव ध्वनि से सवलित हो अधिक प्रखर हो उठा है।

धू-धू करता नाच रहा था
अनस्तित्व का ताडव नृत्य
आकर्षण विहीन विद्युत् कण
बने भारवाही थे भृत्य।
(चिंता सर्ग)

यह एक ऐसा चाक्षुष बिब है जिसमे ताडव नृत्य के अतिरिक्त देखने को कुछ भी शेष नही।

'धू-धू' कर नाचने मे मृत्यु के भयकर नृत्य को ध्वनि से भी भर दिया गया है, साथ ही एक-साथ सबके जलकर भस्म हो जाने का चित्र भी प्रत्यक्ष होता है। 'अनस्तित्व का ताडव नृत्य' अद्भुत व्यजना है। साधारणतया जहा अस्तित्व ही नही रहेगा वहा नृत्य का प्रश्न नही, पर प्रसाद ने अनस्तित्व के मानवीकरण द्वारा यह दिखाया है कि किसी भी प्रकार के जीवन का वहा अस्तित्व नही। जब अनस्तित्व स्वय नृत्य करेगा, वह भी ताडव नृत्य, तो सृष्टि का प्राणविहीन होना स्वाभाविक ही है। अणु-परमाणु सपूर्ण विश्लिष्ट होकर भारवाही भृत्य की तरह केवल अपना बोझ ही उठा रहे थे। यह भी प्रकृति के विनाश कार्य का एक भयकर चित्र है जिसे रग व गति ने अधिक उभारा है।

स्वच्छ नील गगन का विराट चित्र—

इद्रनील मणि महाचपक था
सोम रहित उलटा लटका,
आज पवन मृदु साँस ले रहा
जैसे बीत गया खटका।
(आशा सर्ग)

प्रकृति का यह चाक्षुप बिंब रग-गति-सवलित है जिसमे एक प्रकार की स्वच्छ निर्मलता है। आकाश को इद्रनील मणि के महाचपक से रूपायित करना कवि की मौलिक कल्पना है—इसमे आकाश की शुभ्र नीलिमा, पारदर्शिता स्पष्ट है। कोई भी वस्तु स्वच्छता की निरतिशयता मे पारदर्शी हो जाती है—वही स्थिति आज आकाश की है। चपक के रूपसाम्य द्वारा इस चाक्षुप बिंब को आकृति मिली है—यह महाचपक है। 'महा' शब्द मे गगन की अतहीन व्यापकता ध्वनित है। 'सोम रहित' शब्द मे सोम श्लिष्ट है जिससे एक ओर तो चद्रहीन गहन नीले आकाश की व्यजना है और दूसरी ओर देवताओ के मदिरालय का उजडना। चपक का उलटा लटकना आकाश के वृत्ताकार रूप को चित्रित करता है। पवन का मृदु सास लेना मानवीकरण के द्वारा प्रभात की मद बयार के साथ-साथ प्रकृति के आश्वस्त रूप को अकित करता है। प्रकृति मानो अब प्रकृतिस्थ है, अत मृदु सास ले रही है। प्रकृति के इस विराट चित्र मे चाक्षुप गोचरता, रग, ध्वनि, गति, आकार सबका एकत्र सयोजन है।

सपूर्ण प्रकृति के आनंद रास का भव्य उदात्त चित्र—

अति मधुर गधवह बहता
परिमल बूँदो से सिंचित,
सुख स्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रजित।
जैसे असख्य मुकुलो का
मादन विकास कर आया,
. .... . . .
उन्मद माधव मलयानिल
दौडे सब गिरते पडते,
परिमल से चली नहाकर

काकली, सुमन थे झडते ।
... . ........ ..

हिमखड रश्मि मडित हो
मणिदीप प्रकाश दिखाता
जिनसे समीर टकरा कर
अति मधुर मृदग बजाता ।
(आनद सर्ग)

संपूर्ण प्रकृति के इस आनद रास के बिंब मे शब्द, रस, रूप, स्पर्श, गध सभी की संश्लिष्ट सयोजना है। यह एक उदात्त चित्र है जिसमे सभी प्राकृतिक उपादानो का आनदित, उल्लसित एव नृत्य-सगीतपरक रूप एकबारगी उभरा है। यह अचेतन जगती का जड रूप नही, यहा प्रकृति सजीव सचेतन होकर आनद की अनुभूति कर रही है। पुष्पो के रस से सिंचित, कमल केसर के मधुर स्पर्श से पुलकित शीतल मद सुगध पवन बह रहा है। आज अत्यत उल्लसित हो मानो वह असख्य कलियो को मस्ती के साथ खिलाकर, उनके अछूते अधरो का रसपान करके आया हो।

आगे की पक्तियो मे वसत के आगमन की प्राकृतिक मादकता एव मोहकता है। कोयल की मधुर ध्वनि मानो फूलो की सुगध से नहाकर आ रही है। यहा कवि ने ध्वनि को गध से पुष्ट कर उसे अद्भुत रसात्मकता प्रदान की है। बिंब को मानवीकरण एव समासोक्ति अलकार ने अधिक स्पष्ट एवं ग्राह्य बनाया है।

ऐसे मादक, मोहक, तरल एव रमणीय वातावरण मे 'हिमखड' का बिंब अपनी आभा व काति से ज्योतित हो उठा है। रश्मि से मडित हिमखड मानो मणियो के दीप हो— शुभ्रता एव प्रकाश एकसाथ नियोजित हैं। उससे विकीर्ण प्रकाश मे धुधलापन नही—यह पूर्ण आनद की व्यजना है। हिमखडो से वायु का टकराना तथा उनसे निकलनेवाली ध्वनि की एक प्रकार की लयात्मकता एव सगीतात्मकता उसे मृदग के रूप मे प्रत्यक्ष करती है। वस्तूत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने बिंब को नाद सौदर्य से सवलित किया है। चित्र मे प्रकाश, सगीत, लय, ध्वनि, स्पर्श, गध, पुलक, मादकता, रग, छवि, काति सब एकाकार है। यह प्रकृति का एक अत्यत सश्लिष्ट चित्र है।

## (२) प्रकृति के कोमल मधुर व करुण बिंब

नव कोमल आलोक विखरता
हिम ससृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।
(आशा सर्ग)

प्रलय की समाप्ति के बाद, सुनहरी उषा की नव लालिमा मे डूबी प्रकृति का यह अनुरागजनित चित्र है जिसे प्रसाद ने अप्रस्तुत द्वारा चाक्षुषता प्रदान की है। हिम पर प्रभातकालीन अरुण आभा का यह चित्र है जो 'नव कोमल' शब्दो मे मुखरित है। 'हिम ससृति' चारो ओर बर्फ की व्याप्ति सूचित करता है। यह सृष्टि केवल बर्फ की है—एक शुभ्र, स्वच्छ वातावरण निर्मित है। यह आलोक हिम ससृति पर अनुराग से भरकर विखर रहा है। चित्र मे मादकता

नही प्रशातता है। प्रकृति का यह अनुरागमय रूप, हिम व किरणो का मिलन मानो गित सरोज पर मधुमय पिंग पराग का क्रीडा करना है। यह उत्प्रेक्षा अत्यत सुदर है। गित सरोज मे उन्नत वर्फीली चोटिया, क्रीडा करना मे किरणो का थिरकना—उनकी चचलता व्यजित है। यहा पर कवि की सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि हमारे सामने आती है—वर्फ पर किरणें पटकर विकीर्ण होती हैं तब यही चित्र आता है कि उनमे एक चचल गति पैदा हो गयी है। 'मधुमय पिंग पराग' प्रात कालीन सुनहरी किरणो को स्पष्ट करता है। यह चाक्षुप बिंब रग, माधुर्य, गति से स्पदित है।

> नेत्र निमीलन करती मानो
> प्रकृति प्रवुद्ध लगी होने,
> जलधि लहरियो की अँगडाई
> वार-वार जाती सोने।
> सिंधु सेज पर धरा वधू अव
> तनिक सकुचित वैठी-सी,
> प्रलय निशा की हलचल स्मृति मे
> मान किये सी ऐंठी सी।
>
> (आशा सर्ग)

मानवीकृत प्रकृतिमानिनी नववधू के सपूर्ण हावो भावो को लेकर विंबित है। नववधू का जागना, नेत्र मलना, अगडाई लेना, शैया पर सिकुडकर, सिमटकर, लजाकर, मानकरके वैठना सभी हावो की सयोजना है। विविध क्रियाओ के चित्रण ने बिंब को माधुर्य एव लालित्य प्रदान किया है। प्रलय से निकली हुई धरा 'नववधू' ही है क्योंकि इसके पहले वह मृत्यु के अलकार मे विलीन थी। सिंधु को कोमल शैया से उपमित कर यह साक्षात् किया गया है कि धरती अभी जल से घिरी है—केवल उसका कुछ अश ही दिखाई पड रहा है। पर अव प्रलय-कालीन समुद्र की लहरें उतर रही हैं—लहरियो की अगडाई का सोने जाना, टकराकर विलीन हो जाना, यही यहा पर व्यजित है, पर 'अगडाई लेकर सोने' की प्रक्रिया ने उसे रूप-गर्व के साथ-साथ अलस मादकता से पुष्ट किया है। धरा वधू अव सकुचित वैठी है—पृथ्वी के आशिक प्रादुर्भाव के साथ मुग्धा नायिका का सलज्ज रूप है। प्रलय निशा की हलचल—मधुयामिनी की अत्यधिक केलि। सकुचित वैठना, निशा की हलचल का स्मरण करना, मान करना, ऐंठना आदि विशेपणो से नववधू के प्रथम समागम व प्रियतम के निर्दय व्यवहार की व्यजना भी है। बिंब क्या है एक पूरा का पूरा व्यापार है—रससिक्त, मधुर, मादक व सलज्ज।

> मरकत की वेदी पर ज्यो
> रक्खा हीरे का पानी,
> छोटा सा मुकुर प्रकृति का
> या सोयी राका रानी।
>
> (आनद सर्ग)

यह प्रकृति का अत्यत शुभ्र दिव्य एव स्वच्छ चित्र है जो अपनी लघुता व कोमलता मे ही महत् है। मानसरोवर के इस बिंब को प्रसाद ने एक काति, वर्णदीप्ति और ज्योत्स्ना से मडित

कर प्रत्यक्ष किया है। 'मरकत की वेदी'—मरकत मणि की हरियाली से प्रसाद ने वातावरण की हरित शोभा को रूपायित किया है। मणि की हरियाली से उसका वैशिष्ट्य स्फुट है—यह हरियाली शुभ्रता से ज्योतित है। 'हीरे का पानी'—मानसरोवर की दिव्य पवित्रता के लिए ठीक ही है। हीरे का प्रकाश और पानी की पवित्रता दोनो का एकत्र सयोजन है। दूसरा अप्रस्तुत है 'प्रकृति का मुकुर'—यहा पर भी वातावरण की नितात स्वच्छता है जिसमे हिम-शिखर, वृक्षराजि सभी प्रतिबिंबित है। ऐसा लगता है कि 'हीरे का पानी' तथा 'उज्ज्वल मुकुर' के अप्रस्तुत से कवि सतुष्ट नही। मानसरोवर की शुभ्र छवि मानो शब्दो मे नही समा रही है। प्रसाद एक तीसरे अप्रस्तुत की योजना करते है 'सोयी राका रानी'—पूर्णिमा ही अपनी उज्ज्वल ज्योत्स्ना के साथ सोयी है। 'सोयी है' मे शुभ्रता का वही पर रह जाना व्यजित है। मानसरोवर की उज्ज्वलता, निर्मलता, श्वेतता व पवित्रता सजीव हो उठी है।

गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि मे असहाय<br>
घन पटल मे डूबता था किरण का समुदाय<br>
कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल छद ;<br>
मधुकरी का सरस सचय हो चला अब बद।<br>
उठ रही थी कालिमा धूसर क्षितिज मे दीन<br>
भेंटता अतिम अरुण आलोक वैभवहीन।

(वासना सर्ग)

यह डूबते हुए सूरज का उदास व करुण बिंब है जिसे 'कर्म का अवसाद' कहकर अधिक खिन्न बनाया गया है। समुद्र मे डूबते हुए असहाय व्यक्ति का चित्र सामने आता है। सूरज का निस्तेज होकर सागर मे डूबना, सभी किरणो का घन पटल मे विलीन हो जाना, मधुकरी का सरस सचय बद हो जाना, धूसर क्षितिज मे दीन कालिमा का उठना, आलोक के वैभव से हीन सूर्य की अतिम भेंट—सभी मे वातावरण के एक उदास रूप को बिंबित किया है। 'किरण का समुदाय' किरण का डूबना नही सपूर्ण प्रकाश का विलीन होना है। 'कर्म का अवसाद' दिन-भर के काम से थके हुए सूर्य का क्लात चित्र है जो दिन से छलछद करता रहा है—यह कर्म सतोपप्रद व स्फूर्तिदायक नही, केवल आत्मछलना था। अतिम पक्ति मे दरिद्र व खिन्न मिलन की चरम व्यजना है। चित्र मे रग है, गति है, रस है पर सब आभाहीन उजडे से है। इनकी धूमिलता ने चाक्षुषता को अस्पष्ट नही किया है—बिंब की यह विशेषता है।

## (३) प्रकृति के स्थिर एव गतिशील बिंब

'कामायनी' की प्रकृति-सृष्टि यद्यपि गत्यात्मक अधिक है, पर हिमालय-वर्णन मे तथा रात्रि-वर्णन मे कही-कही स्थिर बिंबो की सर्जना भी कवि ने की है। इन चित्रो मे प्रकृति का एक ऐसा रूप निखरा है जो अपनी मौन शात स्थिरता मे ही उन्नत व शुभ्र है।

स्थिर बिंब—

अचल हिमालय का शोभनतम<br>
लता कलित शुचि सानु शरीर,<br>
निद्रा मे सुख स्वप्न देखता<br>
जैसे पुलकित हुआ अधीर।<br>
.......... .................. ....

विश्व मौन गौरव महत्व की
प्रतिनिधियो सी भरी विभा,
इस अनत प्रागण मे मानो
जोड रही है मौन सभा।
वह अनत नीलिमा व्योम की
जडता-सी जो शात रही
दूर-दूर ऊँचे से ऊँचे
निज अभाव मे भ्रात रही।
(आशा सर्ग)

हिमालय का चित्र पवित्र आकार वाला, ज्ञानी मनुष्य का बिंब है जिसका शरीर शोभनतम है। चित्र मे बाह्य आतरिक सौंदर्य स्पष्ट है। 'अचल' शब्द मे केवल शारीरिक स्थिरता नही, मानसिक दृढता व सयम भी है। 'लता कलित'—लताओ से आवृत। लताए निद्रित हिमालय के अत करण की आनदानुभूति को सूचित करती हैं जो सुख-स्वप्न देखकर रोमाचित हो रहा है। यहा पर 'अधीर' शब्द उसकी मौन नीरव गरिमा को एक स्पदन दे रहा है—यह आनद की अनुभूति की व्यजना है। चित्र मे मानस गोचरता अधिक है चाक्षुपता कम। आगे की पक्तियो मे गरिमा के तेजस्वी प्रतिनिधियो के रूप मे विराट चितको का बिंब है जो विश्व-शाति और विश्व-मगल की कामना से यहा एकत्र होकर 'शिखर-वार्ता' में सलग्न हैं। हिमालय के उन्नत विशाल शिखरो को कवि ने गौरव-महत्व के प्रतिनिधियो से उपमित कर उनका मानवीकरण ही नही किया, बिंब को एक विराटता, भव्यता एव व्यापकता प्रदान की है। 'अनत प्रागण' विस्तृत आकाश, असीम अतरिक्ष को व्यजित करता है। मौन सभा' शातिपूर्वक विचार-विमर्श का चित्र है। बिंब मे हिमालय की नीरवता, गौरव एव महत्व को सजीव कर एक सुदर शब्दचित्र उपस्थित है जो अपनी नीरवता मे भी मार्मिक है। हिमालय की ऊची चोटिया आकाश की अनत नीलिमा को—जो जडता के समान केवल फैली है, जो व्यापक विस्तृत तो है पर अभावो से भ्रमित है—धरती के अनत सुख, अपार हसी और असीम उल्लास की सूचना दे रही है। बिंब मे श्रेणियो की उन्नतता, प्रफुल्लता, आनद व उल्लास समाया है। चोटियो मे कवि ने दो सीमात कल्पनाए की हैं—एक ओर मौन, गौरव एव महत्व की तथा दूसरी ओर आनद तथा उल्लास की। आगे 'तुग तरंग' की उत्प्रेक्षा ने इस बिंब को सवाक् कर दिया है।

दर्शन सर्ग मे रात्रि के स्थिर चित्र है—

वह चद्रहीन थी एक रात
जिसमे सोया था स्वच्छ प्रात,
उजले उजले तारक झलमल,
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल,
धारा वह जाती बिंब अटल,
खुलता था धीरे पवन पटल,
चुपचाप खडी थी वृक्ष पाँत,
सुनती जैसे कुछ निजी बात।
(दर्शन सर्ग)

तारांकित अंधेरी रात के इस चाक्षुष बिंब को चिंतन ने उत्कर्ष दिया है। बिंब का वैशिष्ट्य है जीवन-सत्य एव चिंतन को चाक्षुषता देना—काव्यात्मक रमणीयता प्रदान करना। चद्रहीन रात मे स्वच्छ प्रात का सोना—आगामी आशा, उल्लास व विकास का सूचक है। सरिता के वक्षस्थल पर उजले-उजले तारको का प्रतिबिंब जो अपनी ही काति मे झिलमिल कर रहा है। पानी के बह जाने व बिंब के अटल होने मे विरोधाभास के द्वारा जीवन का सत्य प्रोद्भासित है—ऋत व सत्य का नियम यहा रूपायित है। 'पवन पटल का धीरे से खुलना'—किसी पर्दे के क्रमश ऊपर होने का चित्र प्रत्यक्ष करता है। वृक्ष की पक्तिया चुपचाप खडी हैं मानो किसी के अत करण की गोपनीय बातो को ध्यान से सुन रही हैं। नीरव एव निर्जन वातावरण का अद्भुत बिंब है—प्रभात मे कोलाहल और प्रकाश दोनो रहते हैं पर यहा पर अधकार व शाति है अत प्रात के सोने की नियोजना है।

> निस्तब्ध गगन था दिशा शात
> वह था असीम का चित्र कात,
> कुछ शून्य बिन्दु उर के ऊपर,
> व्यथिता रजनी के श्रम सीकर
> झलके कब से पर पडे न झर,
> गभीर मलिन छाया भू पर।
>
> (दर्शन सर्ग)

रात्रि की नीरवता का यह मध्य बिंब है। उस समय वातावरण के अधकारमय रूप के कारण प्रकृति का विषादमय व्यथित चित्र है। अनत आकाश एक मनोहर चित्र है जिसके वक्षस्थल पर तारो के रूप मे कुछ शून्य बिंदु उभर आये हैं। यहा तारो की झिलमिल आभा नही, वे भी शून्य-अभावग्रस्त है। तारो को शून्य बिंदु कहकर रात्रि की नीरवता एव व्यथा को गहन किया है। इसी प्रकार उन्हे रजनी के 'श्रम सीकर' कहकर आतरिक पीडा को व्यक्त किया है। ये ऐसे श्रमसीकर है जो झलकते तो दिखाई दे रहे है पर गिरते नही—पसीने के न गिर पाने मे एक अद्भुत व्यजना है, मानो सब कुछ ठहर गया हो। चित्र मे विषाद है, नीरवता है, क्लातता है, वेदना है।

**गतिशील चित्र—**

> सबल तरगाघातो से उस
> क्रुद्ध सिंधु के, विचलित सी
> व्यस्त महा कच्छप सी धरणी,
> ऊभ-चूभ थी विकलित सी।
>
> (चिंता सर्ग)

विचलित, डूबती हुई धरा का चित्र जिसमे क्रुद्ध सिंधु के तीव्र थपेडो ने अद्भुत गति भर दी है। प्रलय-लहरों के तीव्र थपेडो से विचलित होकर पृथ्वी सकुचित होती हुई डूबती-उतराती गोचर हो रही है—विशालकाय कच्छप के अप्रस्तुत इस बिंब को चाक्षुपता एव स्पष्टता प्रदान की गयी है। जिस प्रकार समुद्र मे एक विशालकाय कच्छप अपने अगो को समेटकर डूबता-उतराता दीखता है उसी प्रकार की स्थिति इस समय धरती की हो रही है। 'व्यस्त'

शब्द मे अपनी रक्षा का आकुल प्रयास व्यजित है तथा 'ऊभ-चूभ' ने डूबने-उतराने की प्रक्रिया को रूपायित किया है।

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल मे अर्तनिहित हुई।
(आशा सर्ग)

रथारूढ विजयिनी उषा का वीरागना रूप है यह, जो सुनहले बाणो की अजस्र वर्षा करती हुई जयलक्ष्मी के समान चली आ रही है। इस विजयिनी सम्राज्ञी के आगमन से ही कालरात्रि पराजित होकर अस्तित्वहीन हो जाती है। उषा के मानवीकरण ने बिंब को गति दी है—रथ पर आरूढ सम्राज्ञी का आना। 'जल' मे अतर्लीन होना पराजित शत्रु का छिप जाना या ग्लानि से डूब मरना रूपायित है। उषा को जयलक्ष्मी से उपमित कर केवल भावसाम्य की ही नियोजना नही की गयी है अपितु उषा के प्रेरक उत्साहवर्धक रूप को अकित किया है। कालरात्रि के विलीन होने मे प्रलय के घनघोर अधकार का विनाश भी सकेतित है। मानवीकरण ने उषा एव कालरात्रि को चेतन चेष्टाओ से मडित किया है और विनाश तथा सृजन का युद्ध दिखाया गया है। सुनहरे तीर ने बिंब को गति के साथ वर्ण से दीप्त किया है।

नीचे जलधर दौड रहे थे
सुदर सुरधनु माला पहने
कुजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने
प्रवहमान थे निम्न देश मे
शीतल शतशत निर्झर ऐसे,
महा श्वेत गजराज गड से
बिखरी मधु धाराएं जैसे।
(रहस्य सर्ग)

हिमालय के नीचे प्रवाहित मेघ शृखला, उनमे सप्तवर्णी इद्रधनुष की रमणीय छटा तथा विद्युत का तीव्र प्रकाश वहा रूपायित है। कवि ने बादलो को कुजर कलभ बनाकर उन्हें आकृति प्रदान करने के साथ उनकी गति को एक लय एव ठुमक से मडित किया है। सुर धनु मे माला एव चपला मे गहनो का आरोप कर रूपक के द्वारा उस आकृति को स्पष्टता एव शृगार-सज्जा प्रदान की गयी है। इठलाते एव चमकाते क्रियाओ ने बिंब को एक अल्हड सौंदर्य दिया है। आगे की पक्तियो मे ऐरावत हाथी के पौराणिक प्रतीक द्वारा कवि ने हिमालय से नि सृत जलधाराओ का बिंब उभारा है। हिमालय को ऐरावत हाथी बताने मे रगसाम्य है—ऐरावत के श्वेत रग से हिमालय के हिमाच्छादित होने का चित्र आता है। इसी प्रकार शीतल जलधाराओ को हाथी के मस्तक से चूनेवाला मधुधाराओ के रूप में कल्पित कर इस बिंब को पूरा किया गया है। गति के साथ वर्ण, गध एव आकार भी हैं।

## (४) प्रकृति के आलंबन-चित्र

प्रसाद के लिए प्रकृति स्वयं-साध्य नही थी। उनकी रचनाओ मे अधिकाशत प्रकृति का वही रूप चित्रित है जो मानव-भावनाओ, द्वद्वो एव सवेगो को स्पष्ट करने के लिए नियोजित है। वह कही उद्दीपक है, कही सवेदनशील, कही वातावरण के लिए नियोजित है तो कही रूप और भाव-चित्रण के लिए। प्रकृति का आलबन रूप प्रसाद की 'कामायनी' मे कम है। कुछ बिंबो की चर्चा हम करेंगे—

दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।
(चिंता सर्ग)

दूर-दूर तक विस्तृत बर्फ का यह चाक्षुष बिंब है। यहा प्रकृति उपमान नही उपमेय है जिसे मनु के हृदय की स्तब्धता से उपमित किया गया है। 'दूर-दूर तक' मे दूर की पुनरावृत्ति से विशाल व्यापकता—आखो की पहुच से भी परे—को मूर्तित किया है। मनु के हृदय की स्तब्धता के समान बताकर अतर्बाह्य घनघोर नीरवता व जडता को व्यक्त किया है। शिला को भावात्मक अस्तित्व प्रदान कर उसे 'नीरवता' कहना उस निविड शाति को अधिक गहन बनाता है। पवमान केवल उस नीरवता-सी शिला के चरणो तक सबसे निचले भाग तक ही पहुच पाता है—उससे अधिक ऊचाई उसे नही मिलती। हिमालय की नि स्पद नीरवता प्रलय के पश्चात् की एक व्यापक जडता की रूपाकृति है। बिंब मे चुप्पी व खामोशी है जिसे पवन के टकराने ने भी कम नही किया है।

सध्या घनमाला सी सुदर
ओढे रग बिरगी छीट
गगन चुबनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट।
(आशा सर्ग)

हिमालय के शिखरो का सौंदर्य सध्या की रगीन मेघमालाओ के आवरण मे उभर आया है। यह चाक्षुष बिंब है जिसमे रग-बिरगी छीट सध्या के अबर-डबर मेघो के लिए है। तुषार किरीट साझ की सुनहली वेला मे स्वर्णिम आभा से दीप्त हो उठा है। लगता है मानो सुदर अप्सरिया खडी हैं। श्रेणियो को कवि ने देवागनाओ से उपमित किया है। चित्र मे वर्ण है, दीप्ति है, उत्तुगता है, आकार है।

ऊर्ध्व देश उस नील तमस मे
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी;
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी।
(रहस्य सर्ग)

हिमालय के निम्न प्रदेश का ऊचे परिप्रेक्ष्य से देखा गया यह चित्र सजीव है। नील प्रदेश मे

नील अंधकार से घिरे हुए हिमालय का चित्र है जहा वर्फ एकदम अचल स्तब्ध भाव मे फैला है। पथ का थककर लीन होना हिमालय के मानव पद अयुक्त वर्फीले क्षेत्र की व्यजना है। अभिमानी के साथ चतुर्दिक देखना विजय-गर्व को भावपूर्णता प्रदान करता है। यह हिमालय के दुर्जेय दुर्गम रूप का विंब है जहा केवल वर्फ है, अधकार है एव स्तब्धता है।

## (५) प्रकृति के उद्दीपक विंब

उद्दीपक रूप प्रकृति-चित्रण की एक प्रमुख दृष्टि है जिसकी परपरा साहित्य मे प्राचीन है। 'कामायनी' मे प्रकृति के उद्दीपक विंब मुख्यत आशा एव वासना सर्ग मे मिलते हैं। कुछ विंब—

दिवा रात्रि या—मित्र वरुण की
बाला का अक्षय शृगार,
मिलन लगा हँसने जीवन के
उर्मिल सागर के उस पार।
(आशा सर्ग)

मनु के अंत करण मे आशा की स्फूर्तिदायिनी वृत्ति के उदय के बाद उनके हृदय मे अनादि वासना के प्रादुर्भाव को प्रकृति के मिलनपरक वातावरण मे तीव्रता मिलती है। उषा और सध्या सुदरी अक्षय शृगार करके अपने प्रियतम सूर्य तथा वरुण के साथ तन्मय होकर मिल रही हैं। 'मिलन लगा हसने' मे सयोग की तृप्ति व आतरिक आनद के साथ यह भी ध्वनित है कि हंसी की यह मुखरता मानो मनु को पुकार-पुकार कह रही है कि यह मिलन का समय है—एकाकी रहने का नही। 'उर्मिल सागर' के रूप मे प्रसाद ने रतिभाव से उद्वेलित मानस को रुपायित किया है। प्रकृति के इस मिलनपरक चाक्षुप विंब मे रग, गति व ध्वनि ने वातावरण के उद्दीपक रूप को अधिक प्रभविष्णु बनाया है।

देखा मनु ने वह अतिरजित
विजन विश्व का नव एकात,
जैसे कोलाहल सोया हो
हिम शीतल जडता सा श्रात।
(आशा सर्ग)

प्रलयोपरात प्रकृति का यह शात नीरव चित्र है जिसमे स्फूर्ति व उत्साह की अतर्धारा है। एकात नीरवता के इस वातावरण मे मनु का चिंतक रूप आतरिक ऊर्जा व स्फूर्ति के कारण प्रकट होता है। सुनसान वातावरण का अतिरजित रूप उसे कोलाहल से अलग कर एक ज्योतिर्मय गरिमा प्रदान करता है। 'विजन विश्व' और 'नव एकात' के प्रयोग से कवि यह सकेतित करता है कि इसके पूर्व मनु के जीवन मे केवल कोलाहल था, वह एक भीड मे ही जी रहा था, अत गभीर चिंतन के विकास का प्रश्न नही उठता। 'हिम शीतल जडता सा श्रात'—उपमा के द्वारा विलास और भोगवृत्ति का थककर निष्प्राण हो जाना ध्वनित है। यह सोना साधारण नही जो फिर जाग उठे—यह तो हिम के समान निर्जीव एव जड, गतिहीन हो गया है। वातावरण के इस रूप ने मनु के चिंतन को प्रोत्साहित किया।

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गध,
पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु अध।
(वासना सर्ग)

ज्योत्सना चर्चित रात्रि का यह मादक उल्लसित रूप मनु व श्रद्धा के हृदय मे मादकता का सचार कर उनकी वासना को उद्दीप्त करता है। 'सुधा मे स्नात' मानो मधु व मद मे नहाकर तृप्त हो रहे हो। उत्सव मनाने और जागरण की रात मे कौमुदी महोत्सव और नृत्य-गीत के वातावरण का बिंब है जिसमे सब आनद से रातभर उत्सव मनाते है। इतना ही नही, माधवी लता की गध को पान करने के लिए पवन एक मदमत्त की भाति चारो ओर अस्त-व्यस्त भाव से मडरा रहा है। 'पवन के घन'—पवन का समूह—यहा पर आतरिक वासना की घनता द्योतित है। 'मधु अध' वासना की प्रबलता मे होश खो देना। प्रकृति के इस उद्दीपन मे उल्लास है, उत्साह है, मधु है, मद है, ज्योत्स्ना है, गध है, तीव्रता है।

विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील,
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मगल खील,
राशि राशि नखत-कुसुम की अर्चना अश्रात
बिखरती है, तामरस सुदर चरण के प्रात।
(वासना सर्ग)

यौवन और रूप के मद से मतवाली प्रकृति का यह बिंब है जिसे मानवीकरण के द्वारा कवि ने एक दिव्य ऐश्वर्य-सपन्न नायिका का रूप प्रदान कर मनु की वासना को पुष्ट करने के लिए नियोजित किया है। बिखरे हुए चमकते तारे, शुभ्र चद्रमा एव अनत नीला आकाश—वातावरण की रमणीयता मुग्धकारी है। प्रकृति का उत्तरीय है नीला आकाश जो अत्यत विस्तृत होने के कारण अस्त-व्यस्त हो रहा है—प्रकृति सुदरी के वक्षस्थल का कपडा शिथिल हो रहा है; मिलन की लालसा व्यजित है। तारो की मगल खील एव अर्चना के पुष्प के रूप मे कल्पना कर प्रसाद ने सयोग व वासना की भावना को शुभ्रता एव पवित्रता प्रदान की है। यह अवसर केवल सभोग का नही, मगल का भी है, अत मगल खील—वह भी प्रचुर हृदय मे समाने वाले उद्वेगो की ध्वनि है—भावातिरेक (Ecstacy) की व्यजना है। अश्रात अर्चना मे पूजा की अनवरतता है। बिंब मे चाक्षुषता के साथ रग, रूप, मद भी है और सबसे महत्वपूर्ण है—बिंब का शुभ्र पवित्र होना। प्रसाद का यही वैशिष्ट्य है कि वासना के उद्दीपन मे भी शुभ्रता है, आलोक है।

## (६) प्रकृति की सजीव पात्रता का चित्र

चिंता से लेकर आनद सर्ग तक काव्य की सपूर्ण पृष्ठभूमि प्रकृति के रम्य पटल पर है। प्रसाद के लिए प्रकृति केवल सत् या असत् रूपा नही, आलबन या उद्दीपन मात्र नही—वह 'शरीर त्व शम्भो'[1] है। यही कारण है कि वह एक सजीव पात्र के रूप मे कथा को गतिशील करती है, कथा के लिए मार्मिक पटभूमि बुनती है, पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ व द्वद्वो को स्पष्ट मुखरता देती है। कथा एव पात्र-सापेक्ष प्रकृति के बिंबो के अतिरिक्त भी कामायनी महाकाव्य मे प्रकृति का एक ऐसा रूप है जो स्वतत्र पात्र के रूप मे चित्रित है। ऐसे रूप पर यद्यपि

आलवनत्व का आरोप किया जा सकता है, पर प्रसाद ने इन बिंबो मे प्रकृति का जो रूप खीचा है वह कुछ भिन्नता व वैशिष्ट्य लिये हुए है—वह विशुद्ध प्राकृतिक बिंब नही, प्रकृति के पात्रत्व का बिंब है। जैसे—

> निकल रही थी मर्म वेदना
> करुणा विकल कहानी सी
> वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही
> हँसती सी पहचानी सी।
> (चिता सर्ग)

जलप्लावन के पश्चात् मनु की मर्मवेदना के रूप मे विकलती हुई पृथ्वी की करुण-विकल कहानी को परिचिता प्रकृति सुन रही है। प्रकृति ही वहा एकमात्र श्रोतृ है—एक सवेदनशील वधु। उसका 'हसती सी' सुनना अनुभव मे मानो नवीनता नही, उसने तो इस प्रकार की जलप्लावन की घटनाए अनेक बार देखी है।

> अरी आँधियो ! ओ विजली की
> दिवा रात्रि तेरा नर्तन,
> उसी वासना की उपासना,
> वह तेरा प्रत्यावर्तन।
> (चिता सर्ग)

विजली की आधियो का दिन-रात निरतर अक्षुण्ण नृत्य क्योकि प्रकृति की चेतावनी की उपेक्षा की गयी और वासना की पूजा उतनी ही तल्लीनता से होती रही। आज वही प्रकृति प्रलय के रूप मे लौट कर आयी है। नाटक मे जिस प्रकार कोई अलौकिक पात्र आकर सावधान कर जाता है और अवज्ञा किये जाने पर क्रुद्ध रोषपूर्ण घातक रूप मे पुन. मच पर प्रकट हो जाता है।

> सध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग विखरते थे,
> शैल घाटियो के अचल को वे धीरे से भरते थे,
> तृण गुल्मो से रोमाचित नग सुनते उस दु ख की गाथा,
> श्रद्धा की सूनी सासो से मिलकर जो स्वर भरते थे।
> (स्वप्न सर्ग)

नील सरोरुह सध्या जो अपने श्याम पराग को प्रकृति मे चारो ओर फैला रही है और ऐसे धूमिल वातावरण की क्रोड मे स्थित नग श्रद्धा की विरह-व्यथा को सुन रहे हैं, उसके प्रति सवेदनशील होकर उसकी सूनी सासो मे अपना स्वर मिला रहे हैं। 'श्याम पराग का विखरना' अधकार का क्रमश घना होना है। शैल घाटियो के अचल को धीरे से भरना अर्थात् अधकार का सर्वत्र प्रसारित होना। तृणगुल्मो से रोमाचित नग—पर्वतो का सवेदना के कारण रोमाचित होना। 'सूनी सासो मे स्वर भरना'—पवन की मद गति है। यहा पर वातावरण की उदासी गहन है, पराग तो है पर वह अधकार के रूप मे आने के कारण गधहीन है। बिंब मे एक आत्मीयता का रूप उभरता है जो अपने किसी सबधी की दु'ख-गाथा को अपनत्व से सुन रहा है।

मासल सी आज हुई थी
हिमवती प्रकृति पाषाणी,
उस लास रास मे विह्वल
थी हँसती सी कल्याणी।
(आनद सर्ग)

कल्याणी प्रकृति का यह बिंब है जिसमे वह एक पात्र के रूप मे सजीव होकर आनद के लास रास मे अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही है। आज वह हिमवती पाषाणी नही, जड स्थिर नही—मासल है, सशरीर चैतन्य है जो आनद-विह्वल होकर नृत्य तो कर ही रही है, मगल व कल्याण की मूर्ति भी है। प्रकृति मानो साक्षात् पार्वती है जो शिव के साथ लास्य कर रही है। नृत्य को लास्य बताकर कवि ने वातावरण के आनद व उल्लास को कोमलता से पुष्ट किया है।

## (७) रात्रि के विविधवर्णी बिंब

कामायनी महाकाव्य के प्रकृति-बिंबो मे रात्रि के बिंबो का अपना अनूठा वैशिष्ट्य है। सारा महाकाव्य साझ और रात के कुहक से, उसकी मोहिनी रूपसज्जा से भरा है। कवि अविश्रात भाव से रात के चित्र पर चित्र उभारता चलता है—उसके नये रूप हैं, उसकी नयी आलोक रेखाए हैं, उसके नये विभ्रम कटाक्ष हैं, उसकी अपूर्व रगदीप्ति है। 'आशा सर्ग' मे 'जब कामना सिंधु तट आई' से आरभ होकर यह वर्णन अभिसारिका-रूपगर्विता, शुभ्रवर्णा, विभ्रम विलासवती, मुस्कुराती मुग्धा नायिका, गर्व-गहीली मदोन्मत्ता, सौम्य शात रमणीयता, तीव्र विरागमयी युवती के विविध चित्रो को समेटता चलता है। कुछ चित्र—

किस दिगत रेखा में इतनी
सन्चित कर सिसकी सी साँस,
यो समीर मिस हाँफ रही सी
चली जा रही किसके पास।
(आशा सर्ग)

शुक्लाभिसारिका नायिका के रूप मे रात्रि का यह बिंब है जो साहस एकत्रित करके प्रिय से मिलने के लिए दौडती हुई, हाफती हुई निर्धारित स्थल पर प्रियतम से मिलने जा रही है। 'दिगत रेखा मे सिसकी सी सास का सचय' दिन-भर विरह-दग्ध आहो को रोककर—क्योकि वह अभिसारिका है। दिन मे प्रियतम से मिलने का अवकाश नही। 'समीर मिस' से पवन प्रवाह का बोध होता है।

विकल खिलखिलाती है क्यो तू
इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर,
तुहिन कणो, फेनिल लहरो मे,
मच जावेगी फिर अंधेर।
(आशा सर्ग)

रूपगर्विता यौवनोन्मत्त नायिका को रात्रि के इस बिंब मे रूपायित किया गया है। विकल मे यौवन की अधीरता, खिलखिलाने मे उन्मत्त अल्हडता, इतनी हसी मे सीमाहीन उल्लास व्यक्त

है। नायिका के इस रूप का प्रभाव इतना उद्दीपक होगा कि सब पर समान रूप से जादू का असर होगा—अबेर मच जावेगी। चादनी रात का यह चित्र है, ज्योत्स्ना ही उसकी हसी है। ज्वार समुद्र मे तो आयेगा ही, ओस की बूदो मे भी आयेगा, यही अबेर मचना है।

घूंघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती सी आती
विजन गगन मे किसी भूल सी
किसको स्मृति पथ मे लाती।
(आशा सर्ग)

घूघट उठाकर देखना, मुस्कुराना, फिर ठिठककर रुक जाना, फिर सहसा किसी प्रिय को स्मृति पथ पर लाना—नायिका की विविध भाव-भगिमा अकित है। यह भावो का गतिशील चित्र है जिसमे विविध व्यापार एक ठिठक मे समीकृत हो गये हैं। घूघट उठाकर मुस्कुराने और ठिठकने मे साथ आनेवाली सखी को वही रुक जाने का सकेत भी ध्वनित है।

रजत कुसुम के नव पराग सी
उडा न दे तू इतनी धूल,
इस ज्योत्स्ना की, अरी बावली!
तू इसमे जावेगी भूल।
(आशा सर्ग)

रूपगर्विता का यह उन्मादक चित्र है। रजत कुसुम—चाद के नव पराग अर्थात् ज्योत्स्ना के समान अपरूप सौंदर्य है उसका। 'अरी बावली' सबोधन मे सौंदर्य रूपगर्विता प्रत्यक्ष है जिसे इतना भी होश नही कि वह क्या कर रही है—सौंदर्य इतना अधिक बिखेर रही है कि दूसरे तो क्या वह स्वय ही बेसुध हो रही है। 'ज्योत्स्ना की धूल' कहकर कवि ने उसके सौंदर्य की पराकाष्ठा व्यजित की है। मुग्धा नायिका के रूप-गर्व के ये मुग्ध चित्र हैं।

फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली!
देख, अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली भाली।
(आशा सर्ग)

यह यौवन मे उन्मत्त युवती का बिंब है जो फटे हुए वस्त्र पहनकर नि सकोच भाव से चली जा रही है और उसके अगो का स्वाभाविक सौंदर्य उसमे से झाक रहा है। इधर-उधर खडे रूप लोभी व्यक्ति उसके सौंदर्य का उपभोग कर रहे है। पगली नायिका की बेसुध गति इसमे है। उसे अपने वस्त्रो का ध्यान नही—नीले आकाश रूपी वस्त्र के फटने से ही ज्योत्स्ना विकीर्ण हो सकी है। कवि की यह कल्पना अनूठी है।

इतना ही नही 'कामायनी' के कई सर्गों मे रात्रि का अद्भुत चित्रण है। काम भी रजनी के पिछले पहरो मे तारो का फूल बिखेरता, निशा की अलसाई अलको मे छिपकर आता है। वासना सर्ग मे भी रात का अतहीन जादू है—मधु बरसती विधु किरण, राग रजित चद्रिका तथा मिलन की यामिनी का चित्र है। लज्जा सर्ग मे कही गोधूली का धूमिल पट है

तो कहीं नीरव निशीथ की लतिका। 'इडा' मे जीवन निशीथ का अधकार है और दर्शन मे चद्रहीन रात। इस प्रकार कामायनी महाकाव्य मे रात्रि के विविध बिंब उभरे है जिन्होने उसकी बिंब-सर्जना को लावण्य से मडित किया है।

अत मे, कामायनी का प्रकृति-चित्रण यद्यपि वाल्मीकि की तरह स्वच्छ विस्तीर्ण एव सश्लिष्ट नही; भवभूति जैसा आख्यानी का सजीव विषम वर्णन नही, बाणभट्ट जैसा अलकृत एव सपूर्ण परिवेश को आकार देनेवाला नही, कालिदास की रमणीय परपरा मे भी होकर उनकी जैसी तन्मयता, रूपविभा नही, उसमे न भक्तिकाल की उपदेश परपरा है न रीति-काल का वस्तु परिगठन, तथापि कामायनीकार ने अपने बिंबो मे जिन प्राकृतिक उपकरणो को सजोया है उनमे उन तत्त्वो की प्रमुखता है जो नित्य हैं, शाश्वत हैं, सार्वभौम है, सार्व-कालिक हैं। महाकवि ने परम व्योम, अतरिक्ष, ग्रह, नक्षत्र तारो के अनेक बिंब बनाये हैं जो देश-काल की सीमाओ के परे भी सवेद्य है। धरती के उपादानो मे हिमालय के भव्य चित्र है। वस्तुत 'कामायनी' का रगमच ही हिमालय है, मानसरोवर, सरस्वती, लता, वृक्ष, पुष्प। इतना ही नही जीवन के विराट-लघु, करुण-उल्लसित, आशा-निराशा, मादक-सयमित, राग-विराग के क्षणो को प्रकृति के माध्यम से कवि ने बिंबायित किया है। प्रकृति का सौंदर्य और उससे उभरती सौंदर्य की प्रकृति 'कामायनी' की कातिमान चेतना है जिसमे प्राकृतिक बिंब क्षणे-क्षणे रमणीय हो गये हैं।

## पाद-टिप्पणी

१ सृष्टि के विकास का एक तत्त्व, परमात्मा की परा शक्ति, परम शिव की विभूति, पुरुष पुरातन की चिर सहचरी, शिव का शरीर।

# ५

# कामायनी की रस-सृष्टि और विंव योजना

कामायनी मानव-चेतना का अतर्मुख महाकाव्य है—उथल-पुथल आतरिक अधिक है, उसकी बाह्य व्यजना कम। काव्य की अतर्भूमिका मे अनेक भावो का आलोडन-विलोडन है। कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म अतर्वृत्तियो, आवेगो, सवेगो, अनुभूतियो, भावचक्रो, विचारो को साक्षात्कृत कर उनको शब्दो, चित्रो, तरल विंवो, व्यग्यगर्भी ध्वनि-रूपो मे व्यक्त किया है। ये चित्र उदात्त हैं, गभीर हैं, रमणीय हैं, मधुर हैं, तरल हैं और मानस लहरो से स्पदित हैं।

प्रसाद रसवादी थे—उनका रसवाद साहित्य व दर्शन के सगम विंदु पर स्थित है। इसमे दर्शन के आनद के साथ एक ओर शृगार है तो दूसरी ओर शात।[1] कामायनी का शृगार मन की सूक्ष्म भावनाओ से तरगित है। यहा शात रस परपरागत शम-प्रधान निषेधमूलक नही—काम के धर्मा विरुद्ध रूप से आवेष्टित आमोद-प्रमोदमय आनद की चरम परिणति है—जहा सब कुछ समरस है।[2]

कामायनी की रस-सृष्टि को विंवो के सदर्भ मे दो दृष्टियो से विवेचित किया जा सकता है—

(क) परपरागत शास्त्रीय दृष्टि

(ख) अमूर्त सवेगो के मूर्तिकरण की आधुनिक दृष्टि।

(क) यो तो शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर कामायनी मे शृगार व शातमय आनद रस के अतिरिक्त भी कुछ एक रसो को खोजा जा सकता है पर विंवो के सदर्भ मे शृगार व शात के ही विंव कामायनी मे आद्यत व्याप्त हैं। अगी रस की दृष्टि से विचार करने पर महाकाव्य का अगी रस आनद रस ठहरता है।[3] इस आनद रस के व्यापक स्वरूप मे एक ओर शृगार है तो दूसरी ओर शात। यहा शृगार और शात का विरोध नही—यहा ये केवल सजातीय ही नही अभिन्न अग हैं, एक व्यापक तत्त्व की दो रसाभिव्यक्तिया हैं। प्रसाद के आनद रस मे शक्ति के साथ प्रेम का योग है जिसमे पडितराज जगन्नाथ का रमणीय सौंदर्य एव वैष्णव भक्तो का माधुर्य भाव अनुस्यूत है।

महाकाव्य के अगीरस का बिंबात्मक विवेचन हमारा विषय है जिसमे श्रृगार के दोनो पक्षो, शात एव आनद रस के बिंबो का अनुशीलन अपेक्षित है। कामायनी मे श्रृगार के भी दो रूप हैं—१ देव-सृष्टि मे श्रृगार का स्वरूप जिसे प्रलयोपरात मनु याद करते हैं, तथा २. मनु-श्रद्धा का मिलन और बाद मे वियोग। देव विलास के सभोग चित्र बहुत गहरे, उष्ण गध और मादक स्वरो मे मूर्त हैं। ये चित्र मासल होते हुए भी स्मृतिजन्य होने के कारण इनमे ध्वस के विषाद की रेखा चारो ओर व्याप्त है। श्रृगार के सगीत से मुखरित, शिल्प के लाघव से सुष्ठु ये उद्दाम चित्र वातावरण की उदासी से अधिक प्रभविष्णु हो गये हैं—

> चलते थे सुरभित अचल से
> जीवन के मधुमय निश्वास,
> कोलाहल मे मुखरित होता
> देव जाति का सुख विश्वास।
> (चिंता सर्ग)

देवताओ के अनवरत विलास का यह चित्र है—सुरभित अचल से जीवन के मधुमय निश्वास का चलना—देवागनाओ के सकेत पर ही जीवन के विलासमय रूप का व्यतीत होना ध्वनित है। सुरभित अचल—ये देव कामनिया साधारण नारी नही—विलास के वैभव से पूर्ण मादक हैं। देव जाति को अपने सुख की, भोगो की अनवरतता का पूर्ण विश्वास था—उनका यह विश्वास आनद-उल्लास के कोलाहल मे स्पष्ट था। 'कोलाहल' शब्द का प्रयोग भोग की अतिशयता को ध्वनित करता है। एक समुदाय का चित्र प्रत्यक्ष है, जहा सब अपनी ही आलाप रहे हैं—व्यक्तिगत जीवन का यह चित्र है। बिंब मे चाक्षुपता कम, ध्वनि, रूप, गध एव रस अधिक है।

> कुसुमित कुजो मे वे पुलकित
> प्रेमालिंग हुए विलीन;
> ..............................
> अब न कपोलो पर छाया सी
> पडती मुख की सुरभित भाप,
> भुजमूलो मे शिथिल वसन की
> व्यस्त न होती है अब माप।
> (चिंता सर्ग)

सयोग श्रृगार का यह एक समृद्ध उद्दाम चित्र परिणति की भयकरता से अधिक प्रत्यक्ष हो गया है। कुज पुष्पो से खिले हैं—चिर वसत की यह व्यजना है, वातावरण की मादकता ध्वनित है। आलिंगन केवल प्रेमालिंगन ही नही—वे पुलक से रोमाचित हैं, रोम-रोम का उत्तेजक तरगन यहा व्यक्त है। कपोलो पर मुख की सुरभित भाप से छाया पडना, कपोलो की उज्ज्वल कातिमयता तो है ही, आकुल प्रगाढ चुबन का सकेत भी है। 'भाप' शब्द ने उच्छ्वसित देवताओ को मूर्त किया है। मिलन वेला मे वक्षोजो से वस्त्रो का हटना—वसन की शिथिलता व व्यस्तता के रूप मे मिलन की प्रगाढता, उत्तेजना की आकुलता, अगो की अनग पीडा एकसाथ चित्रित है। बिंब मे चाक्षुपता है, रूप है, रस है और गध है।

> ककण क्वणित, रणित नूपुर थे
> हिलते थे छाती पर हार,

मुखरित था कलरव गीतों में
स्वर लय का होता अभिसार।
(चिंता सर्ग)

यह ध्वनि-बिंब है जिसे स्वर और लय के अभिसार में संगीत के माधुर्य से मंडित किया गया है। अंग-प्रत्यंग की पूर्ण तृप्ति इस संभोग चित्र में मूर्त है। रति वेला का यह बिंब उसके संपूर्ण क्रियाव्यापार में संवलित है—क्वणित कंकण, रणित नूपुर, छाती पर हार का हिलना। संगीत के मधुर तरल वातावरण में स्वर और लय के अभिसार के रूप में नायक-नायिका का मिलन व्यंजित है। 'अभिसार' शब्द में उत्कट संभोगेच्छा स्पष्ट है।

वह अनंग पीड़ा अनुभव सा
अंग भंगियों का नर्तन,
मधुकर के मरंद-उत्सव सा
मदिर भाव से आवर्तन।
(चिंता सर्ग)

देव और देव का, कामिनियों के हाव-भाव की व्यंजना का यह बिंब पुष्ट रेखाओं में उभरा है। 'अंगभंगि यों का नर्तन' में आंतरिक कामोद्रेक की बाह्य व्यंजना है। एक चित्र प्रत्यक्ष है—नृत्य उत्सव में नर्तकी द्वारा आकर्षक मुद्राओं की अभिव्यक्ति। अंगों की विविध चेष्टाओं के द्वारा अनंग पीड़ा के अनुभव को व्यक्त करना। संभोग का सांकेतिक आमंत्रण व्यंग्य है। अंतिम पंक्तियों में मदिरा में उन्मत्त होकर झूमना और प्रेमिकाओं के साथ मादक उत्सव में भाग लेना। इसे स्पष्ट करने के लिए प्रसाद ने वसंत का एक अप्रस्तुत खींचा है—वसंतोत्सव में जिस प्रकार भौंरे फूलों के रस का पान करते हुए मधुर गुंजार के साथ झूमते हैं। 'मदिर भाव से आवर्तन'—मदिरा में बेहोश, कामातुर युग्मों का झूमना। बिंब में चाक्षुषता के साथ ध्वनि और रंग तो है ही—हाव-भाव, हेला भी प्रत्यक्ष है।

अरी उपेक्षा भरी अमरते
री अतृप्ति निर्बाध विलास।
द्विधा रहित अपलक नयनों की
भूख भरी दर्शन की प्यास।
(चिंता सर्ग)

देवता मानो शरीर नहीं—केवल अतृप्ति, एक जलता हुआ संवेग मात्र थे जिसमें निर्बाध विलास की अनवरत धारा प्रवाहित थी। द्विधा रहित अपलक नयन—ऐसी आंखों का चित्र है जिसमें काम की उद्दाम लालसा ने संयम, संकोच, मर्यादा सबको समाप्त कर दिया है। वे अपलक भाव से, बाधाहीन गति से वासना सरिता में डूबना चाहती हैं। 'द्विधा रहित' में यह भी ध्वनित है कि रूप को केवल देखना ही नहीं चाहतीं—अंतिम बूंद तक भोगना चाहती हैं। 'भूख भरी दर्शन की प्यास'—देवताओं की वासना भरी, रूप-प्यासी, भोगदृप्त अपलक आंखें। 'भूख भरी' में संभोग की तीव्र इच्छा ध्वनित है, मानो देव विलास के शत-शत चित्र इनमें सिमट गये हैं। विलास का यह बिंब अद्भुत है जिसमें केवल आंखों के ही द्वारा भीतर की प्यास को उसकी संपूर्ण भयंकरता के साथ स्पष्ट किया गया है।

मनु-श्रद्धा के संयोग बिंबों में एक क्रमिक विकास है—प्रथम दर्शन के मुग्ध भाव से

आरभ होकर ये बिंब प्राकृतिक उद्दीपन, अनुभावो की सश्लिष्ट योजना, नायिका का मान और नायक का नर्ममय उपचार तथा सभोग के रूप मे पूर्ण परिपक्वता पाते हैं—

**प्रथम दर्शन की मुग्धता—**

कौन तुम ? ससृति जलनिधि तीर
तरगो से फेंकी मणि एक
. ... . . .... . ....... .. ...........

एक झिटका सा लगा सहर्ष
निरखने लगे लुटे से
. . . .... .. . ....... ... .

कौन हो तुम बसत के दूत,
विरस पतझड मे अति सुकुमार
घन तिमिर मे चपला की रेख
तपन मे शीतल मद बयार।
(श्रद्धा सर्ग)

एकाकी मनु को देखकर श्रद्धा केवल परिचय ही नही पूछती। 'तरगो से फेंकी मणि एक' मे तेजस्वी पुरुष के कातिमय व्यक्तित्व के प्रति नारी की सहज मुग्धता भी है। प्रश्न का प्रभाव मनु पर भी अनोखा होता है। 'झिटका सा लगा सहर्ष' और 'लुटे से निरखने लगे' मे मनु के मन की मुग्धता के साथ जीवन मे नयी स्फूर्ति, नूतन उत्साह का सचार उसके मन, शरीर, प्राण सब मे व्याप्त हो जाता है। पतझड से जीवन मे सुकुमार आशा का सचार—केवल मुग्ध भाव ही नही स्वय प्राणो का सचार है। अधकार मे प्रकाश की किरण और तप्त जीवन मे शीतल बयार। बिंब मे दोनो का मुग्ध भाव है जिसे मणि की प्रभा, कोकिल के सगीत, चपला की रेखा और मद बयार ने प्रत्यक्ष गोचरता के साथ काति, सगीत, ज्योति और मधुर स्पर्श से मडित किया है।

**प्रकृति का उद्दीपन रूप : राग की प्रगाढ़ता—**

अरुण घन की सजल छाया मे दिनात निवास
और उसमे हो चला जैसे सहज सविलास
मदिर माधव यामिनी का धीर पद-विन्यास।
. . ...

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
. . . . . . . . ....

शिथिल अलसाई पडी छाया निशा की कात
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रात।
उसी झुरमुट मे हृदय की भावना थी भ्रात
. . . .. . . . ............ ..

तुम समीप अधीर इतने आज क्यो है प्राण ?
.. . .. . ..... ..... . . ...........

मनु निरखने लगे ज्यो-ज्यो यामिनी का रूप
वह अनत प्रगाढ छाया फैलती अपरूप,
बरसता था मदिर कण-सा स्वच्छ सतत अनत
मिलन का सगीत होने लगा था श्रीमत।

(वासना सर्ग)

सध्या के समय अरुण घन की सजल छाया मे किरणो का डूबना, वातावरण को एक नीरव प्रगाढता के साथ मिलन का अवसर भी देता है। 'अरुण घन'—सध्या की अरुणाई और आत-रिक राग का उद्रेक दोनो व्यग्य हैं। सजल छाया—तरलित-तरगित उमग। सध्या के इस वातावरण मे रात्रि रूपी नायिका का सविलास पद-सचार एक मादक उल्लास का निर्माण करता है। मदिर माधव यामिनी—वसत की मोहक मधुर रात—प्रेमियो के लिए सबसे आकर्षक समय। और फिर रात के उस ज्योत्स्ना चर्चित रूप मे भला हृदय के प्रेम को प्रगाढता कैसे न मिले ? 'देवदारु निकुज गह्वर' सभी प्रेमसुधा मे डूबकर मधुयामिनी का उत्सव मनाते हैं। प्रकृति के इस व्यापक उल्लास एव रससिक्त वातावरण मे मनु व श्रद्धा की प्रारभिक मुग्धता का वासना के उद्रेक मे रूपातरण होता है। लता के झुरमुट मे रात्रि की छाया रति-श्रात नायिका की तरह ओस की शीतल सेज पर विश्राम कर रही है—उसी 'झुरमुट' मे वासना-अभिभूति उस वातावरण मे मनु व श्रद्धा दोनो का मन अटक गया। 'झुरमुट मे श्रात' अद्भुत प्रयोग है जो दोनो के हृदय की ललक को एकात मिलन की लालसा को रूपायित करता है। तुम समीप हो फिर भी प्राणो मे अधीरता क्यो ? प्रश्न क्या है—हृदय की वासना और मिलन की अभिलाषा का मूर्त रूप है। और फिर रात्रि के साथ-साथ, अध-कार की घनता और उसका अपरूप माधुर्य, मिलन के सगीत का समृद्ध होना स्वाभाविक है।

यह चित्र वातावरण की सपूर्ण उत्तेजक मादकता को उसके अपार वैभव के साथ प्रस्तुत करता है। मानवीकरण के द्वारा इसमे प्रखर चाक्षुपता आ गयी है और ज्योत्स्ना की शुभ्राभा ने इसे उल्लास से पूरित किया है। बिंब मे ध्वनि है, लय है, प्रकाश है और सबसे अधिक मिलन की तीव्रता, राग की प्रगाढता है।

**रूठी हुई श्रद्धा और मनु का नर्ममय उपचार—**

जिसका था उल्लास निरखना
वही अलग जा बैठी

जीवन की उद्दाम लालसा
उलझी जिससे व्रीडा
एक तीव्र उन्माद और मन
मथने वाली पीडा,

अनुनय वाणी मे, आँखो मे
उपालभ की छाया,

........ ............... ..... .

अरी अप्सरे! उस अतीत के
नूतन गान सुनाओ
..... .............. ...... ... ...

वही करूँगा जो कहती हो
सत्य, अकेला सुख क्या ?
यह मनुहार रुकेगा प्याला
पीने से फिर मुख क्या ?
(कर्म सर्ग)

श्रद्धा का यह मान किसी रीतिकालीन नायिका का ईर्ष्यामान नही—यहा पर किसी अन्य नायिका के प्रति क्षोभ और उपालभ भी नही। यह तो पशुबलि से उद्भूत अथाह पीडा और करुणा से उत्पन्न एक मानसिक विरक्ति है। इस विरक्ति एव वितृष्णा की भूमिका मे भी अतर की प्यास और जीवन की लालसा मुखर है। 'उलझी जिससे व्रीडा' मे अवश्य लज्जाजन्य सकोच के रूप मे समर्पण की बाधा ध्वनित है। मनु अत्यत विनीत एव दीन भाव से अतीत के नूतन गान के लिए श्रद्धा से अनुनय करते हैं। वही करूगा जो कहती हो—पुरुष का वाक्छल अधिक है। काम से अभिभूत पुरुष की यह छल चातुरी है। श्रद्धा अपने हृदय की उद्दाम लालसा से पराजित, मनु की वाणी पर विश्वास कर सोमपान करती है। इन पक्तियो मे बिंब नही बन पाया है, न इसमे मिलन की तीव्रता है न हृदय की तरलता। मान-मनुहार सभी यान्त्रिक-सा लगता है।

**अनुभावो की योजना—**

छूते थे मनु और कटकित
होती थी वह बेली,
......................... .....

जलदागम मारुत से कपित
पल्लव सदृश हथेली
(कर्म सर्ग)

रोमाच, स्वेद और कंप सात्विक अनुभावो का सश्लिष्ट चित्र प्रसाद ने खीचा है। वेली के कटकित होने मे रोमाच की कोमलता एव अतर की तरलता ध्वनित है। इसी प्रकार श्रद्धा की हथेली को पल्लव से उपमित कर और बरसाती आर्द्र हवा से उसे कापती बताकर स्वेद एव कप की नियोजना की गयी है।

**संभोग का बिंब—**

कुचल उठा आनन्द, यही है
बाधा, दूर हटाओ,
.. .... ........................

और एक फिर व्याकुल चुबन
रक्त खौलता जिससे,

. .. .................. ........ .

दो काठो की सधि बीच उस
निभृत गुफा मे अपने,
अग्निशिखा बुझ गई, जागने
पर जसे सुख सपने
(कर्म सर्ग)

'कुचल उठा आनद'—वासना की चरम सीमा मे लज्जा की बाधा के कारण हृदय की तिलमिलाहट और तडप का भयकर दश ध्वनित है। एक चित्र आता है—साप पर किसी का पैर पड जाने से वह जिस प्रकार एकदम दश मारने के लिए फन उठा लेता है—मनु की यही दशा है। व्याकुल चुम्बन के विशेषण विपर्यय द्वारा प्रसाद ने दोनो के हृदय की व्याकुलता को व्यजित किया है। अतिम पक्तियो मे रति का चित्र है जिसे प्रसाद ने अत्यत साकेतिकता से अभिव्यक्त किया है। चित्रण का यह कौशल कवि की अभिव्यक्ति का चरम विकास है जहा पर सभोग की अश्लीलता का लेश भी नही—'अग्निशिखा बुझ गयी' के सकेत से काम वासना से शमित हो जाने को ध्वनित किया गया है। बिंब मे काम का उद्रेक चरम सीमा मे रूपायित है—यहा चाक्षुपता कम सवेदनात्मकता अधिक है।

**विरहिणी श्रद्धा के बिंब—**

वियोग शृगार के चित्र कामायनी मे सयम व विवेक के बोझ से दब गये हैं—उसमे हृदय की तडप, अत करण की व्याकुलता, मिलन का उन्माद समग्रता से रूपायित नही। कुछ ही चित्र पीडा से मर्माहित-मूर्छित हैं—

एक मौन वेदना विजन की झिल्ली की झनकार नही,
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा एक कसक साकार रही
हरित कुज की छाया भर थी वसुधा आलिगन करती
वह छोटी सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नही।
(स्वप्न सर्ग)

विजन की मौन वेदना, एक साकार कसक, हरित कुज की छाया मात्र, छोटी-सी विरह नदी जिसका पार नही—विरह की दशाए यहा बिंबित हैं। हृदय की स्तब्धता, शरीर की कृशता, अत करण की टीस, निस्सबलता एव घोर आतरिक व्यथा प्रकट है। 'साकार कसक' अच्छा प्रयोग है, श्रद्धा मानो मानवी नही, हृदय की कसक ही साकार हो गयी है। वेदना की गहनता और अतर की टीस की चरम व्यजना है। 'अस्पष्ट उपेक्षा' मे भी श्रद्धा की शारीरिक कृशता और कातिहीन मुखमडल की व्यजना है। बिंब मे स्पष्ट चाक्षुपता है, मौन निस्तब्धता है, गहन वेदना है। रेखाए पुष्ट हैं जिनमे एक आकृति उभरकर प्रत्यक्ष हो जाती है।

वियोग शृगार के प्रवासजन्य विरह और मिलन की मधुर स्मृतियो का बिंब प्रसाद ने खीचा है—

वे कुछ दिन जो हँसते आये अतरिक्ष अरुणाचल से,
फूलो की भरमार स्वरो का कूजन लिये कुहक बल से

फैल गयी जब स्मिति की माया किरन कली की क्रीडा से,
चिर प्रवास मे चले गये वे आने को कह कर छल से
(स्वप्न सर्ग)

सुख के मिलन क्षण अतरिक्ष अरुणाचल से आये—ये वही स्वर्गिक क्षण हैं जो धरती पर स्वर्ग से उतरते हैं। मिलन सुख की लोकोत्तरता व्यजित है। फूलो की भरमार और कूजन का कुहुक—वासती वातावरण और मनोभाव का चरम उल्लास प्रकट करते हैं। 'किरन कली की क्रीडा' मे रति सुख व्यजित है और 'स्मिति की माया' मे आनद की वाह्य पूर्णता उद्भासित है। ऐसे मिलन के दुर्लभ मधु क्षण चले गये। 'छल से' के प्रयोग मे मनु की वचक प्रवृत्ति के साथ विरहिणी श्रद्धा का आतरिक क्षोभ भी मूर्त है। चित्र मे मिलन के क्षणो ने विरह को अधिक गहन एव करुण बनाया है। बिंब मे चाक्षुपता कम है, सवेदनात्मकता अधिक जिसे फूलो के भरमार स्वरो का कूजन एव किरन कली की क्रीडा ने रग, ध्वनि एव गति से मडित किया है।

किंतु न आया वह परदेसी
युग छिप गया प्रतीक्षा मे

तथा

भरा रह गया आँखो मे जल
बुझी न वह ज्वाला जलती।
(स्वप्न सर्ग)

चर प्रतीक्षा मे रत श्रद्धा का यह चित्र है जिसमे हृदय की अपार वेदना और घोर निराशा मूर्त है। 'किंतु न आया वह परदेसी'—सीधे शब्दो की यह पक्ति श्रद्धा के मर्माहत अत.करण को मानो खोलकर रख रही है। 'युग छिप गया प्रतीक्षा मे'—विरह की लबी अवधि व्यजित है। इसी प्रकार आखो मे अनवरत जल ने भी उस ज्वाला को नही शमित किया। प्रिय की स्मृति मे निरतर अश्रुपात करती श्रद्धा और अत करण की तप्त व्यथा स्पष्ट है। 'ज्वाला' शब्द मे वासना की तडप भी सकेतित है जो प्रिय की अनुपस्थिति मे पीडित कर रही है।

'कामायनी' के अंगीरस 'आनद रस' का दूसरा पक्ष शात रस है जिसके बिंब काव्य मे सारस्वत सभ्यता के विनाश के पश्चात् उसकी विध्वस-भूमि पर आये हैं। यह निर्वेद का एकदम प्राथमिक स्तर है जो विनाश की परिस्थिति से उत्पन्न है। श्मशान वैराग्य की यह क्षणिक अनुभूति आगे के सर्गों मे परिपक्व होती गयी और जीवन-रहस्यो के परिचय के पश्चात् निर्वेद स्थायी भाव की शात रस मे निष्पत्ति होती है। निर्वेद का पहला चित्र है—

आँख बद कर लिया क्षोभ से
दूर दूर ले चल मुझको,
. ......... .. . ..
मुक्त नील नभ के नीचे या
कही गुहा मे रह लेंगे।
(निर्वेद सर्ग)

बिंब नही बना है, पर मनु के मन की वितृष्णा स्पष्ट है। भौतिक उन्नति के प्रति विरक्ति की

भावना को ये पंक्तियां स्पष्ट करती हैं। मनु के मन में अभी यह विराग सतही है और यही कारण है कि वह श्रद्धा को पुनः छोड़ देते हैं। आनंद सर्ग में शिव-दर्शन के पश्चात्, सत्य के तात्विक रूप को जानने के पश्चात् मनु के मन में शुद्ध निर्मल ज्ञान का उदय होता है और शांत रस के परिपाक की सही भूमिका बनती है। चित्र है—

यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक, दे निज संबल;
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनंद वेश।
(दर्शन सर्ग)

सत्य के प्रकाश में, चिति के उज्ज्वल स्वरूप में शिव के मंगलमय चैतन्य के प्रकाश में सब पाप-पुण्यों का समाहार होना और फिर उन चरणों तक पहुंचने की ललक—मनु की निर्वेद भावना को ऊर्ध्व गति मिलती है। यहां दार्शनिकता और अलौकिकत्व ने बिंबों की काव्यात्मकता को क्षरित किया है। सब एक असाधारण, अमानवीय धरातल पर घटित हो जाता है। निर्वेद की भावना का परिपाक एवं शांत रस की निष्पत्ति रहस्य सर्ग में इच्छा, क्रिया और ज्ञान के संश्लेषण के बाद होती है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म थे
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

शांत रस की यह ऐसी निष्पत्ति है जहां केवल प्रशांतता एवं अंतर्बाह्य तन्मयता है। हृदय की सभी वृत्तियों का चरम रूपांतरण यहां है—सारी वृत्तियां शमित हो गयी हैं और असीम शांति की अवतारणा है।

शृंगार और शांत के वैभव से मंडित मोद-प्रमोदमय आनंद रस का रूप अंतिम सर्ग में है। यहां आनंद व उल्लास में शृंगार तथा शांत दोनों ही निमज्जित हैं—आनंद अंबुनिधि शोभन ही यहां अंतिम रूप है। वसंत के रूपक द्वारा इस आनंद रस को प्रसाद ने कई बिंबों में बहाया है—

अति मधुर गंधवह बहता
परिमल बूंदों से सिंचित
सुख स्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रंजित।
. ... ... .
वल्लरियां नृत्य निरत थीं
बिखरीं सुगंध की लहरें,
.............. ... ...
उन्माद माधव मलयानिल

दौडे सब गिरते पडते;
.. . . . . ... .. ........
हिमखड रश्मि मडित हो
मणि दीप प्रकाश दिखाता,
जिनसे समीर टकरा कर
अति मधुर मृदग बजाता।
...... ..... ... .....
चेतनता एक विलसती
आनद अखड घना था।

(आनद सर्ग)

बसत ऋतु के प्राकृतिक उपादानो के रास नृत्य की योजना से प्रसाद ने अखिल विश्वव्यापी आनद को मूर्त किया है। बिब मे परिमल बूदो की तरलता है, केसर रज की स्निग्धता है, नृत्य का लय है, मुरली की ध्वनि है, सगीत की मूर्च्छना है, मृदग का लयात्मक ताल है, मोद है, उल्लास है, आनद है, और सबसे ऊपर अखड चैतन्य तथा सपूर्ण आनद। शैवागमो के आनद महारास के इस बिब मे कामायनी के आनद रस को प्रसाद ने मूर्त किया है। रागमयी चिति की आनद सत्ता के अनुरूप ही अनुरजित विश्व रूप मे यह अभिव्यक्ति है, आनद सत्ता का यह बहिर्मुख उच्छलन है। कामायनी महाकाव्य का यह अलौकिक एव दिव्य अश है जहा सबकी परिणति आनद मे होती है। शक्ति के साथ प्रेम का योग प्रसाद के आनद रस की अपनी विशेपता है—कामायनी उसी आनद के स्वर को मुखरित करती है।

अमूर्त सवेगो एव विकारो की मूर्त रसात्मक अनुभूति और अभिव्यक्ति कामायनी की रस-सृष्टि का एक विशिष्ट अग है। प्रसाद के इन बिबो मे केवल अमूर्त को मूर्त ही नही बनाया गया है अपितु उन्हे प्राण, स्पंदन, रग व छवि की दीप्ति, गति, वाणी भी मिली है। मनोविकारो के मूर्तिकरण की शृखला मे पहला सवेग चिंता है जिसे प्रसाद ने सचारी के लघु परिवेश से हटाकर एक सपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान किया है। चिंता के अतर्बाह्य स्वरूप उसके साथ आने वाले अनेक विकार, उसका प्रभाव सभी यहा बिबो मे रूपायित है—

ओ चिंता की पहली रेखा
अरी विश्व बन की व्याली
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण
प्रथम कप सी मतवाली
. . . .
री ललाट की खल लेखा
...... .
तरल गरल की लघु लहरी
... ..
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी
. . . . . . ....
हृदय-गगन मे धूमकेतु सी
पुण्य सृष्टि मे सुदर पाप।

(चिंता सर्ग)

चिंता के विनाशकारी प्रभाव के लिए व्याली और ज्वालामुखी का विस्फोट उचित प्रयोग है। यह चिंता का सर्वांगीण एव सर्वग्रामी रूप है। प्रसाद ने उसके मानवीकरण के द्वारा बिंब को अद्भुत चाक्षुपता प्रदान की है। यह सचारी नही, मानव जाति की अभिशप्त नियति है—ग्रह-कक्षा की हलचल, हृदय-गगन मे धूमकेतु, तरल गरल की लहरी, व्याधि की सूत्रधारिणी आदि शब्दो का प्रयोग उसके घातक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। ये उपादान धरती, आकाश, समुद्र, जीवन सभी से जुटाये गये हैं। एक-एक शब्द मे एक-एक बिंब की सम्यक् योजना हो गयी है ललाट की खल लेखा—दुर्भाग्य की सूचना स्पष्ट है। तरल गरल की लघु लहरी—धीरे-धीरे जीवन को समाप्त कर देनेवाली। चिंता का इतना सर्वग्रामी, जीवन को विश्रृंखलित एव ध्वस्त कर देनेवाला आत्मघातक रूप प्रथम बार रूपायित हुआ है। चिंता का एक उज्ज्वल पक्ष भी है—

> बुद्धि मनीषा मति आशा, चिंता
> तेरे हैं कितने नाम।
>
> (चिंता सर्ग)

मानव जाति के लिए चिंतन, निर्णय एव मनन तथा शोध-मधान की भूमिका भी यही चिंता है जहा ज्ञान-विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है।

आशा हृदय की उल्लासमयी प्रेरक एव स्फूर्तिदायिनी वृत्ति है। प्रसाद ने उसके रहस्यमय प्रेरक स्वरूप को विवित किया है—

> यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
> सदय हृदय मे अधिक अधीर
> . ... . . ...
> यह कितनी स्पृहणीय बन गयी
> मधुर जागरण सी छविमान।
>
> (आशा सर्ग)

आशा स्वप्न है क्योकि उसका एक सुनिश्चित आकार नही होता, पर यह स्वप्न डरावना या भयानक नही, मधुर है जो अपने झिलमिल करते आकर्षक मोहक आवरण मे लिपटा है—एक रमणीय दृश्य के समान आशा चित्रित है। सवेदनशील हृदय ही इसकी अनुभूति कर सकते हैं और अत करण मे इस वृत्ति के उदय होते ही कुछ अच्छा करने के लिए मन अधीर हो उठता है 'सदय हृदय मे अधिक अधीर'—यह सृजन के लिए एक उमग पैदा करती है। आशा के कर्म-प्रेरक स्वरूप का यह बिंब है।

आशा का स्वरूप मधुयामिनी के समान मोहक और लुभावना है 'मधुर जागरण सी छविमान'— भीतर की स्फूर्ति एव उल्लास रूपायित है। यही कारण है कि सबके हृदय मे इसकी ललक रहती है—यह स्पृहणीय है। स्वरूप मे यह आशा स्फूर्तिदायिनी होने के कारण मुख की रेखाए कोमल उल्लसित हो जाती हैं—'स्मिति की लहरो' के समान उठना और 'मधुमय तान' की तरह नाचना—अत करण पर पडनेवाले प्रभाव की व्यजना है। स्मिति की लहर—एक छोटी-सी अनुभूति पर दूसरे ही पल फैल जाती है लहरो की तरह। मधुमय तान के नाचने मे विशेषण विपर्यय द्वारा प्रसाद ने स्पष्ट किया है कि आशा से रोम-रोम उल्लसित हो जाता है—पूर्ण अस्तित्व मे एक मधुर झकृति का अनुभव होता है। बिंब मे

चाक्षुषता है, वर्ण है, ध्वनि है, लय है, सगीत है, मादक मोहक छवि है।

आशा का एक और बिंब शुद्ध रागमयी वृत्ति के रूप मे प्रसाद ने खीचा है—

> व्यक्त नील मे चल प्रकाश का
> कपन सुत बन बजता है,
> एक अतीन्द्रिय स्वप्न लोक का
> मधुर रहस्य उलझता है।

सवेदनात्मक बिंब मे अनुभूति की प्रगाढता एव रहस्यमयता है। आशा के रहस्यमय प्रकाश-स्वरूप अतीद्रिय रूप को व्यक्त करने के लिए प्रसाद ने एक अनूठे अप्रस्तुत की कल्पना की है—जिस प्रकार वीणा के तार अगुलियो के कोमल स्पर्श से झकृत होते हैं उसी प्रकार आकाश मे चद्रमा की चचल किरणो के तार किन्ही अज्ञात हाथो द्वारा झकृत हो रहे हैं—यही झकार मनु के हृदय मे आनद बनकर मुखरित हुई है। इस दुहरे आरोपण ने बिंब को आशा की ही तरह रहस्यमय बनाया है। 'अतीद्रिय सुख'—इसकी केवल अनुभूति ही हो सकती है, इद्रियो की सीमा से यह परे है। 'चल प्रकाश का कपन सुख' आशा की प्रतिपल परिवर्तित वृत्ति और उसे उत्पन्न आतरिक सिहरन व्यक्त है। आशा का यह रागमय, रहस्यमय, मधुर बिंब है जो उल्लास से तरगित एव स्पदित है।

श्रद्धा महाकाव्य की नायिका है, प्रतीक की दृष्टि से वह मन की प्रतीक है। यो श्रद्धा एक प्रगाढ निष्ठा एव आस्तिक्य भावना भी है जो मन सवेग के रूप मे उभरती है। मन की यह प्रगाढ निष्ठा मनुष्य को जीवन के प्रति आस्थावान बनाती है और दु ख को भी एक मगलमय साधन के रूप मे ग्रहण करने की शक्ति देती है। प्रसाद ने इस निष्ठा भावना को रूपायित किया है—

> यही दु ख सुख विकास का सत्य
> यही भूमा का मधुमय दान
> . .. . .
> व्यथा की नीली लहरो बीच
> बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।
>
> (श्रद्धा सर्ग)

बिंब अच्छा नही बना है—केवल व्यथा की नीली लहरो और द्युतिमान मणिगण मे काव्यात्मकता उभरी है और चाक्षुषता मिली है। समुद्र का दृश्य प्रत्यक्ष है।

काम एक ऐसी वृत्ति है जो सबके हृदय मे उद्रिक्त होती है। मन सवेगो मे सबसे अधिक प्रभावशाली और व्यापक रूप इसका है। कामायनी महाकाव्य मे इसे मूर्तता प्रदान करने के लिए विविधवर्णी बिंबो की नियोजना हुई है। कामायनी का काम आनद, मगल एव शक्ति का स्रोत है। उसके मागलिक प्रेरक रूप और भौतिक वासनात्मक रूप—मनोवैज्ञानिक सामाजिक भूमिका पर बिंबित है। वसत आगमन के रूप मे प्रसाद ने काम के उन्मेप और उसके आतरिक आवेगो को व्यजित किया है—

> मधुमय वसत जीवन वन के
> वह अतरिक्ष की लहरो मे

कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले प्रहरों में।
. . . . . . . .
जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना।

(काम सर्ग)

काम का उन्मेष वसंत आगमन के समान मादक मधुर होता है—यह एक अभिनव रहस्य-मयी अनुभूति है, जो पहले कभी नहीं हुई थी। अंतरिक्ष की लहरों से बहकर आने में—उसकी तरलता व स्निग्धता तो है ही, उद्गम की अज्ञेयता भी है। अंतरिक्ष शब्द के प्रयोग ने काम के व्यापक अलौकिक रूप को स्पष्ट किया है और बिंब को विराट उदात्तता। रजनी के पिछले प्रहरों में चुपके से आना—किशोरावस्था के आगमन के साथ हृदय में इस वृत्ति का अचानक उन्मेष, साथ ही भावनाओं के गोपन की प्रवृत्ति रूपायित है। 'लीला में सीखना'—इसमें आमोद-प्रमोदमय आनंद के अतिरेक का चित्र है। 'शिथिल सुरभि' एक प्रकार का मादक प्रभाव जो चेतना को शिथिल करता है। 'बिछलन न हुई थी'—इसके प्रभाव से कोई अछूता नहीं बचता। काम का यह बिंब प्रकृति के विशाल फलक पर रूपायित है। बिंब में चाक्षुपता के साथ रंग, ध्वनि, गंध एवं स्पर्श भी है।

वासना काम के उन्मेष का वाह्य प्राकट्य है। वासना को प्रसाद ने बिंबों के माध्यम से प्रत्यक्ष किया है—

धमनियों में वेदना सा रक्त का संचार
हृदय में है काँपती धड़कन लिये लघुभार
. . . . . . . . . . . . . . .
अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह
और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह
. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .
छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रांत
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत
वातचक्र समान कुछ था बाँधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।

(वासना सर्ग)

वासना के तीव्र उद्रेक का यह बिंब है जिसमें हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, रक्त संचार की गति तीव्र हो जाती है, हृदय में कंपन होती है, मधुर मादक प्रतीति का भार महसूस होता है। यह वेदना-मिश्रित आनंद की अनुभूति है। बिंब में वास्तविकता है—आनंद के उद्रेक एवं उद्दाम-प्रचंड रूप में एक प्रकार का अवसाद अवश्य रहता है। यह ऐसा दाह है जिसमें मनुष्य स्वेच्छया जलता है और जलकर सुख का अनुभव करता है। अग्निकीट की उपमा अद्भुत है—उत्साह-उल्लास के साथ जलना और फिर भी जीवित रहना। अंतिम पंक्तियों में वासना के स्फोट का प्रभाव प्रखर स्पष्ट रेखाओं और ध्वनियों में व्यक्त है।

एक-एक शब्द आकुल व्यक्ति का चित्र खीचता है। यह बिंब हिंदी साहित्य मे अनूठा है। वासना से अभिभूत व्यक्ति का स्वरूप उसकी सपूर्ण विकलता, अशाति, आतुरता, उत्तेजना, जलन, मादकता के साथ व्यक्त है।

वासना के उद्रेक से नारी मे सहज लज्जा का स्फुरण होता है। प्रसाद ने लज्जा के स्वरूप एव प्रभाव को मूर्त किया है—

गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू लता थी कान तक चढती रही बे-रोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदब-सा था भरा गद्गद बोल।
(वासना सर्ग)

लज्जा के सचार के साथ ही पलको का गिरना, सिर का झुक जाना, भौहो का बाकपना, कर्णमूलो का लाल होना, कपोलो का स्फीत होना, रोमाच होना और वाणी का स्खलित होना—सभी यहा रूपायित हैं। चित्र मे एक लज्जारुणा नारी प्रत्यक्ष है जिसे अगो की मुद्रा ने एकदम रेखाकित किया है। यह आकृति-बिंब लज्जाजन्य सभी भावो को अपने मे समेटे है। इसी प्रकार—

पुलकित कदब की माला-सी
पहना देती हो अतर मे,
... ... ...........

सब अग मोम से बनते है
कोमलता मे बल खाती हूँ
... ... ...........

स्मित बन जाती तरल हँसी
आँखो मे भरकर बाँकपन
(लज्जा सर्ग)

मन का सकोच, कार्य-व्यापारो मे शिथिलता व जडता के साथ रोमाच और स्मिति की तरलता भी है। अगो की कोमलता, पलको का झुकना, कलरव परिहास की ध्वनियो का अस्फुट हो जाना, हसी का अधरो पर ही रुक जाना, मन मे कसक उठना—सभी वृत्तियो का रूपायन प्रसाद ने अत्यत प्रभावशाली ढग से किया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रभावो की व्यजना के लिए बिंब का वैभव यहा है।

इनके अतिरिक्त मन विक्षोभ एव ईर्ष्या के बिंब भी 'कामायनी' मे हैं—

अरी नीच कृतघ्नते पिच्छल शिला सलग्न
मलिन काई सी करेगी हृदय कितने भग्न
... ... ...... .. . .. . .. .

किन्तु यह क्या ? एक तीखी घूँट हिचकी आह !
कौन देता है हृदय मे वेदनामय डाह।

प्रसाद की 'कामायनी' मे रस-सृष्टि के इस अभिनव पक्ष मे जो बिंब सर्जित है वे काव्य कौशल, रमणीय कल्पना, कवि प्रतिभा एव सूक्ष्म सवेदन से उद्भूत है। उनमे सजीव स्पदन है, चाक्षुपता

है, ध्वनि है, रग है, गति है, नूतनता है और प्रखर प्रभविष्णुता है। ये कवि के रसबोध का उसके सपूर्ण वैभव के साथ प्रत्यक्ष करते हैं।

प्रसाद के रसबोध मे उनका युगबोध एकाकार है। उनकी रसाभिव्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है—किसी भी एक अनुभूति का निराविल और अमिश्र न होना। यही पर प्रसाद का युगबोध एव यथार्थवादी दृष्टि प्रत्यक्ष है। नायक मनु मे यह प्रवृत्ति सबसे प्रखर है जो ठीक भी है क्योकि वह आदि मानव और आज के मनुष्य के रूप मे विकसनशील पात्र है। श्रद्धा आदर्श पात्र होने के कारण उसकी वृत्तिया विकसित और एकोन्मुख है। मनु की मन स्थिति का द्वद्वात्मक रूप महाकाव्य का प्रभावशाली अग है, उसके रस-निरूपण का प्राण है। वह कभी भी किसी एक अनुभूति को, एक रस को पूरी तरह स्वायत्त नही कर सकता। मिलन के सुख मे विषण्ण स्मृतिया एक कसक पैदा करती है और भीषण जलप्लावन के बीच भी वह मधुर मिलन को याद करता है।

चिंता सर्ग मृत्यु की छाया के बीच भी 'ककण क्वणित रणित नूपुर' से ध्वनित है और 'उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित, मधुप सदृश निश्चित विहार' की सुखद मादक मधु भीगी स्मृतियो से सुरभित है। विराट जब हेम घोल रहा है और आशा रूपी विजयिनी उषा सारी प्रकृति को अपनी सुनहली रश्मियो से रग रही है, उस समय जिजीविषा के वरदान के बीच मनु मरने की बात सोचते हैं—

देव बता दो अमर वेदना लेकर कब मरना होगा

'अमर वेदना लेकर मरना'—अनूठी व्यजना है, वेदना शाश्वत है, वही जीवन का चिर सत्य है। इसी प्रकार 'घूघट उठाकर मुसक्याती' रजनी बाला के अपूर्व रूप सभार को वह नही सभाल पाते और ऐसे मादक-उल्लसित सौदर्यपूर्ण वातावरण मे ज्योति चिह्नो के रूप मे मनु को छाती के दाग दिखाई पडते है। कभी वह द्विधाग्रस्त हो पूछते हैं—

प्रेम, वेदना या भ्राति या कि कुछ ?

श्रद्धा को पाने के बाद भी मनु सब कुछ पाकर भी जीवन से काली छाया को हटा नही पाते। श्रद्धा के मधुर मारुत से उच्छ्वास मनु के मानस मे उत्साह की अबाध तरग उठाते हैं, पर दूसरे ही क्षण विषाद की एक छाया उस सुखद मधुर अनुभूति को धूमिल कर देती है—

किन्तु जीवन कितना निरुपाय
. . ..... ..
निराशा है जिसका परिणाम

मनु के जीवन मे काम उभरता है। चारो ओर मिलन के चारु चित्र फैल जाते हैं। रस, रूप, शब्द, स्पर्श, गध की माधुरी से अतरिक्ष पृथ्वी सभी स्नात हैं—यहा पर मनु बीच-बीच मे—

कहते कहते कुछ सोच रहे
लेकर निश्वास निराशा की

वासना सर्ग के गहन, सान्द्र, मादक, तरल व मधुर वातावरण मे गहरे रंगो के भीतर नारी की युग-युगीन व्यथा गूज रही है—

आह मैं दुर्बल, कहो क्या ले सकूँगी दान
वह, जिसे उपभोग करने मे विकल हो प्राण।

लज्जा सर्ग के अनेकानेक रमणीय बिंबो के बीच रति का वैधव्य दु ख फूटकर बहा है—

बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति सी सचित हो,
अवशिष्ट रह गयी अनुभव मे
अपनी अतीत असफलता सी,
लीला विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता सी।

इसी प्रकार जीवन निशीथ के निविड अधकार मे, डरावनी काली छाया के बीच मनु मादकता का अनुभव करते हैं—

कितना मादकतम निखिल भुवन भर रहा भूमिका मे अभग
......... ............... ...... ....... ... . ......
ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है जिसमे ज्योति कला

स्वप्न सर्ग मे विरह वेदना के भीतर दार्शनिक चितना की एक प्रखर अतर्धारा प्रवाहित है। विरह की घडियो मे श्रद्धा दु ख-सुख के रहस्य को समझना चाहती है—

जीवन मे सुख अधिक या कि दु ख मदाकिनी कुछ बोलोगी ?
नभ मे नखत अधिक सागर मे या बुद्‌बुद हैं गिन दोगी ?
प्रतिबिंबित हैं तारा तुममे सिंधु मिलन को जाती हो,
या दोनो प्रतिबिंब एक के इस रहस्य को खोलोगी ?

निर्वेद सर्ग मे इडा घायल मनु की परिचर्या कर रही है—वह उसका अपराधी है, स्वत्व अपहृत करनेवाला है। उससे इडा घृणा करती है पर कही पर हृदय के किसी कोने मे उसके लिए ममता की भावना है—

घृणा और ममता मे ऐसी
बीत चुकी कितनी रातें।

इस प्रकार 'कामायनी' की रस-सृष्टि एक मिश्र अनुभूति से आप्यायित है। इसकी रसभूमिका ऋजु व निराविल नही—यहा एक सवेग अपने सीधे-सरल रूप मे मूर्त नही, उसका उलझा हुआ सश्लिष्ट रूप बिंबित है। अतिम परिणति या निष्पत्ति को छोडकर सारा काव्य न तो चद्रिका से शून्य है न भीमा रजनी से। यही जीवन-सत्य उसकी नग्न वास्तविकता कामायनी के रस-बिंबो का वैभव है। साधारणीकरण की दृष्टि से भी सवेगो के बिंब अधिक प्रेषणीय एव सवेद्य बने है। रसग्रहण मे अभेदमय सामरस्य-प्रसूत आनद रस के बिंबो का आस्वाद प्रमाता से एक विशिष्ट मानसिक भूमिका की माग करता है जिससे साधारणीकरण मे बाधा पहुचती है, किंतु सवेगो के चित्रण मे वास्तविकता एव मूल मानवीय वृत्तियो का निरूपण होने के कारण बिंबो से तादात्म्य सद्य हो जाता है। कामायनी के रस-बिंबो का यह पक्ष अनूठा है। यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि एक ही बिंब मे विजातीय रसो के निरूपण को उचित

नही मानती, फिर भी कामायनी का वैभव इसी द्वद्वात्मक चित्रण मे ही है। यो भी कामायनी की रस-सृष्टि को कठोर शास्त्रीय आधार पर विवेचित नही किया जा सकता, क्योकि यह चेतना के विकास का महाकाव्य है और मानव चेतना अपने आप मे एक सकुल जटिल सरचना है।

इस शास्त्रीय ऊहापोह से हटकर जब हम 'कामायनी' काव्य के प्रकृत रूप का अध्ययन करते हैं तो पदे-पदे रसानुभूति से भीग उठते हैं। छद पर छद हृदय की तरल हिलोरो एव भावनाओ से उद्रिक्त होकर चारु बिंब राजि की अद्भुत अनूठी सृष्टि करते हैं।

## पाद-टिप्पणियां

१ "शैवागम के आनद सप्रदाय के रसवादी रस की दोनो सीमाओ—शृगार और शांत को स्पर्श करते थे।"
—जयशकर प्रसाद 'काव्य कला और अन्य निबध', पृष्ठ ७२

२ समरस थे जड या चेतन
सुदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनद अखड घना था।
—कामायनी (आनद सर्ग)।

३ डा० नगेन्द्र 'कामायनी के अध्ययन की समस्याए', पृ० ३५।

# ६

# कामायनी की बिंब-सृष्टि और काव्येतर विषय

'कामायनी' प्रसाद की प्रतिभा का प्रौढतम प्रयोग मात्र नही, मात्र छायावाद की सर्वश्रेष्ठ कृति नही—वह एक ऐसी महनीय रचना है जिसने हिंदी साहित्य को विशालता, उत्तुगता एव गभीरता के उच्चतम शिखरो से मडित किया है। भारतीय वैदिक वाड्मय पुराण और इतिहास को प्रसाद की कवि-प्रतिभा व सृजनात्मक कल्पना ने एक ऐसा सश्लिष्ट रूप प्रदान किया है जिसने दर्शन की उच्चता एव मनोविज्ञान की सूक्ष्मता को एकसाथ स्पर्श किया है। यह मानव चेतना का अप्रतिम महाकाव्य है जो कलात्मक एव सकलनात्मक महाकाव्यो से पृथक् एक अभिनव लावण्य के साथ मानव-जीवन की विकास प्रक्रिया एव उत्कृष्टतम उपलब्धि को रूपायित करता है। मानव के आत्मविकास और आत्मविस्तार का युगपत् रसमय निरूपण कामायनी का लक्ष्य है। इसके लिए कवि न तो माइकल मधुसूदन की भाति परपरागत समस्त मान्यताओ को अस्वीकार ही करता है और न ही पाश्चात्य महाकाव्यो का अधानुकरण। वह द्विवेदी-युगीन प्रबध-काव्यो की भाति राम और कृष्ण के आख्यान को लेकर पुनरुत्थानवादी दृष्टि से उनकी स्थल व्याख्या भी नही करता, बल्कि इतिहास-पुराण की स्थूल घटनाओ मे निहित भाव-सत्यो को खोजकर शाश्वत जीवन-मूल्यो के रूप मे प्रतिष्ठित करता है जिसमे 'युग-युग के पुरुषो व पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति हो सके।'

सपूर्ण महाकाव्य मे, ऐसा लगता है मानो एक द्रष्टा काल के अनत प्रवाह को स्तिमित नेत्रो से देख रहा है—मानव-जीवन के गतिशील परिवर्तन के क्षणो को आत्मसात् कर रहा है, उन पर विचार कर रहा है और एक नये मार्ग का अनुसधान कर रहा है जिससे इन सब परिवर्तनो के भीतर से किसी अपरिवर्तनीय तत्त्व तक पहुचा जा सके। विज्ञान, मनोविज्ञान व दर्शन की भूमिकाओ के बीच कवि मानव-जीवन की एक अखड अनुभूति करता है। इतिहास, पुराण, सस्कृति, मिथक, कला, दर्शन, मनोविज्ञान, विज्ञान सभी जीवन के विविध पटल हैं—मानव जीवन के लिए समर्पित हैं, इनमे न विरोध है, न व्युत्क्रम, न व्यवधान। प्रसाद ने मानव की सपूर्ण बोधात्मक, सौंदर्यात्मक एव विचारात्मक उपलब्धियो के सार-सचय से विजयिनी मानवता की भव्य मूर्ति को तूफानो के बीच अडिग भाव से खडा किया है। यह एक सश्लिष्ट कृति है जिसमे इतिहास पुराण-प्रेरित है; आदर्श यथार्थोन्मुख है तथा यथार्थ आदर्शोन्मुख, मनो-

विज्ञान ने काव्य को गहराई दी है और काव्य ने मनोविज्ञान को तरलता, बुद्धि ने भावना को सयमित व ऊर्जस्वित बनाया है तो भावना ने बुद्धि को श्रद्धान्वित किया है, दर्शन ने काव्य को उत्तुगता दी है और काव्य ने दर्शन को जीवन का गतिमय स्पर्श। विरुद्ध धर्माश्रयी उपादानो का अपरूप लावण्य कामायनी के बिंबो मे स्फुट है।

भूमिका मे कवि के अत साक्ष्य के आधार पर भी यह स्पष्ट है कि 'कामायनी' मे इतिहास व पुराण मे निहित सामूहिक चेतना के आख्यान को मानवता के विकास तथा मानव के मनोवैज्ञानिक इतिहास की प्रतिष्ठा के लिए नियोजित किया गया है—

"आर्य साहित्य मे मानवो के आदिपुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों मे बिखरा मिलता है। परतु उसके इतिहास की सीमा जहा से आरभ होती है ठीक उसी के पहले सामूहिक चेतना की दृढ और गहरे रगो की रेखाओ से बीती हुई और भी पहले की बातो का उल्लेख स्मृति-पट पर अमिट रहता है।' 'यदि श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो वह भी बडा श्लाघ्य और भावमय है।'' यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने मे समर्थ हो सकता है।"[1]

इस अध्याय मे हम 'कामायनी' महाकाव्य की ऐतिहासिक, पौराणिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक विचार-सरणियो को बिंबो के सदर्भ मे आकलित करेंगे।

## इतिहास-पुराण-संस्कृति

'कामायनी' मे जातीय मिथको, सास्कृतिक स्वर्णयुगो की एक कलात्मक सृष्टि प्रतीको एव बिंबो के माध्यम से की गयी है। मनुष्य का इतिहास और इतिहास का दर्शन यहा काव्य के स्तर पर निर्मित है। इतिहास का व्यापक प्रतीकीकरण, समाज का सूक्ष्म अमूर्तीकरण और मानव चेतना का गूढ रूपकत्व 'कामायनी' मे बिंबो के माध्यम से स्फुट है।

यद्यपि महाकाव्य की घटनाओ मे कुछ ही घटनाए इतिहास-सम्मत हैं, पर इसमे मनु के माध्यम से सपूर्ण मानव जाति का इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो मनुष्य के सुदूर भूत से आरभ होकर भावी इतिहास के अतिम चरम तक विस्तारित है। इतिहास-सम्मत घटना केवल जलप्लावन और एक नाव मे मनु की रक्षा तक ही सीमित है। कुछ बिंब—

प्रलय के चित्र—

हाहाकार हुआ क्रदनमय<br>
कठिन कुलिश होते थे चूर<br>
हुए दिगत वधिर, भीषण रव<br>
बार-बार होता था क्रूर।<br>
दिग्दाहो से धूम उठे, या<br>
जलधर उठे क्षितिज तट के।<br>
... ... ... ...<br>
अधकार मे मलिन मित्र की<br>
धुंधली आभा लीन हुई<br>
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा<br>
स्तर-स्तर जमती पीन हुई।

............... . ..     ...

प्रहर दिवस कितने बीते, अब
इसको कौन बता सकता।
... ... .................

काला शासन-चक्र मृत्यु का
कब तक चला न स्मरण रहा।
(चिंता सर्ग)

प्रलय की घटना इन पक्तियो मे बिंबित है जब केवल मृत्यु ही मृत्यु चारो ओर थी। अधकार का ही शासन चल रहा था—प्रलयकालीन मेघो ने रवि-शशि-तारो को घनघोर रूप से आच्छादित किया था। न तो दिशा का ज्ञान था और न ही समय का। पता नही यह विनाश लीला कब तक चलती रही, पर इस विनाश लीला, सामूहिक सहार मे मनु बच जाते हैं—

एक नाव थी और उसमे
डाडे लगते, या पतवार,
तरल तरगो मे उठ गिर कर
बहती पगली बारबार।
किन्तु उसी ने ला टकराया
इस उत्तर गिरि के शिर से,
देव सृष्टि का ध्वस अचानक
श्वास लगा लेने फिर से।
(चिंता सर्ग)

चित्र मे ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मात्र ही मिलता है—काव्यात्मक स्पर्श यहा केवल 'बहती पगली बारबार' तथा 'देव सृष्टि का ध्वस अचानक ' पक्तियो मे है। पहली पक्ति मे पगली सबोधन ने नाव की लघुता और दिशाहीनता तथा प्रलय की विकरालता को स्पष्ट किया गया है तथा दूसरी मे मनु के जीवित बच जाने की व्यजना। अचानक सास लेने मे एक अप्रत्याशित घटना की ध्वनि है जो ठीक भी है क्योकि इस प्रलय मे कोई जीवित रहे यह असंभव नही था।

इतिहास की इन घटनाओ से 'कामायनी' की ऐतिहासिकता को आकना न तो सभव है न उचित ही। प्रसाद इतिहास को केवल घटना नही मानते थे। इतिहास उनके लिए एक व्यापक शब्द है जिसमे पुराण-कथा भी अपनी कुतूहलवर्धक घटनावली को छोडकर विश्वसनीय रूप धारण कर लेती है। वे सत्य का अर्थ घटना नही मानते थे अपितु उन घटनाओ मे निहित भावसत्यो की प्रतिष्ठा चिरतन सत्य के रूप मे करना ही उन्हे ऐतिहासिक बोध लगता था। यही कारण है कि प्रसाद का ऐतिहासिक बोध घटनाओ की अपेक्षा सूक्ष्म भावो मे अधिक स्पष्ट है और उनके ऐतिहासिक बोध का सपूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला यह बिंब 'कामायनी' के उदात्त बिंबो मे से है—

चेतना का सुदर इतिहास
अखिल मानव भावो का सत्य,

विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरो से अंकित हो नित्य।
(श्रद्धा सर्ग)

'नित्य अंकित होना' काल की शाश्वतता है, तथा 'विश्व के हृदय पटल पर' उसकी सार्वभौमता का द्योतक है। यहा इतिहास एक ओर 'चेतना', प्रज्ञा या बोध मे युक्त है तो दूसरी ओर 'सुदर' कला की रमणीयता से मडित। हृदय पर अंकित होना उसकी अतर्मुखी भावात्मक सत्यता है जिसका दिव्य अक्षरो मे अंकित होना ही उसका अमरत्व है।

प्रसाद का यह इतिहास-बोध प्रागैतिहासिक मिथकीय काल मे लेकर महाकाल तक का ग्रहण करता है जिसमे आदिम मनुष्य से लेकर मानव के मानस का अभिधान है। नायक मनु की कथा गुहावासी युग से आरभ होकर वैज्ञानिक युग तक चलती है और अपनी इस ऐतिहासिक यात्रा मे वेद, पुराण, मिथक की नाना जातीय मान्यताओ को मानवीय सस्कृति की उच्च भूमिका पर रूपायित करती चलती है। 'कामायनी' मे पौराणिक, सास्कृतिक बिंबो का वैभव सर्वत्र बिखरा है—

अरी उपेक्षा-भरी अमरते!
री अतृप्ति! निर्बाध विलास!
द्विधा-रहित अपलक नयनो की
भूख भरी दर्शन की प्यास!
(चिन्ता सर्ग)

देवो के भोग-विलास एव अहवाद की कथा हमारी मिथकीय पौराणिक मान्यताओ मे विशिष्ट है। प्रसाद ने उनकी भोगपरक, विलासप्रिय जीवन-दृष्टि को इस बिंब मे रूपायित किया है। 'अरी उपेक्षा भरी अमरते!' सबोधन मे देवताओ का दभ तथा सारी शक्तियो के प्रति उपेक्षा की भावना तो मूर्तित है ही, 'अमरते' मे एक प्रकार का उपहास तथा व्यग्य भी है। 'री अतृप्ति! निर्बाध विलास' के भाववाचक रूप ने उन्हे केवल अतृप्ति एव विलास का आकार दे दिया है—वे केवल विलास थे। आगे की दोनो पक्तिया भी उनके निश्चित विहार एव अनवरत भोग का चित्र खीचती हैं।

ललक रही थी ललित लालसा
सोम-पान की प्यासी
जीवन के उस दीन विभव मे
जैसी बनी उदासी।
(कर्म सर्ग)

इस पौराणिक बिंब मे देवताओ की सोमपान की प्रवृत्ति का निरूपण है। ललित लालसा का ललकना' इस प्रवृत्ति को काव्यात्मक उत्कर्ष दे रहा है। इसी प्रकार जीवन के 'दीन विभव' मे मनु की सोमपान करने की प्यास और उसकी तृष्णा स्पष्ट है। यज्ञ के समुचित उपकरणो का अभाव सोमपान के मार्ग मे बाधक था, अत 'दीन विभव' जो उदासी बन गयी थी। यहा मनु उदास नही, विभव उदासी है, देवो का वैभव समाप्त है।

वेदी की निर्मम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी

मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी ।
(कर्म सर्ग)

यज्ञमूलक आर्य सस्कृति का विकृत रूप—जहां पशुओ की हत्या अपनी तृप्ति के लिए की जाने लगी थी। बिंब मे सारा वातावरण एक घिनौनेपन से भरा है। 'वेदी की निर्मम प्रसन्नता'—मानो कोई क्रूर व्यक्ति किसी की हत्या करके प्रसन्न हो रहा हो। इस क्रूरता को, वातावरण के कुत्सित-घृणित रूप को 'पशु की कातर वाणी' ने अधिक स्याह और घृणास्पद बना दिया है। एक ओर कातर वाणी जीवन की याचना है तो दूसरी ओर सुविचारित हत्या कर्म की क्रूरता। दोनो अतिवादी भावनाओ ने वातावरण को ही कुरूप व घिनौना बना दिया है—मानो कोई बीभत्स-गर्हित प्राणी हो। बिंब मे बीभत्स चाक्षुपता प्रत्यक्ष है जो कि कातर ध्वनि से दारुण बन गया है।

नील गगन से भरा हुआ
यह चद्र कपाल लिये हो,
इन्ही निमीलित ताराओ मे
कितनी शान्ति पिये हो।
(कर्म सर्ग)

विषपायी शिव का यह बिंब है। समुद्र-मथन के समय शिव ने हलाहल का पान किया था—इसी पौराणिक मान्यता को प्रसाद ने रात्रि के इस प्रकृति चित्र मे आरोपित किया है। अनत वेदना से भरे आकाश मे कोई परम शिव बैठा हुआ, चद्र के कपाल मे लोक-कल्याण के लिए विषपान कर रहा है। 'चद्र कपाल' मे शिव द्वारा कपाल मे विप पीने का चित्र प्रत्यक्ष है। शिव की कल्पना भारतीय मनीषा मे हलाहल पान करनेवाले योगी के रूप मे हुई है। प्रसाद ने इसे ही 'निमीलित ताराओ' मे शाति पीने की बात कहकर व्यजित किया है। यह कोई ध्यानस्थ योगी है जो बद नेत्रो से शात-सौम्य भाव से कल्याण व मगल के लिए विप पी रहा है। चित्र मे विष के साथ मगल की एक सर्वव्याप्त ध्वनि है जिसे आकाश की अनतता एव ताराओ के निमीलन ने अधिक उदात्त व गभीर बना दिया है। चित्र मे रग, आकृति की विराटता स्पष्ट है।

लीला का स्पदित आह्लाद
वह प्रभा पुज चितिमय प्रसाद,
आनदपूर्ण ताडव सुदर,
झरते थे उज्ज्वल श्रम-सीकर,
बनते तारा, हिमकर दिनकर
उड रहे धूलिकण से भूधर,
सहार सृजन से युगल पाद—
गतिशील अनाहत हुआ नाद।
(दर्शन सर्ग)

शिव-ताडव के विनाशी रूप से हमारी मिथकीय पौराणिक भावना बहुत गहरे प्रभावित है, प्रसाद ने यहा पर ताडव मे ही शिव के 'सृष्टि सहार कर्तार, विलय स्थिति कारक'—दोनो

रूपो का युगपत् निरूपण किया है। वह ताडव रूप मे भी आह्लाद, ज्योति और चित्र मे सवलित है। शिव के ताडव का मागलिक-ज्योतित रूप यहा स्पष्ट है। शिव के इस आनदपूर्ण नृत्य के श्रम से जो श्रमबिंदु झर रहे हैं उन्ही से तारागण, चद्रमा, सूर्य का निर्माण हो रहा है। उनके चरणो की प्रचड गति एव प्रहार से पर्वत धूलिकणो की तरह उड रहे हैं। 'युगल पाद' सृष्टि एव ध्वस का कार्य युगपत् कर रहे हैं। 'अनाहत नाद' मे सगीत के विविध स्वरो का मुखरण वातावरण को सगीतात्मकता एव मोहकता प्रदान कर रहा है। सारा ब्रह्माड एक दिव्य सगीत, आह्लाद व उल्लास से परिपूर्ण है। 'अनाहत नाद'—योगियो की समाधि-स्थिति जहा उन्हे दिव्य आतरिक सगीत सुनाई पडता है। प्रसाद ने उसे व्यक्ति स्तर से ऊपर उठाकर समष्टि स्तर तक व्याप्त किया है।

शिव-ताडव मे सृजन व सहार दोनो प्रक्रियाओ के चित्रण मे शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा का प्रभाव है। चित्र मे चाक्षुप गोचरता के साथ तीव्र गत्यात्मकता है, विराटता है।

यही त्रिपुर हैं देखा तुमने
तीन बिंदु ज्योतिर्मय इतने
(रहस्य सर्ग)

पुराणो के त्रिपुर राक्षस की कथा को प्रसाद ने भावगाथा के रूपक मे ढाल दिया है। यहा पर काव्य-बिंब नही बन पाया है केवल पौराणिक कथा का प्रतीकीकरण मात्र हो गया है।

महाज्योति रेखा सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौडी उनमे,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमे।
(रहस्य सर्ग)

त्रिपुर दाह का यह चित्र पौराणिक आख्यान के त्रिपुर दाह से प्रेरित है जिसमे शिव के अग्नि-बाण से राक्षस जलता है। यहा पर प्रतीक रूप मे त्रिपुर को तीन वृत्तियो के विश्लिष्ट रूप मे चित्रित कर श्रद्धा की मगलमयी मुस्कान से उनके पृथक् अस्तित्व को समाप्त कर उन्हे सश्लिष्टता दी गयी है। 'महाज्योति रेखा' मगल एव प्रकाश की सूचक है तथा 'ज्वाला जाग उठी थी' कहकर प्रसाद ने शिव के अग्निबाण के खुलने का सकेत किया है।

प्रसाद का यह ऐतिहासिक-पौराणिक बोध सस्कृति के उदात्त एव अवदात्त आदर्शों की भूमिका पर स्थित है। यह एक ऐसी भूमिका है जहा केवल एक भू-खड की सस्कृति का विकास नही, मानव सस्कृति का विकास स्पष्ट हो उठता है। यहा सस्कृति की तामसिक आसुरी अवस्था से लेकर उसकी आनद-प्रधान सात्त्विक अवस्था तक के स्तर हैं।

आध्यात्मिक चेतना से शून्य देह-प्रधान आसुरी सस्कृति एव अहकारपूर्ण तामसिक सस्कृति का सघर्ष—

जब चला द्वद्व था असुरो मे प्राणो की पूजा का प्रचार
उस ओर आत्मविश्वास निरत सुर वर्ग कह रहा था पुकार—
मैं स्वय सतत आराध्य आत्म-मगल उपासना मे विभोर—
(इडा सर्ग)

एक ओर खूब शक्तिशाली बनने के लिए प्राणो की पूजा का स्वर है जो विवेक से शून्य केवल देह तक सीमित है तो दूसरी ओर स्वय को पूजनीय समझने वाले अहवादी देवताओ की तामसिक वृत्ति। बिंब मे विचारात्मक पक्ष ने कलात्मक सौंदर्य को क्षरित किया है।

सभ्यता के विकास क्रम मे, क्राति की राजसी ज्वाला मे, मानव सस्कृति की बुद्धिजन्य भौतिक स्थूलता नष्ट-विनष्ट होकर समाप्त हो जाती है—

विश्व एक बधन विहीन परिवर्तन तो है
... .... ... ... .. ... ..

तरल अग्नि की दौड लगी है सबके भीतर
... ..... . . ......

क्रदन का निज अलग एक आकाश बना लूँ
मैं शासक मै चिर स्वतत्र
. . .... . .... .......

रक्त नदी की बाढ फैलती थी उस भू पर।
(सघर्ष सर्ग)

राजसी सस्कृति का कर्म कोलाहल, बधनहीन स्वार्थ-केंद्रित वृत्ति, उच्छृखल प्रवृत्ति, एकाधिकार की भावना के कारण मानवी सभ्यता के राजसिक रूप का विनाश—यही यहा प्रतिपाद्य है।

इस विनाश पर प्रसाद ने शुद्ध सात्त्विक आनदमूलक मानवीय सस्कृति का सौध खडा किया है जो अपनी यात्रा मे भारतीय सस्कृति के विभिन्न उज्ज्वल पक्षो को आत्मसात् करता चलता है। कुछ सास्कृतिक बिंब—

आर्यों की यज्ञमूलक सस्कृति जिसमे अभ्युदय के लिए यज्ञ किया जाता था—

शुष्क डालियो से वृक्षो की
अग्नि अर्चियाँ हुईं समिद्ध
आहुति की नव धूम गध से
नभ कानन हो गया समृद्ध।
(आशा सर्ग)

यज्ञ से बादल बनते हैं, बादलो से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है जिससे सपूर्ण प्राणियो की सृष्टि होती है—यही यहा बिंबित है 'नव धूम गध' क्योकि प्रलय के बाद मनु पहली बार यह यज्ञ कर्म कर रहे हैं। इस प्राण बिंब मे चाक्षुषता का अभाव है।

धवल मनोहर चद्र बिंब से
अकित सुदर स्वच्छ निशीथ,
जिसमे शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्गीथ।
(आशा सर्ग)

सारा वातावरण उल्लसित सगीतमय हो रहा है। 'चद्र बिंब' शुभ्र है, रमणीय है और उसकी ज्योत्स्ना से स्वच्छ रात्रि प्रकाशित है। शीतल पवन की गति मे सगीत मुखरित हो रहा है। 'शीतल पवन का उद्गीथ गाना'—इसमे सामवेद की पवित्रता के साथ पवन की

शीतलता एकत्र नियोजित है। उद्गीथ की कल्पना मे सामवेद के सर्वश्रेष्ठ अश की सास्कृतिक गरिमा तो है ही, उसे प्रसाद ने पवन द्वारा गाया जाना, प्राणो का उद्गान कहकर सभी प्रकार की आसुरी वृत्तियो से अलग कर दिया है। ध्वनि-बिंब मे विराट अनत आकाश का चद्रमय रूप है।

समर्पण लो सेवा का सार
सजल ससृति का यह पतवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल मे विगत विकार

(श्रद्धा सर्ग)

भारतीय सस्कृति की अपनी विशेषता है कि वह निर्विकार भाव से समर्पण करने को श्रेष्ठ समझती है। प्रसाद ने इसे श्रद्धा के शब्दो द्वारा प्रत्यक्ष किया है। यह प्रतिदान विरहित विगत विकार समर्पण ही जीवन को सवार सकता है। यहा सेवा मे विनिमय की भावना नही, उसका सार सेवा ही है। 'सजल ससृति' बडा ही सार्थक प्रयोग है—व्यथा एव वेदना से भरे जीवन को सस्कारित आनदपूर्ण करने के लिए विगत विकार समर्पण की आवश्यकता है। 'सजल ससृति' और 'पतवार' शब्द से रूपक के द्वारा नारी की गरिमा और मार्गदर्शिता स्पष्ट है।

जब कामना सिंधु तट आई
ले सध्या का तारा दीप

(आशा सर्ग)

कामना रूपी कामिनी के तारा रूपी दीप को लेकर सिंधु तट पर आने की इस अभिव्यक्ति मे एक चित्र सामने आता है—सध्या वेला मे आरती के समय सुदर वस्त्राभूषणो से नदी के तट पर दीप-दान करती हुई भारतीय नारी हमारे सामने प्रत्यक्ष हो उठती है। यह बिंब सजीव एव धार्मिक स्पर्श से पुलकित है। दो पक्तियों मे ही प्रसाद ने भारतीय सस्कृति की पवित्र सदाशयता को मूर्तित किया है।

कुकुम का चूर्ण उडाते से
मिलने को गले ललकते से
अतरिक्ष मधु उत्सव के
विद्युत्कण मिले झलकते से।

(काम सर्ग)

होली का उत्सव भारतीय सस्कृति का एक उल्लासमय मादक मिलन पर्व है जिसमे रग, गुलाल की अपनी छटा रहती है। 'कुकुम का चूर्ण उडाना' वातावरण की इसी रगदीप्ति को रूपायित करता है। गले मिलने मे ललक है— यह मिलन किसी परपरा के पालन का जड, शुष्क व नीरस व्यापार नही। सबके मन मे प्रेम व परस्पर सौहार्द रहता है। अतरिक्ष के मधु उत्सव मे विद्युत्कणो का मिलना, उनका झलकना इसी आनदपरक प्रेम-मिलन को ध्वनित करता है। होली के इस बिंब मे रग के साथ व्यापकता भी है।

विभव मतवाली प्रकृति का आवरण यह नील
शिथिल है जिस पर बिखरता प्रचुर मगल खील।

(वासना सर्ग)

लाजा वृष्टि के मागलिक प्रतीक को यहा तारो के रूप मे प्रत्यक्ष किया गया है। शुभ कार्यो मे लाजा वृष्टि की हमारी परपरा रही है। यहा भी आदिम नर व आद्या नारी के मिलन का मगल पर्व है अत प्रकृति का तारो के रूप मे लाजा बरसाना उचित ही है।

फूलो की कोमल पखुड़ियाँ
बिखरें जिसके अभिनदन मे
मकरद मिलाती हो अपना
स्वागत के कुकुम चदन मे
(लज्जा सर्ग)

प्रकृति के रम्य फलक पर भारतीय स्वागत का यह बिंब है जहा अभिनदन के लिए फूलो की वर्षा की जाती है, कुकुम व चदन का टीका लगाया जाता है। यहा पर उसी शैली मे प्रसाद किशोर सौंदर्य का अभिनदन कर रहे हैं। इस चित्र मे किशोरावस्था को वसत से उपमित कर कवि ने प्रकृति के निखार को भी स्पष्ट किया है मानो सारी प्रकृति ही उसके अभिनदन मे अपने वैभव को लुटा रही है। चित्र आकर्षक एव प्रभविष्णु है जिसमे फूलो के रग, मकरद की सुगध एव कुकुम-चदन की मागलिकता सब एकसाथ नियोजित हैं। यह स्वागत समारोह का सश्लिष्ट चित्र है।

इन बिंबो के अतिरिक्त 'कामायनी' मे मानवीय सस्कृति का जो शुद्ध सात्त्विक आनद-मय रूप प्रतिपादित है वह काव्य के सास्कृतिक पक्ष का सबसे गौरवशाली, महिमामडित अश है। मानवीय सस्कृति के चरम विकास की यह आगामी अवस्था है जिसे प्रसाद के कल्पना-शील कविमानस ने रूपायित किया है। एक प्रकार से इसे हम प्रसाद का मनोराज्य कह सकते हैं जहा वे सतो, भक्तो की भाति एक आदर्श सस्कृति के स्वप्न मे डूबे उन्हे बिंबात्मक आकार देने के लिए तत्पर दीखते हैं।

चेतन समुद्र मे जीवन
लहरो-सा बिखर पडा है,
कुछ छाप व्यक्तिगत, अपना
निर्मित आकार खडा है
.... ...... . . ....
वैसे अभेद सागर मे
प्राणो का सृष्टि-क्रम है
सब मे घुल मिलकर रसमय
रहता यह भाव चरम है।
..... ... ... .
चेतन का साक्षी मानव
हो निर्विकार हँसता सा;
सब भेदभाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड बन जाता।
(आनद सर्ग)

विशाल ससार मे व्यक्ति का जीवन, अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओ के बीच व्यतीत होता है किंतु इस आकार-भिन्नता के भीतर से, विरोधो के भीतर से एक अभेद की स्थिति को, एकत्व की भावना को पाया जा सकता है क्योकि अतत मनुष्य मूलभूत रूप मे तो एक ही है—सब मे एक ही चैतन्य की ज्योति है। यही परम भाव, परम चैतन्य, सबके अत करण मे, सबके जीवन मे, वाह्य क्रिया-व्यापारो मे, मानसिक विचार-सरणियो मे विविध रूप मे अभिव्यक्त होता है। यह चैतन्य राग रूप है, प्रेममय है, अत. सबके साथ प्रेमपरक व्यवहार ही इसका तात्त्विक रूप है। इसी चैतन्य के द्रष्टा के रूप मे मनुष्य अपने आपको द्वद्वो मे मुक्त कर नि सग भाव से आनद मे ही जी सकता है। स्व का विलयन, मैं और तू के भेद का विसर्जन, द्वैत से अद्वैत की भूमिका, परिवर्तन मे अपरिवर्तनीय तत्त्व की अनुभूति—यह एक ऐसी उच्च मानसिक स्थिति है जहा व्यक्तित्व का पूर्ण सश्लिष्ट रूप उभरता है, फिर उसके लिए दु ख और सुख, आशा और निराशा, सफलता और विफलता रगमच पर घटित होनेवाले दृश्य से अधिक कुछ भी नही रह जाते। वह जीवन की सुख-दु खात्मक सभी अनुभूतियो को समान-रूपेण ग्रहण कर सकने मे समर्थ हो जाता है। वहा केवल एक ही अनुभूति रहती है—परम आनद और चैतन्य की।

इस प्रकार 'कामायनी' का ऐतिहासिक, पौराणिक एव सांस्कृतिक बोध एक व्यापक भूमिका पर नियोजित है। प्रसाद ने जिन बिंबो की सृष्टि की है वे सपूर्ण मानव-जाति के ऐतिहासिक एव सास्कृतिक विकास को रूपायित करते हैं। महाकाव्य मे मानवीय सस्कृति के शील, चारित्र्य व उच्चादर्शों के प्रति गहरी आस्था के स्वर हैं तथा सचय, भोग, एकात स्वार्थ तथा ऐंद्रिय लोलुपता का ध्वसकारी पतन दिखाकर समता, सामरस्य, त्याग, नि सगता, कर्मण्यता, परदु खकातरता, उदारता आदि मानवीय सद्‌गुणो के रूप मे इतिहास एव सस्कृति की चेतना को उजागर किया है। सपूर्ण महाकाव्य पर कवि की मगल आनदमूलक दृष्टि का स्वर फैला है—'विश्व यह सौरभ से भर जाय।'

## दर्शन : मनोविज्ञान

'कामायनी' का चिंता पक्ष प्रौढ विशाल और मौलिक है। इसका मूल स्वर यद्यपि कश्मीरी शैव दर्शन है पर कवि ने उसे साप्रदायिक स्तर पर स्वीकार नही किया है—कवि ने उसकी मूल आनदवादी भावना को आत्मसात् कर उसे आज के उलझे सकुल व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि पर वैज्ञानिक चिंतना के आलोक मे विकसित किया है।

कवि के सामने है—तुमुल कोलाहल, आतरिक हाहाकार, अशाति और ध्वस, उसका गतव्य है—शाति, सामरस्य, आनद, नित्य चैतन्य, मागलिक सृष्टि एव साकार सौंदर्य। कवि न इच्छाओ को झुठलाना चाहता है, न उनके मादक रगीन आकर्षण मे खोना, न कोरा ज्ञान उसे अभीष्ट है और न ही भोग, न कर्म-कोलाहल ही उसे उलझाता है और न ही नीरव शाति का उसे प्रलोभन है। प्रसाद ने जो समाधान बताया है उसमे गीता के 'मामनुस्मर युध्य च'[1] की ध्वनि है। यहा युद्ध अजस्र निष्काम कर्म-प्रवाह मे बदल जाता है, जहा विवेक के प्रकाश मे आतरिक कामना सत्रस्त हो जाती है। प्रसाद ने इसे ही 'कर्म का भोग, भोग का कर्म' कहकर एक काव्यात्मक रूप प्रदान किया है।

'कामायनी' का दर्शन घटनाओ के मोड, पात्रो की बदलती मन स्थिति, परिवर्तित परिवेश, समस्याओं के सघर्ष एव पारस्परिक घात-प्रतिघात के भीतर से उमडता है। वह

जीवन से बाह्य कोई विविक्त या विच्छिन्न दर्शन नही, जीवन से ओतप्रोत है।

'कामायनी' महाकाव्य मे किसी एक विचारधारा का व्यवस्थित रूप अवश्य नही मिलता, पर आज के जटिल मानव के सदर्भ मे यह चित्रण उसकी यथार्थ स्थिति का ही द्योतक है। विज्ञान और भौतिकवादी सभ्यता के इस युग मे विविध विचार-क्रातियो से घिरा मानव और उसका जीवन ऋजु व सरल नही और न ही वह एकोन्मुखी है, उसे स्पष्ट सीधी रेखाओ मे अकित नही किया जा सकता। उसका सपूर्ण व्यक्तित्व, उसका मानस, उसके कार्य अनेकानेक बाह्य प्रभावो, आतरिक विचारो और परिवर्तित जटिल परिवेशो से निर्मित होता है। विरुद्ध धर्मा प्रवृत्तियो का सम्यक् सश्लेषण ही उसके जीवन को पूर्ण बना सकता है। यही कारण है कि विशुद्ध दर्शन की दृष्टि से 'कामायनी' मे सुनियोजित चिंतन-शृखला का विकास नही मिलता, पर परिपूर्ण मानव की परिकल्पना के निकष पर प्रसाद का यह जीवन दर्शन यथार्थ एव व्यावहारिक है।

सामूहिक सहार की पृष्ठभूमि मे एक टूटे हुए चिंता एव भयग्रस्त मनुष्य की अस्तित्व-वादी दृष्टि से यह काव्य आरभ होकर अपने भीतर भारतीय दर्शन के विविध चिंतन पक्षो को समेटता हुआ अत मे प्रत्यभिज्ञा के सामरस्य-प्रसूत आनदवाद मे पर्यवसित होता है। दर्शन के शिखरो का स्पर्श काव्य मे सौदर्यात्मक रमणीयता के साथ हुआ है जिसे प्रसाद की बिंब-सर्जना ने ग्राह्य एव प्रेषणीय बनाया है।

## अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ बिब

यद्यपि प्रसाद पश्चिम के अनास्था एव निषेधमूलक अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित नही थे फिर भी काव्य का आरभ सामूहिक विनाश की जिस प्रतिक्रिया से होता है उसकी व्याख्या अस्तित्ववादी दर्शन के आधार पर सहज ही की जा सकती है। मनु के चिंतन मे जो सर्वग्रासी निराशा, व्यर्थताबोध, मृत्यु मे पलायन तथा क्षणिक सुख का स्वर है वह आधुनिक अस्तित्ववाद के मेल मे है—

> विस्मृति आ अवसाद घेर ले,
> नीरवते! बस चुप कर दे,
> चेतनता चल जा, जडता से
> आज शून्य मेरा भर दे।
>
> (चिंता सर्ग)

देवसृष्टि के ध्वस पर एकाकी मनु का यह चिंतन एक टूटे हुए, अस्त-व्यस्त मानस का बिंब प्रस्तुत करता है जहा पर केवल व्यर्थताबोध ही उसके व्यक्तित्व मे व्याप्त है। विस्मृति, अव-साद, नीरवते सबके प्रति एक भयकर आकर्षण मनु को लग रहा है—एक-एक सबोधन उसके पलायनवादी स्वर को प्रखर कर रहा है। 'चेतनता चल जा' मे जीवन व कर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टि प्रत्यक्ष है। हृदय की रिक्तता, शून्यता-बोध को जडता से भरने की बात एक पूरी तरह से टूटे हुए व्यक्ति का चित्र मूर्तित करता है—यह निराशा एव विफलता की चरम व्यजना है। मनु अभी न कुछ सोचना चाहता है न कुछ करना, बस केवल जडता उसे प्रिय है जिससे वह स्वय को, ध्वस की विनाश-लीला को, देवसृष्टि के वैभव-विलास को, अपने चारो ओर के परिवेश को, भूत-वर्तमान-भविष्य को—सबको भूलना चाहता है। वैभव-विलास की श्मशान भूमि पर यह एक खडित, विघटित मानस का चित्र है जिसमे आदि से अत तक

केवल जडता, गतिहीनता, किंकर्तव्यविमूढता व्याप्त है।

मौन ! नाश ! विध्वस ! अँधेरा !
शून्य बना जो प्रगट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते !
तुमको कहाँ यहाँ अब ठांव।
(चिंता सर्ग)

मृत्यु ही नियति है, सत्रास व जडता ही जीवन की अपरिहार्य परिणति है—यही स्वर-बिंब मे अपनी पूर्ण प्रखरता एव उग्रता के साथ मुखरित है। कोलाहल, जीवन, सृजन प्रकाश के प्रति घोर अनास्था मानो विकराल होकर वातावरण को और मनु के मानस को निगल जाने के लिए तत्पर है। जीवन मे आनद, सृजन एव आशा की प्रतीति एकदम निरर्थक एव सारहीन है, अतत जीवन की परिणति तो अभाव, शून्यता, मृत्यु मे ही होती है—वही जीवन का चिर सत्य है। 'अरी अमरते ! तुमको यहाँ कहाँ अब ठांव'—जीवन की आस्था का एकदम खडित हो जाना स्पष्ट है। गहन अधकार, निविड निराशा, भीषण अवसाद के इस चित्र मे अभाव का सर्वग्रासी रूप उभरा है। चित्र मे चाक्षुपता का अभाव उसके चिंतन पक्ष को अधिक अधकारमय एव गहन बना रहा है—एक-एक शब्द मस्तिष्क पर प्रहार करता-सा लगता है।

मृत्यु, अरी चिर-निद्रे ! तेरा
अक हिमानी सा शीतल
(चिंता सर्ग)

मृत्यु ही सत्य है जो मनुष्य को सब दु खो एव अभावो से मुक्त कर अपनी शीतल शाति-दायिनी गोद मे ले लेती है। बिंब का आरभ 'मृत्यु' से करके कवि ने उसके प्रभाव को, उसकी निश्चितता को एकदम साकार किया है। 'अरी' सबोधन मे गहरी आत्मीयता है—मानो मनु को इस समय सबसे अधिक प्रिय मृत्यु ही लग रही है। वह चिर निद्रा है—जो हमेशा-हमेशा के लिए दु खो से मुक्त करती है। 'हिमानी सा शीतल'—उस शीतलता मे प्राण नही, स्फूर्ति नही, स्पदन नही, वह एकदम जड शून्यता है।

श्रद्धे ! यह नव सकल्प नही—
चलने का, लघु जीवन अमोल,
मैं उसको निश्चय भोग चलूँ
जो सुख चलदल सा रहा डोल।
(ईर्ष्या सर्ग)

क्षण-भर को सार्थकता प्रदान करने का सकल्प अस्तित्ववाद की प्रमुख विचार सरणि है। कल्याण का, सृजन का स्वर इस जीवन की छोटी सीमा मे चल नही सकता—पता नही किस समय मृत्यु आ जाय। अच्छा तो यही है कि जो भी वर्तमान क्षण है उसे भोगा जाय। मृत्यु की छाया मे जीने वाले आज के मनुष्य का यह चित्र है, जहा चारो ओर युद्ध की विभीषिका अपना मुह खोले खडी है। 'चलदल सा रहा डोल'—जीवन की अस्थिरता का सजीव चित्र है। बिंब मे काव्यात्मक उत्कर्ष नही आ सका है, केवल विचार-प्रतिपादन मुखर है।

तरल अग्नि की दौड लगी है सबके भीतर,
गलकर बहते हिम-नग सरिता लीला रचकर।
(संघर्ष सर्ग)

जीवन एक अधप्रवाह है—उसमे कोई व्यवस्थित क्रम नही, पल-भर मे आमूल परिवर्तन हो जाना ही इसका स्वभाव है। 'तरल अग्नि की दौड'—एक तो अग्नि और वह भी तरल जो दौड रही है। परिवर्तन की तीव्र गति के साथ अग्नि मे विनाश एव सहार का स्वर भी है। बिंब मे चाक्षुपता के साथ तीव्र गति, दाहक प्रकाश एव जीवन के प्रति एक क्षणवादी दृष्टिकोण प्रत्यक्ष है।

जीवन मे जागरण सत्य है
या सुषुप्ति ही सीमा है,
आती है रह-रह पुकार-सी
यह भव-रजनी भीमा है।
(निर्वेद सर्ग)

मृत, विनष्ट शहर का मानवीकरण यहा कवि ने किया है। नगर का निष्प्राण जड देह पुकार-पुकारकर कह रहा है कि जीवन मे जागरण-प्रकाश, आनंद-उल्लास सत्य नही। वे तो केवल इस भीमा भवरजनी मे कुछ पलो के लिए आते हैं, उनका अस्तित्व केवल कुछ समय तक ही रहता है, जीवन की सीमा तो सुषुप्ति है—मौत, निराशा, अधकार, विषाद, विफलता ही सब कुछ है। मानव जीवन की परिधि बस इतनी ही है। 'रह-रह पुकार-सी' मे प्रतिध्वनित होते हुए स्वर का प्रखर हृदय-विदारक चित्र है। सत्रास ही हमारी नियति है—यही यहां मूर्तित किया गया है। शहर के मानवीकरण ने चित्र को चाक्षुपता प्रदान की है। पूरे बिंब मे भीषण भयकर, डरावनी ध्वनि की गूज मुखरित है।

खडित विघटित मनु के अनास्थापरक अस्वस्थ चिंतन के रूप मे आज के विज्ञान युग मे युद्ध की विभीषिका से त्रस्त, सामाजिक सुरक्षा के प्रति विश्वासहीन मनुष्य का यथार्थवादी रूप मुखर है। प्रसाद ने इस चित्रण की पृष्ठभूमि मे मानव-जीवन का जो स्वस्थ, सृजनात्मक आनदमय रूप अकित किया है उसमे भारतीय मनीषा के कर्म-प्रधान, आशावादी, भावात्मक पक्ष का उज्ज्वल चित्र है। वेद, उपनिषद्, गीता की महत् चिंतना का कलात्मक वैभव 'कामायनी' के बिंबो मे है जो आज के मनुष्य को एक सपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की ओर प्रेरित करता है। कुछ बिंब प्रस्तुत है—

जिज्ञासा—

वह विराट था हेम घोलता
नया रग भरने को आज,
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कुतूहल का था राज।
(आशा सर्ग)

विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा के इस बिंब मे वैदिक ऋषि का रूप मूर्तित है। जीवन, जगत व जीव के प्रति एक आकुल जिज्ञासा का भाव, उस रहस्य से परिचित होने की प्रबल इच्छा

भारतीय चिंतन का सबसे महिमामय रूप है। शंकराचार्य के 'कोहं कथमिदं जातं को वा कर्तास्य विद्यते' का यह काव्यात्मक रूप है। 'हेम घोलना' एक सुष्ठु प्रयोग है जिसमे प्रातः-काल की सुनहली आभा के साथ-साथ जीवन के उल्लासमय आकर्षण के प्रति एक रहस्यात्मकता भी है। 'नया रंग भरने को'—सृजन का नूतन समारंभ मूर्त है। विनाश ही सब-कुछ नही, विनाश के बाद व्यापक सृजन ही सत्य है। 'कुतूहल का राज'—मनु के संपूर्ण मानस मे, सारी चिंतना मे विस्मय-विमुग्ध भाव है। आज चिंतन का सूत्रधार मानो कुतूहल ही है। प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर जिज्ञासा का यह चाक्षुष बिंब है जिसमे प्रभातकालीन स्वर्णिम आभा की कांति के साथ मानव-स्वभाव का यथार्थ रूप समाया है।

हे अनंत रमणीय ! कौन तुम
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता।
(आशा सर्ग)

जिज्ञासा का यह दूसरा बिंब है जिसमे मन, वाणी की असमर्थता प्रकट की गयी है। उस विराट सत्ता का स्वरूप मन से, वाणी से परे है—'यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'। यह अनुभूति का क्षेत्र है जिसे केवल समझा जा सकता है, व्याख्यायित नही किया जा सकता। वह अनंत रमणीय है। कैसे हो ? क्या हो ? आदि शब्दो मे असमर्थता की चरम सीमा व्यंजित है। यह वाणी की असमर्थता, अभिव्यक्ति की असफलता ही उसके स्वरूप की सही व्यंजना है। चित्र मे 'भार विचार न सह सकता' के रूप मे एक गुरुता व गंभीरता है। रमणीय की चाक्षुपता को विचारो की गुरुता ने अस्पष्ट कर दिया है।

जिजीविषा—

जीवन ! जीवन ! की पुकार है
खेल रहा है शीतल दाह,
किसके चरणो मे नत होता
नव प्रभात का शुभ उत्साह
मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यो
लगा गूँजने कानो मे !
मैं भी कहने लगा 'मैं रहूँ'
शाश्वत नभ के गानो मे।
(आशा सर्ग)

जिजीविषा की मूल प्रवृत्ति का यह उदात्त भव्य चित्र है जिसकी गूंज पृथ्वी-आकाश सबको मुखरित किये हुए है। 'जीवन ! जीवन ! की पुकार है'—इस पहली ही पंक्ति ने सारे वातावरण को एक प्रखर ध्वनि और चारो ओर होनेवाली उसकी प्रतिध्वनि से परिपूर्ण कर दिया है। 'शीतल दाह' विरोधाभास के द्वारा अभ्युदय के लिए मन की तीव्र आकांक्षा को स्पष्ट किया गया है। 'नव प्रभात' और 'शुभ उत्साह' मे जीवन का नूतन आरंभ है जो मंगल एवं उल्लास से पूरित है। 'मैं हूँ'—अपने अस्तित्व को बनाये रखने की उत्कट अभिलाषा, अहं का बोध-वरदान

के समान कानो मे गूजने लगा। सारा मानस अपने अस्तित्व-दोध से झकृत हो उठा है। यह बोध वरदान ही है क्योकि इसके बिना मनुष्य केवल पशु है। 'अहमस्मि' का बोध ही उसे मानवीय स्तर प्रदान करता है। मैं रहू शाश्वत नभ के गानो मे—जिजीविषा एव अस्तित्व के विकास की चरम सीमा है। अनत भविष्य तक बने रहने की अभिलाषा मे मनुष्य की उत्कट, अदम्य लालसा व उत्साह व्यजित हैं। बिंब मे ध्वनि है, वर्ण है, मगल है, कर्म-प्रेरणा है, विराटता है और गहनता है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत सतम् समा' का यह काव्य-बिंब है।

**भूमा, विराटता—**

ये मुद्रित कलियाँ दल मे सब
सौरभ बदी कर ले
सरस न हो मकरद बिन्दु से
खुल कर तो ये भर लें।
... ...... ....... .....
सुख अपने सतोष के लिए
सग्रह मूल नही है
उसमे एक प्रदर्शन जिसको
देखें अन्य, वही है।
(कर्म सर्ग)

श्रद्धा के द्वारा प्रसाद ने विभुता का, व्यापकता का एक चित्र खीचा है। सीमा ही दुख है—व्यापकता आनद व शाति। इस जीवन-सत्य को कलियो के अप्रस्तुत द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। ये मुंदी हुई कलिया यदि सौरभ को अपनी ही पखुडियो मे सीमित कर रख लें, विकसित होकर यदि मकरद की बूदो से सरस न हो तो ये क्षण मे मुरझाकर समाप्त हो जायें। व्यष्टि को यदि समष्टि के लिए समर्पित न किया जाय तो अस्तित्व ही सारहीन हो जाता है। सौरभ बदी करने मे व्यक्ति-केंद्रित मनोवृत्ति रूपायित है और मकरद से सरस होने मे उसके व्यापक, उदार होने की ध्वनि। सुख केवल अपने लिए सगृहीत नही हो सकता—उसका तात्त्विक रूप ही यह है कि वह सबके लिए प्राप्त हो। उसमे विस्तार व भूमात्व होना ही होगा। चित्र मे रग, गध व आकार तो है पर कलात्मक उत्कर्ष उतना अधिक नही हो सका है।

**भेद मे अभेद तत्त्व—**

चेतन समुद्र मे जीवन
लहरो-सा बिखर पडा है,
कुछ छाप व्यक्तिगत, अपना
निर्मित आकार खडा है।
.. ... ...
वैसे अभेद सागर मे
प्राणो का सृष्टि-क्रम है,
सब मे घुल मिलकर रसमय
रहता यह भाव चरम है।
(आनद सर्ग)

विभक्त मे अविभक्त की भूमिका यहा समुद्र व लहरो के दृष्टात द्वारा स्थापित है। एक ही चैतन्य समस्त व्यक्ति-जीवन मे व्याप्त है। ठीक उसी प्रकार जैसे विशाल सागर ही लहरो के रूप मे अभिव्यक्त होता है। इस नामरूपात्मक जगत मे सभी अपना-अपना वैशिष्ट्य लेकर आते हैं, अपनी व्यक्तिगत सत्ता मे जीवित रहते हैं पर वस्तुत इस विविध रूपाकार मे एक ही चरम सत्य है—वही मानो अगी है और ये सब उसके विभिन्न अग है। परिवर्तनो मे अपरिवर्तनीय तत्त्व को देखना, भेद मे अभेद की प्रतीति करना भारतीय मनीषा का सबसे उज्ज्वलतम, महनीय एव सर्वोच्च अश है। 'मृत्तिकेव सत्य' या 'अभेदनैव स्फुरति' के प्रतिपाद्य को प्रसाद ने काव्यात्मक बिंब के माध्यम से प्रत्यक्ष किया है। इस विचार-बिंब को सागर व लहरो के अप्रस्तुत से चाक्षुष गोचरता मिली है—'निर्मित आकार' ने इसे आकृति भी प्रदान की है। रसमय भाव मे जीवन के भावात्मक आनदमय मोद-प्रमोदपरक रूप का चित्रण है।

निरतिशय आनद—

सुख सहचर दुःख विदूषक  
परिहासपूर्ण कर अभिनय  
सबकी विस्मृति के पट मे  
छिप बैठा था अब निर्भय।

(आनद सर्ग)

निरतिशय आनद की यह भूमिका है जहा दुःख की आत्यतिक निवृत्ति हो जाती है। जीवन मे सब दुःख-द्वद्वो का अत होना और फिर उसमे केवल आनद ही आनद रह जाना—यह भारतीय दर्शन की अपनी विशिष्टता है जहा पर केवल दुःखो से निवृत्ति ही सर्वोपरि नही। निषेध की इस स्थिति के बाद भावात्मक परिपूर्णता पर हमारी दृष्टि रही है। प्रसाद ने दर्शन की इस गभीरतम मानवी उपलब्धि को नाटक के रूपक द्वारा बिंबित किया है। नाटक के पात्रो मे सुख रूपी नायक है— वही सूत्रधार है, वही भोक्ता है, वही मूल स्वर है। दुःख तो एक विदूषक की भाति कुछ क्षणो के लिए मच पर आकर अपना परिहासपूर्ण अभिनय दिखा जाता है और फिर उसकी भूमिका नाटक मे समाप्त हो जाती है। जीवन मे दुःख का कोई अस्तित्व नही—वह तो एक प्रकार की मिथ्या प्रतीति है, नाटक के निम्न पात्र की तरह। 'सब की विस्मृति के पट मे' परिपूर्ण आनद का रूप जहा दुःख विस्मृति के गर्भ मे विलीन है—सब उसके स्वरूप को भूल चुके हैं। वह भी निर्भय होकर छिप बैठा था—बडी अनूठी व्यजना है—छिप बैठने मे उसका अभाव और निर्भय होकर बैठने मे उसके पुन. न लौटने की व्यजना है। चित्र मे नाटकीयता है—रगमच के दृश्य की भाति साक्षात् हो जाता है। गभीर जीवन-सत्य का प्रतिपादन इतनी व्यग्यात्मक और सूक्ष्म शैली मे प्रसाद के लिए ही सभव था।

स्थितप्रज्ञ योगी—

करती सरस्वती मधुर नाद  
बहती थी श्यामल घाटी मे निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद  
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड विषाद

वह थी- प्रसन्नता की धारा जिसमे था केवल मधुर गान
थी कर्म निरतरता प्रतीक चलता था स्ववश अनत ज्ञान
हिम शीतल लहरो का रह रह कूलो से टकराते जाना
आलोक अरुण किरणो का उन पर अपनी छाया बिखराना
अद्भुत था ! निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाता कुछ सुसवाद ।

(इडा सर्ग)

सरस्वती का यह चित्र स्थितप्रज्ञ कर्मयोगी का एक परिपूर्ण रूप है जो त्रिगुणो को अतिक्रात कर अपने स्वरूप मे स्थित हो चुका है । प्रतीक का सौंदर्य यहा अनूठा है—नदी की स्वच्छ स्वच्छद धारा और उसकी अनवरत कर्मशीलता, दोनो ही पूर्णरूपेण स्फुट हैं । पूरा साग रूपक है जिसमे एक *असग अलिप्त समत्व बुद्धि सपन्न कर्मयोगी का महिमामय दिव्य स्वरूप* साक्षात् हो उठा है । 'श्यामल घाटी' वातावरण की स्वच्छता के साथ एक ऐसे सिद्ध की उपस्थिति सूचित करती है जिसके रहने मात्र से ही सर्वत्र शाति व शीतलता आ जाती है । 'निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद' गीता के 'कर्मणि अतेन्द्रित' का मूर्तिकरण है, साथ ही 'आत्मन्येवात्मना तुष्ट' के प्रकाश से ज्योतित । 'उपलो' को जड विषाद का प्रतीक बताना सुष्ठु प्रयोग है क्योकि जीवन आनद ही है । प्रसन्नता की धारा और मधुर गान ने योगी की प्रज्ञा को हृदय का, राग का, ममत्व का स्पर्श दिया है । यहा वीतरागी सर्वरागी के रूप मे चित्रित है । मधुर गान और भी 'केवल'—जीवन मे केवल आनद और माधुर्य की कल्पना साकार है । सरस्वती की धारा अनवरत प्रवाहित है—कर्म के सतत होते रहने वाले स्वरूप का चित्र है । 'आलोक अरुण किरणो' मे ज्ञान का शुभ्र प्रकाश और वातावरण की दीप्ति एकाकार है । 'निज निर्मित पथ का पथिक'—मानवीकरण के द्वारा एक पथिकृत ऋषि को प्रसाद ने प्रत्यक्ष किया है । विचार-प्रधान यह बिंब अद्भुत है । प्रकृति के रम्य शीतल श्यामल वातावरण मे यह ज्ञान, कर्म एव श्रद्धा वृत्ति की एकत्र नियोजना है जो स्वरूप मे प्रेरक है—कहता जाता कुछ सुसवाद ।

**समत्व बुद्धि—**

अरे सर्ग-अकुर के दोनो
पल्लव है ये भले बुरे,
एक दूसरे की सीमा हैं
क्यो न युगल को प्यार करें ?

(निर्वेद सर्ग)

बिंब नही बन पाया है । सर्ग-अकुर के पल्लव कहकर उसे कुछ काव्यात्मकता प्रदान की गयी है । विचार-बिंब मे सुख-दु ख को समभाव से ग्रहण करनेवाली बुद्धि का रूप उभरता है । 'क्यो न युगल को प्यार करें'—यह प्रश्न नही, स्वय उत्तर है ।

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे ! 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड बन जाता ।

(आनद सर्ग)

वसुधैव कुटुम्बकम् का यह बिंब 'विश्व नीड' के रूप मे चित्रित है। यहा पर समत्व बुद्धि-संपन्न योगी की सिद्धावस्था है जहा वह केवल द्रष्टा है—दुख और सुख विश्व के रंगमंच पर केवल दृश्य नियोजना के लिए आते हैं। 'दृश्य बनाता' बिंब को नाटकीय भंगिमा दे रहा है। 'यह मैं हूँ'—अहम् का इदम् मे पर्यवसान है। 'स्व' विगलित हो गया है। सबमे आत्मा को देखना—यही चरम परिणति है और वही सच्चा द्रष्टा है। 'मानव कह रे !' संबोधन मे आत्मीयता का प्रगाढ स्पर्श है।

यद्यपि 'कामायनी' शैव दर्शन के आधार पर लिखा गया रीति काव्य नही पर फिर भी 'कामायनी' के चिंता पक्ष को शैव दर्शन ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। 'कामायनी' मे शैव दर्शन के शब्दो का प्रयोग तो प्रचुर है ही, बिंब योजना मे भी प्रसंगानुसार शैव दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। कुछ चित्र—

नित्य समरसता का अधिकार,
उमडता कारण जलधि समान,
व्यथा की नीली लहरो बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।

(श्रद्धा सर्ग)

शैव दर्शन के सामरस्य सिद्धात को प्रसाद ने एक अभिनव विच्छित्ति के साथ प्रस्तुत किया है। विषम ससार के बीच ही समरसता को प्राप्त करना ही प्रत्येक प्राणी का अधिकार है—यह समरसता कोई क्षणिक भोग की वस्तु नही, जीवन का नित्य व शाश्वत सत्य है—इसे जीवन से अभिन्न समझना चाहिए। यह अधिकार ही कारण जलधि—सृष्टि की उत्पत्ति का आद्य कारण—के समान उमडेगा, पर उसमे मनुष्य विषमता को फैलाकर व्यथा की लहरो को उत्पन्न करता है। व्यक्ति-केंद्रित वृत्ति विषमता का कारण बन जीवन समुद्र मे व्यथा की नीली लहरो का निर्माण करता है। व्यथा की लहरो को नीला कहना—एक ओर तो समुद्र की लहरो का रंग प्रत्यक्ष है तो दूसरी ओर मानस की हलचल। किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि उन्ही लहरो से 'सुख मणि गण द्युतिमान' प्राप्त होते हैं। यह दुःख अपने भीतर सुख के प्रकाशमान उज्ज्वल स्वरूप को छिपाये है। सुख को मणि कहना उसके अमूल्य प्रकाशवान स्वरूप की व्यंजना है। बिंब मे चाक्षुषता के साथ रंग, गति और ध्वनि का समावेश है।

कर रही लीलामय आनंद,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी मे होते सब अनुरक्त।

(श्रद्धा सर्ग)

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सृजनात्मक स्वरूप का यह बिंब है जिसके अनुसार महाचिति, कोई महान चेतन शक्ति लीलारत है और उसी से संसार का सुंदर सृजन-कार्य हो रहा है। सिसृक्षा की यह मूल प्रवृत्ति है जिसमे सभी अपना स्वर मिलाते हैं। 'लीलामय आनंद' विश्व के आनंदमय रूप के साथ मोद-प्रमोद का भी रूप है जो शैव दर्शन के अनुरूप ही है। बिंब मे किसी विराट शक्ति के सजग होने का जो रूप उभरा है वह उसे एक मानवीय आकार देता है। 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्व मुन्मीलयति' ही यहा बिंब मे मुखर है। विचार-गहनता एवं दार्शनिक शब्दावली ने बिंब के रमणीय पक्ष को क्षरित किया है।

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।
(श्रद्धा सर्ग)

प्रवृत्तिमूलक जीवन दर्शन तरल आकांक्षा से भरकर काव्यात्मक उत्कर्ष प्राप्त कर रहा है। जीवन ही सत्य है, कर्म की गतिशीलता, सृजन की मूलभूत इच्छा यहां मूर्त है। 'तरल आकांक्षा' में अभिव्यक्त होने की आकुलता है, सिसृक्षा की उत्कटता है। 'आशा का आह्लाद' आशा में का उल्लासमय, स्फूर्तिदायक, प्रेरक रूप व्यंजित है। यह एक गति-चित्र है जिसे आशा के आह्लाद ने अधिक ऊर्जित किया है।

संकुचित असीम अमोघ शक्ति।
जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति
यह कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी-सी महाशक्ति
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा से रहे बंद
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ रचे छंद
कर्तृत्व सकल बनकर आवे नश्वर छाया-सी ललित कला
नित्यता विभाजित हो पल-पल में काल निरंतर चले ढला
तुम समझ न सको, बुराई से शुभ इच्छा की है बड़ी शक्ति
हो विफल तर्क से भरी युक्ति।
(इडा सर्ग)

प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के पंच कंचुकों—राग, नियति, विद्या, काल और कला—को काव्यात्मक रूप में चित्रित किया है। जीवन की व्यापकता किस प्रकार अनेक आवरणों से आवृत होकर क्षुद्रता, संकीर्णता एवं शक्तिहीनता में परिणत हो जाती है वही यहां रूपायित है। 'अमोघ शक्ति'—महाशक्ति जिसकी कोई इयत्ता नहीं। इसी शक्ति को संकुचित कर देने से जीवन में नाना वैषम्यों एवं कठिनाइयों का सृजन होता है। 'भेद भरी भक्ति' में भेद-भाव के प्रति हमारी विकृत निष्ठा व्यंजित है। महाशक्ति का राग के कारण स्वार्थ केंद्रित हो जाना, व्यापक तत्त्व का नियति की सीमा में बंध जाना, विशुद्ध प्रज्ञा का भौतिक अभिव्यक्ति में सीमित हो जाना सर्वकर्तृत्व का कला की नश्वरता में विलीन हो जाना और अनंत काल की नित्यता का खंडित होना—सब एकसाथ यहां पर नियोजित हैं। बिंब का सर्वश्रेष्ठ अंश यह दार्शनिक प्रतिपादन नहीं अपितु उसकी अंतिम पंक्ति है जहां प्रसाद ने 'शुभ की इच्छा' को एक महत् शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यह सर्वमंगल, लोक कल्याण की व्यापक भावना ही शक्ति के प्रसार एवं उसकी अनंतता का मूल स्रोत है। यह बिंब विशुद्ध विचार-बिंब है जो हमारे चिंतन को एकदम झंकृत करता है।

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत,
वह रूप बदलता है शत-शत
कण विरह मिलनमय नृत्य निरत,
उल्लास पूर्ण आनंद सतत,

तल्लीन पूर्ण है एक राग,
झंकृत है केवल जाग जाग !
(दर्शन सर्ग)

यह ससार मिथ्या नही—उस परम चैतन्य की अपनी ही अभिव्यक्ति है। इस ससार मे वह विविध रूपो मे स्वय को प्रकट करता है—यहा पर मिलन-विरह का सतत नृत्य होता है। 'विरह मिलनमय नृत्य'—सुख-दुख, विरह-मिलन का यह चक्र उस विराट के नृत्य चरण है—दोनो ही जीवन के सत्य हैं और जो सत्य है वह सुदर व रमणीय तो है ही। यही कारण है कि इस परिवर्तनशील ससार मे तरगित आनद निरतर गतिशील है। अतिम पक्ति मे प्रसाद ने 'उत्तिष्ठत जाग्रत' के प्रेरक स्वर को सारे वातावरण मे गुजरित किया है। 'झंकृत है केवल जाग जाग'! उद्बोधन का यह स्वर सगीत की मधुर ध्वनि से गुजरित है और साथ ही 'एक राग' ने उसे समस्वरता की प्रगाढता से मडित किया है। बिंब मे नृत्य की चाक्षुपता, राग की झंकृति, उल्लास की गति एकत्र सयोजित है। इन सबको 'जाग-जाग !' का स्वर अनुपम ऊर्जा एव प्रेरणा प्रदान कर रहा है।

श्रद्धा ने सुमन बिखेरा
शत-शत मधुपो का गुजन,
भर उठा मनोहर नभ मे
मनु तन्मय बैठे उन्मन।
(आनन्द सर्ग)

साधक की ब्रह्मलीन समाधि अवस्था का यह बिंब है जिसमे द्वैत के प्रति उपेक्षा का भाव रूपायित है। 'उन्मन' शैव दर्शन का शब्द है—'चित्ते समरसी भूते द्वयोरोन मनसी स्थिति' —चित्त की समरस अवस्था मे द्वैत के प्रति मानस का उन्मन भाव। शैवाद्वैत के रस-बिंब को श्रद्धा के पुष्पो ने एक उज्ज्वल रागात्मकता से आलोकित किया है। यह विशुद्ध राग की स्थिति है जहा सपूर्ण सृष्टि आनद-उल्लास मे डूब जाती है—नभ मे शत-शत मधुपो का गुजन इसे ही मूर्त करता है, इसकी ही प्रतीति कराता है। बिंब मे चाक्षुप गोचरता, विविध वर्णों की छटा, मधुपो का मनोहर गुजन सभी है। योगी की तन्मयी स्थिति का यह उल्लसित तरगित बिंब है।

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुप पुरातन,
निज शक्ति तरगायित था
आनद अबु निधि शोभन।
(आनद सर्ग)

साख्य की जड प्रकृति को शैव दर्शन मे चेतना मिली—वह पुरुप से अभिन्न एक अकृत्रिम, पूर्ण विमर्श के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। चित्र मे पुरुप और प्रकृति का, शिव और शक्ति का पुलकित, तरगित, आनदपूर्ण रमणीय रूप प्रस्तुत है। सपूर्ण एकत्व की स्थिति मे भी यह बिंब गतिहीन नही—उसमे एक अलौकिक गति है, दिव्य स्पदन है, आनदपूर्ण सौंदर्य है।

समरस थे जड या चेतन
सुदर साकार बना था,

चेतनता एक विलसती
आनद अखड घना था।
(आनद सर्ग)

शैव दर्शन के सामरस्य-प्रसूत आनदवाद की चरम परिणति और महाकाव्य का अतिम अश केवल आनद, आनद घन के रूप मे प्रस्तुत है। यह विचार बिंब केवल बोधात्मक या अनुभूत्यात्मक नही—इसमे एक स्पष्ट चाक्षुप ग्राह्यता है जिसे 'सुदर साकार' का प्रयोग एक दिव्य आकृति देता है और 'चेतनता एक विलसती' का प्रयोग सजीव स्पदन—जिसमे नृत्य की थिरकन समाई हुई है। 'चेतनता एक' मे उसी अखड, नित्य सत्य का प्रतिपादन है जो भारतीय चिंतना का सार तत्त्व है, सर्वोच्च शिखर है—सारे ससार मे, अखिल ब्रह्माड मे, जड-चेतन मे—सबमे केवल विराट का ही स्वरूप है, एक ही अखड चैतन्य की अभिव्यक्ति है। इसे ही गीताकार ने 'मया ततमिद सर्वं' कहकर रूपायित किया है। सर्वत्र वही व्याप्त है।

इस प्रकार 'कामायनी' का चिंतन पक्ष सामूहिक विनाश से त्रस्त—कुठित, विघटित, अनास्थावादी, पलायनवादी मनुष्य के निरर्थकता-बोध से आरभ होकर जिज्ञासा, जिजीविषा, भूमात्व, विभुता, समत्व, स्थितप्रज्ञ, एकत्व, सामरस्य, धर्माविरुद्ध काम, अखड चैतन्य, सिसृक्षा आदि की गरिमा एव वैभव को आत्मसात् कर सत्-चित्-आनद के पूर्ण प्रकाश मे पर्यवसित होता है। प्रसाद का यह दार्शनिक चिंतन विकास की एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमे जीवन को उसकी समग्र परिपूर्णता (Totality) मे स्वीकार किया गया है। जीवन की अखडता का प्रतिपादन कामायनी' के दर्शन का सर्वोच्च शिखर है—

जीवन धारा सुदर प्रवाह
सत, सतत, प्रकाश सुखद अथाह,
ओ तर्कमयी ! तू गिने लहर,
प्रतिबिंबित तारा पकड, ठहर,
तू रुक रुक देखे आठ पहर,
वह जडता की स्थिति भूल न कर,
(दर्शन सर्ग)

अखडता ही जीवन का सत्य है—उसे खड-खड करके भिन्न-भिन्न स्तर पर अलग-अलग दृष्टि से समझने का प्रयास ठीक नही। जीवन के सभी कार्यव्यापार, चेतना की विविध दिशाए—इच्छा, क्रिया, ज्ञान को सभी स्तरो पर एक सत्ता के रूप मे ग्रहण करना ही जीवन की सपूर्णता है। जीवन को अपने लाभ के अनुसार खड-खड रूप मे स्वीकार करने की उपयोगितावादी, अवसरवादी दृष्टि ही विघटन का कारण है। यह कोई रासायनिक-यात्रिक प्रक्रिया नही जिसका विश्लेषण कर उसका अधिकाधिक उपयोग किया जा सके—जीवन तो एक चैतन्य सपूर्ण दृष्टि है जिसे उसकी समग्रता मे ही स्वीकार किया जा सकता है। इसे ही प्रसाद ने यहा रूपायित किया है—नदी के अप्रस्तुत द्वारा जीवन की सत्यता, सातत्य, प्रकाशमयता और आनदपरकता को स्पष्ट किया गया है। नदी की धारा को, उसके अनत नित्य प्रवाह को, उसकी आनद कलकल ध्वनि को, उसके आतरिक उल्लास को तर्क से, किनारे खडे होकर लहरो को गिनने मात्र से नही समझा जा सकता। जीवन भी ठीक इसी प्रकार है जिसे तर्क-वितर्क या गणित के द्वारा नही समझा जा सकता। बिंब मे उपनिषद् का स्वर चाक्षुप गोचरता लिये है—'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन'। 'सत्, सतत प्रकाश, सुखद अथाह के

प्रयोग से प्रसाद ने जीवन के अनत, अखड, विशुद्ध प्रज्ञात्मक रागमय, आनदमय गहन गभीर रूप को मूर्तित किया है। 'प्रतिबिंबित तारा पकड ठहर' मे तत्त्व को न समझकर केवल सतह पर ही विचरना व्यजित है। प्रसाद का यह बिंब कामायनी के दर्शन पक्ष का सबसे उज्ज्वल चित्र है। इसे ही गीताकार ने कहा है—

'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च सशयात्मा विनश्यति'

## मनोविज्ञान

आज के परिवर्तित परिवेश एव अभिनव सदर्भ मे काव्य का जो नया आयाम निर्मित हुआ है, वह है—मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण। कामायनी का मनोविज्ञान जीवन विकास की प्रक्रिया है—गगन के सयोग से मानवता के विकास की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। कथा की विरलता को मनोविज्ञान ने नया आयाम दिया है और बिंबो की सृष्टि के लिए प्रभूत उपादान जुटाये हैं। मनोविकारो का सूक्ष्म अकन एव रूपाकार हमारे साहित्य मे पहली बार इतनी सूक्ष्मता से हुआ है।

'कामायनी' के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से बहुत कुछ लिखा गया है और पाश्चात्य मनोविश्लेषको द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो एव मान्यताओ की व्याख्या 'कामायनी' के सदर्भ मे विद्वानो ने की है। पर कामायनी मूलत काव्य ग्रथ है, अत न तो उसे ट्रिटाइज के रूप मे व्याख्यायित किया जा सकता है और न ही विभिन्न सिद्धातो का सायास निरूपण ही उसमे किया जा सकता है। उसके मनोविज्ञान को एक व्यापक मानवीय धरातल पर अचेतन मे होनेवाली प्रतिक्रियाओ के आधार पर ही समझना अधिक सगत होगा। काव्य-बिंब के सदर्भ मे मनोवैज्ञानिक पक्ष के विश्लेषण का इतना ही अर्थ है कि मनुष्य के अचेतन मानस को बिंबो मे किस प्रकार प्रत्यक्ष किया गया है। कामायनी मे नियोजित इन्ही बिंबो का अनुशीलन हमारा प्रस्तुत विषय है।

महाकाव्य का प्रारभ एक सस्कृति के विनाश के पश्चात्, एक भिन्न सस्कृति की विकास प्रक्रिया से होता है और उसका अत उसी सस्कृति के उज्ज्वलतम रूप मे है। अत. मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियो के एकदम असस्कारित रूप से लेकर मानस के पूर्ण सस्कारित विशुद्धतम रूप के बिंब यहा सहज ही सगृहित हो गये हैं। जैसे—

चिंता सर्ग मे मनु का स्वगत चिंतन सामूहिक विध्वस से बहुत गहरे प्रभावित है—उसका सपूर्ण मानस एक अस्त-व्यस्त चिंतन को मुखरित करता है। अनिश्चयात्मक एव अवसाद इसका मूल स्वर है जिसमे जीवन के प्रति विरक्ति, उसकी लघुता का बोध एक स्वाभाविक मनोविकार है—

जीवन तेरा क्षुद्र अश है
व्यक्त नील घन-माला मे
सौदामिनी-सधि सा सुदर
क्षण भर रहा उजाला मे।

(चिंता सर्ग)

जीवन को मृत्यु का एक तुच्छ एव लघु अश बताना मनु के अवसाद व निराशा का सूचक है जो देवसृष्टि के विनाश से उद्भुत है। बिंब मे घनमाला और सौदामिनी के अप्रस्तुत द्वारा

जीवन की क्षणभगुरता एवं मृत्यु की प्रधानता को मूर्तित किया है। 'घन-माला' मे माला शब्द का प्रयोग उसके व्यापक स्वरूप को प्रत्यक्ष करता है और 'सौदामिनी-सधि' दो मेघ-खडो के बीच पल-भर को चमकनेवाली बिजली के क्षणिक अस्तित्व को। यह चमक मेघ-खडो से उत्पन्न हो उन्ही मे विलीन हो जाती है। मनु की दृष्टि मे जीवन भी इतना ही क्षणिक एवं लघु है। बिंब मे चाक्षुषता है, वर्णदीप्ति है, प्रकाश है, गति है। मनु की इस विचारधारा मे कर्म का अभाव और प्रेरको की पूर्ति मे परिवेशगत बाधाए (Environmental obstractions) कारण स्वरूप हैं।

दुख का गहन पाठ पढकर अब
सहानुभूति समझते थे,
नीरवता की गहराई मे
मग्न अकेले रहते थे।
(आशा सर्ग)

मनु का मानस यहा कुछ स्वस्थ हो चला है जिसमे मानवीय सवेदना का उदय स्वाभाविक है। स्वय अनेक कष्ट झेले हुए मनुष्य को अन्य प्राणियो के प्रति सहानुभूति होना मानव-मन की एक सहज प्रतिक्रिया है। 'नीरवता की गहराई' मे वातावरण की निर्जनता एव नि शब्दता स्पष्ट है। कवि ने 'मग्न' शब्द का प्रयोग कर मनु के मन की निर्जनता को सजीव किया है—अकेले मे मग्न वही रहता है जिसके पास कोई हो ही नही। मग्न शब्द का अर्थ यहा 'डूबना' लेना अधिक ठीक होगा जैसे कोई व्यक्ति सागर की अत्यधिक गहराई मे डूब गया हो। यहा यही स्थिति मनु की है—वे एकात वातावरण की गहन नीरवता मे डूबे हैं। बिंब मे विचारात्मक अधिक, प्रत्यक्षता कम है।

व्यक्त नील मे चल-प्रकाश का
कंपन सुख बन बजता था,
एक अतींद्रिय स्वप्न लोक का
मधुर रहस्य उलझता था।
(आशा सर्ग)

मनुष्य अनिश्चित एव मानसिक तनाव की स्थिति मे अधिक काल तक नही रह सकता—उसके मानस का गठन ही ऐसा है कि वह परिवेश के अनुकूल ढलता चलता है—और जो कुछ भी प्रस्तुत सुविधाए हैं उनका अधिकतम उपयोग करने की योजना उसके अचेतन मे बनने लगती है। इसी वृत्ति का बाह्य प्राकट्य आशा के रूप मे होता है। प्रसाद ने आशा के उल्लासमय, रहस्यमय स्वरूप को प्रकृति-बिंब के द्वारा स्पष्ट किया है जिससे मनु की भावनाओ को मूर्त रूप मिला है। व्यक्त नील और चल-प्रकाश—मन की स्वच्छता एव हृदयगत आशा वृत्ति का चचल प्रकाशित स्वरूप स्पष्ट है। जिस प्रकार स्वच्छ नीले आकाश मे चद्रमा की किरणें थिरक रही हैं उसी प्रकार मनु के मन मे आशा की विविधवर्णी छवि उभर रही है। आगे की पक्ति मे प्रसाद ने किसी वाद्य यत्र के ध्वनित होने से हृदय मे उल्लसित तरगो को प्रत्यक्ष किया है। यह लोक अतींद्रिय है, उसका स्वरूप अभी स्पष्ट नही, इसीलिए मनु का मन रहस्य लोक की मधुरता मे उलझ गया है। हृदय के उल्लास-आनद की मधुरता से वासना का स्फुरण स्वाभाविक ही है—'मधुर रहस्य उलझता' इसे ही मूर्त करता है। चित्र अद्भुत है—रग, गति, ध्वनि, मधुरता, मादकता, उल्लास, चाक्षुषता का सश्लिष्ट रूप आकर्षक है।

मनु का मन था विकल हो उठा
संवेदन से खाकर चोट।
(आशा सर्ग)

अनादि वासना के स्फुरण के पश्चात् साथी का अभाव मन को व्याकुल कर देता है। 'संवेदन से खाकर चोट' सुष्ठु प्रयोग है। शब्दों के चयन में एक ऐसे व्यक्ति का बिंब प्रत्यक्ष है जो रास्ते में चलते-चलते हठात् किसी प्रखर प्रहार से तिलमिला गया हो। वासना का माधुर्य, उसके स्वप्न में खोये मनु के लिए प्रणयिनी का अभाव चोट की व्याकुलता से कम नहीं।

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घन श्याम,
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि धाम।
(श्रद्धा सर्ग)

किसी एकांत निर्जन वातावरण में, वासनापूरित हृदय पर अपरूप सौंदर्य के प्रभाव का यह चाक्षुष बिंब श्रद्धा की छवि के साथ मनु के अंतःकरण में उठने वाली अनेकानेक भव-तरंगों को रूपायित करता है। आरंभ में ही 'आह! वह मुख!' शब्दों का प्रयोग बिंब को मनोवैज्ञानिक सत्य से ध्वनित करता है। इन्हीं दो शब्दों में प्रसाद ने मनु के हृदय की व्याकुलता, अनुभूति को उसकी परिपूर्णता में ग्रहण न कर पाने की आकुलता, अतींद्रिय सौंदर्य के अवर्णनीय प्रभाव की मादकता, प्रणय-साथी के रूप में उसे न पा सकने की आशंका तथा उससे उत्पन्न व्यथा की मार्मिकता—सभी एकत्र मूर्तित हैं।

क्या कहूँ, क्या कहूँ मैं उद्भ्रांत?
विवर में नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजड़ा सा राज।
(श्रद्धा सर्ग)

मनु का यह आत्मपरिचय अंतःकरण की शून्यता और व्यथा, भ्रमित एवं लक्ष्यभ्रष्ट जीवन की दयनीय स्थिति का चित्रण करता है और साथ ही किसी को अपना बनाने की तीव्र सशक्त लालसा को भी ध्वनित करता है। यह एक विराट बिंब है। 'नील गगन के विवर में वायु की भटकी एक तरंग'—तरंग के विशेषण के रूप में जिस 'एक' शब्द का प्रयोग हुआ है वह उसकी नितांत तुच्छता एवं लघुता का द्योतक है। मनु आज अपने-आपको भी उसी प्रकार समझ रहा है। आगे की पंक्ति में नीरवता से पूर्ण उजड़े राज्य के रूप में हृदय की शून्यता का बोध तो है ही, उस शून्यता के श्रद्धा द्वारा भरे जाने की याचना भी है। 'क्या कहूँ' संबोधन में ही आत्मीयता है। विपत्तिकाल में दो व्यक्ति अनायास ही पास आ जाते हैं, यही सत्य यहाँ उद्घाटित है। बिंब में विराटता और चाक्षुषता के साथ हलचल है, अस्त-व्यस्त स्थिति है, साथ ही गहन उदासी है।

जो कुछ हो, मैं न सँभालूँगा
इस मधुर भार को जीवन के,

. ..........................

चेतना इद्रियो की मेरी
मेरी ही हार बनेगी क्या ?
(काम सर्ग)

वासना की मूल वृत्ति का स्फुरण, वातावरण की मादकता, श्रद्धा का अप्रतिम सौदर्य एव विगत विकार समर्पण—मनु के मन मे दो प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। श्रद्धा को अपनाने मे और नवीन सृष्टि के विकास मे झिझक, क्योकि मनु देवसृष्टि का विनाश देख चुके हैं किंतु दूसरे ही क्षण वासना की अभिभूति से विवश मन व इद्रियो की व्याकुलता। दो विरोधी वृत्तियो ने बिंब को एक अनूठा सौदर्य प्रदान किया है और मनुष्य का यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण।

था व्यक्ति सोचता आलस मे
चेतना सजग रहती दुहरी,
कानो के कान खोल करके
सुनती थी कोई ध्वनि गहरी।
(काम सर्ग)

अचेतन मानस की प्रबलता इस ध्वनि-बिंब मे प्रतिध्वनित है। स्वप्न मे हमारी दमित वासनाए अत्यत तीव्र रूप मे पुन अवतरित होती हैं। 'सजग रहती दुहरी' मे यही सत्य काव्यात्मक विच्छित्ति से रूपायित है। अतिम पक्तियो मे अचेतन के स्वरूप एव प्रभाव को अधिक प्रखरता मिली है। कानो के कान खोलकर गहरी ध्वनि सुनना अनूठा प्रयोग है। स्वप्न मे यद्यपि वाह्य कर्णेन्द्रिया कार्य नही करती, पर उससे भी सूक्ष्म मनमयी चेतना काम करती रहती है जिससे अचेतन मानस का एकदम गुह्यतम रहस्य उद्घाटित हो जाता है। स्वप्न की कल्पना ने इस ध्वनि बिंब को दृश्यता से मडित किया है।

था समर्पण मे ग्रहण का एक सुनिहित भाव,
थी प्रगति, पर अडा रहता था सतत अटकाव !
(वासना सर्ग)

चेतन-अचेतन की विरोधी चिंतन दिशाओ का यह बिंब है। श्रद्धा और मनु की अतर्मुखी चेतना अज्ञात स्तर पर मन की गहराइयो मे तो मिलन के लिए आकुल है पर चेतन स्तर पर नैतिक मान्यता का मानव-सुलभ सकोच विभाजक रेखा की तरह दोनो को पृथक् कर देता है। समर्पण और ग्रहण दोनो की निश्चित तैयारी है पर चेतन का अकुश सतत जागरूक है।

अरी नीच कृतघ्नते ! पिच्छल शिला सलग्न
मलिन काई सी करेगी हृदय कितने भग्न ?
(वासना सर्ग)

वासना से परिपूर्ण हृदय का ईर्ष्यालु रूप यहा बिंबित है। मनु के हृदय की उद्दाम वासना श्रद्धा से उचित प्रतिदान न पाकर, अपने अधिकार को दूसरो के प्रति समर्पित देखकर चोट खाये विषधर की तरह फुकार कर उठी है। चिकनी शिला पर काई की तुलना से कृतघ्नता का सुदर निरूपण यहा किया गया है। पहले तो चिकनी शिला ही रपटीली होती है और उस पर काई की परत—फिर तो कोई ठहर ही नही सकता। इसी प्रकार हृदय की दशा है। 'अरी

नीच कृतघ्नते' संबोधन में मनु के हृदय की सारी विपाक्तता, ईर्ष्या, घृणा, आक्रोश एकसाथ व्यंजित है।

> पर मन भी क्यों इतना ढीला
> अपने ही होता जाता है!
> घनश्याम खंड सी आंखों में
> क्यों सहसा जल भर आता है।
>
> (लज्जा सर्ग)

पुरुष के साहचर्य के लिए अंतर की प्यास और उसके अभाव में शक्तिहीनता का बोध ही यहां चित्रित है। नारी यों कितनी भी सशक्त, दृढ़ एवं स्पर्धास्पिणी हो पर जब उसके हृदय में किसी भी पुरुष के लिए कोमल ममत्वपूर्ण भावना का उद्रेक होता है तब हृदय की सारी प्रचंडता, समस्त शक्ति, प्रबल अधिकार भावना, स्पर्द्धा और दृढ़ता पल-भर में ही तिरोहित हो जाती हैं—बस केवल एक ही भाव का अस्तित्व रह जाता है—पुरुष के प्रति सर्वस्व समर्पण एवं अडिग विश्वास। 'घनश्याम खंड सी आंखों' के प्रयोग से कवि नारी के दृढ़तम, प्रखर एवं अडिग व्यक्तित्व को रूपायित करता है। 'सहसा जल भर आने' में क्षण-भर में ही एकदम विरोधी प्रवृत्ति का विकास मूर्तित है। प्रश्न से अंत करने में नारी हृदय की रहस्यमय प्रवृत्ति का बोध होता है। चित्रण एकदम स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। बिंब में दृढ़ता के साथ तरलता है।

> बन जाता सिद्धांत प्रथम फिर
> पुष्टि हुआ करती है,
> बुद्धि उसी ऋण को सबसे ले
> सदा भरा करती है।
>
> (कर्म सर्ग)

हृदय-प्रधान, व्यक्ति-केंद्रित मनोवृत्ति का यथार्थ रूप मूर्त है। अपने पक्ष में हृदय जो निर्णय कर लेता है उसे औचित्य प्रदान करने के लिए बुद्धि का समर्थन हम अनेक प्रकार से प्राप्त करते हैं। बिंब में मनोवैज्ञानिक सत्य का प्रतिपादन है, काव्य-स्तर क्षरित है। बुद्धि द्वारा ऋण चुकाये जाने में व्यंजना का वैभव तो है पर बिंब में भाव-उद्रिक्तता नहीं।

> साधारण से कुछ अतिरंजित
> गति में मधुर त्वरा सी,
> उत्सव लीला, निर्जनता की
> जिससे कटे उदासी,
>
> (कर्म सर्ग)

नूतनता का लोभी मानव मन यहां चित्रित है। साधारण शब्दों में ही प्रसाद ने उसके स्वरूप को रेखांकित किया है—'अतिरंजित' शब्द आधुनिक 'नूतनता के धक्के' (Shock of Novelty) को काव्यात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। 'गति में मधुर त्वरा'—रोज के यांत्रिक क्रम में एक नयी मादक गति का संचार है। 'उत्सव लीला' की कल्पना हृदय के उल्लास एवं विलास की अभिव्यक्ति है। बिंब में मधुर झंकृति है, लयात्मक गति है, उल्लास का माधुर्य है, चाक्षुपता है और मानव मन का सजीव अंकन है।

मधुर विरक्ति भरी आकुलता,
घिरती हृदय गगन मे
अतर्दाह स्नेह का तब भी
होता था उस मन मे।
(कर्म सर्ग)

श्रद्धा के माध्यम से नारी के जटिल अत करण का बिंब प्रसाद ने 'मधुर विरक्ति' और स्नेह के अतर्दाह द्वारा मूर्त किया है। विरक्ति की आकुलता मे भी मधुरता का होना—खराव कर्म के प्रति वितृष्णा, फिर भी करनेवाले के प्रति हृदय की मधुरता स्पष्ट है। इसी प्रकार हिंसा-जैसे वर्बर कर्म से जागे अत करण की गहन वेदना और विकलता, पर फिर भी भीतर के स्नेह का रह-रहकर प्रकट हो जाना एकसाथ रूपायित हैं। चाहकर भी प्रिय जनो के प्रति घृणा न कर पाना यही मूल वृत्ति यहा रूपायित है। बिंब अच्छा नही बन पाया है।

प्रिय को ठुकरा कर भी मन की
माया उलझा लेती
प्रणय-शिला प्रत्यावर्तन मे
उसको लौटा लेती।
(कर्म सर्ग)

नारी के भावसकुल हृदय का यह दूसरा चित्र अपेक्षाकृत अच्छा बना है। माया के उलझा लेने मे एक रहस्यमय आवरण बिंब पर छा जाता है। 'माया' शब्द मे ममत्व तो है ही 'मन की माया' मे मन की अनबूझ प्रवृत्ति भी स्पष्ट है। अतिम पक्तियो मे इसे शिला और लहरो के अप्रस्तुत से मूर्त किया गया है—लहरें पत्थर से टकराकर वापस तो चली जाती हैं पर फिर अधिक वेग से आकर शिला का प्रगाढ आलिंगन करती हैं। यह चाक्षुष बिंब लहरो की तीव्र गति एव शिला से टकराने की ध्वनि से आकर्षक बन गया है।

नारी का वह हृदय! हृदय मे
सुधा सिंधु लहरें लेता
वाडव ज्वलन उसी मे जल कर
कचन सा जल रग देता।
(निर्वेद सर्ग)

नारी के रहस्यमय अज्ञेय एव जटिल हृदय का यह तीसरा बिंब इडा के माध्यम से रूपायित है। विरोधी भावो की रंगस्थली नारी की यह मनोभूमि मनोवैज्ञानिक यथार्थ होने के साथ-साथ रमणीय एव मोहक भी है। नारी के हृदय को सिंधु कहकर प्रसाद ने उसकी अतल गहराइयो को स्पष्ट किया है। इस अथाह हृदय मे लहरो के रूप मे नाना प्रकार के विकारो का सृजन निरंतर होता रहता है—कभी वह प्रतिहिंसा की वडवाग्नि के रूप मे उठता है तो कभी क्षमाशीलता के कचन जल के रूप मे शमित हो जाता है। पूरा सागरूपक यहा पर मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करने के लिए नियोजित है। चित्र मे चाक्षुष गोचरता है, ध्वनि है, गति है और सुनहली आभा है।

अघ तमस है, किन्तु प्रकृति का
आकर्षण है खीच रहा,

सब पर, हां अपने पर भी मैं
झुंझलाता हूं खीझ रहा।
(निर्वेद सर्ग)

मानव-हृदय का यह एकदम यथार्थ चित्र है। तामसी वृत्ति मे घिरे मानस मे किस प्रकार विकल्प चलता रहता है, यही यहा मनु के रूप मे रूपायित किया गया है। यह जानकर भी सासारिक भोग-विलास निस्सार हैं, व्यर्थ है, परिणति मे भयावह एव ध्वसकारक है—'फिर भी मन की दुर्बलता का शिकार होकर मैं इद्रियो के आकर्षण से विवश हो उधर ही जा रहा हू।' मन की खीझ यहा पर सार्थक प्रयोग है। जब एक बात को निरर्थक जानकर भी उसे छोड पाना सभव नही होता तो मन मे खीझ होना स्वाभाविक है—ऐसा व्यक्ति सब पर झुंझलाता रहता है। मन के इस निरूपण मे काव्यात्मक उत्कर्ष नही।

स्वप्न, स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।
(रहस्य सर्ग)

वृत्तियो के रूपातरण का यह बिंब है जिसे मनोविज्ञान के शब्दो मे 'Sublimation' कहा जा सकता है। दर्शन की दृष्टि से यह तुरीयावस्था या सबुद्धत्व की महत् घटना है पर मनोविज्ञान के सदर्भ मे यह अचेतन मानस की पूर्ण सस्कारित स्थिति है जहा पर एक सश्लिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता है। इच्छा वृत्ति, क्रियाव्यापार तथा ज्ञान का बोधात्मक स्तर (to feel, to do, to know) सबकी दिशा एक ही है। यहा पर वे विपरीतगामी विरोधी शक्ति नही एकदम सश्लिष्ट सावयविक पूर्णता है (integrated and organic unit) 'कामायनी' के मनोविज्ञान एव मानव-चेतना के विकास का यह उज्ज्वलतम रूप है। श्रद्धा यहा पर जीवन की वह रागमयी वृत्ति है जो बुद्धि निर्णीत पूज्य गुणो के प्रति समर्पित होती है।

इस प्रकार इन बिंबो मे प्रसाद ने मन के क्रियाव्यापारो को, मानस की भावसकुलता को परिस्थिति के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक विचारधाराओ को चित्रित किया है। मनोविज्ञान अपने मूल स्वरूप मे एक विश्लेषण प्रक्रिया है पर 'कामायनी' मे वह आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति से नि सृत काव्यात्मक व्यापार है जिन्हे प्रसाद ने बिंबो के माध्यम से रूपायित किया है। इन मौलिक बिंबो मे क्रातद्रष्टा कवि का अतल, गभीर, तरगित मानस मुखर है। मनोविज्ञान की शास्त्रीय दृष्टि का प्रतिपादन प्रसाद का अभीष्ट नही पर मानव-चेतना की अतरतम प्रवृत्तियो का उद्घाटन काव्यात्मकता के साथ हुआ है जिसने 'कामायनी' महाकाव्य के चिंता पक्ष को सूक्ष्मता एव गहनता दी है।

## पाद-टिप्पणियां

१ 'कामायनी' के आमुख से।
२. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्तादन्नसम्भव।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भव॥—'गीता', अध्याय ३, श्लोक १४।
३ 'गीता', अध्याय ८, श्लोक ७।

७

# कामायनी की बिंब-सृष्टि का वर्गीकरण

## बिब-सृजन का वैशिष्ट्य

'कामायनी' महाकाव्य के अशेष लावण्य का मूलाधार—उसकी सफल बिब-सृष्टि है। महाकवि ने प्रस्तुत प्रसगो, सदर्भों एव वाह्य परिवेशो को प्रगाढ अनुभूतियो से रंजित कर अपनी औपम्यविधायिनी कारयित्री प्रतिभा से उसे शबलित किया है। अमूर्त को चाक्षुप गोचरता मिली है और स्थूल मूर्तता को झिलमिलाती तरलित अमूर्त आभा। पुराने जीर्ण बिंबो मे नवीनता आयी है, विराटता एव उदात्तता के कारण व्यक्ति की अनुभूतिया विश्व-जनीन बन गयी हैं। नि सदेह बिंबो की शबलता व ऊर्जा चाक्षुप-बिंब योजना पर निर्भर है, पर प्रसाद जी ने चाक्षुषता मे वर्णच्छवियो, गधो, गतियो एव हल्के प्रकाश-छायाचित्रो से रजित कर उसे अधिक प्रेपणीय व सवेदनीय बना दिया है। मानस-बिंबो व विचार-बिंबो मे भी मानवीय अनुभूतिपरक आंतरिक उद्वेलन व बाह्य गतिपरक क्रियाशीलता प्रदान की है—अत उनमे भी बिंबधर्मिता आ गयी है। गध, रस, स्पर्श, ध्वनि व गति से बिंबो को सज्जित किया गया है।

प्रसाद की बिंब-प्रक्रिया का वैशिष्ट्य अनेक स्तरो व रूपो मे व्यक्त हुआ है। कवि ने अनुभव के सूक्ष्म, जटिल व अमूर्त रूपो को बिंबो की तराशो मे रूपायित किया है। बिंबो को नये सूक्ष्म स्तर प्रदान किये गये है। बिंब-सृष्टि मे महाकवि ने एक ओर मानस-जगत की अनेक सूक्ष्म सवेदनाओ, प्रकृति के विरल रूपो, विश्व-व्यापी प्रकृति के उपादानो को ग्रहण कर काव्य की सीमाओ से मुक्त कर उसे अखिल मानवीय धरातल प्रदान किया है। कवि की जाग्रत् सौदर्य-चेतना, चिति का स्वरूप, जीवनानुभूतियो की निविडता, विश्व मगलोन्मुख वृत्ति ने इन बिंबो को और अधिक सश्लिष्ट चारुता एव उदात्तता प्रदान की है।

'कामायनी' महाकाव्य के बिंबो को स्थूल रूप से वर्गीकृत करने के साथ-साथ यह भी समीचीन होगा कि हम कुछ बिंबो के विशिष्ट स्तरो को भी आलोकित करें—जिन बिंबो का महाकवि ने अनुभव को उसकी सपूर्णता व गतिशीलता मे पकडने के लिए सफल विधान किया है। बिंब की सार्थकता इसी मे है कि उसके द्वारा अनुभवो की जटिलता व सूक्ष्मता कलात्मक स्तर पर रूपायित हो और मानवीय अनुभवो की अर्थवत्ता विकसित व प्रशस्त हो।

महाकवि ने अनेक बार पुराने बिंबो को लिया है, पर नया सदर्भ देकर उनमे प्राण डाल दिये हैं। श्रद्धा के रूप-चित्रण मे यह कला स्पष्ट है। कवि ने श्रद्धा के अधखुले अगो को रूपायित करने के लिए पुराने फूल का बिंब लिया है, पर उसे नवीन आभा प्रदान की है—

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अग,
खिला हो ज्यो बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रग।
(श्रद्धा सर्ग)

'अधखुला अग' मे श्रद्धा के अर्ध-यौवनोद्भिन्न स्वरूप की व्यजना है। 'बिजली का फूल' सौंदर्य की दीप्ति, तडप, सुकुमारता, तरलित आभा एव सुरभि को सप्रेपित करने मे समर्थ है। मेघ वन का सादृश्य, इधर नील परिधान और इन तीनो के भीतर से झाकते बिजली, फूल व अग—सभी स्फुट हैं। वसुधा व गगन से ली गयी सुदर अप्रस्तुत योजना—श्रद्धा के अगो के गुलाबी के प्रभाव को विकसित करती है।

श्रद्धा की मुस्कान की माधुरी अकित करने मे भी कवि ने पुराने उपमानो मे नव-प्राणोन्मेप कर दिया है, बिंब मे असाधारण चारुता आ गयी है—

और उस मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम!
(श्रद्धा सर्ग)

यहा कवि श्रद्धा की मुस्कान को केवल किरण मात्र नही कहता। मुस्कान को किरण कहना बिंब नहीं प्रतीक मात्र है। प्रसाद ने उसे अरुण की एक किरण कहा है—इससे मुस्कान की ताजगी, नवीनता प्रकट है—इसी व्याज से श्रद्धा का नव्य सौंदर्य भी। 'अम्लान' मे सद्य. स्फुटता व्यग्य है। दूर से आयी हुई किरण थककर अलसा गयी है—जैसे कोई सुकुमारी थककर कोमल शैया पर लेटी हो। मुस्कान के नित्य स्थायित्व की व्यजना है। मुस्कान जितनी सूक्ष्म होगी उतनी ही कलापूर्ण व भावात्मक भी। किसलय के द्वारा अधरो का पतलापन व उनकी ईपत् अरुणिमा प्रकट की गयी है।

प्रसाद ने नारी सौंदर्य का प्रकृति के सौंदर्य के साथ तादात्म्य कर नारी सौंदर्य को मासलता व जडता से मुक्त किया है—इससे नारी को रहस्यमयी शक्ति एव भास्वर सौंदर्य मिला है। नारी का चित्र स्वय प्रकृति का चित्र बन गया है—

वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशि खड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चपक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुजरित मधुप से मुकुल-सदृश वह आनन जिसमे भरा गान
(इडा सर्ग)

श्रद्धा के रूप-चित्रण मे भी धर्म-साम्य व प्रभाव-साम्य के आधार पर प्रकृति से लेकर

अप्रस्तुतो का विधान किया है—जिससे श्रद्धा के रूप की मासलता सूक्ष्म हो सपूर्ण सौंदर्य का मधुर प्रभाव हमारे अत करण पर अकित करती है—

उषा की पहिली लेखा कात,
माधुरी से भीगी भर मोद,
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।
(श्रद्धा सर्ग)

उषा की पहिली कान्त लेखा को नारी का रूप दिया गया है—यहा सपूर्ण विशेषण नववधू के प्रथम मधुयामिनी के मिलन के मादक चित्र को रूपायित करते हैं। कात, माधुरी से भीगी, मोद-मरी, मद-भरी सलज्ज-कोमलागी नववधू की आतरिक सव्रीड उल्लास की व्यजना करते है। यह रूप-चित्रण प्रथमावतीर्ण नव-यौवना मुग्धा श्रद्धा का रूप-वर्णन उतना नही जितना प्रभाव के मधुर कलात्मक अकन। वह चित्र भव्य प्राकृतिक उपकरणो के मार्मिक चयन से निर्मित है।

प्रसाद के रूप-विंबो मे विकसित व रजक वर्ण-बोध मिलता है। विस्तृत हिमराशि पर फिसलती अमिताभ किरणो का एक भव्य चित्र है जो रग-बोध के वैशिष्ट्य पर निर्भर है—

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम-ससृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।
(आशा सर्ग)

'हिम-ससृति' शब्द से दूर-दूर तक व्याप्त हिम की दृष्टि प्रसारी विस्तीर्णता व्यजित है। 'नव कोमल आलोक' अरुणोदय की सुनहली रश्मियो का फैलना है। क्रीडा करना किरणो की चचलता है। 'अनुराग' मे आतरिक भाव व लालिमा प्रकट है। पराग को 'पिंग' कहकर उसके गहरे पीलेपन को व मधुमय कहकर मकरन्द की आर्द्रता को प्रकट किया है।

'कामायनी' मे वर्ण-व्यतिरेक (कलर-कांट्रास्ट) के द्वारा विकसित वर्ण-बोध का भी परिचय दिया है—इससे बिंब-योजना प्रभावकारी बनी है—

सोने की सिकता मे मानो
कालिन्दी बहती भर उसास,
स्वर्गंगा मे इन्दीवर की
या एक पक्ति कर रही रास।
(ईर्ष्या सर्ग)

यहा श्रद्धा के काली ऊन की पट्टी से बधे स्वर्णाभ पीन पयोधरो का सौंदर्य सोने की सिकता व कालिन्दी, स्वर्गंगा व इन्दीवर के वर्ण-वैषम्य की छटा से मूर्तित किया है।

प्रसाद के चाक्षुष विंबो मे रस, गध, स्पर्श, गति की सम्मिलित योजना है। इद्रिय-बोधो, वेदनाओ व पचतन्मात्राओ की एकत्र सश्लिष्ट योजना इन चित्रो को मार्मिक सवेदनीयता प्रदान करती है।

पीता हू, हाँ मैं पीता हूँ
यह स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भरा,
मधुलहरो के टकराने से
ध्वनि मे है क्या गुजार भरा।
(काम सर्ग)

लहरो का मधु उनकी रस तन्मात्रा है तथा ध्वनि व गुजार उनकी श्रवण-तन्मात्रा—लहरों का किनारो से टकराकर कल-कल छप-छप करना—उनकी चाक्षुपता। सबको 'पीना' सपूर्ण ज्ञानेंद्रियो की सवेदनाश्रो को पूर्ण तृप्त करना है।

'कामायनी' मे अनेक बिंव अत्यत लघु हैं, पर उनमे मोती की आब है, अद्‌भुत छाया है, तरलित काति है। लघु-खडित, पर प्रभाव मे पूर्ण व रमणीय।

है स्पर्श मलय के झिलमिल-सा
सज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें वन्द किये
तन्द्रा को पास बुलाता है।
(काम सर्ग)

प्रेम के आकर्पण व मादकता की यह प्रथम अनुभूति है। यह मानवीय सृष्टि का प्रथम प्रणयानुभव है, जो देव सृष्टि की अतृप्त भूख-भरी दर्शन की प्यास से पृथक् है—यह तो काम का नहीं अनग का सूक्ष्म प्रणय-स्तर है जो मानवीय सृष्टि मे विकसित होता है। 'स्पर्श' बिंव है। 'मलय' की झिलमिल मधुर सिहरन पैदा करने वाला आतरिक अनुभव है। पुलकित हो आखें वद किये—आखमिचौनी का प्रेमाकुल खेल है जो न जाग्रत रखता है, न निद्रित करता है—अर्ध-चेतन तद्रित करता है।

रगो ने जिनसे खेला हो
ऐसे फूलो की वह डाली
(काम सर्ग)

'रगो ने जिनसे खेला हो'—इस पक्ति के द्वारा काम अपनी पुत्री श्रद्धा के सौंदर्य की अतश्चेतना मनु के मन मे जगा देना चाहता है। फूल का पुराना बिंव नयी रगदीप्ति पा गया है। 'रगो ने जिनसे खेला हो'—इससे फूलो का उल्लास, रग-वैभव, स्वरूपाकृति सूक्ष्म-स्तर पर प्रेपित की गयी है।

कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियो पर मडराती।
(स्वप्न सर्ग)

कलियो पर काकली का मडराना—श्रद्धा के हृदय मे मनु की मधुर स्मृतियो का आना है। चित्र की सूक्ष्मता मार्मिक है।

जहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाये,
अपनी नालो पर वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये,
(स्वप्न सर्ग)

श्रद्धा की गहन उदासी व विवर्णता व्यजित है। तामरस, नील कमल व श्वेत कमल के

मुरझाने के द्वारा कवि ने मुख की विवर्णता, कजरारी आखो के फीकेपन और कातिहीनता को प्रकट किया है।

बिंबो से मन के अमूर्त भावो को व्यापक मूर्तिमत्ता प्रदान की गयी है। सूक्ष्म सवेदनाओ एव आतरिक सवेगो के द्वद्वो व सघर्षों को—विरोधो के द्वारा चाक्षुपत्ता प्रदान कर कवि मानव-भावो का सूक्ष्म चितेरा बन गया है।

चिंता की आतरिक विस्फोटक स्थिति बाह्य विस्फोट, भूकप, धूमकेतु, करका घन के द्वारा अपनी भयकरता के साथ उभार दी गयी है—साथ ही इसका मानवीय चिंतनपरक उज्ज्वल रूप भी—मधुमय, सुदर, प्रथम कप-सी मतवाली, निगूढ घन-सी—शब्दो के द्वारा प्रकट कर दिया गया है।

मनु का टूटा हुआ विषण्ण जीवन नैराश्य के गहरे बिंबो मे उभरा है—एक-एक चित्र अपने मे पूर्ण रूप से सवेदनीय है—

एक उल्का-सा जलता भ्रान्त
शून्य मे फिरता हूँ असहाय।
(श्रद्धा सर्ग)

सारी पदावली मे उल्का, जलता, भ्रात, असहाय, शून्य मे फिरता हू—मनु के आतरिक विप्लव के बाह्य विस्फोट हैं।

'कामायनी' मे महाकवि की उदात्त कल्पना ने विराट् बिंबो की सर्जना करने मे अपनी अप्रतिम रचना-शक्ति का परिचय दिया है। यह विराट् या उदात्त बिंब-रचना उन स्थलो पर हुई है—जहा आलबन अपनी विशालता, भास्वरता, व्यापक विस्तीर्णता की आश्चर्यजनक सूक्ष्मता से आश्रय के चित्त की अभिभूत एव ऐंद्रिय सवेदना को पराभूत कर देना चाहते हैं। 'कामायनी' के दर्शन का यह विराट् चित्र देखिए—

बन गया तमस था अलक-जाल
सर्वांग ज्योतिर्मय था विशाल,
अतर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित्,
नटराज स्वय थे नृत्य-निरत,
कर अतरिक्ष प्रहसित मुखरित;
स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे देश काल।
(दर्शन सर्ग)

यह विशाल चित्र सर्वव्यापी है। सपूर्ण अधकार सिमटकर जिसका अलक-जाल बन गया हो, सपूर्ण प्रकाश पुजीभूत होकर प्रकाश-शरीरी बन गया हो, जिसकी गभीर ध्वनि से अतरिक्ष प्रहसित मुखरित हो, दिक्-काल जहा समाप्त हो गये हैं।

उड रहे धूलि कण से भूधर
सहार-सृजन से युगल पाद
गतिशील, अनाहत हुआ नाद।
(दर्शन सर्ग)

शिव संबंधी आध्यात्मिक धारणा, पौराणिक दर्शन संस्कार—इस विराट चित्र में बिंबित हो गये हैं।

'प्रलय' का चित्र भी लोमहर्षक, सर्वग्रासी, स्तब्धकर एवं जड़ीभूत करनेवाला है—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी।
(चिंता सर्ग)

'कामायनी' में जहाँ उदात्त व विराट् बिंब हैं वहाँ महाकवि ने प्रेम व सौंदर्य के सूक्ष्म स्पंदनों, मधुर मादक अनुभवों, आंतरिक हर्ष-पुलक की अनुभूतियों को गहरे रंगों, गति क्रियों व बारीक रेखाओं में बाँध दिया है।

'आशा' के आते ही मन के भीतर जो आंतरिक उल्लास उमड़ता है उसे कवि ने संगीत व नृत्य शब्दों में बाँधकर रूपायित किया है। अमूर्त का अमूर्तता में भाव संप्रेषण है—पर लहरों-सी उठने में—चाक्षुष गतिशीलता व मधुमय तान के नाचने में किसी मधुर नृत्यांगना का नर्तन आँखों के सामने झूम उठता है।

स्मिति की लहरों-सी उठती है
नाच रही ज्यों मधुमय तान।
(आशा सर्ग)

'वासना' को चित्रों में स्यात् प्रथम बार ही यों अवतरण मिला हो—

(क) मधु बरसती विधु किरण हैं काँपती सुकुमार,
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु-भार।
(वासना सर्ग)

(ख) धमनियों में वेदना-सा रक्त का संचार
हृदय में है काँपती धड़कन, लिये लघु भार।
(वासना सर्ग)

'कामायनी' की बिंब-योजना लघु एवं विराट् दोनों ओर एक-सी सफल है। कवि ने चिंता, आशा, लज्जा, काम, वासना के अमूर्त मानस भावों को विविध रंगों, रूपों, आकृतियों व गतियों में चित्रित किया है। कवि में विकसित सौंदर्य-चेतना है, जो भोग का उन्नयन करती है। सूक्ष्म मानसिक स्पंदनों को कवि ने कलात्मक बिंबाधायक आधार प्रदान किया है। 'मनु का यही तुम्हारी होगी—उज्ज्वल नव-मानवता'—उज्ज्वल नव मानवता की उदात्त सांस्कृतिक चेतना सर्वत्र जाग्रत् है जिसके कारण बिंबों को कलात्मक स्तर के साथ अर्थवत्ता मिली है। कवि ने प्रेय के भीतर ही श्रेय का, मंगल का उन्मेष कर 'कामायनी' को व्यापक मानवीय धरातल प्रदान किया है।

बिंबों में सबसे अधिक नीले रंग का प्रयोग है जो कवि की विशाल-भावना व असीमता का द्योतक है। आकाश की अनंत व्यापकता ही उसकी असीम नीलिमा है।

(१) उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुसक्यान
(२) नील परिधान बीच सुकुमार

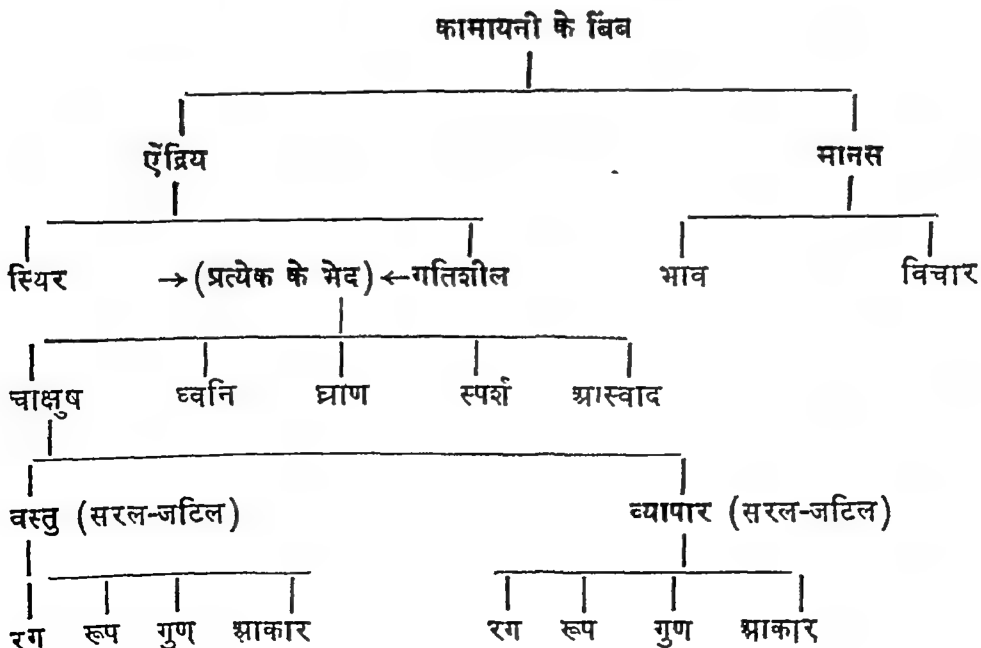
(३) नील घन शावक से सुकुमार
(४) व्यथा की नीला लहरो बीच
(५) नव नील कुज हैं झीम रहे
(६) नीलिमा से नयन की रचती तमिस्रा जाल
(७) नील गगन मे उडती उजडी बिहग बालिका-सी

इनके साथ ही सुनहरे, लाल, गुलाबी रग भी प्रसग के अनुसार अभीप्सित भावो की व्यजना के लिए प्रयुक्त है।

(१) अरुण किरण सी चारो ओर
(२) उषा सुनहरे तीर बरसती
(३) सित सरोज पर क्रीडा करता जैसे मधुमय पिंग पराग
(४) लताकुज मे झिलमिल-सी हेमाभ रश्मि थी खेल रही।

## कामायनी के बिंबो का वर्गीकरण

काव्यो का वर्गीकरण हम दो आधार पर कर सकते हैं—ऐंद्रिय व मानस। जिन बिंवो मे ज्ञानेंद्रियो का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष हो उन्हे ऐंद्रिय बिब और जिनमे ऐंद्रिय सवेदन अपेक्षाकृत गौण तथा मानस के भावतरगन व विचार चिंतन प्रमुख हो, उन्हे मानस बिंव कह सकते हैं। यह विभाजन स्थूल है क्योकि बिंब रसोद्रिक्त न हो और भाव या रस को प्रेषित न करे, तो वह काव्य-बिंब नही। इसके अतिरिक्त बिंब का ऐंद्रिय बोधात्मक होना, उसमे चित्रात्मकता होना भी आवश्यक है अत विभाजन के शीर्षक काव्य-बिंब के सदर्भ मे स्पष्ट रूप से नही किये जा सकते। यो भी काव्य-बिंबो का वर्गीकरण सरल नही और कामायनी के बिंवो का वर्गीकरण तो और भी कठिन है क्योकि उसकी बिंब सर्जना जटिल-सश्लिष्ट एव बहुआयामी है। यहा हम एक वैशिष्ट्य की प्रमुखता के आधार पर बिंबो का विभाजन करने का प्रयास कर रहे है जिसकी रूपरेखा इस प्रकार हो सकती है—



## ऐंद्रिय बिंब

चाक्षुष बिंब (स्थिर)—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
.... ..................
दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।

(चिंता सर्ग)

बिंब-प्रकार—स्थिर, सरल, वस्तु बिंब।

मुख केवल वह सुख का संग्रह
केन्द्रीभूत हुआ इतना
छाया पथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।

(चिंता सर्ग)

बिंब-प्रकार—स्थिर, सरल वस्तु बिंब जो छायापथ और नव तुषार से वर्ण तथा रस-संवलित है।

अरी उपेक्षा-भरी अमरते!
री अतृप्ति निर्बाध विलास!
द्विधा रहित अपलक नयनों की,
भूख भरी दर्शन की प्यास।

(चिंता सर्ग)

स्थिर सरल व्यापार बिंब जिसमें देव विलास की निर्बाधता ध्वनित है।

अंधकार में मलिन मित्र की
धुँधली आभा लीन हुई,
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा
स्तर-स्तर जमती पीन हुई।

(चिंता सर्ग)

स्थिर, जटिल, व्यापार बिंब-अंधकार, मित्र, धुंधली आभा, घनी कालिमा से वर्ण-संवलित एवं स्तर-स्तर जमने वाली कालिमा से एकदम जड़ता।

घनीभूत हो उठे पवन, फिर
श्वासों की गति होती रुद्ध,

श्रौर चेतना थी बिलखाती,
दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध ।
(चिंता सर्ग)

स्थिर, सरल, वस्तु बिंब—क्रियाव्यापारो की नितात कमी ने इसे अधिक जड बनाया है ।

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक सकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति मे
मान किए सी ऐंठी सी ।
(आशा सर्ग)

सरल, स्थिर, व्यापार बिंब—एक आकृति स्पष्ट है । प्रकृति का मानवीकरण बिंब को अधिक प्रत्यक्ष करता है ।

देखा मनु ने वह अतिरजित
विजन विश्व का नव एकात,
जैसे कोलाहल सोया हो
हिम शीतल जडता सा श्रात ।
(आशा सर्ग)

स्थिर, सरल, वस्तु बिंब—प्रकृति का रगीन वातावरण ।

इद्रनील मणि महाचषक था
सोम रहित उलटा लटका,
आज पवन मृदु साँस ले रहा
जैसे बीत गया खटका ।
(आशा सर्ग)

स्थिर, सरल, वस्तु बिंब—आकाश की नीलिमा से विराटता एव रगदीप्ति ।

अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर,
निद्रा मे सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर ।
(आशा सर्ग)

स्थिर, सरल, आकार बिंब—सुख स्वप्न एव पुलक से गुण वशिष्ट्य ध्वनित ।

सध्या घनमाला सी सुदर
ओढ रग-बिरगी छीट,
गगन चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट ।
(आशा सर्ग)

स्थिर, सरल, वस्तु बिंब—आकार एव रग मे भास्वर ।

कौन तुम ? संसृति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक ?
मधुर विश्रांत और एकांत—
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुंदर मौन
और चंचल मन का आलस्य।
(श्रद्धा सर्ग)

स्थिर, सरल, आकृति बिंब—मणि की आभा और रूप की प्रभा से प्रोद्भासित तथा करुणमय सुंदर मौन से गरिमामंडित।

और देखा वह सुंदर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम,
कुसुम वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।
.... . . ... .... ......... .
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीडित ज्यों शिशुसाल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।
....... .. .. .... .... .... . ...
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मधुर अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।
. . . .. .. .. . . ...... .
या कि नव नील इन्दु लघु शृंग
फोड कर धधक रही हो कांत,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।
...... .... . .. . . .. ..
और उस मुख पर वह मुसक्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम,
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।
(श्रद्धा सर्ग)

संश्लिष्ट रूप बिंब—रंग, आकृति, रूप, गुण सबकी एकत्र संयोजना कांति-दीप्ति से ज्योतित एक अनुपम रूप बिंब।

शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल नही सका जो कि हिमखड
दौडकर मिला न जलनिधि ग्रक
ग्राह वैसा ही हूँ पाषड।
..... .... ............... ..........

क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रात ?
विवर मे नील गगन के ग्राज
वायु की भटकी एक तरग,
शून्यता का उजडा-सा राज।
............. ........ ....... .......

एक विस्मृति का स्तूप ग्रचेत
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिंब
ग्रौर जडता की जीवन राशि
सफलता का सकलित विलब।
(श्रद्धा सर्ग)

स्थिर, खडित बिंबो की शृखला—जटिल एवं खिन्न मन स्थिति को रूपायित करता है।

उन्हे चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खडी सानद
ग्राज से मानवता की कीर्ति
ग्रनिल, भू, जल मे रहे न बद।
....... ................... ..... ...

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप कच्छप डूबें उतरायँ
किन्तु यह खडी रहे दृढ मूर्ति
ग्रभ्युदय का कर रही उपाय।
(श्रद्धा सर्ग)

स्थिर, सरल बिंब—एक दृढ ग्राकृति स्पष्ट रूपायित है। मानवता का एक विराट, म॰त् बिंब।

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
ग्रा रही थी मदिर भीनी माधवी की गध
पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु ग्रध।
शिथिल ग्रलसाई पडी छाया निशा की कात;
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रात
उसी झुरमुट मे हृदय की भावना थी भ्रात
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कात।
(वासना सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब—ज्योत्स्ना से भास्वर माधवी की गंध से सुवासित। वातावरण का उल्लास एवं वासना का शैथिल्य ध्वनित है।

गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गद्गद बोल।
(वासना सर्ग)

स्थिर, आकृति-बिंब—अनुभावों की संश्लिष्ट योजना, लज्जा को एक स्पष्ट आकार मिला है।

वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए।
(लज्जा सर्ग)

स्थिर, सरल आकृति-बिंब—नायिका की एक मुद्रा प्रत्यक्ष है।

नील गरल से भरा हुआ
यह चंद्र कपाल लिये हो
इन्हीं निमीलित ताराओं में
कितनी शांति पिये हो।
(कर्म सर्ग)

स्थिर, विराट, वस्तु-बिंब—चंद्र कपाल और निमीलित ताराओं के रूप में वर्णदीप्ति। विषपायी शिव का रूप प्रत्यक्ष है।

मृग डाल दिया, फिर धनु को भी
मनु बैठ गए शिथिलित शरीर,
बिखरे थे सब उपकरण वहीं
आयुध, प्रत्यंचा शृंग तीर।
(ईर्ष्या सर्ग)

स्थिर, विपर्यस्त आकृति-बिंब—एक उदास थके व्यक्ति का रूप उभरता है।

सोने की सिकता में मानो
कालिंदी बहती भर उसास,
स्वर्गंगा में इंदीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास।
(ईर्ष्या सर्ग)

स्थिर, सरल रूप-बिंब—सोने की सिकता, स्वर्गंगा और इंदीवर से वर्ण-संवलित है।

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चंपक से दृग देते अनुराग विराग ढाल

गुजरित मधुप से मुकुल सदृश वह ग्रानन जिसमे भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे ससृति के सब विज्ञान-ज्ञान
था एक हाथ मे कर्म-कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारो के नभ को था मधुर ग्रभय ग्रवलम्ब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी ग्रालोक वसन लिपटा ग्रराल
चरणो मे थी गति भरी ताल ।

(इडा सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब—नखशिख वर्णन की मौलिकता, प्रखर चाक्षुषता, ग्राकृति, रग, गुण सभी का एकत्र सयोजन । रूप-वर्णन मे यह सश्लिष्ट बिंब ग्रनुपम है ।

कामायनी कुसुम वसुधा पर पडी न वह मकरद रहा,
एक चित्र बस रेखाग्रो का, ग्रब उसमे है रग कहाँ !
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह सध्या थी रवि शशि तारे ये सब कोई नही जहाँ ।

(स्वप्न सर्ग)

स्थिर ग्राकृति-बिंब—रंग होकर भी दीप्ति नही, उदास ग्रवसन्न चित्र ।

ग्रौर सामने देखा उसने निज दृढ कर मे चषक लिये
मनु, वह क्रतुमय पुरुष ! वही मुख सध्या की लालिमा पिये
मादक भाव सामने, सुदर एक चित्र-सा कौन यहाँ,
जिसे देखने को यह जीवन मर मर कर सौ बार जिये ।

(स्वप्न सर्ग)

स्थिर ग्राकृति-बिंब—एक प्रखर तेजस्वी प्रतिभाशाली व्यक्ति प्रत्यक्ष होता है ।

वह सारस्वत नगर पडा था
क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना,
जिसके ऊपर विगत कर्म का
विष विषाद ग्रावरण तना ।
उल्काधारी प्रहरी से ग्रह-
तारा नभ मे टहल रहे
वसुधा पर यह होता क्या है
ग्रणु-ग्रणु क्यो है मचल रहे ?

(निर्वेद सर्ग)

स्थिर करुण वस्तु-बिंब—युद्ध-विध्वस्त नगर की नि स्पदता द्योतित है ।

वह चद्रहीन थी एक रात
जिसमे सोया था स्वच्छ प्रात
उजले-उजले तारक झलमल
प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल

धारा वह जाती बिंब अटल
खुलता था धीरे पवन पटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पांत
सुनती जैसे कुछ निजी बात।
(दर्शन सर्ग)

शात, स्थिर रात्रि का वस्तु-बिंब—तारक झलमल से द्योतित और पवन पटल के खुलने मे स्पर्श सवलित है।

मरकत की वेदी पर ज्यो
रक्खा हीरे का पानी,
छोटा-सा मुकुर प्रकृति का
या सोयी राका रानी।
(आनद सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब—गहरी हरीतिमा की दीप्ति, मरकत की वेदी और हीरे का पानी रंग से भास्वर करते हैं।

वह चद्र किरीट रजत नग
स्पदित सा पुरुष पुरातन
देखता मानसी गोरी
लहरो का कोमल नर्तन।
(आनद सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब—हिमालय के मानवीकरण ने स्पष्ट आकृति दी है, चद्र किरीट एव रजत नग से वर्णदीप्ति।

## चाक्षुष बिंब (गतिशील)—

अरी आंधियो! ओ बिजली की
दिवा रात्रि तेरा नर्तन,
उसी वासना की उपासना,
वह तेरा प्रत्यावर्तन।
(चिंता सर्ग)

गतिशील व्यापार-बिंब—बिजली के प्रयोग से प्रखर रग व ध्वनि का समावेश।

चलते थे सुरभित अचल से
जीवन के मधुमय निश्वास।
कोलाहल मे मुखरित होता
देव जाति का सुख विश्वास।
(चिंता सर्ग)

गतिशील व्यापार-बिंब—स्मृत विलास के कारण चाक्षुपता कम, सवेदनीयता अधिक। सुरभित अचल और कोलाहल मे मुखर होना—गध व ध्वनि की व्यजना सश्लिष्ट बिंब।

वह अनग पीडा-सा अनुभव
अग भगियो का नर्तन,
मधुकर के मरद उत्सव-सा
मदिर भाव से आवर्तन ।
(चिंता सर्ग)

गतिशील व्यापार-बिंब—'नृत्य' ने ध्वनि और सगीत-सवलित किया है ।

दिग्दाहो से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के ।
सघन गगन मे भीम प्रकंपन,
झंझा के जलते झटके ।
(चिंता सर्ग)

गतिशील व्यापार-बिंब—प्रकृति के उद्वेलनो का एकत्र सयोजन अत जटिल व्यापार-बिंब । 'धूम उठे' और 'जलधर' से रगदीप्ति ।

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालो सी
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालो सी ।
. ............. .......... ...... ..
सबल तरगाघातो से उस
क्रुद्ध सिंधु के, विचलित सी
व्यस्त महाकच्छप सी धरणी,
ऊभ-चूभ थी विकलित सी ।
.......................... . . .
लहरें व्योम चूमती उठती
चपलाएँ असख्य नचती ।
गरल जलद की खडी झडी मे
बूँदें निज ससृति रचती ।
(चिंता सर्ग)

प्रलय का भीषण गतिशील जटिल व्यापार-बिंब—यह चित्र एक स्थिति की सम्यक् व्यजना करता है । रग, ध्वनि, आकार सभी का समावेश ।

उषा सुनहले तीर बरसती
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल मे अतर्निहित हुई ।
.. ....... ............. ......
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम ससृति पर भर अनुराग,

सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।
धीरे-धीरे हिम-आच्छादन
हटने लगा धरातल से
जगी वनस्पतियाँ अलसाई
मुख धोती शीतल जल से।
नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने,
जलधि लहरियो की अँगडाई
बार-बार जाती सोने।
(आशा सर्ग)

प्रकृति के उल्लसित रूप का व्यापार-सवलित गतिशील बिंब—उषा के आगमन से दीप्ति सुनहली आभा से मंडित यह बिंब-शृंखला प्रकृति को सजीवता प्रदान करती है।

दिवारात्रि या मित्र-वरुण की
बाला का अक्षय शृंगार
मिलन लगा हँसने जीवन के
उर्मिल सागर के उस पार।
(आशा सर्ग)

प्रकृति का गतिशील व्यापार-बिंब जो ऊर्मिल सागर तथा उषा साँझ के मानवीकरण और मिलन से स्पंदित है।

जब कामना सिंधु तट आई
ले संध्या का तारा दीप,
फाड सुनहली साडी उसकी
तू हँसती क्यो अरी प्रतीप ?
.. .... . .... ........... ...
विकल खिलखिलाती है क्यो तू ?
इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर ;
तुहिन कणो, फेनिल लहरो मे
मच जावेगी फिर अँधेर।
घूँघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती सी आती,
विजन गगन मे किसी भूल-सी
किसको स्मृति पथ मे लाती ?
(आशा सर्ग)

मानवीकृत रात्रि का गतिशील व्यापार-बिंब जो यौवनोन्मत्त अभिसारिका की विविध भंगिमाओं से उद्भासित है। बिंब मे प्रखर चाक्षुषता के साथ वर्ण, ध्वनि, आकार सभी का नियोजन है।

कहा मनु ने, नभ धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का-सा जलता भ्रात
शून्य मे फिरता हूँ असहाय।
...... . .. ....... . .........
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रात ?
विवर मे नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरग,
शून्यता का उजडा सा राज।
(श्रद्धा सर्ग)

मन स्थिति को रूपायित करनेवाले ये बिंब प्रतीको के कारण गत्यात्मक हो गये हैं। जटिल मन स्थिति के कारण बिंब मे जटिलता है जिससे चाक्षुप गोचरता क्षरित है।

नव नील कुज हैं झीम रहे,
कुसुमो की कथा न वद हुई ;
है अतरिक्ष आमोद भरा
हिम कणिका ही मकरद हुई।
इस इदीवर से गध भरी
वुनती जाली मधु की धारा ,
मन-मधुकर की अनुराग मयी
वन रही मोहिनी-सी कारा।
(काम सर्ग)

काम के प्रभाव का गतिशील व्यापार-बिंब—रंग, ध्वनि, रस, गध से सवलित।

अपना फेनिल फन पटक रहा,
मणियो का जाल लुटाता सा,
उन्निद्र दिखाई देता हो
उन्मत्त हुआ कुछ गाता-सा।
(काम सर्ग)

जटिल गतिशील व्यापार-बिंब—वर्णदीप्ति और ध्वनि का समाहार।

नदी तट के क्षितिज मे नव जलद सायकाल,
खेलता ज्यो दो बिजलियो से मधुरिमा जाल।
लड रहे अविरत युगल थे चेतना के पाश
एक सकता था न कोई दूसरे को फाँस।
(वासना सर्ग)

गतिशील वस्तु-बिंब—मन स्थिति का मूर्तिकरण जो बिजली की कौंध से भास्वर है।

गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि मे असहाय
घन पटल मे डूवता था किरण का समुदाय

कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल छद
मधुकरी का सुरस सचय हो चला अब वद ।
(वासना सर्ग)

वस्तु-बिंब, जिसमे गति होकर भी एक प्रकार का व्यापक शैथिल्य है । सूर्यास्त की अरुणिमा भी निस्तेज है ।

देखता हूँ चकित जैसे ललित लतिका-लास,
अरुण घन की सजल छाया मे दिनात-निवास
और उसमे हो चला जैसे सहज सविलास,
मदिर माधव यामिनी का धीर पद विन्यास ।
(वासना सर्ग)

रात्रि रूपी नायिका का यह गतिशील व्यापार-बिंब है—गध, स्पर्श से परिपूर्ण । बिंब मे अद्भुत लयात्मकता है ।

किरनो का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलवन ले चढती ।
रस के निर्झर मे धँस कर मैं
आनद शिखर के प्रति वढती ।
(लज्जा सर्ग)

गतिशील वस्तु-बिंब—किरनो के रग एव निर्झर की ध्वनि से पूर्ण ।

देवदारु के वे प्रलम्ब भुज, जिनमे उलझी वायु-तरग
मुखरित आभूषण से कलरव करते सुदर बाल विहग,
आश्रय देता वेणु वनो से निकली स्वर लहरी ध्वनि को
नाग केसरो की क्यारी मे अन्य सुमन भी थे बहुरग ।
(स्वप्न सर्ग)

गतिशील, सरल वस्तु-बिंब—फूलो के विविध वर्ण एव मुखरित आभूषण से रग व ध्वनि-सवलित ।

सत्ता का स्पदन चला डोल,
आवरण पटल की ग्रथि खोल,
तम-जलनिधि का बन मधु मथन,
ज्योत्स्ना सरिता का आलिंगन,
वह रजत गौर उज्ज्वल जीवन,
आलोक पुरुष ! मगल चेतन !
केवल प्रकाश का था कलोल,
मधु किरनो की थी लहर लोल ।

लीला का स्पदित आह्लाद,
वह प्रभा पुज चितिमय प्रसाद,

आनंदपूर्ण ताडव सुदर,
झरते उज्ज्वल श्रम सीकर,
बनते तारा, हिमकर दिनकर,
उड रहे धूलि कण से भूधर;
सहार सृजन से युगल पाद
गतिशील, अनाहत हुआ नाद।

बिखरे असख्य ब्रह्माण्ड गोल
युग त्याग ग्रहण कर रहे तोल,
विद्युत कटाक्ष चल गया जिधर,
कपित ससृति बन रही उधर
चेतन परमाणु अनत बिखर,
बनते विलीन होते क्षण भर,
यह विश्व झूलता महा दोल,
परिवर्तन का पट रहा खोल।

(दर्शन सर्ग)

ताडव नृत्य का विराट, भव्य गतिशील व्यापार-बिंब—जिसमे अलौकिक प्रकाश-नृत्य का लय, सृजन व सहार का दिव्य स्वरूप, सभी रूपायित हैं। यह बिंब-शृखला एक जटिल व्यापार को व्यजित करती है। रग, रूप, ध्वनि, गुण, आकार सभी बिंबात्मक उपादानो का योग इसमे है।

नीचे जलधर दौड रहे थे
सुदर सुरधनु माला पहने,
कुजर-कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने।
प्रवहमान थे निम्न देश मे
शीतल शत-शत निर्झर ऐसे,
महाश्वेत गजराज गड से
बिखरी मधु धाराएँ जैसे।

(रहस्य सर्ग)

गतिशील वस्तु-बिंब—प्रकृति को उपमा के द्वारा एक स्पष्ट आकृति दी गयी है। चित्र मे चपला के गहनो की चमक व निर्झर का कलनाद है।

ध्वनि-बिंब (स्थिर)—

ककण-क्वणित रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार,
मुखरित था कलरव, गीतो मे
स्वर लय का होता अभिसार।

(चिंता सर्ग)

स्मृत विलास-बिंब—ध्वनि-बिंब मे विलास के विभिन्न व्यापारो की गति है। शब्द योजना ध्वन्यात्मक अत ध्वनि की स्पष्टता है। सभोग के चित्र मे आकार भी।

हाहाकार हुआ क्रदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगत बधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर।
(चिंता सर्ग)

कर्णभेदी ध्वनियो की एकत्र जटिल नियोजना। बिंब मे तीव्र गति, प्रलयकालीन प्राकृतिक प्रकोप का सम्यक् व्यापार है।

श्रुतियो मे चुपके चुपके मे
कोई मधुधारा घोल रहा,
इस नीरवता के परदे मे
जैसे कोई कुछ बोल रहा।
(काम सर्ग)

स्वरो के माधुर्य से ध्वनित यह स्थिर वस्तु-बिंब काम से सरस और मधुर है। नीरवता के वातावरण ने ध्वनि को अधिक कोमल बनाया है।

उठती है किरनो के ऊपर
कोमल किसलय की छाजन-सी,
स्वर का मधु नि स्वन रध्रो मे
जैसे कुछ दूर बजे बसी।
(काम सर्ग)

शात वातावरण मे वशी की मीठी ध्वनि से पूरित यह स्थिर वस्तु-बिंब है। काम के उद्रेक से आंतरिक सगीत की व्यजना है।

धवल मनोहर चद्र बिंब से
अकित सुदर स्वच्छ निशीथ
जिसमे शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्गीथ।
(आशा सर्ग)

वातावरण की स्वच्छता और चद्रमा की काति उद्गीथ की सगीत माधुरी से कर्णप्रिय हो उठी है। यह एक स्थिर वस्तु-बिंब है जो ज्योत्स्ना से ज्योतित एव साम गान से पवित्र हो गया है।

श्याम नभ मे मधु किरण-सा फिर वही मृदु हास,
सिंधु की हिलकोर दक्षिण का समीर विलास।
कुज मे गुजरित कोई मुकुल सा अव्यक्त,
लगा कहने अतिथि, मनु थे सुन रहे अनुरक्त।

प्रेमपूरित वातावरण ध्वनि चित्रो से गुजरित है—श्रद्धा की मधुर वाणी एव सरस मुसकान के लिए कई अप्रस्तुतो की योजना—यह जटिल सश्लिष्ट वस्तु-बिंब है जो समीर के स्पर्श से पुलकित और सिंधु की हिलोर से तरगित है।

कोमल किसलय मर्मर रव से
जिसका जय-घोष सुनाते हो,
जिसमे दु ख सुख मिलकर मन के
उत्सव आनद मनाते हो।
(लज्जा सर्ग)

उत्सव-समारोह के वातावरण मे पत्तो की मर्मर के रूप मे जयघोष का ध्वनि-बिंब। स्थिर, सरल, वस्तु-बिंब जिसे नृत्य निरत समूह ने आकार-सवलित किया है।

जो गूँज उठे फिर नस-नस मे
मूर्च्छना समान मचलता सा,
आँखो के साँचे मे आकर
रमणीय रूप बन ढलता सा।
(लज्जा सर्ग)

सगीत की ध्वनि और मूर्च्छना से यह ध्वनि-बिंब मधुर है। रमणीय रूप ने इस ध्वनि बिंब को आकार दिया है। नस-नस मे मचलना—एक झकृति एव लय से पूरित है।

वेदी की निर्मम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी।
(कर्म सर्ग)

निर्मम हास्य एव पशु की कातर वाणी—विरोध ने ध्वनि-बिंब को प्रखर बनाया है। पशु के चीत्कार से सारा वातावरण कपित है। सरल गतिशील व्यापार-बिंब है।

अभिशाप प्रतिध्वनि हुई लीन
नभ सागर के अतस्थल मे जैसे छिप जाता महा मीन।
मृदु मरुत लहर मे फेनोपम तारागण झिलमिल हुए दीन
निस्तब्ध मौन था अखिल लोक तद्रालस था वह विजन प्रात।
(इडा सर्ग)

अभिशाप की तीखी ध्वनि की गूज और फिर उसका धीरे-धीरे समाप्त हो जाना। पहली पक्ति मे टकरानेवाली ध्वनि है। उपमा के अप्रस्तुतो ने इसे कई बिंबो से युक्त कर जटिलता दी है। गतिशील व्यापार-बिंब।

आलिगन! फिर भय क्रदन! वसुधा जैसे काँप उठी!
वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी!
अतरिक्ष मे हुआ रुद्र हुकार भयानक हलचल थी
अरे आत्मजा प्रजा! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।
(स्वप्न सर्ग)

गतिशील व्यापार-विंव । अतिचारी मनु और अपमानित इडा के प्रसग को इस ध्वनि विंव ने हृदय-विदारक बनाया है । 'मय का क्रदन !' एक-एक शब्द मे चीख की पुकार है । रुद्र के हुंकार ने इस ध्वनि को कर्णभेदी, असहनीय बना दिया है ।

श्वास-पवन पर चढकर मेरे
दूरागत वशी-रव सी,
गूंज उठी तुम विश्व कुहर मे
दिव्य रागिनी अभिनव-सी ।

(निर्वेद सर्ग)

सरल वस्तु-विंब । श्वास-पवन पर वशी-रव का गूजना—ध्वनि-विंव को दिव्य कोमल सगीत से मडित करता है ।

खग कुल किलकार रहे थे
कलहस कर रहे कलरव
किन्नरियाँ वनीं प्रतिध्वनि
लेती थी ताने अभिनव ।

(आनद सर्ग)

सरल, गतिशील व्यापार-विंव—उल्लास की ध्वनि-प्रतिध्वनि से गुजरित ।

गूंजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर,
वाणी की वीणा ध्वनि-सी
भर उठी शून्य मे झिलकर ।
हिमखड रश्मि-मडित हो
मणि दीप प्रकाश दिखाता,
जिनसे समीर टकराकर
अति मधुर मृदग बजाता ।

(आनद सर्ग)

लास-राम का गतिशील व्यापार-विंव—नृत्य एव सगीत की मधुर ध्वनि से झकृत । रास की योजना से आकार-सवलित ।

घ्राण विंव—

सौरभ से दिगत पूरित था
अतरिक्ष आलोक अधीर,
सवमे एक अचेतन गति थी
जिससे पिछडा रहे समीर ।

(चिंता सर्ग)

अतरिक्ष आलोक से अधीर है, और सवमे एक अचेतन गति है—स्मृत विलास का यह विंव सौरभ से सुवासित एव विलास मे तरगित है । विंव मे गति है, प्रकाश है ।

इस इदीवर से गध भरी
बुनती जाली मधु की धारा;
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी सी कारा।

(काम सर्ग)

गंध व मधु की धारा से जाल बुनने की कल्पना तथा इदीवर और मधुकर के अप्रस्तुत द्वारा गंध के साथ चाक्षुषता का समावेश। गतिशील व्यापार बिंव।

उन नृत्य शिथिल निश्वासो की
कितनी है मोहमयी माया,
जिनसे समीर छनता-छनता
बनता है प्राणो की छाया।

(काम सर्ग)

घ्राण-बिंव नृत्यागना के सुरभित शिथिल श्वासो के स्पर्श से पुलकित है। स्थिर वस्तु-बिंव जिसे नर्तकी की कल्पना ने आकार भी दिया है।

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गध;
पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु अध।

(वासना सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब, वातावरण मे चतुर्दिक मधु गंध व्याप्त। 'सुधा मे स्नात' इस घ्राण-बिंब को कातिमय बना रहा है।

मधु बरसती विधु किरण है कांपती सुकुमार
पवन मे है पुलक मथर, चल रहा मधु भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यो हैं प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?

(वासना सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब जिसमे अनुभावो की व्यजना से जटिलता आ गयी है। इसमे वासना की सुवासित दिव्यता को मनु और श्रद्धा के सामीप्य ने आकार-सवलित किया है। ज्योत्स्ना से आलोकित यह बिंब अद्भुत है।

सुमन सकुलित भूमि रध्र से
मधुर गध उठती रस भीनी,
वाष्प अदृश्य फुहारे इसमे
छूट रहे, रस बूंदें भीनी।

(रहस्य सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब जिसमे मधुर व रसभीनी विशेषणो ने गध को अधिक साद्र किया है। स्पर्श की पुलक इसमे है।

स्पर्श बिंब—

बिछुडे तेरे सब आलिंगन,
पुलक स्पर्श का पता नही;
मधुमय चुम्बन कातरताएँ
आज न मुख को सता रही।
(चिंता सर्ग)

सयोग शृगार का यह बिंब स्पर्शिक अनुभूतियो की स्मृति से विकल है। स्थिर व्यापार-बिंब।

धीर समीर परस से पुलकित
विकल हो चला श्रांत शरीर
आशा की उलझी अलको से
उठी लहर मधुगध अधीर।
(आशा सर्ग)

यह स्पर्श बिंब मधुगध की अधीर लहर से अधिक मधुर बन गया है। स्थिर सरल वस्तु-बिंब।

है स्पर्श मलय के झिलमिल सा
सज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें बन्द किए
तन्द्रा को पास बुलाता है
व्रीडा है यह चचल कितनी
विभ्रम से घूँघट खीच रही
छिपने पर स्वय मृदुल कर से
क्यो मेरी आँखें मीच रही।
(काम सर्ग)

गतिशील व्यापार बिंब—मलय के झिलमिल स्पर्श मे पुलकित और तद्रिल। बिंब मे प्रेमक्रीड़ा के मधुर आगिक स्पर्श हैं।

भुज लता पडी सरिताओ के
शैलो के गले सनाथ हुए,
जलनिधि का अचल व्यजन बना
धरणी का, दो-दो साथ हुए।
(काम सर्ग)

आलिंगन के स्पर्श से रोमाचित गतिशील व्यापार बिंब।

मन कही, यह क्या हुआ है ? आज कैसा रग।
नत हुआ फण दृप्त ईर्ष्या का विलीन उमग।
और सहलाने लगा कर-कमल कोमल कात,
देखकर वह रूप सुषमा मनु हुए कुछ शात।
(वासना सर्ग)

प्रयसी के कोमल स्पर्श से मधुर यह व्यापार बिंब रूप की सुषमा से मडित है। स्पर्श बिंब चाक्षुषता-सवलित है।

नीरव निशीथ मे तलिका सी
तुम कौन आ रही हो बढती?
कोमल बाँहे फैलाये सी
आलिगन का जादू पढती।
(लज्जा सर्ग)

गतिशील व्यापार बिंब—लज्जा के मानवीकरण से आकार-सवलित, आलिगन के स्पर्श से कोमल मादकता का सचार।

छूते थे मनु और कटकित
होती थी वह बेली,
स्वस्थ व्यथा की लहरो-सी
जो अगलता थी फैली।
(कर्म सर्ग)

स्पर्शजन्य रोमाच अनुभाव का यह स्थिर वस्तु-बिंब है। मनु और श्रद्धा के युग्म ने इसे आकार-सवलित किया है।

जलदागम मारुत से कपित
पल्लव सदृश हथेली
श्रद्धा की, धीरे से मनु ने
अपने कर मे ले ली।
(कर्म सर्ग)

स्वेद और कप सात्विको को रूपायित करने वाला यह स्पर्श-बिंब सयोग की भूमिका से साद्र है। स्पर्श के साथ आकार भी है।

सरिता का वह एकात कूल,
था पवन हिंडोले रहा झूल,
धीरे-धीरे लहरो का दल,
तट से टकरा होता ओझल;
छप-छप का होता शब्द विरल,
थर-थर कँप रहती दीप्ति तरल,
ससृति अपने मे रही भूल,
वह गध विधुर अम्लान फूल।
(दर्शन सर्ग)

प्रकृति का गतिशील व्यापार बिंब—जिसमे पवन का स्पर्श है, लहरो का आलिगन है। शब्द, रग, आकार-युक्त प्रकृति का पूर्ण बिंब।

आलिगन सी मधुर प्रेरणा
छू लेती फिर सिहरन बनती

नव अलम्बुषा की व्रीडा सी
खुल जाती है फिर जा मुँदती ।
(रहस्य सर्ग)

प्रेमपूर्ण विविध स्पर्शों की आतर अनुभूतियो की व्यजना । स्थिर व्यापार बिंब ।

अति मधुर गधवह बहता
परिमल बूंदो से सिंचित,
सुख स्पर्श कमल केसर का,
कर आया रज से रजित ।
(आनद सर्ग)

सुख स्पर्श को गध व रस ने पूर्ण बनाया है । गतिशील वस्तु बिंब ।

सिकुडन कौशेय वसन की
थी विश्व-सुदरी तन पर,
या मादन मृदुतम कपन
छाया सपूर्ण सृजन पर ।
(आनद सर्ग)

स्थिर वस्तु बिंब—प्रेम की मधुर हलकी पुलक से पूर्ण है ।

आस्वाद बिंब—

अरी उपेक्षा भरी अमरते !
री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !
द्विधारहित अपलक नयनो की
भूख भरी दर्शन की प्यास ।
(चिंता सर्ग)

भोग की तीव्र आकाक्षा—अनत भूख का यह चित्र उद्दाम विलास को ध्वनित करता है । अप-लक नयन' से एक स्पष्ट आकृति—स्थिर व्यापार बिंब ।

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से—
आती चूम-चूम चल जाती
पढी हुई किस टोने से ।
(आशा सर्ग)

रात्रि के मानवीकरण द्वारा नायिका की शृगारिक छवि—भ्रमर के रसपान का यह व्यापार बिंब है । वातावरण इसके कुहक से रमणीय है ।

लतिका घूँघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध-सी मधु धारा
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा ।
(काम सर्ग)

स्थिर वस्तु बिंब। भोग के रस-भीगे क्षणो का स्मृत चित्र। चितवन के कटाक्ष के आस्वाद अनुभवो से प्रभावपूर्ण बनाया है।

पुरोडाश के साथ सोम का
पान लगे मनु करने,
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने।
(काम सर्ग)

सोमपान की मादकता के स्वाद से रिक्त को भरने की व्यंजना। बिंब यद्यपि अच्छा नही बना है पर एक आकृति इसमे है।

इंद्रिय की अभिलाषा जितनी
सतत सफलता पावे,
जहाँ हृदय की तृप्ति विलासिनी
मधुर-मधुर कुछ गावे।
(कर्म सर्ग)

अभिलाषा की तृप्ति, इंद्रियो का भोग मधुर गान से मुखर है। स्थिर वस्तु बिंब।

मैं अतृप्त आलोक भिखारी, ओ प्रकाश बालिके! बता
कब डूबेगी प्यास हमारी इन मधु अधरो के रस मे?
(स्वप्न सर्ग)

वासना की प्यास से विकल स्थिर वस्तु बिंब। 'प्रकाश बालिके'—कांतिमय आकृति प्रत्यक्ष है।

उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे,
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मीचे।
(निर्वेद सर्ग)

यौवन के निश्चित विहार और उसकी तृप्ति—मदिरा-पान की नशीली चेतना—रूपायित है। सुरभि से पूर्ण स्थिर व्यापार बिंब।

जैसे असख्य मुकुलो का
मादन विकास कर आया;
उनके अछूत अधरो का
कितना चुंबन भर लाया।
(आनंद सर्ग)

मुकुलो के चुंबन रस से सराबोर—पवन रूपी नायक का चित्र—गतिशील व्यापार बिंब मुकुलो के गंध से सुवासित, चुंबन के आस्वाद से पुलकित और तृप्त है।

## मानस-बिंब

भाव-प्रधान—

चलते थे सुरभित अचल से
जीवन के मधुमय निश्वास।
कोलाहल मे मुखरित होता
देव जाति का सुख विश्वास।
सुख, केवल वह सुख का सग्रह,
केन्द्रीभूत हुआ इतना
छाया पथ मे नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।
...... ..........................
गया, सभी कुछ गया, मधुरतम
सुर बालाओ का शृगार;
उषा-ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित,
मधुप सदृश निश्चित विहार।
........... ........ ............
अब न कपोलो पर छाया सी
पडती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलो मे शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।
वह अनग पीडा अनुभव-सा
अग-भगियो का नर्तन
मधुकर के मरद उत्सव-सा
मदिर भाव से आवर्तन।

(चिन्ता सर्ग)

स्मृत विलास चित्र, वेदना की गहन अनुभूति, व्याकुलता तथा उनके अभाव का दश। मिलन-क्रीडा के विविध व्यापारो मे रग, ध्वनि के स्पर्श आदि की व्यजना—और सबसे ऊपर आतरिक व्यथा।

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम ससृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।

(आशा सर्ग)

प्रकृति के अनुरागपूर्ण उषाकालीन रूप की व्यजना जिसे सित सरोज और पिंग पराग के क्रीडा द्वारा अधिक सवेद्य एव मधुर बनाया है।

यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
सदय हृदय मे अधिक अधीर
व्याकुलता सी व्यक्त हो रही
आशा बनकर प्राण समीर।
यह कितनी स्पृहणीय बन गयी
मधुर जागरण सी छविमान
स्मिति की लहरो सी उठती
नाच रही ज्यो मधुमय तान।
(आशा सर्ग)

आशा के स्वरूप और उसके प्रभाव को सवेदनीय बनाने वाला यह भाव-बिंब कोमल, मधुर, ललित एव कलित है।

व्यक्त नील के चल प्रकाश का
कपन सुख बन बजता था,
एक अतीद्रिय स्वप्न लोक मे
मधुर रहस्य विचरता था।
नव हो जगी अनादि वासना
मधुर प्राकृतिक भूख समान,
चिर परिचित सा चाह रहा था
द्वन्द्व सुखद करके अनुमान।
(आशा सर्ग)

आशा के सचार के बाद, हृदयगत वासना का उद्रक, उसकी अतीद्रिय रहस्यमय अनुभूति, उसका अस्पष्ट स्वरूप और साथी की प्राकृतिक चाह—सभी को इस बिंब ने अनुभूतिगम्य वनाया है।

उषा की पहली लेखा कात
माधुरी से भीगी भर मोद,
मद भरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक द्युति की गोद।
(श्रद्धा सर्ग)

सौदर्य की अपरूपता, मुस्कान की दिव्यता और उसका अवर्णनीय प्रभाव, रसमुग्ध मानस की अनुभूति अपनी सपूर्ण ललक के साथ प्रेषित है।

एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिंब,
और जडता की जीवन राशि
सफलता का सकलित विलव।
(श्रद्धा सर्ग)

परिचय का यह बिंब जीवन की निरर्थकता, उसकी असफलता, दिग्मूढता के बोध को उत्कटता

के साथ ध्वनित करता है। एक-एक शब्द मे हृदय की शून्यता और जडता स्पष्ट है।

कौन हो तुम वसत के दूत
विरस पतझड मे अति सुकुमार
घन तिमिर मे चपला की रेख,
तपन मे शीतल मद बयार।
नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कात
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शात।
(श्रद्धा सर्ग)

एकाका, उदास, निराश, जड मानस पर रूप के प्रभाव का, उसके प्रति आकर्षण का यह भाव-बिंबवसत के दूत, चपला की रेख, मद बयार, आशा किरण, कात कल्पना आदि अप्रस्तुतो के द्वारा अत्यत प्रभविष्णु एव दिव्य हो उठा है। सारे अत करण को तरगित-उल्लसित करने वाला यह बिंब अनुपम है।

क्या तुम्हे देखकर आते यो,
मतवाली कोयल बोली थी!
उस नीरवता मे अलसाई
कलियो ने आँखें खोली थी!
जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने मे लुक रहना!
तब शिथिल सुरभि से धरणी मे
बिछलन न हुई थी? सच कहना।
(काम सर्ग)

काम का प्रथम-प्रथम आगमन, हृदय मे उसकी अनुभूति, मानस मे उसका उद्रेक और सारी प्रकृति पर उसके व्यापक प्रभाव का यह बिंब हृदय मे अनेक प्रकार के भावो की युगपत् अनुभूति कराता है। बिंब मे भावशबलता के साथ सजीव तरगन आतरिक झकृति है।

माधवी निशा की अलसाई
अलको मे लुकते तारा-सी?
क्या हो सूने मरु-अचल मे
अत सलिला की धारा सी।
(काम सर्ग)

काम के रहस्यात्मक, अर्धपिहित स्वरूप का बिंब—आतरिक मुग्धता के साथ अत करण की अस्पष्ट अनुभूति का बोध कराता है।

वह विराग-विभूति ईर्ष्या-पवन से हो व्यस्त,
बिखरती थी, और खुलते ज्वलन कण जो अस्त।

किन्तु यह क्या ? एक तीखी घूंट हिचकी आह !
कौन देता है हृदय मे वेदनामय डाह ?
(वासना सर्ग)

वासना-दृप्त ईर्ष्यालु मानस का यह विंब अद्भुत है। ईर्ष्या का प्रभाव, उसकी शारीरिक अभिव्यक्ति, मानसिक दश सब एकसाथ प्रेषित हैं।

शिथिल अलसाई पडी छाया निशा की कात;
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रात।
उसी झुरमुट मे हृदय की भावना थी भ्रात,
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कात।
(वासना सर्ग)

वासनापूरित हृदय के विभ्रम एव मादक शिथिलता की व्यजना। एक मिश्र अनुभूति व्यग्य है।

चेतना रगीन ज्वाला परिधि मे सानद,
मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छद !
अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह
और जीवित है, न छाले हैं न उसमे दाह !
(वासना सर्ग)

वासना की अलौकिक अनुभूति, दिव्य सुख एव तडप दोनो प्रेपित हैं।

धूम लतिका सी गगन तरु पर न चढती दीन,
दबी शिशिर निशीथ मे ज्यो ओस भार नवीन।
झुक चली सव्रीड वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार।
(वासना सर्ग)

वासना के उद्रेक मे लज्जा की अनुभूति, हृदय के रस की सान्द्रता, नारी का स्वाभाविक सकोच बिंबित हैं। बिंब मे दूसरी पक्ति गहन अनुभूति से स्पदित और आर्द्र है।

पुलकित कदम्ब की माला सी
पहना देती हो अतर मे;
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर मे।
........ ........ ..................

सब अग मोम से बनते हैं
कोमलता मे बल खाती हूँ
.. ... ........... ........... .....

स्मित बन जाती तरल हँसी
नयनो मे भर कर बाँकपना,
....................................

तुम कौन हृदय की परवशता
सारी स्वतंत्रता छीन रही
(लज्जा सर्ग)

लज्जा के व्यापक प्रभाव, नारी की मन स्थिति, सकोच और अनुभावो की व्यजना। लज्जा के मानवीकरण के बाद भी बिंब मे अनुभूत्यात्मकता है।

मैं देव सृष्टि की रति रानी
निज पच बाण से वचित हो,
बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति सी सचित हो
अवशिष्ट रह गई अनुभव मे
अपनी अतीत असफलता सी,
लीला विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता सी।
(लज्जा सर्ग)

रति का परिचय—हृदय की व्यथा, जीवन के अतिशय भोग-विलास की असफलता, स्वरूप मे परिवर्तन ध्वनित है। 'अतृप्ति सी सचित' एव 'आवर्जना मूर्ति दीना' मे व्याकुलता सवेदनीय बन गयी है।

काँप रहे हैं चरण पवन के
विस्तृत नीरवता सी
घुली जा रही है दिशि दिशि की
नभ मे मलिन उदासी।
. . .... .... .. .... .......... ...
उद्वेलित है जलधि लहरियाँ
लौट रही व्याकुल सी,
चक्रवाल की धुंधली रेखा
मानो जाती झुलसी।
सघन धूम-कुण्डल मे कैसी
नाच रही यह ज्वाला!
तिमिर-फणी पहने हैं मानो
अपने मणि की माला!
(कर्म सर्ग)

सपूर्ण प्रकृति की व्यथा, गहन उदासी के वातावरण मे अधिक मार्मिक एव सवेद्य है।

दो काठो की सधि बीच उस
निभृत गुफा मे अपने
अग्नि शिखा बुझ गई, जागने
पर जैसे सुख सपने।
(कर्म सर्ग)

वासना की चरम परिणति, सभोग के बाद उसका शमन—इस मानस बिंब मे अत्यत ध्वन्यात्मकता के साथ प्रेषित है।

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नही,
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही;
हरित कुज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती,
वह छोटी सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नही।

(स्वप्न सर्ग)

विरहिणी, असहाय, निस्सबल श्रद्धा की शारीरिक कृशता, गहन मौन वेदना, निराशा, प्राणो की कसक का यह अनुभूतिप्रवण मानस बिंब—सहृदय सवेद्य है।

वह चद्र किरीट रजत नग
स्पन्दित सा पुरुष पुरातन,
देखता मानसी गौरी
लहरो का कोमल नर्तन।
प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम-ज्योति विमला से;
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से।

(आनद सर्ग)

प्रेम की अतिम परिणति—सबके प्रति एकत्व की प्रगाढ अनुभूति, आनद का स्पदन और हृदय का तरगित उल्लास बिंबित है।

विचार-प्रधान—

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था, एक सघन
एक तत्त्व की ही प्रधानता
उसे कहो जड या चेतन।

(चिंता सर्ग)

शैवाद्वैतवादी सिद्धात का प्रतिपादन—प्रकृति के विराट चित्र के भीतर से एक तत्त्व को उभारा गया है और विचार को चाक्षुप सौंदर्य मिला है।

धू-धू करता नाच रहा था
अनस्तित्व का ताडव नृत्य;
आकर्षण विहीन विद्युत कण
बने भारवाही थे भृत्य।

(चिंता सर्ग)

Non existence का बिंब अतिम पक्ति मे कलात्मक उत्कर्ष विचार को मिला है।

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली,

ज्वालामुखी स्फोट के भीषण
प्रथम कंप सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा;
हरी-भरी सी दौड़ धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा!

.. .... ..... .... ....... ....

अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय गगन मे धूमकेतु-सी,
पुण्य सृष्टि मे सुंदर पाप!

(चिंता सर्ग)

चिंता मनोविकार के स्वरूप और प्रभाव को रूपायित करने वाली बिंब-शृंखला विचारो की मौलिकता, कवि के चिंतन को काव्यात्मक विच्छित्ति प्रदान करती है।

अरी मृत्यु चिर निद्रे! तेरा
अंक हिमानी सा शीतल
तू अनंत मे लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल।
अंधकार के अट्टहास सी
मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण मे तू
यह सुंदर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घनमाला मे,
सौदामिनी संधि-सा सुंदर
क्षण भर रहा उजाला में।

(चिन्ता सर्ग)

मृत्यु पर वैचारिक चिंतन, उसकी चिरंतनता, रहस्यात्मक जिज्ञासा, उसका स्वरूप और जीवन तथा मृत्यु का संबंध—सभी इन बिंबो मे रूपायित हैं। विचारो की गहनता को इतने कलात्मक वैभव से बिंबित करना प्रसाद का वैशिष्ट्य है।

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ?

(आशा सर्ग)

विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा, मौन हो प्रवचन करने मे व्यंजना का ऐश्वर्य है।

जीवन! जीवन! की पुकार है
खेल रहा है शीतल दाह,

किसके चरणो मे नत होता
नत प्रभात का शुभ उत्साह ।
(आशा सर्ग)

जिजीविषा का विराट बिंब—शीतल दाह, आशा के उल्लास एव सृजन की व्याकुलता को व्यजित करता है ।

कर रही लीलामय आनद,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी मे होते सब अनुरक्त ।
दु ख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमे सुख गात ।
(श्रद्धा सर्ग)

सृजन का विराट अनवरत क्रम, व्यक्ति की स्वाभाविक सृजनेच्छा, दु ख व पीडा के भीतर भी विकास की, निर्माण की अतर्धारा—यहा यही चिंतन बिंबित है ।

तप नही केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकाक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद ।
(श्रद्धा सर्ग)

जीवन की श्रेष्ठता, कर्म की महत्ता और सृजन का प्रकाश सब एकसाथ रूपायित है ।

एक तुम यह विस्तृत भू-खड
प्रकृति वैभव से भरा अमद,
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड का चेतन आनंद !
(श्रद्धा सर्ग)

कर्म की सर्वोपरिता, जीवन मे उसकी अनिवार्यता, निष्कामता रूपायित है ।

चेतना का सुदर इतिहास
अखिल मानव भावो का सत्य,
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरो से अकित हो नित्य ।
(श्रद्धा सर्ग)

मानव चेतना और मानव भावो की दिव्यता, श्रेयता, विराटता और मानवता की अखड महानता का यह बिंब अद्भुत है।

मेरी अक्षय निधि ! तुम क्या हो
पहचान सकूँगा क्या न तुम्हें ?
उलझन प्राणो के धागो की
सुलझन का समझूँ मान तुम्हे ।
(काम सर्ग)

काम ही सत्य है, श्रेय मगल से मडित काम का, जीवन के सत्य का रहस्यात्मक स्वरूप ।

छाया पथ मे तारक द्युति-सी
झिलमिल करने की मधु लीला,
अभिनय करती क्यो इस मन मे
कोमल निरीहता श्रमशीला ?
(लज्जा सर्ग)

नारी के उत्सर्ग, प्रिय के लिए अपने अस्तित्व का विगलन ध्वनित है ।

नील गरल से भरा हुआ
यह चद्र कपाल लिये हो,
इन्ही निमीलित ताराओ मे
कितनी शाति पिये हो ।
(कर्म सर्ग)

विषपायी शिव का यह विराट, उदात्त, शात सर्वव्यापी बिंब अपराध को क्षमा कर, निरतर कर्म करते रहने की प्रेरणा देता है ।

ये मुद्रित कलियाँ दल मे सब
सौरभ, बदी कर लें,
सरस न हो मकरद बिंदु से
खुलकर तो ये भर लें ।
(कर्म सर्ग)

जीवन मे दान, यज्ञ और लोकमगल की प्रक्रिया—प्रकृति के अप्रस्तुत से काव्यात्मक उत्कर्ष ।

किस गहन गुहा से अति अधीर
झझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर
ले साथ विकल परमाणु पुज नभ, अनिल, अनल क्षिति और नीर ।
.. . . . ... ... ....... . . . ............. .
अस्तित्व चिरतन धनु से कब यह छूट पडा है विषम तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर ?
(इडा सर्ग)

जीवन के मूल उद्गम, उसकी भयकर गतिशीलता, पचभूतो का पुज, उसका अतिम लक्ष्य —सब विवित हैं ।

करती सरस्वती मधुर नाद ।
बहती थी श्यामल घाटी मे निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद

सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद
वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमे था केवल मधुर गान
थी कर्म निरंतरता प्रतीक चलता था स्ववश अनंत ज्ञान
.................... ......... ....... ..... ..........

अद्भुत था ! निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद ।
कहता जाता कुछ सुसवाद ।
(इडा सर्ग)

आनंद परिप्लुत, स्थितप्रज्ञ कर्मयोगी और पथिकृत ऋषि का प्रेरक रूप इस बिंब मे व्यक्त है। विचार बिंबो के क्षेत्र मे कामायनी का यह दार्शनिक बिंब अनुपम है।

विश्व एक बंधनविहीन परिवर्तन तो है,
इसकी गति मे रवि-शशि तारे ये सब जो हैं—
रूप बदलते रहते वसुधा जलनिधि बनती,
उदधि बना मरुभूमि जलधि मे ज्वाला जलती ।
.....................................

कोटि-कोटि नक्षत्र शून्य के महाविवर मे
लास रास कर रहे लटकते हुए अधर मे ।
(संघर्ष सर्ग)

जीवन की सतत परिवर्तनशीलता, सृजन-विनाश का अनवरत क्रम ।

पवन की प्राचीर मे रुक,
जला जीवन जी रहा झुक;
इस झुलसते विश्व दिन की,
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन !
चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु सर मे,
मधुप मुखर मरंद मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

श्रद्धा व हृदय की कोमल भावनाओ से सरस स्पंदित, जीवन की आस्था, विश्वासपरक भावनाओ का परिचय वैचारिक स्तर पर दिया है।

जीवन धारा सुंदर प्रवाह,
सत् सतत प्रकाश सुखद अथाह;
ओ तर्कमयी ! तू गिने लहर,
प्रतिबिंबित तारा पकड ठहर;
तू रुक-रुक देखे आठ पहर,
वह जड़ता की स्थिति भूल न कर;
सुख दुःख का मधुमय धूप छाँह,
तूने छोडी यह सरल राह ।
(दर्शन सर्ग)

जीवन की अखडता, उसका सत्-चित्-आनद स्वरूप, उसे उसकी समग्रता मे ग्रहण करने की प्रेरणा नदी की धारा के अप्रस्तुत द्वारा स्फुट है।

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।
(रहस्य सर्ग)

पूर्ण समाधि, सश्लिष्ट मानस, इच्छा, क्रिया, ज्ञान वृत्ति का पूर्ण एकात जीवन की परिपूर्ण कल्पना। बिंब मे कलात्मक उत्कर्ष कम, विचार गहनता अधिक है।

चिर मिलित प्रकृति मे पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरगायित था
आनद अबुनिधि शोभन।
(आनद सर्ग)

शैव दर्शन की शिव शक्ति का एकीकरण—परम शिव का आनद तरगित स्वरूप।

इस ज्योत्स्ना के जलनिधि मे
बुद्बुद् सा रूप बनाये,
नक्षत्र दिखाई देते
अपनी आभा चमकाये।
वैसे अभेद सागर मे
प्राणो का सृष्टि क्रम है,
सब मे घुल मिलकर रसमय
रहता यह भाव चरम है।
(आनद सर्ग)

भेद मे अभेद, परिवर्तन मे अपरिवर्तनीय, नाम-रूपात्मकता के भीतर एक तत्त्व का अस्तित्व—यही जीवन सत्य यहा प्रतिपादित है।

सुख सहचर दुःख विदूषक
परिहास पूर्ण कर अभिनय,
सबकी विस्मृति के पट मे
छिप बैठा था अब निर्भय।
(आनद सर्ग)

जीवन मे आनद, शिव, सुख ही सत्य है—निरतिशय आनद की भूमिका। दुःख, वेदना, अमगल सब केवल क्षणिक, मच पर विदूषक की भाति अल्पकालीन अस्तित्व।

समरस थे जड या चेतन
सुदर साकार बना था,

चेतनता एक विलसती
आनद अखड घना था।
(आनद सर्ग)

पूर्ण सामरस्य की स्थिति, सुदर, चैतन्य एव अखड आनद की भूमिका—जीवन की सर्वोपरि परिणति—साधक की चरम सिद्धि।

कामायनी गीति शैली मे लिखा गया महाकाव्य है जिसमे छायावादी काव्य-कौशल का चरम विकास पदे-पदे लक्षित है। ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, उपचार वक्रता एव बिंबात्मक अभिव्यजना का अपूर्व वैभव कामायनी की महती उपलब्धि है। कामायनी का कवि मानो व्यजना के धरातल से नीचे ही नही उतरना चाहता। मानो सपूर्ण महाकाव्य विराट विशाल बिंब ही है जिसमे विविधवर्णी अनेकानेक बिंबो ने अपनी भूमिका का निर्वाह कौशल के साथ किया है। स्पष्ट है कि कामायनी की बिंब-सृष्टि का वर्गीकरण सारे बिंबो को समेट-कर करना कठिन है। अत इस अध्याय मे केवल विशिष्ट बिंबो को वर्गीकृत किया गया है। सामान्यत वर्गीकरण मे सौंदर्योद्घाटन की अपेक्षा भी हो सकती है किंतु प्रारभिक अध्यायो मे बिंबो का विशद विश्लेषण हो जाने के कारण इस वर्गीकरण मे केवल बिंब-प्रकार और उनकी विशिष्ट दृष्टि-सरणी को ही रेखाकित किया गया है।

## पाद-टिप्पणी

१. 'सिन्धु गर्भासि विद्युता पुष्पम्'—अथर्व वेद, काण्ड १६, सूक्त ४४, पचम ऋचा

८

# कामायनी की बिंब-सृष्टि और महाकवि का व्यक्तित्व

जिस प्रकार गगा की स्वच्छद और पावन धारा के पीछे हिमालय का सुदृढ, गगन-चुबी, निर्वाक् व्यक्तित्व खडा है उसी प्रकार जब कोई विशिष्ट महत्कृति आती है तो उसके पीछे भी कोई असामान्य साधक व्यक्तित्व होता है। स्रष्टा की जीवनव्यापी साधना ही कृति मे रूपातरित हो जाती है। कृति मे सर्जक का जीवन, उसका जीवन-दर्शन, युग-बोध, भावा-लोक, मानस जगत् और जीवनानुभव के अनेक स्तरों का निदर्शन होता है। कृति मानो कर्त्ता के कर्तृत्व एव व्यक्तित्व की विशद व्याख्या है।

कामायनी की विशद बिंब-योजना के पीछे एक सौंदर्य-लक्षी, अतर्मुख व्यक्तित्व झाकता है, जो विश्व-कल्याण की उदार, उदात्त, गभीर एव प्रौढ चिंता-धारा को लिये है। समन्वय एव सामरस्य उसका शक्तिशाली सबल है, आनदवाद उसका चरम लक्ष्य है, समता उसकी आधार-भित्ति है। जीवन ही उसका आराध्य एवं साध्य है। मानवतावाद, जनतत्र, समता, सामरस्य एव आनदवाद को लेकर महाकवि ने विश्व-सस्कृति की महती कल्पना को मूर्तिमान किया है। यह महाकाव्य प्रसाद की अक्षुण्ण जीवन-शक्ति एव सशक्त प्राणवत्ता का वाहक है। प्रसाद महाप्राण और द्रष्टा कवि थे, उन्होने 'कामायनी' को अपनी सपूर्ण जीवन-शक्ति को ऊर्जस्वित कर विश्व-काव्य के पद पर प्रतिष्ठित किया है।

कामायनीकार सारे विश्व को सौरभ से भर देना चाहता है, दान ही उसका सर्वस्व है, सचय ही मृत्यु है—इन्ही उदात्त भावनाओ से 'कामायनी' सभी सीमाओ को अतिक्रात कर 'भूमा' मे प्रतिष्ठित होती है। विश्व की मगल-भावना से 'कामायनी' उसी प्रकार ओत-प्रोत है जिस प्रकार उसका स्रष्टा व्यक्ति प्रसाद।

विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन से खेलो सुन्दर खेल।
(श्रद्धा सर्ग)

ये मुद्रित कलियाँ दल मे सब
सौरभ बदी कर लें,

सरस न हो, मकरन्द-बिन्दु से
खुलकर तो ये भर लें।
(कर्म सर्ग)

देश-कल्पना काल-परिधि मे होती लय है,
काल खोजता महाचेतना मे निज क्षय है।
वह अनन्त चेतन नचता है उन्मद गति से,
तुम भी नाचो अपनी द्वयता की विस्मृति मे।
क्षितिज पटी को उठा बढो ब्रह्माड-विवर मे,
गुजारित घन-नाद सुनो इस विश्व-कुहर मे।
ताल-ताल पर चलो नही लय छूटे जिसमे,
तुम न विवादी स्वर छेडो अनजाने इसमे।
(सघर्ष सर्ग)

महाकवि प्रसाद के "साहित्यिक जीवन और घरेलू जीवन मे एक ही सत्य था। वह था सामरस्य का सत्य। किसी नन्हे परिवार की लोकयात्रा हो अथवा आतक-ग्रस्त विश्व का विपुल सघर्ष, सभी का कल्याण वे इसी सत्य की प्रतिष्ठा मे मानते थे। वे आज के मनुष्य के सम्मुख उपस्थित सभी जटिलताओ को मूलस्थ विषमताओ का परिपाक मानते थे, चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक हो अथवा आर्थिक। कामायनी मे विश्वजननी का मानव-पुत्र के प्रति आदेश किंवा कामायनी का सदेश भी इसी सत्य का निर्घोष करता है 'सबकी समरसता कर प्रचार, मेरे सुत सुन मा की पुकार'। वह उनकी जीवन-चर्या मे कैसे घुला था, यह उन्हे निकट से जाननेवालो को भली भाति विदित था।"[1]

महाकवि के सुपुत्र रत्नशकर प्रसाद के सस्मरण 'प्रसाद जी की जीवनचर्या' शीर्षक निबध के उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि 'समरसता' उनके लिए केवल काव्य-सत्य नही था—जीवन का समग्र सत्य था।

'कामायनी' की सशक्त बिंब-योजना के पीछे एक बौद्धिक पुष्ट चेतनाधार है। श्री 'सुमन' जी ने प्रसाद के जीवन व साहित्य की इस एकाकारता को स्पष्ट करते हुए उनकी बौद्धिक प्रौढता की चर्चा की है।

(क) "क्या उनका काव्य और क्या उनका जीवन उनकी श्रेष्ठ बौद्धिक धारणा का सूचक है। इसे बौद्धिक धारणा कहते हुए सकोच होता है, पर उपयुक्त शब्द के अभाव मे मैं उसे इस नाम से पुकारता हू। मेरा मतलब उस परिष्कृत चेतना से है जो उन चीजो मे डूबकर देखती और उनका ठीक मूल्य आक सकती है। जो भावना और आधी के बीच भी स्थिर रह सकती थी। उनकी रचना पर और उनके जीवन पर सर्वत्र उसकी बौद्धिक चेतना की महानता की छाप है।"[2]

(ख) "उनके जीवन मे वैभव, विलास और ऐश्वर्य बिछा था। उससे अपने को बचाते हुए, अपनी शालीनता और सामजस्यात्मक श्रेष्ठता को न गवाते हुए उन्होंने अपने को बनाया, उसका कारण उनकी यही श्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थी।"[3]

सुमन जी ने प्रसाद के व्यक्तित्व को भावात्मक प्रवाह मे न बहने वाला, आदोलन के

मूल मे पैठने की गहरी व पैनी दृष्टि वाला, यश के प्रति नि स्पृहता व निस्सगता वाला बताया है और स्पष्ट किया है कि "मेरे निकट वह मनुष्य की हैसियत से और भी महान् थे और उनका साहित्य उनके जीवन की विशाल सपत्ति का एक अश मात्र था।"[४]

कामायनीकार का व्यक्तित्व सुश्री महादेवी जी के शब्दो मे "हिमालय की ढाल पर उसकी गर्वीली चोटियो से समता करता हुआ एक सीधा ऊंचा देवदारु का वृक्ष था। उसका उन्नत मस्तक हिम-आतप-वर्षा के प्रहार झेलता था। उसकी विस्तृत शाखाओ को आंधी-तूफान झकझोरते थे ''चरम विजय के क्षण मे वह देवदारु अपने चारो ओर के वातावरण को सौ-सौ ज्योतिचक्रो मे मथता हुआ धरती पर आ रहा।"[५]

सचमुच कामायनीकार का महाप्राण व्यक्तित्व देवदारु की तरह सीधा व उन्नत था; सघर्षों के बीच जीवन की आस्था का दीपक सजोये यह कृती कलाकार जीवन व साहित्य दोनो मे आगे बढता चला। प्रसाद की जीवनव्यापी साधना, जीवन के प्रति असग दृष्टि, मनीषी की चिंता-धारा, इस स्रष्टा कवि की वैदग्ध्य भगी-भणिति और अत मे अभ्युदय के साथ जीवन की—सपूर्ण मानवता की—नि श्रेयस सिद्धि 'आनदवाद' कामायनी की बिंब-सृष्टि मे आद्यत प्रोद्भासित है।

कामायनी की बिंब-सृष्टि के अध्ययन से कामायनीकार के व्यक्तित्व के बहुआयामी स्तर उद्भासित होते है। महाकवि प्रसाद पर लिखे गये सस्मरणो को भुलाकर यदि हम कामायनी की बिंब-सृष्टि के आधार पर महाकवि के व्यक्तित्व का आकलन करें तो हमे एक भावाकुल सौदर्य-प्रेमी, शिष्ट, गभीर, सयमित, अभिजात और मनीषी व्यक्ति के दर्शन सहज ही मिलते हैं। यह एक ऐसा व्यक्ति है जिसके लिए जीवन जीने के लिए है, विषाद, वेदना, गहन पीडा के बीच भी जीवन के प्रति, उसकी विकासमान प्रकृति के प्रति उसे दृढ निष्ठा है; मानवता के सर्वोपरि विकास का वह विश्वासी है। प्रसाद का व्यक्ति गरल मे अमृत का, मृत्यु में जीवन का, अधकार मे प्रकाश का निरतर अथक सधान करता है। किसी अतिवाद मे उसका विश्वास नही—जो भोग और त्याग, व्यक्ति और समष्टि, प्रेय और श्रेय के समन्वय मे आस्था रखता है। उसमें गीति काव्य का माधुर्य एव महाकाव्य का औदात्य एकाकार है। प्रसाद का यही समयोचित व्यक्तित्व कामायनी के बिंबो मे मुखर है। बिंबो के आधार पर महाकवि के व्यक्तित्व का अध्ययन इन शीर्षको के अतर्गत किया जा सकता है—

(१) अतर्मुख व्यक्ति—
  (क) वेदना-धारा
  (ख) आशा के स्वर
  (ग) सौदर्य-प्रेम
  (घ) आनदवादी मनोराज्य
(२) बहिर्मुख व्यक्ति—
  (क) लोक पक्ष
(३) विशिष्ट व्यक्ति—
  (क) जटिलता-सश्लिष्टता
  (ख) विराटता-भव्यता-सयम
  (ग) दार्शनिक असगता

## (१) अतर्मुख व्यक्ति

कामायनी गीतात्मक महाकाव्य है, मानव चेतना के विकास की गाथा है। कामायनी की सरचना अपने-आप मे ही सर्जक की अतर्मुखीनता का द्योतक है। इसमे व्यक्ति की वेदना, उसकी आशा-निष्ठा, उसका सौंदर्य, माधुर्य-प्रेम, उसकी आनदवादी दृष्टि सभी लक्षित हैं।

(क) **वेदना-धारा** कामायनी के बिबो की दीर्घ शृखला त्रासदीय है। प्रमुख पात्रो के माध्यम से छायावादी युग की वेदना-धारा के साथ ही प्रसाद के व्यक्तिगत जीवन की पीडा व गहन व्यथा ध्वनित है। वेदना, पीडा, ध्वंस और विफलता के गहन चित्र—एक ऐसे व्यक्ति को प्रकट करते हैं जिसके जीवन मे विकलता है, गहन वेदना है, निराशा है। प्रारभिक चिंता सर्ग से लेकर निर्वेद तक के बिंबो मे आशा, उल्लास, मिलन, वासना, काम आदि सभी मधुर अनुभूतियो के भीतर से यह व्यथा झलकती है। कुछ चित्र—

एक पुरुष भीगे नयनो से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
(चिंता सर्ग)

निकल रही थी मर्म वेदना
करुणा विकल कहानी सी।
(चिंता सर्ग)

ऐसे अतुल अनत विभव मे
जाग पडा क्यो तीव्र विराग
या भूली-सी खोज रही कुछ
जीवन के छाती के दाग।
(आशा सर्ग)

एक उल्का सा जलता भ्रात
शून्य मे फिरता हूँ असहाय।
(श्रद्धा सर्ग)

काँप रहे है चरण पवन के
विस्तृत नीरवता-सी,
घुली जा रही है दिशि-दिशि की
नभ मे मलिन उदासी।
(कर्म सर्ग)

जीवन निशीथ के अधकार।
तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम सा दुर्निवार
जिसमे अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी-सी उठती पुकार।
(इडा सर्ग)

शापित सा मैं जीवन का यह
ले कंकाल भटकता हूँ;

उसी खोलने मे जैसे
कुछ खोजता अटकता हूँ।
(निर्वेद सर्ग)

(ख) **आशा के स्वर** वेदना प्रसाद के जीवन का एक पक्ष है—सपूर्ण दर्शन नही। वेदना के इन बिंबो से न तो महाकाव्य कुठित-खडित है और न ही महाकवि का व्यक्तित्व। कामायनी के बिंबो का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण एव महत् पक्ष है—आशा की उजली किरणें, जीवन का दुर्दम वेग, मानवता के प्रति अडिग आस्था, मनुष्य की शक्ति का प्रचड स्वर। वस्तुत प्रसाद के व्यक्तित्व का यही पक्ष उन्हे जीवन मे टूटने नही देता, सघर्ष से टकराने की अदम्य शक्ति देता है। यही प्रसाद विशिष्ट हैं। उनका व्यक्ति न दबा है, न झुका है, न टूटा है—जीवन की प्राणवत्ता एव ऊर्जा लिये आगे बढता है। कुछ चित्र—

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल मे अतर्निहित हुई।
(आशा सर्ग)

वह विराट था हेम घोलता
नया रग भरने को आज।
(आशा सर्ग)

एक यवनिका हटी, पवन से
प्रेरित माया-पट जैसी;
और आवरण मुक्त प्रकृति थी
हरी-भरी फिर भी वैसी।
(आशा सर्ग)

उस असीम नीले अचल मे
देख किसी की मृदु मुस्कान,
मानो हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान।
(आशा सर्ग)

धवल मनोहर चद्र बिंब सी
अकित सुदर स्वच्छ निशीथ,
जिसमे शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्‌गीथ।
(आशा सर्ग)

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।
(श्रद्धा सर्ग)

जलधि के फूटे कितने उत्स
द्वीप कच्छप डूबे उतरायँ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
(श्रद्धा सर्ग)

(ग) **सौंदर्य प्रेम** . प्रसाद मूलत' सौंदर्य के कवि है। उनका सौंदर्य प्रेम कही मानवीय छवि पर मुग्ध है, कही प्राकृतिक सुषमा से विभोर है और कही किशोर सौंदर्य के प्रति आकर्षित। वह जीवन की माधुरी से रससिक्त है और प्रेम के आतर स्पर्श से पुलकित है। कामायनी की बिंब-सृष्टि के पीछे प्रसाद का यही सौंदर्य-प्रेमी मानस है जो रूप, लावण्य, दीप्ति, रमणीय, मार्धुर्य के राशि-राशि बिंबो का निर्माण तन्मयता से करता चलता है। प्रसाद का रमणीय प्रेम केवल कोमल-मधुर तक सीमित नही—वह भीषण मे भी रमता है। कवि प्रसाद के व्यक्तित्व का यह अनोखा पक्ष कामायनी के बिंबो मे स्पष्ट है। कुछ उदाहरण—

उठे स्वस्थ मनु ज्यो उठता है,
क्षितिज बीच अरुणोदय कात,
लगे देखने लुब्ध नयन से
प्रकृति विभूति मनोहर शात।
(आशा सर्ग)

नव हो जगी अनादि वासना
मधुर प्राकृतिक भूख समान,
चिर परिचित-सा चाह रहा था
द्वन्द्व सुखद करके अनुमान।
(आशा सर्ग)

रजत कुसुम के नव पराग-सी
उडा न दे तू इतनी धूल,
इस ज्योत्स्ना की अरी बावली
तू इसमें जावेगी भूल।
(आशा सर्ग)

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मधुर अधखुला अग,
खिला हो ज्यो बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रग।
(श्रद्धा सर्ग)

गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक

स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्‌गद बोल।
(वासना सर्ग)

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की-सी ममता हो,
जागरण प्रात-सा हँसता हो,
जिसमे मध्याह्न निखरता हो।
(लज्जा सर्ग)

वासना की मधुर छाया! स्वास्थ्य बल विश्राम!
हृदय की सौंदर्य प्रतिमा! कौन तुम छवि धाम!
कामना की किरण का जिसमे मिला हो ओज
कौन हो तुम, इसी भूले हृदय की चिर खोज।
(वासना सर्ग)

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
(वासना सर्ग)

बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल।
वह विश्वमुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखड सदृश था स्पष्ट भाल।
(इड़ा सर्ग)

लतिका घूंघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध-सी मधु धारा,
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।
(काम सर्ग)

उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे,
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मीचे।
ले मकरद नया चू पडती
शरद प्रात की शेफाली,
बिखराती सुख ही सध्या की
सुदर अलकें घुँघराली।
(निर्वेद सर्ग)

लीला का स्पदित आह्लाद,
वह प्रभापुज चितिमय विलास,

आनंदपूर्ण ताडव सुदर
झरते से उज्ज्वल श्रम सीकर।
..................................
नर्तन मे निरत प्रकृति गल कर
उस काति सिंधु मे घुल मिलकर
अपना स्वरूप धरती सुदर
कमनीय बना था भीषणतर,
हीरक गिरि पर विद्युत विलास
उल्लसित महा हिम धवल हास।
(दर्शन सर्ग)

(घ) **आनंदवादी मनोराज्य**—प्रसाद जीवन के उज्ज्वल पक्ष के प्रति आस्थावान थे, कल्याण व मगल के विश्वासी थे। हृदय की रागात्मिका वृत्ति श्रद्धा से सवलित हो व्यापक आनद की धारा के रूप मे प्रसाद के जीवन मे प्रवाहित थी। कामायनी के अतिम सर्ग मे प्रसाद का आनदवादी व्यक्ति मुखर है—यह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो जीवन के द्वद्वो का समाहार कर अखड आनद और शाति मे स्थित है। मनु के रूप मे प्रसाद के आनदवादी मनोराज्य को हम साकार पाते हैं। ये बिंब प्रसाद के आदर्शवादी, आनदपूरित मानस को स्पष्ट करते हैं—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।
(रहस्य सर्ग)

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन;
निज शक्ति तरगायित था
आनद अबुनिधि शोभन।
(आनद सर्ग)

वल्लरियाँ नृत्य निरत थी
बिखरी सुगध की लहरें,
फिर वेणु रध्र से उठकर
मूर्छना कहाँ अब ठहरे।
..... .... ...........
थे डाल-डाल मे मधुमय
मृदु मुकुल बने झालर से,
रस भार प्रफुल्ल सुमन सब
धीरे-धीरे से बरसे।
(आनद सर्ग)

## (२) वहिर्मुख व्यक्ति

(क) लोक पक्ष—यह सत्य है कि प्रसाद मूलत गीति-कवि हैं और कामायनी के विंवो मे उनका अतर्मुख व्यक्तित्व गहन एव उदात्त रूप मे व्यक्त है, पर प्रसाद की वैयक्तिकता लोकवाह्य, ऐकातिक व जीवन-जगत से असपृक्त नही। कामायनी मानव के चेतनगत विकास के रूप मे व्यक्ति के नि श्रेयस की गाथा तो है ही, सपूर्ण मानवता के अभ्युदय के रूप मे उसका लोकपक्ष भी सवल है। वह व्यक्ति के ऐकातिक क्षणो मे भी विश्वमगल, समरसता, आनद, समत्व आदि मानवता के व्यापक सदर्भो से असपृक्त नही। यहा करुण, कोमल, मधुर, गभीर व उदात्त व्यक्ति मे समष्टिगत चेतना, अखिल मानव भावो का सत्य, मानवता की विजय-यात्रा का एक विराट, महत् रूप अनुस्यूत है और अतत लोक के सपूर्ण आनद और मगल मे उसका पर्यवसान है। यही प्रसाद के व्यक्ति का लोकपक्ष है जो कामायनी के विंवो मे उद्भासित है। जैसे—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल विखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।
(श्रद्धा सर्ग)

चेतना का सुदर इतिहास
अखिल मानव भावो का सत्य,
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य
अक्षरो से अकित हो नित्य।
(श्रद्धा सर्ग)

मनु ! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्ज्वल नव मानवता ?
जिसमे सव कुछ ले लेना ही
हत ! वची क्या शवता !
(कर्म सर्ग)

नित्य समरसता का अधिकार
उमडता कारण जलधि समान।
(श्रद्धा सर्ग)

औरो को हंसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सवको सुखी वनाओ।
रचनामूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ-पुरुष का जो है

संसृति सेवा भाग हमारा
उसे विकसने को है।
......... ... ..... .... ...........

सुख अपने सन्तोष के लिए
संग्रह मूल नही है;
उसमे एक प्रदर्शन जिसको
देखें, अन्य वही है।
(कर्म सर्ग)

व्यक्ति चेतना इसीलिए परतंत्र बनी-सी
रागपूर्ण, पर द्वेष पंक मे सतत सनी-सी;
. ... ... . . . . .. .. . .. .....

ताल-ताल पर चलो नही लय छूटे जिसमे,
तुम न विवादी स्वर छेडो अनजाने इसमे।
(संघर्ष सर्ग)

वरदान बने फिर उसके
आँसू, करते जग मंगल;
सब ताप शांत होकर, बन
हो गया हरित सुख शीतल।
(आनंद सर्ग)

सब भेद-भाव भुलवाकर
दुःख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड बन जाता।
(आनंद सर्ग)

कामायनी का लोक पक्ष सीमित है, कर्म का विशद व्यापक रूप यहा नही—पर कामायनी का कवि श्रद्धा के मगलमय योग से कर्म को धर्म मे बदलने की भावना से दूर नही। कार्य के रूप मे कामायनी का उदात्त प्रतिपाद्य है—मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखकर, मानव कल्याण को लक्ष्य बनाकर, व्यक्ति और समाज दोनो स्तरो पर वैषम्यो का समाहार और परिणामस्वरूप एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण। कामायनी का यह प्रतिपाद्य महाकवि के व्यक्तित्व का लोकमगलकारी पक्ष स्पष्ट करता है।

## (३) विशिष्ट व्यक्ति

**(क) जटिलता-संश्लिष्टता** कामायनी की बिंब-सृष्टि से एक ऐसे सर्जक का व्यक्तित्व उभरता है जिसके अनेक असाधारण आयाम हैं। प्रसाद का जो चित्र आता है उसमे सबसे प्रखर है व्यक्ति का जटिल-संश्लिष्ट रूप, जिसके मानस मे है अनेकानेक मनोभाव की युगपत् स्थिति। यह मानस ऋजु नही, उसमे विरोधी मनोभाव है, उनका तनाव और

सघर्ष है और उनका सम्यक् सश्लेषण है। कामायनी के विंबो मे हम इसे सहज ही खोज सकते है।

चिंता सर्ग मृत्यु की छाया के बीच भी 'ककण क्वणित रणित नूपुर' से ध्वनित है और 'उपा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित, मधुप सदृश निश्चित विहार' की सुखद मादक मधु-भीगी स्मृतियो से सुरभित है। आशा सर्ग मे 'विराट जब हेम घोल रहा है' और विजयिनी उपा सारी प्रकृति को अपनी सुनहली रश्मियो से रग रही है, उस समय मृत्यु की चर्चा 'देव बता दो अमर वेदना लेकर कब मरना होगा'—इसी मानस मथन का रूप है। रजनी बाला के अपूर्व रूप सभार के बीच वह ज्योति चिह्नो के रूप मे छाती के दाग देखता है। काम के रूप, रस, गध, स्पर्श से सिक्त वातावरण मे 'निराशा के निश्वास' के स्वर हैं और वासना के प्रचड उन्मत्त वेग के भीतर प्राणो की व्याकुल पुकार गूजती है—

आह मैं दुर्वल, कहो क्या ले सकूंगी दान !
वह जिसे उपभोग करने मे विकल हो प्रान !

लज्जा सर्ग मे कवि के संपूर्ण और रमणीय सौंदर्यबोध के बीच रति का वैधव्य दुख फूटकर वहा है। सुख के वर्तमान क्षणो को स्वायत्त करते समय भाग्य की विडवना छल करने लगती है—

छली अदृष्ट अभाव बना क्यो
वही प्रकट होता है।

(कर्म सर्ग)

जीवन निशीथ के निविड अधकार की डरावनी काली छाया के बीच कवि का मानस मादकता का अनुभव करता है और ममता की क्षीण रेखा उसके विषाद को दूर करती है—

कितना मादक तम, निखिल भुवन भर रहा भूमिका मे अभग
.... ... ......... . .. ...... . . . .. .. . ............
ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है जिसमे ज्योति कला।

(इडा सर्ग)

निर्वेद सर्ग में घृणा और ममता की धारा एकत्र प्रवाहित है—

घृणा और ममता मे ऐसी
बीत चुकी कितनी रातें।

ऐसी जटिल मन स्थिति और उसके तनाव तथा सघर्प मे समरसता और सश्लिष्टता प्रसाद के व्यक्तित्व का सबसे महनीय अश है। इन विरोधो के बीच वह जीवन की अखडता को, उसके सत् सतत रूप को देखता है—

जीवन धारा सुदर प्रवाह
सत् सतत प्रकाश सुखद अथाह।

(दर्शन सर्ग)

प्रसाद जीवन की अखडता को श्रद्धा से प्राप्त समझते हैं—

महाज्योति रेखा सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमे,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला उनमे।
(रहस्य सर्ग)

यह एक ऐसे व्यक्ति का रूप है जो जीवन के रहस्यो से परिचित है और अतर्बाह्य सभी स्तरो पर सश्लिष्ट है—उसमे कही बिखराव नही, कही विघटन नही।

(ख) **विराटता-भव्यता-संयम**—प्रसाद के इस विशिष्ट व्यक्ति मे सश्लेषण के साथ ही सयम है, सस्कार है, परिष्कृति है, विराटता है और भव्यता है। सारा काव्य ऊर्ध्व संतरण के बिंबो से पूर्ण है जो स्रष्टा के गभीर, उन्नत व्यक्तित्व का निदर्शन करता है। शृगार के मादक चित्रो मे जिस सयम का रूप है वह कवि के अनुशासित, शालीन, सस्कारी मानस को रूपायित करता है। कुछ उदाहरण—

उषा की पहली लेखा कात
माधुरी से भीगी भर मोद
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।

इसी प्रकार की साकेतिकता कर्म सर्ग के सभोग चित्र मे है। वासना का इतना खुला पर इतना सयमित वर्णन प्रसाद का ही कवि कर सकता है—

और फिर एक व्याकुल चुम्बन
रक्त खौलता जिससे;
शीतल प्राण धधक उठता है
तृषा तृप्ति के मिस से।
दो काठो की संधि बीच उस
निभृत गुफा मे अपने,
अग्नि शिखा बुझ गयी, जागने
पर जैसे सुख सपने।
(कर्म सर्ग)

यह एक शालीन गभीर व्यक्ति की झलक है जो भावप्रवण है, जिसका बौद्धिक चेतनाधार पुष्ट है और जो ऊपर से लेकर नीचे तक सस्कारित है।

कामायनी के बिंबो मे जिस असाधारण कल्पना के दर्शन होते हैं उससे कविमानस के व्यापक विराट रूप का प्राकट्य है। बिंब-सर्जना कही भी क्षुद्र नही, सर्वत्र एक व्यापकता से ध्वनित है। यहा व्यक्तिगत चिंता जीवनव्यापी रूप धारण करती है, वह ग्रह-कक्षा की हलचल बन जाती है—

इस ग्रह-कक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी।
(चिंता सर्ग)

मन का उल्लास सारी सृष्टि को उषा बनकर अरुणिमा से रंग देता है। काम के प्रथम संचार के साथ सारी प्रकृति मधुमयी हो उठती है—

आकाश-रंध्र से पूरित है
यह सृष्टि गहन सी होती है,
आलोक सभी मूर्छित सोते,
यह आँख थकी सी रोती है।
(काम सर्ग)

वासना में सारी सृष्टि हँसती है—चाँद, ज्योत्स्ना, पवन सभी वासना के अनुभवों से सिहर उठते हैं—

सृष्टि हँसने लगी आँखों में भरा अनुराग
राग रंजित चंद्रिका थी उड़ा सुमन पराग—
... .... .. .. .. .. ,.... ......
मधु बरसती विधु किरण है काँपती सुकुमार
पवन में है पुलक मंथर चल रहा मधु भार।

किशोर सौंदर्य की अभ्यर्थना संपूर्ण प्रकृति द्वारा एक भव्य परिवेश धारण कर लेती है—

फूलों की कोमल पंखड़ियाँ
बिखरें जिसके अभिनन्दन में।
(लज्जा सर्ग)

कर्म सर्ग में पशु की कातर वाणी से दिगंत क्रंदित हो उठता है। तात्पर्य यह कि साधारण घटनाओं को असाधारण व्यापकता एवं विराटता दे देना प्रसाद के कविमानस की विराट भव्य कल्पनाशीलता को प्रकाशित करता है।

(ग) दार्शनिक असंगता प्रसाद के अंतर्मुख, बहिर्मुख एवं विशिष्ट व्यक्ति के ऊपर उनका चिंतक-मनीषी रूप स्थित है। कामायनी की बिंब-सृष्टि में आद्यंत एक दार्शनिक, मनीषी एवं असंग व्यक्ति छाया हुआ है। यह व्यक्ति जीवन के घात-प्रतिघातों, विषण्ण मूर्च्छनाओं, आनंदोल्लास के क्षणिक वेगों के भीतर जीवन की अतल गहराइयों तक, शाश्वत तत्त्वों तक पहुँचने का आकांक्षी है। संपूर्ण काव्य में चिंतन की एक अंतर्धारा प्रवाहित है जो प्रसाद के चिंतक को प्रकट करती है।

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता
तेरे हैं कितने नाम।
..... . . ..
अरी व्याधि की सूत्र धारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
(चिंता सर्ग)

देव न थे हम और न ये हैं,
सब परिवर्तन के पुतले,

हाँ, कि गर्व रथ मे तुरग सा
जितना जो चाहे जुत ले।
(आशा सर्ग)

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ,
...... ... . .. .........
(आशा सर्ग)

काम मगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।
(श्रद्धा सर्ग)

सब कहते है खोलो खोलो,
छवि देखूँगा जीवन धन की,
आवरण स्वय बनते जाते
हैं भीड़ लग रही दर्शन की।
(काम सर्ग)

यह नीड मनोहर कृतियो का
यह विश्व कर्म रंगस्थल है;
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमे जितना बल है।
(काम सर्ग)

नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लिये हो,
इन्ही निमीलित ताराओ मे
कितनी शान्ति पिये हो।
(कर्म सर्ग)

किस गहन गुहा से अति अधीर।
झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर।
(इडा सर्ग)

जीवन मे सुख या कि अधिक दु ख मदाकिनि कुछ बोलोगी ?
नभ मे नखत अधिक, सागर मे या बुद्‌बुद् हैं गिन दोगी ?
(स्वप्न सर्ग)

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है

एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।
(रहस्य सर्ग)

प्रसाद का दृढ पर मधुर व्यक्तित्व, वज्रादपि कठोर, पर कुसुम कोमल व्यक्तित्व—'कामायनी' के पीछे झाकता है, झाकता ही नही, ओतप्रोत है। 'सुमन' जी ने प्रसाद के व्यक्तित्व को विश्लेषित करते हुए लिखा है—"अभाव के बीच भी उनका वही हसमुख चेहरा, वही आनदी स्वभाव रहता था। यह कुछ साधारण सिद्धि नही थी कि विरोध मे, अभाव मे, दु ख मे और उत्तेजक परिस्थिति मे भी वह अपनी शालीनता और मृदुता तथा सज्जनता के ऊचे स्थान से एक क्षण के लिए भी च्युत न होते थे। अवश्य ही उनके अदर कोई ऐसी गहरी शाति का स्रोत था, जो उनकी हर स्थिति मे समरस और स्थिर रहता था।"[६]

'कामायनी' मे भी जीवन की यही गहरी शाति ध्वस, हाहाकार और तुमुल कोलाहल के बीच उभरती गयी है। प्रसाद के लिए मानवता का अर्थ है—श्रद्धा, उत्सर्ग, विसर्जन समर्पण, करुणा, क्षमा, गरल को अमृत बनाना, उदारता और आत्मोदम्य भावना—इन्ही मानवता के उदात्त आदर्शों को दृष्टिगत रख कामायनीकार ने इस महाकाव्य का सृजन किया है।[७] श्रद्धा का गीत प्रसाद की समग्र जीवन-दृष्टि है जो तुमुल कोलाहल के बीच हृदय की बात बनकर अशात जीवन सागर के तट पर गुजरित रहेगा—

तुमुल कोलाहल कलह मे
मैं हृदय की बात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

महाकवि ने यहा चार चित्र प्रकृति के अचल से लिये हैं। जब युग चेतना विकल हो, चंचल हो, अशात हो, नीद के लिए तरसती हो—उस समय मलय बयार का मधुर झोका आकर जैसे शाति क्लाति को मिटा दे—उसी प्रकार श्रद्धा ही बुद्धि-जर्जर युग को शाति प्रदान कर सकती है।

विकल होकर नित्य चचल,
खोजती जब नीद के पल,
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

श्रद्धा क्या है, जैसे गहरे विषाद-भरे मन मे या व्यथा-भरे तिमिर वन मे उषा की ज्योति-रेखा फूलो से लदे प्रात को लेकर आयी हो—फिर कहा अधेरा, कहा व्यथा, कहा विषाद ! उनके भीतर से उल्लास, जीवन व प्रकाश लहरा उठा है—

चिर-विषाद-विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर वन की,
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा
कुसुम विकसित प्रात रे मन !

इसी प्रकार महाकवि ने तीन चित्र और दिये हैं—पहला मरु ज्वाला से धधकती जीवन-

घाटियो मे वर्षा की हरियाली का, दूसरा भयकर ग्रीष्म की प्रचड ज्वाला के दिन मे धधकते विश्व-दिन पर फूलो को लिये उतरनेवाली वसत रजनी का, तीसरा निराशा नीरधर से प्रतिच्छायित अश्रुसर मे भीतर से उमगकर खिलनेवाले मधुपो की गुजार से मुखर मकरद-भरे मुकुलित सजल जलजात के उभरने का—आतरिक उल्लास की ज्योति व माधुर्य के प्रस्फुटित होने का चित्र। जीवन की घनघोर निराशा के बीच आशा के अमृत स्वरो का यह सजीवन रस है—

**(क) मरु ज्वाला का चित्र—**

जहाँ मरु ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती;
उन्ही जीवन-धारियो को,
मैं सरस बरसात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

**(ख) झुलसते विश्व-दिन का चित्र—**

पवन की प्राचीर मे रुक
जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व-दिन की
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

**(ग) निराशा का गहन चित्र—**

चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु-सर मे,
मधुप मुखर मकरद मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन !
(निर्वेद सर्ग)

प्रसाद जीवन को यथार्थ धरातल पर स्वीकार करते हैं, पर वहा रुकते नही—उस स्वीकार की सीमा है; उसके बाद रूपातरण एव उदात्तीकरण के सोपान हैं। कवि स्वीकार करता है, विश्व मे दुर्बलता है, पराजय है, पर यहा जीवन हारकर बैठ न जावे, पराजय के भीतर जो शक्ति का एक क्रीडामय स्रोत है उसकी मानवता अनुभूति करे, और वह उसे हसाती रहे—

विश्व की दुर्बलता बल बने
पराजय का बढता व्यापार
हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीडामय सचार।
(श्रद्धा सर्ग)

परिस्थितियो की विषमता के बीच भी जीवन का दुर्धर्ष रूप ऊर्जस्वित भाषा मे प्रकट हुआ है। मानवता के प्रति आस्था के इस उद्घोष मे प्रसाद की व्यक्तिगत जीवनानुभूतिया ही मुखर हैं[८]—

जलधि के फूटे कितने उत्स
द्वीप, कच्छप डूबें-उतरांय;
किन्तु वह खडी रहे दृढ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
(श्रद्धा सर्ग)

प्रसाद स्वीकार करते हैं—जीवन मे भूलें है, जीवन मे गरल है, अतरग छल है, मरण है, अवरोध है। यह जीवन का एक पक्ष है—यहा जीवन न रुकता है, न झुकता है। इन्हे लेकर वह क्षमा, उदारता व सामरस्य के द्वारा आगे बढ़ने का आकाक्षी है—यही प्रसाद के व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य हैं—

(क) भूल क्या है?

स्खलन चेतना के कौशल का
भूल जिसे कहते हैं,
एक बिन्दु, जिसमे विषाद के
नद उमडे रहते हैं।
आह वही अपराध, जगत की
दुर्बलता की माया;
धरणी की वर्जित मादकता
सचित तम की छाया।
(निर्वेद सर्ग)

(ख) पर, विष पीना ही जीवन है—यही प्रसाद का जीवनादर्श है—

नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लिये हो;
इन्ही निमीलित ताराओ मे
कितनी शाति पिये हो।
अखिल विश्व का विष पीते हो
सृष्टि जियेगी फिर से,
कहो अमर शीतलता इतनी
आती तुम्हें किधर से?
(निर्वेद सर्ग)

प्रसाद के लिए जीवन का मौन देवता—शिव ही—विश्व का सपूर्ण विष-पान कर उसे नव-जीवन से ज्योतिर्मय करता दीखता है। एक ध्यान-स्तमित योगी का विराट् चित्र जीवन का ही विराट् चित्र है—

अचल अनत नील लहरो पर
बैठे आसन मारे,
देव! कौन तुम झरते तन से
श्रम कण से ये तारे।
(निर्वेद सर्ग)

(ग) कवि के लिए विनाशशील नर्तन नवीनता है, भूल पूर्णता पाने का साधन; जी-जीकर मरना, यौवन लाने का उपक्रम, और क्षणिक विनाशो के भीतर चुपके से स्थिर मंगल का हसना महाकवि की प्रखर आशावादिता, गहन आस्था, उदारता एव अनत क्षमाशीलता के पक्ष को उजागर करता है—

प्रखर विनाशशील नर्तन मे
विपुल विश्व की माया;
क्षण-क्षण होती प्रकट नवीना
बनकर उसकी काया।
सदा पूर्णता पाने को सब
भूल किया करते क्या ?
जीवन मे यौवन लाने को
जी-जीकर मरते क्या ?
यह व्यापार महा गतिशाली
कही नही बसता क्या ?
क्षणिक विनाशो मे स्थिर मगल
चुपके से हँसता क्या ?
(निर्वेद सर्ग)

क्षणिक विनाशो मे स्थिर मगल का चुपके से हँसना चित्र को एक नाटकीय भगिमा प्रदान करता है। कवि के लिए 'प्रखर विनाशशील' भी नर्तन है, माया है, मानो क्षणे-क्षणे नवता प्राप्त करनेवाली रमणीयता हो।

प्रसाद जीवन के उद्गीथ गायक है। उनकी मगलोन्मुखी वाणी के मधु स्वरो के सजीवन से चित्रो मे अद्भुत पुलक एव अनिद्य सुषमा का उन्मेष हुआ है—ऐसी उदार, शात, सौम्य, सामरस्यपूर्ण मानव की वाणी, मानवता का शाश्वत शृगार, जीवन का अपार वैभव एव ऋतभरी प्रज्ञा का प्रकाश है।

घोर व्यक्तिवाद, दभ, ऐकातिक स्वार्थ व भोग-लिप्सा पर प्रहार कर जीवन को संतुलित-सयमित कर अभावो के बीच भी कवि ने जीवन को आनद की आभा से ज्योतिर्मय किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कामायनी की बिंब-सृष्टि ने जिस व्यक्ति को आकृत किया है वह गीतिकार भी है और महाकवि भी, जो कल्पनाशील-भावप्रवण और रससिक्त भी है तथा प्रखर और जागरूक चिंतक भी, जिसका सौंदर्यबोध प्रज्ञा से ज्योतित है और रसात्मक माधुर्य सयम से शालीन, जो प्रकृति-प्रेमी भी है और मानव-प्रेमी भी, जिसका व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अग भी है पर जो समष्टि मे भी व्यष्टि का स्वतत्र अस्तित्व रखता है, जिसका मानस यथार्थ को स्वीकारता है और आदर्श के मनोराज्य मे विचरण करता है; जो काम को मगलमय श्रेय के रूप मे ग्रहण करता है और त्याग की दिव्यता से अभिभूत है, जो भोग मे तप और तप मे भोग को एकाकार पाता है, जो जीवन की विद्रूपता के भीतर आनद और मगल की प्रखर ज्योति का आलोक देखता है, जो भेद मे अभेद और खड मे अखंड का सधान करता है; जो व्यक्ति की साधारण भूमि पर स्थित होकर संपूर्ण मानवता के चरम विकास की कामना करता है, और सबसे बडी बात यह है कि इन

# परिशिष्ट (क)

## सहायक ग्रंथों की सूची

(अंग्रेज़ी)


1 C. Day Lewis *The Poetic Image*
2. Caroline Spurgeon *Shakespeare's Imagery*
3. Norman Callan . *Poetry in Practice*
4 Oswald Spengler *The Decline of the West*
5. Robin Skelton *The Poetic Pattern*
6. H D Lewis *Metaphor and Symbol*
7. Progress Publication, Moscow *Art and Society*
8 F L. Lucas . *Style*
9 Austin Warren and Rene Wellek *Theory of Literature*
10. Wolfgang H Clemen *The Development of Shakespeare's Imagery*
11 Robert Ulich *Symbols and Society*
12 William Empson *Seven Types of Ambiguity*
13. Pub Charles Scribner's Sons. N Y . *Philosophy looks at the Arts*
14 Lawrence John Zillman *Writing Your Poem*
15 M. H. Abrams *The Mirror and the Lamp Romantic Theory and Critical Traditions*
16. I A Richards *The Philosophy of Rhetoric*
17. Maud Bodkin *Archetypal Patterns in Poetry*
18 R. G. Collingwood . *The Principles of Art*
19 *Synonyms, Antonyms and Prepositions*
20 Max Black *Models and Metaphors*
21 Jean Paul Sartre *The Psychology of Imagination*
22 H Coombes *Literature And Criticism*
23 Archibald Macleish *Poetry And Experience*
24 'Mythical Thought' By Ernest Cassiver *The Philosophy of Symbolic Forms, Vol. 1*
25. J V. Cunningham : *The Problems of Style*

26 Christopher Caudwell : *Illusion and Reality*
27 I A. Richards · *Principles of Literary Criticism*
28 I A Richards . *Practical Criticism*
29 Karl Shapiro *A Primer for Poets*
30 William Walsh *The Use of Imagination*
31. Cleanth Brooks *Modern Poetry and Traditions*
32 Morris Weitz *Problems in Aesthetics*
33 Susanne K. Langer *Philosophy in a New Kay*
34 A C. Bradley . *Oxford Lectures On Poetry*
35 Sir Maurice Bowra *The Romantic Imagination*
36 Frank Kermode *Romantic Image*
37 I A Richards *Coleridge on Imagination*

# परिशिष्ट (ख)

## सहायक ग्रंथो की सूची

### ( हिंदी )


१ प्रसाद . काव्य कला व अन्य निबंध
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिंतामणि
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस मीमांसा
४ राम दहिन मिश्र . काव्य मे अप्रस्तुत योजना
५. बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र
६ डा० पद्मा अग्रवाल . प्रतीकवाद
७ डा० भगीरथ मिश्र . काव्यशास्त्र
८ डा० देवराज उपाध्याय रोमांटिक साहित्यशास्त्र
९ डा० कुमार विमल सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व
१०. डा० हरद्वारीलाल . सौंदर्यशास्त्र
११ डा० रामखिलावन पाडे काव्य और कल्पना
१२ डा० सुधांशु काव्य मे अभिव्यंजनावाद
१३. डा० सुधा सक्सेना जायसी की बिब योजना
१४ डा० भ्रमर आधुनिक कविता मे चित्र-विधान
१५ डा० फतहसिंह भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका
१६. डा० चद्रकला प्रतीकवाद का पुनरुत्थान और जयशकर प्रसाद
१७. डा० चद्रकला आधुनिक हिंदी साहित्य मे प्रतीक
१८ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कालिदास की लालित्य योजना
१९ डा० शभुनाथ सिंह छायावाद युग
२० डा० प्रेमशकर प्रसाद का काव्य
२१ डा० नददुलारे वाजपेयी : जयशकर प्रसाद
२२. डा० रमेश कुतलमेघ कामायनी की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका
२३. स० निर्मल तलवार प्रसाद . समीक्षात्मक ग्रंथ

२४. नामवर सिंह छायावाद
२५ स० डा० उदयभानु सिंह छायावाद
२६ सुधाकर पाडेय प्रसाद की कविताएं
२७ कैलाश वाजपेयी आधुनिक हिंदी कविता मे शिल्प
२८ डा० इन्द्रनाथ मदान : कामायनी मूल्याकन और मूल्याकन
२९ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस
३० नन्ददास नन्ददास ग्रन्थावली
३१. जगन्नाथ दास रत्नाकर बिहारी रत्नाकर
३२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी . प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद
३३ डा० नगेन्द्र काव्य-बिंब
३४ डा० निर्मला जैन प्लेटो के काव्य सिद्धान्त
३५ सुमित्रानन्दन पत आधुनिक कवि
३६ स० डा० रघुवश हिंदी साहित्य कोश
३७ डा० नगेन्द्र भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका
३८ डा० सत्यव्रत सिंह हिंदी काव्यप्रकाश भूमिका
३९. श्री मुक्तिबोध नयी कविता का आत्म-सघर्ष तथा अन्य निबध
४० स० डा० नरवणे मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन खंड)
४१ स० डा० पद्मा अग्रवाल मानविकी पारिभाषिक कोश (मनोविज्ञान खड)
४२ स० डा० नगेन्द्र मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खड)
४३ अज्ञेय आत्मनेपद
४४ डा० राधाकृष्णन् : सत्य की ओर
४५ डा० नित्यानद शर्मा आधुनिक काव्य मे प्रतीक विधान
४६. सुमित्रानन्दन पत पल्लव
४७ रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास
४८ डा० शम्भूनाथ सिंह हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास
४९ नागरी प्रचारिणी सभा हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (१६वा भाग)
५० डा० नामवर सिंह कविता के नये प्रतिमान
५१ डा० हरद्वारी लाल रस और आस्वादन
५२ अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद काव्यात्मक बिंब
५३ नागरी प्रचारिणी सभा सूरसागर
५४ विष्णुनाथ प्रसाद मिश्र घनानन्द कवित्त
५५ रामनाथ 'सुमन' कवि प्रसाद की काव्य साधना
५६ दिनकर पत, प्रसाद और मैथिलीशरण
५७ डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याए
५८ डा० रामेश्वर खडेलवाल जयशकर प्रसाद वस्तु और कला
५९ डा० सुशीला भारती कामायनी इतिहास और रूपक
६० स० रत्नशकर प्रसाद प्रसाद सगीत
६१ डा० रामलाल सिंह कामायनी अनुशीलन

६२. जयशंकर प्रसाद . चित्राधार, कानन कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्त्व, झरना, आंसू, लहर, कामायनी

६३. स० महावीर अधिकारी : जयशंकर प्रसाद · जीवन दर्शन, कला और कृतित्व

६४. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास

६५ सुमित्रानन्दन पंत पल्लव, गुंजन, ग्राम्या,

६६ महादेवी वर्मा यामा, दीपशिखा, सधिनी

६७ डा० नगेन्द्र . विचार और अनुभूति

६८. डा० सुरेन्द्र माथुर काव्य-बिंब और छायावाद

६९. सुमित्रानन्दन पत . छायावाद का पुनर्मूल्यांकन



गतिशील व्यापार-बिंब। अतिचारी मनु और अपमानित इडा के प्रसग को इस ध्वनि बिंब ने हृदय-विदारक बनाया है। 'भय का क्रदन !' एक-एक शब्द मे चीख की पुकार है। रुद्र के हुकार ने इस ध्वनि को कर्णभेदी, असहनीय बना दिया है।

श्वास-पवन पर चढकर मेरे
दूरागत वशी-रव सी,
गूँज उठी तुम विश्व कुहर मे
दिव्य रागिनी अभिनव-सी।
(निर्वेद सर्ग)

सरल वस्तु-बिंब। श्वास-पवन पर वशी-रव का गूजना—ध्वनि-बिंब को दिव्य कोमल सगीत से मडित करता है।

खग कुल किलकार रहे थे
कलहस कर रहे कलरव
किन्नरियाँ बनी प्रतिध्वनि
लेती थी ताने अभिनव।
(आनद सर्ग)

सरल, गतिशील व्यापार-बिंब—उल्लास की ध्वनि-प्रतिध्वनि से गुजरित।

गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर,
वाणी की वीणा ध्वनि-सी
भर उठी शून्य मे झिलकर।
हिमखड रश्मि-मडित हो
मणि दीप प्रकाश दिखाता,
जिनसे समीर टकराकर
अति मधुर मृदग बजाता।
(आनद सर्ग)

लास-रास का गतिशील व्यापार-बिंब—नृत्य एव सगीत की मधुर ध्वनि से झकृत। रास की योजना से आकार-सवलित।

घ्राण बिंब—

सौरभ से दिगत पूरित था
अतरिक्ष आलोक अधीर;
सबमे एक अचेतन गति थी
जिससे पिछडा रहे समीर।
(चिंता सर्ग)

अतरिक्ष आलोक से अधीर है, और सबमे एक अचेतन गति है—स्मृत विलास का यह बिंब सौरभ से सुवासित एव विलास से तरगित है। बिंब मे गति है, प्रकाश है।

इस इदीवर से गध भरी
बुनती जाली मधु की धारा;
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी सी कारा।

(काम सर्ग)

गध व मधु की धारा से जाल बुनने की कल्पना तथा इदीवर और मधुकर के अप्रस्तुत द्वारा गध के साथ चाक्षुषता का समावेश। गतिशील व्यापार बिंब।

उन नृत्य शिथिल निश्वासो की
कितनी है मोहमयी माया,
जिनसे समीर छनता-छनता
बनता है प्राणो की छाया।

(काम सर्ग)

घ्राण-बिंब नृत्यागना के सुरभित शिथिल श्वासो के स्पर्श से पुलकित है। स्थिर वस्तु-बिंब जिसे नर्तकी की कल्पना ने आकार भी दिया है।

देवदारु निकुज गह्वर सब सुधा मे स्नात,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात।
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गध;
पवन के घन घिरे पडते थे बने मधु अध।

(वासना सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब, वातावरण मे चतुर्दिक मधु गंध व्याप्त। 'सुधा मे स्नात' इस घ्राण-बिंब को कातिमय बना रहा है।

मधु बरसती विधु किरण है काँपती सुकुमार
पवन मे है पुलक मथर, चल रहा मधु भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यो हैं प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?

(वासना सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब जिसमे अनुभावो की व्यजना से जटिलता आ गयी है। इसमे वासना की सुवासित दिव्यता को मनु और श्रद्धा के सामीप्य ने आकार-सवलित किया है। ज्योत्स्ना से आलोकित यह बिंब अद्भुत है।

सुमन सकुलित भूमि रध्र से
मधुर गध उठती रस भीनी,
वाष्प अदृश्य फुहारे इसमे
छूट रहे, रस बूँदें भीनी।

(रहस्य सर्ग)

स्थिर वस्तु-बिंब जिसमे मधुर व रसभीनी विशेषणो ने गध को अधिक साद्र किया है। स्पर्श की पुलक इसमे है।

स्पर्श बिंब—

बिछुडे तेरे सब आलिंगन,
पुलक स्पर्श का पता नहीं,
मधुमय चुम्बन कातरताएँ
आज न मुख को सता रही।
(चिंता सर्ग)

सयोग शृगार का यह बिंब स्पर्शिक अनुभूतियो की स्मृति से विकल है। स्थिर व्यापार-बिंब।

धीर समीर परस से पुलकित
विकल हो चला श्रात शरीर
आशा की उलझी अलकों से
उठी लहर मधुगंध अधीर।
(आशा सर्ग)

यह स्पर्श बिंब मधुगंध की अधीर लहर से अधिक मधुर बन गया है। स्थिर सरल वस्तु-बिंब।

है स्पर्श मलय के झिलमिल सा
सज्ञा को और सुलाता है,
पुलकित हो आँखें बन्द किए
तन्द्रा को पास बुलाता है
व्रीडा है यह चचल कितनी
विभ्रम से घूँघट खीच रही
छिपने पर स्वय मृदुल कर से
क्यो मेरी आँखें मीच रही।
(काम सर्ग)

गतिशील व्यापार बिंब—मलय के झिलमिल स्पर्श से पुलकित और तन्द्रिल। बिंब मे प्रेमक्रीडा के मधुर आगिक स्पर्श हैं।

भुज लता पडी सरिताओ के
शैलो के गले सनाथ हुए,
जलनिधि का अचल व्यजन बना
धरणी का, दो-दो साथ हुए।
(काम सर्ग)

आलिगन के स्पर्श से रोमाचित गतिशील व्यापार बिंब।

मन कही, यह क्या हुआ है ? आज कैसा रग।
नत हुआ फण दृप्त ईर्ष्या का विलीन उमग।
और सहलाने लगा कर-कमल कोमल कात,
देखकर वह रूप सुषमा मनु हुए कुछ शांत।
(वासना सर्ग)

प्रयसी के कोमल स्पर्श से मधुर यह व्यापार बिंब रूप की सुषमा से मंडित है। स्पर्श बिंब चाक्षुषता-सवलित है।

नीरव निशीथ मे तलिका सी
तुम कौन ग्रा रही हो बढती ?
कोमल बाँहे फैलाये सी
ग्रालिगन का जादू पढती।
(लज्जा सर्ग)

गतिशील व्यापार बिंब—लज्जा के मानवीकरण से ग्राकार-सवलित, ग्रालिगन के स्पर्श से कोमल मादकता का सचार।

छूते थे मनु ग्रौर कटकित
होती थी वह बेली,
स्वस्थ व्यथा की लहरो-सी
जो ग्रंगलता थी फैली।
(कर्म सर्ग)

स्पर्शजन्य रोमाच ग्रनुभाव का यह स्थिर वस्तु-बिंब है। मनु ग्रौर श्रद्धा के युग्म ने इसे ग्राकार-सवलित किया है।

जलदागम मारुत से कपित
पल्लव सदृश हथेली
श्रद्धा की, धीरे से मनु ने
ग्रपने कर मे ले ली।
(कर्म सर्ग)

स्वेद ग्रौर कप सात्त्विको को रूपायित करने वाला यह स्पर्श-बिंब संयोग की भूमिका से सांद्र है। स्पर्श के साथ ग्राकार भी है।

सरिता का वह एकात कूल,
था पवन हिंडोले रहा झूल,
धीरे-धीरे लहरो का दल,
तट से टकरा होता ग्रोझल;
छप-छप का होता शब्द विरल,
थर-थर कँप रहती दीप्ति तरल;
ससृति ग्रपने मे रही भूल,
वह गध विधुर ग्रम्लान फूल।
(दर्शन सर्ग)

प्रकृति का गतिशील व्यापार बिंब—जिसमे पवन का स्पर्श है, लहरो का ग्रालिगन है। शब्द, रग, ग्राकार-युक्त प्रकृति का पूर्ण बिंब।

ग्रालिगन सी मधुर प्रेरणा
छू लेती फिर सिहरन बनती

नव अलम्बुषा की व्रीडा सी
खुल जाती है फिर जा मुँदती ।
(रहस्य सर्ग)

प्रेमपूर्ण विविध स्पर्शों की आतर अनुभूतियो की व्यजना । स्थिर व्यापार बिंब ।

अति मधुर गधवह बहता
परिमल बूँदो से सिंचित,
सुख स्पर्श कमल केसर का,
कर आया रज से रजित ।
(आनद सर्ग)

सुख स्पर्श को गध व रस ने पूर्ण बनाया है । गतिशील वस्तु बिंब ।

सिकुडन कौशेय वसन की
थी विश्व-सुदरी तन पर,
या मादन मृदुतम कपन
छाया सपूर्ण सृजन पर ।
(आनद सर्ग)

स्थिर वस्तु बिंब—प्रेम की मधुर हलकी पुलक से पूर्ण है ।

आस्वाद बिंब—

अरी उपेक्षा भरी अमरते !
री अतृप्ति ! निर्वाध विलास !
द्विधारहित अपलक नयनो की
भूख भरी दर्शन की प्यास ।
(चिंता सर्ग)

भोग की तीव्र आकाक्षा—अनत भूख का यह चित्र उद्दाम विलास को ध्वनित करता है । अप-लक नयन' से एक स्पष्ट आकृति—स्थिर व्यापार बिंब ।

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से—
आती चूम-चूम चल जाती
पढी हुई किस टोने से ।
(आशा सर्ग)

रात्रि के मानवीकरण द्वारा नायिका की शृगारिक छवि—भ्रमर के रसपान का यह व्यापार बिंब है । वातावरण इसके कुहक से रमणीय है ।

लतिका घूँघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध-सी मधु धारा
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा ।
(काम सर्ग)

स्थिर वस्तु बिंब। भोग के रस-भीगे क्षणो का स्मृत चित्र। चितवन के कटाक्ष के आस्वाद अनुभवो से प्रभावपूर्ण बनाया है।

पुरोडाश के साथ सोम का
पान लगे मनु करने,
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने।
(काम सर्ग)

सोमपान की मादकता के स्वाद से रिक्त को भरने की व्यजना। बिंब यद्यपि अच्छा नही बना है पर एक आकृति इसमे है।

इंद्रिय की अभिलाषा जितनी
सतत सफलता पावे,
जहाँ हृदय की तृप्ति विलासिनी
मधुर-मधुर कुछ गावे।
(कर्म सर्ग)

अभिलाषा की तृप्ति, इंद्रियो का भोग मधुर गान से मुखर है। स्थिर वस्तु बिंब।

मैं अतृप्त आलोक भिखारी, ओ प्रकाश बालिके! बता
कब डूबेगी प्यास हमारी इन मधु अधरो के रस मे ?
(स्वप्न सर्ग)

वासना की प्यास मे विकल स्थिर वस्तु बिंब। 'प्रकाश बालिके'—कातिमय आकृति प्रत्यक्ष है।

उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे,
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मीचे।
(निर्वेद सर्ग)

यौवन के निश्चित विहार और उसकी तृप्ति—मदिरा-पान की नशीली चेतना—रूपायित है। सुरभि से पूर्ण स्थिर व्यापार बिंब।

जैसे असख्य मुकुलो का
मादन विकास कर आया,
उनके अछूत अधरो का
कितना चुबन भर लाया।
(आनद सर्ग)

मुकुलो के चुबन रस से सराबोर—पवन रूपी नायक का चित्र—गतिशील व्यापार बिंब मुकुलो के गध से सुवासित, चुबन के आस्वाद से पुलकित और तृप्त है।

## मानस-बिंब

भाव-प्रधान—

चलते थे सुरभित अंचल से
जीवन के मधुमय निश्वास।
कोलाहल में मुखरित होता
देव जाति का सुख विश्वास।
सुख, केवल वह सुख का संग्रह,
केन्द्रीभूत हुआ इतना
छाया पथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।
...... ......... ........ ..........
गया, सभी कुछ गया, मधुरतम
सुर बालाओं का शृंगार;
उषा-ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित,
मधुप सदृश निश्चित विहार।
.. ...... ... ...... . ..........
अब न कपोलों पर छाया सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलों में शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।
वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा
अंग-भंगियों का नर्तन
मधुकर के मरंद उत्सव-सा
मदिर भाव से आवर्तन।

(चिन्ता सर्ग)

स्मृत विलास चित्र, वेदना की गहन अनुभूति, व्याकुलता तथा उनके अभाव का दंश। मिलन-क्रीडा के विविध व्यापारों में रंग, ध्वनि के स्पर्श आदि की व्यंजना—और सबसे ऊपर आंतरिक व्यथा।

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।

(आशा सर्ग)

प्रकृति के अनुरागपूर्ण उषाकालीन रूप की व्यंजना जिसे सित सरोज और पिंग पराग के क्रीड़ा द्वारा अधिक संवेद्य एवं मधुर बनाया है।